भारतीय शिक्षा का इतिहास

द्वितीय भाग

[आधुनिक काल]

लेखक

मुनेश्वर प्रसाद

एम० ए० (हिन्दी, इतिहास), एम० एड०

प्राध्यापक

पटना ट्रेनिंग कालेज

पटना

प्रकाशक

श्रीअजन्ता प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड

पटना–४

मूल्य ८।।।)

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम भाग अगस्त १९५५ में ही प्रकाशित हो चुका था। कई कारणों से द्वितीय भाग समय पर न निकल सका। इसके लिए मैं पाठकों का क्षमा-प्रार्थी हूँ।

मुझे हर्ष है कि पुस्तक का प्रथम भाग, थोड़े ही दिनों में, विद्वानों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों का कृपा-पात्र बनने में समर्थ हुआ। कई ट्रेनिंग कालेजों में इसे पाठ्य-पुस्तक का स्थान भी प्राप्त हो गया है। इससे भारतीय शिक्षा के इतिहास के इस द्वितीय भाग को मैं अधिक आशा तथा विश्वास के साथ उपस्थित कर रहा हूँ।

जैसा कि पाठक परिचित हैं, पुस्तक के प्रथम भाग में भारतीय शिक्षा के प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास वर्णित हैं। द्वितीय भाग में भारतीय शिक्षा के आधुनिक काल का इतिहास दिया गया है। भारत में अँगरेजी शिक्षा-पद्धति का उद्भव तथा विकास पुस्तक का मुख्य वर्ण्य-विषय है। अन्तिम अध्याय में स्वतंत्र भारत की शिक्षा का भी एक ऐतिहासिक चित्र उपस्थित किया गया है। पुस्तक के प्रथम भाग की तरह, द्वितीय भाग को भी, पूर्ण वैज्ञानिक तथा आलोचनात्मक बनाने की चेष्टा की गयी है।

द्वितीय भाग के प्रणयन में मैंने जिन जिन पुस्तकों, रिपोर्टों तथा पत्र-पत्रिकाओं आदि का उपयोग किया है, उनके नाम यथास्थान फुटनोट में दिये गये हैं। इनके लेखकों, प्रकाशकों तथा अन्य संबधित व्यक्तियों एवं संस्थाओं के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्री सैयद नुरुल्ला तथा श्री जे० पी० नायक के द्वारा लिखित 'ए हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इंडिया' की सामग्रियों से मैं बहुत लाभान्वित हुआ हूँ। अतः इन लेखकों का मैं विशेष ऋणी हूँ।

पुस्तक की रचना में बहुत से अँगरेजी शब्दों के हिन्दी रूपान्तर मुझे करने पड़े। इस कार्य में मैंने भरसक हिन्दी भाषा के प्रामाणिक-रूप-से-प्रचलित शब्दों को ही व्यवहृत करने की चेष्टा की है।

काफी कोशिश करने पर भी पुस्तक में कई त्रुटियाँ आ गयी हैं। इन त्रुटियों के लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। यदि अवसर मिला, तो द्वितीय संस्करण में इन त्रुटियों को दूर करने की भरपूर चेष्टा की जायगी।

आशा है भारतीय शिक्षा के इतिहास के इस द्वितीय भाग को भी, पहले भाग की तरह ही, सहृदय पाठकों का स्नेह प्राप्त होगा।

पटना
२५ जनवरी १९५७

मुनेश्वर प्रसाद

विषय-सूची

पहला अध्याय

सामान्य परिचय

आधुनिक काल में भारतीय शिक्षा का इतिहास उन द्वन्द्वों का इतिहास है, जिनमें प्राचीन तथा अर्वाचीन, रूढ़िवाद तथा प्रगतिवाद, साम्राज्यवाद तथा राष्ट्रवाद, उदारवाद तथा उपयोगितावाद के घात प्रतिघात सन्निविष्ट हैं। इन घात-प्रतिघातों में अपनी क्षीणकाय को लपेटती-समेटती शिक्षा की स्रोतस्विनी निरन्तर अग्रसर होती गई। किन्तु अभी तक वह दुर्धर्ष चट्टानों से अपने को मुक्त नहीं कर पायी है, अभी तक उसे स्निग्ध-भूमि प्राप्त न हो सकी है, जहाँ वह अपने को सर्वथा निरापद समझ कर स्वच्छंदतापूर्वक एक सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ सके।

सुविधा के लिए हम आधुनिक काल में भारतीय शिक्षा के इतिहास को दो खंडों में बाँट सकते हैं:—

(क) अंग्रेजी काल में भारतीय शिक्षा।

(ख) स्वतन्त्र भारत में भारतीय शिक्षा।

अंग्रेजी काल में उपरोक्त द्वन्द्वों का क्रीड़ाक्षेत्र न केवल भारत था बल्कि इनका सूत्रपात तथा विस्तार बहुधा इङ्गलैंड में हुआ करता था। वहाँ की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विचारधाराओं का प्रभाव भारतीय शिक्षा की गतिविधि पर पड़ना अवश्यम्भावी था। फलतः अंग्रजी काल में भारतीय शिक्षा के इतिहास के सम्यक् परिग्रहण के लिए हमें इङ्गलैंड की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

अंग्रेजी काल में भारतीय शिक्षा का इतिहास निम्नलिखित कालगत विभागों में बाँटा जा सकता है* :—

(१) सन् १७०० से १८१३ ई०
(२) सन् १८१३ से १८५४ ई०
(३) सन् १८५४ से १९०० ई०
(४) सन् १९०१ से १९२१ ई०
(५) सन् १९२१ से १९४७ ई०

अब हम इन खंडों की प्रमुख धाराओं का सामान्य परिचय उपस्थित करते हैं।

(१) सन् १७०० से १८१३ ई० :—

पूर्वीय देशों से व्यापार करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना इंग्लैंड में सन् १६०० ई० में हुई थी। अपनी स्थापना के लगभग १५० वर्षों बाद तक कम्पनी प्रधानतः व्यावसायिक संस्था रही। भारत में कम्पनी का राजनीतिक प्रभुत्व १८वीं शताब्दी के मध्य से आरम्भ हुआ। पलासी की विजय (सन् १७५७) तथा बक्सर की विजय (१७६४) ने कम्पनी को बंगाल का वास्तविक स्वामी बना दिया। १७६५ ई० की दीवानी से कम्पनी के प्रभुत्व का शाही प्रमाण-पत्र भी मिल गया। अब कम्पनी महज व्यावसायिक संस्था न रह कर एक बड़े प्रान्त की शासिका बन गई। अब कम्पनी के ऊपर अपने अधीनस्थ प्रदेश के बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी आ पड़ी। किन्तु इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए कम्पनी प्रस्तुत न थी। इसके दो कारण थे। पहला यह कि कम्पनी का प्रधान उद्देश्य अभी भी अर्थोपार्जन ही था। दूसरा यह कि इङ्गलैंड में भी अभी तक शिक्षा राज्य के उत्तरदायित्वों में न था। स्वभावतः कम्पनी भारतीय प्रजा की शिक्षा का प्रबन्ध अपनी जिम्मेदारी नहीं समझती थी। किन्तु कम्पनी के भारतस्थित अंग्रेज अधिकारी, कई कारणों से, इस बात की पूरी कोशिश कर रहे थे कि कम्पनी अपने इस उत्तरदायित्व को मंजूर करे। राज्य संचालन के लिए इन अधिकारियों को ऐसे पढ़े-लिखे कर्मचारियों की आवश्यकता थी, जो उनके तथा प्रजा के बीच उपयुक्त माध्यम बन सकते। इन अधिकारियों की यह भी इच्छा थी

* Naik & Nurullah—A History of Education in India. Introduction.

कि कम्पनी के शासन को लोग नवाबों के शासन से किसी अंश में हीन न समझें। कुछ उदार अधिकारी महज मनुष्यता के नाते देशवासियों की शिक्षा के लिए प्रयत्नशील होना चाहते थे। इन मिले जुले कारणों के फलस्वरूप कम्पनी के अफसरों एवं पदाधिकारियों की ओर से एक प्रबल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, ताकि कम्पनी भारतीय प्रजा की शिक्षा के उत्तरदायित्व को पूरी तरह स्वीकार कर ले। उधर कम्पनी के संचालक, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इसके लिए एकदम तैयार न थे। इस तरह करीब ६० वर्षों तक कम्पनी के संचालकों तथा कम्पनी के भारतस्थित अंग्रेज अधिकारियों के बीच शिक्षा के प्रश्न पर द्वन्द्व चलता रहा। इसके अतिरिक्त कम्पनी पर दूसरा दबाव पड़ा, जो प्रधानतः धार्मिक था, किन्तु जिसका सम्बन्ध शिक्षा से भी गहरा था। धर्म-प्रचार के विचार से अंग्रेज धर्म-प्रचारक (Missionaries) भी, अन्य देशों के धर्म-प्रचारकों की तरह, बहुत पहले से भारत में जमे हुए थे। कम्पनी की व्यापारिक समोन्नति के साथ-साथ इन प्रचारकों का कार्यक्षेत्र भी क्रमशः बढ़ने लगा। सन् १७६५ ई० के पहले कम्पनी को कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त न था, जिसके द्वारा वह इन धर्म-प्रचारक संस्थाओं को प्रोत्साहन दे सकती। किन्तु सन १७६५ ई० के बाद वह एक प्रान्त की स्वामिनी थी। धर्म-प्रचारकों ने अब कम्पनी से सहूलियतें माँगनी प्रारम्भ कर दीं। किन्तु उसके लिए भी कम्पनी प्रस्तुत नहीं थी। उसे डर था कि धर्म-प्रचारकों के धर्म-प्रचार की चेष्टाओं से भारतीय प्रजा में असन्तोष तथा विद्रोह की आग भड़क सकती थी, जिससे कम्पनी का नवजात प्रभुत्व खतरे में पड़ जा सकता था। पर धर्म-प्रचारक भी कम्पनी को मजबूर करने के लिए कमर कस कर तैयार थे। पार्लियामेंट के सदस्यों में धर्म-प्रचारकों के कुछ समर्थक थे, जो इङ्गलैंड में उनकी ओर से आवाज बुलन्द किया करते थे।

इस तरह, इस अवधि का दूसरा द्वंद्व धर्म-प्रचारकों के सम्बन्ध में था, जिसका शिक्षा से अभिन्न सम्बन्ध था। कम्पनी की अनिच्छा के समक्ष भी कम्पनी के अफसरों तथा पदाधिकारियों की जीत हुई, और सन् १८१३ के अधिकार-पत्र (Charter) के अनुसार कम्पनी को सर्वप्रथम यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत के अधिकृत प्रदेशों में शिक्षा प्रसार का कार्य उसके राजकीय उत्तरदायित्वों में है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए एक निश्चित वार्षिक रकम भी तय कर दी गई। इस तरह, सन् १८१३ के बाद भारतीय शिक्षा की

व्यवस्था सरकार के शासन का एक अंग बन गई। उधर इस अधिकार-पत्र से धर्म-प्रचारकों की विजय भी हुई। यह निश्चय किया गया कि धर्म-प्रचारकों को, भारत में प्रकाश तथा ज्ञान वितरण के निमित्त, प्रोत्साहन दिया जाय।

(२) १८१३-१८५४ ई० :—

इस काल में भारतीय शिक्षा का इतिहास उन दलों के संघर्ष का इतिहास है, जिन्हें हम प्राच्य तथा पाश्चात्य (Orientalists and occidentalists) के नाम से पुकारते हैं। प्राच्य दल के मतानुसार भारतीयों को भारतीय-संस्कृति की शिक्षा भारतीय भाषा में ही दी जानी चाहिये थी। इसके साथ ही पाश्चात्य विचारों तथा विज्ञानादि की शिक्षा दी जा सकती थी, किन्तु उसके माध्यम के लिए भी भारतीय भाषायें ही उपयुक्त थीं। इस दल के समर्थक कुछ भारतीय विद्वान तथा कम्पनी के पुराने पदाधिकारी थे जिन्हें भारतीय ज्ञान के प्रति पूरी आस्था थी तथा जो भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। दुर्भाग्यवश, इस दल के उन्नायकों में पूर्ण मतैक्य नहीं था। बंगाल के लोगों के विचार में शिक्षा के माध्यम के लिए संस्कृत, फारसी आदि प्राचीन सांस्कृतिक भाषायें ही उपयुक्त थीं। बम्बई के लोगों का विचार था कि शिक्षा का माध्यम प्रचलित बोलचाल की भाषा होना चाहिये था। संस्कृत आदि भाषाओं की शिक्षा पाठ्य-विषय के रूप में अलग हो सकती थी। इस मतभेद के कारण, प्राच्य दल के समर्थकों को वह बल प्राप्त न हो सका जो कि पूर्ण मतैक्य होने से होता।

पाश्चात्य दल के समर्थकों में मुख्यत: कम्पनी के नये पदाधिकारी थे, जो इंगलैंड के उदारवाद से पूर्णत: प्रभावित थे। इन्हें रूढ़ि तथा प्राचीनता से विरोध था। इनका विश्वास था कि लाभप्रद शिक्षा नवीन ज्ञान के प्रचार से ही सम्भव है। इस नवीन ज्ञान की शिक्षा के लिए अंग्रेजी का माध्यम अनिवार्य था, जिसमें ही तथाकथित नवीन भावनायें लिपिबद्ध थीं। पाश्चात्य ज्ञान तथा अंग्रेजी माध्यम के पक्ष में और भी बातें थीं, जिनका सम्बन्ध, वास्तव में, राजनीतिक तथा धार्मिक बातों से था। इस दल के नेता सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् तथा लेखक मेकाले (Mecaulay) थे, जिनकी प्रबल इच्छा थी कि भारत में पाश्चात्य संस्कृति से पूर्णत: सराबोर कुछ ऐसे व्यक्ति तैयार हो जायँ, जो इस

संस्कृति के प्रसार के सफल माध्यम बन सकें। दल के सौभाग्य से कुछ भारतीय विद्वान भी ऐसे मिल गये, जिन्हें पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान के प्रति बड़ी आस्था थी, और जो स्वदेश में नवीन ज्ञान का पूर्ण प्रतिष्ठापन चाहते थे। इन भारतीय विद्वानों में श्री राजा राममोहन राय, जो आधुनिक युग के प्रवर्तक माने जाते हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं। वास्तव में, मेकाले तथा राम मोहन राय के टक्कर का कोई व्यक्ति प्राच्य दल में नहीं था।

उपर्युक्त दो दलों का संघर्ष मुख्यतः चार बातों पर केन्द्रित था।

१. अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये, पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार अथवा भारतीय ज्ञान का प्रसार ?

२. शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए; अंग्रेजी, संस्कृत एवं फारसी अथवा बोलचाल की प्रचलित भाषायें ?

३. शिक्षा प्रसार का साधन क्या हो; कम्पनी, विदेशी धर्म-प्रचारकों के स्कूल अथवा पुराने देशी विद्यालय ?

४. शिक्षा प्रसार की रीति क्या हो; सार्वजनिक शिक्षा अथवा वर्ग शिक्षा ?

इन चार प्रश्नों पर लगभग ४० वर्षों तक अनवरत संघर्ष चलता रहा। सन् १८५४ ई० में वुड के संदेशपत्र (Wood's Dispatch) ने इस संघर्ष को सदा के लिए अन्त कर दिया। इस संदेशपत्र से यह निश्चित रूप से तय हो गया कि—

(क) कम्पनी की शिक्षा-सम्बन्धी नीति का उद्देश्य भारत में पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार होना चाहिये। किन्तु, प्राच्य ज्ञान को भी स्कूल की शिक्षा में स्थान मिलना चाहिये।

(ख) माध्यमिक शिक्षा के माध्यम अंग्रेजी तथा प्रचलित स्थानीय भाषाएँ हों।

(ग) शिक्षा प्रसार का उत्तरदायित्व अधिकतर गैरसरकारी संस्थाओं पर ही रहे। ये संस्थाएँ विदेशी धर्म-प्रचारकों अथवा स्वयं भारतीयों के द्वारा संचालित हो सकती हैं।

(घ) सरकारी शिक्षा का उद्देश्य वर्ग शिक्षा न होकर जन-शिक्षा हो।

(३) १८५४-१९०० ई०

इस अवधि में भारतीय शिक्षा-पद्धति पूर्ण रूप से पाश्चात्य आदर्शों पर प्रतिष्ठापित हो गई। किन्तु, शिक्षा प्रसार के माध्यम क्रमशः भारतीय विद्यालय ही अधिक होने लगे। ऊड के संदेशपत्र के अनुसार पाश्चात्य ज्ञान के साथ साथ भारतीय ज्ञान को भी प्रश्रय मिलना चाहिए था। किन्तु, कई कारणों से, भारतीय ज्ञान की शिक्षा सर्वथा उपेक्षित रही और सरकारी चेष्टायें अंग्रेजी-पद्धति के विकास की ओर ही प्रधानतः केन्द्रित रहने लगीं। इन कारणों में पहला यह था कि कम्पनी के अधिकांश नये अफसरों की दृष्टि में देशी स्कूलों का कोई महत्त्व नहीं था। दूसरा कारण यह था कि इन स्कूलों से सुधार के लिए कोई निश्चित सुझाव न था, जिसके फलस्वरूप इस प्रकार की कई चेष्टायें निष्फल हो जाती थीं। तीसरा बड़ा कारण यह था कि नयी शिक्षा के कुछ प्रबल समर्थक अभिभावकों के ऊपर विभिन्न तरह के दबाव देते थे, ताकि वे अपने बच्चों को नये स्कूल में ही भरती करावें। चौथा कारण यह था कि नये स्कूलों में शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरी प्राप्त करने में काफी सुविधायें थीं। इन मिलेजुले कारणों के फलस्वरूप सभी उच्च स्कूलों में पाश्चात्य विषयों की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से होने लगी। १९वीं शताब्दी के अन्त में देशी पाठशालयें प्रायः मृत हो गयीं।

इस काल का एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि नयी शिक्षा का प्रसार विदेशियों के द्वारा हो या भारतीयों के द्वारा। प्रारम्भ में विदेशी आचार्यों तथा अध्यापकों की अनिवार्यता तो स्वाभाविक थी। सन् १८८०ई० में लगभग बहुत से ऐसे भारतीय तैयार हो गये थे जो शिक्षक तथा आचार्य पद के लिये योग्य तथा प्रस्तुत थे। सन १८८२ ई० में भारतीय शिक्षा कमीशन (Indian Education Commission) ने इस प्रश्न पर विचार किया और यह तय किया कि शिक्षा प्रसार की संस्थायें प्रधानतः भारतीयों के द्वारा ही संचालित हों और इन संस्थाओं के विकास के लिए समुचित प्रोत्साहन दिया जाय। इस निश्चय के अनुसार सभी प्रान्तों में भारतीय चेष्टायें प्रोत्साहित की जाने लगीं और सन् १९०० ई० के लगभग अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार प्रधानतः भारतीयों के हाथों में आ गया।

(४) सन १९०१-१९२१ ई०

सन् १९०१ ई० में आधुनिक भारत की शिक्षा का चौथा संघर्ष उपस्थित हुआ। इस समय तक बहुत से भारतीय तथा यूरोपीय

विद्वान् भारतीय शिक्षा की प्रगति से असंतुष्ट हो गये थे। इन लोगों में कुछ लोग (विशेषतः उच्च वर्ग के सरकारी पदाधिकारी) ऐसे थे, जिनकी धारणा यह थी कि सन् १८८० ई० के बाद भारतीय शिक्षा के आन्तरिक स्वरूप में काफी विकृति आ गयी थी तथा गैरसरकारी स्कूलों में अनुशासन की बहुत कमी हो गयी थी। इन लोगों के विचार में पाश्चात्य ज्ञान के विस्तार का युग लद गया था और इस बात की आवश्यकता थी कि भारतीय शिक्षा का इस तरह से पुनर्गठन किया जाय, जिससे उसके द्वारा चरित्रवान स्त्री पुरुष निर्मित हो सकें। इन लोगों का कहना था कि भारतीय शिक्षा की गुणात्मक अवनति का प्रमुख कारण यह था कि 'इण्डियन एजुकेशन कमीशन' की सिफारिशों के अनुसार गैरसरकारी चेष्टाओं को स्कूलों के विस्तार में अत्यधिक छूट दे दी गई थी। दूसरी ओर भारतीय नेताओं तथा शिक्षा-शास्त्रियों का यह विचार था कि गैरसरकारी चेष्टाओं को स्कूलों के विस्तार में पूरा प्रोत्साहन मिलना चाहिये तथा प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना देना चाहिए। इस विचार के लोगों का यह विश्वास था कि भारत के राष्ट्रीय जीवन का पुनरुद्धार पाश्चात्य ज्ञान के प्रसार से ही सम्भव था। अतः ये लोग स्कूलों के सुधार की अपेक्षा स्कूलों के विस्तार को ही अधिक महत्व देते थे। सन १९०० ई० से १९२१ ई० तक भारतीय शिक्षा के इतिहास में उपर्युक्त दोनों प्रकार की विचारधाराओं में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में सुधारवादी दल की ही विजय होती रही। विश्वविद्यालय की शिक्षा के सम्बन्ध में १९०२ ई० के 'इण्डियन यूनिवर्सिटी कमीशन' ने सुधारवादी पक्ष का ही समर्थन किया। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सन १९०४–१९०८ ई० में ग्रांट-इन-एड के नये कानून बने, जिनमें ग्रांट-इन-एड की शर्तें कड़ी की गयीं। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधारवादियों की ही विजय हुई और गोखले का अनिवार्य-शिक्षा-सम्बन्धी विधेयक बहुमत से अस्वीकृत कर दिया गया। इन प्रतिरोधों से भारतीय जनमत शिक्षा सम्बन्धी सरकारी नीति से क्षुब्ध हो उठा और भारतीय शिक्षा के संचालन का उत्तरदायित्व भारतीयोंको हस्तान्तरित कर देने की आवाज बुलन्द होने लगी।

५—सन १९२१–१९४७ ई०

जनमत के सामने सरकार को झुकना पड़ा और सन १९२१ ई० में सभी प्रान्तों के शिक्षा विभाग भारतीय मन्त्रियों को सुपुर्द कर दिये

गये। सभी प्रान्तों में शिक्षा प्रसार की एक लहर सी दौड़ गई। नयी नयी योजनायें बनायी गयीं, नये नये कार्य-क्रम उपस्थित होने लगे। किन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय मंत्रियों ने शीघ्र ही देखा कि उनके प्रयास निष्फल थे। सन १६१७ के सुधार कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक स्थिति क्षीण हो गई थी, केन्द्रीय सरकार का शिक्षा-अनुदान भी बन्द कर दिया गया। कुछ ही दिन बाद विश्व-व्यापी आर्थिक विपन्नता उत्पन्न हो गयी, जिसका प्रभाव भारत पर भी पूरी तरह पड़ा। इन मिले जुले कारणों से भारतीय से मंत्रियों को भयानक अर्थ-संकट का सामना करना पड़ा। उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी अपनी सारी योजनायें त्यागनी पड़ीं और शिक्षा में जो खर्च उस समय तक किये जा रहे थे उसमें कटौती करनी पड़ी।

आर्थिक कठिनाइयों के अतिरिक्त सन १६२१–३७ की अवधि में शिक्षा की प्रगति में एक दूसरी बड़ी कठिनाई शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में उपस्थित हो गई। सुधारवादी तथा प्रसारवादी दलों के बारे में हम कह चुके हैं। सन १६२१ ई० के बाद भी ये दो दल शिक्षा के क्षेत्र में क्रियाशील रहे, जिससे शिक्षा-सम्बन्धी एक सुनिश्चित नीति निर्धारित न हो सकी। सन १६२६ ई० में 'हारटग कमिटी' की रिपोर्ट के प्रकाशन के साथ ही इन विरोधी दलों का संघर्ष तीव्र हो उठा।

ऐसी ही परिस्थिति में सन १६३५ ई० में 'गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट' पास हुआ, जिसके अनुसार केन्द्र में संघ शासन तथा प्रान्तों में स्वशासन की व्यवस्था की गई। कई कारणों से संघ शासन स्थापित न हो सका, किन्तु प्रान्तों में स्वशासन को कार्यान्वित करने की चेष्टा की गई। फलस्वरूप सन १८३७ ई० में प्रान्तों में उत्तरदायी कांग्रेसी मंत्रिमंडल संगठित हुआ। इस घटना ने भारतीय शिक्षा के इतिहास की धारा बदल दी। सन १६३६ ई० तथा सन १६४० ई० के बीच की अवधि शिक्षा के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस छोटी अवधि में शिक्षा के क्षेत्र में कई दिशाओं में कदम बढ़ाया गया तथा नये नये प्रयोग किये गये। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार तथा निरक्षरता-निवारण की योजनाओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसी अवधि में महात्मा गाँधी की "वर्धा योजना" प्रकाशित हुई, जिसने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नया पृष्ठ खोल दिया। दुर्भाग्यवश सन १६३६ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और शीघ्र ही कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने पदत्याग कर दिये। उत्तरदायी सरकार के स्थान पर सात प्रान्तों में ६३ धारा की

निरंकुश सरकार कायम हुई। स्वभावतः यह सरकार भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ठोस कार्य न कर सकी। किन्तु उसने इतनी चेष्टा अवश्य की कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल द्वारा संचालित योजनायें किसी भाँति चालू रहें।

१५ अगस्त, सन १९४७ ई० को अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया और देश को एक लम्बे संघर्ष के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, यद्यपि देश के विभाजन के रूप में हमें एक बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, जिसका विवरण हम इस पुस्तक के दूसरे खंड में प्रस्तुत करेंगे। स्वतन्त्र भारत में भी भारतीय शिक्षा की सामान्य नीति के सम्बन्ध में काफी संघर्ष चलता रहा। यह संघर्ष प्रधानतः इस बात पर केन्द्रित था (और है) कि शिक्षा का रूप तथाकथित उदारवादी हो, जिसकी आधारशिला अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने प्रस्तुत की थी, अथवा शिक्षा का रूप प्रधानतः उपयोगवादी तथा जनवादी हो, जिसका एक नवीन दर्शन महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा में अभिव्यक्त हुआ। इस संघर्ष का पूर्ण विवरण हम पुस्तक के द्वितीय खंड के सामान्य परिचय में प्राप्त करेंगे। पुस्तक के प्रथम खंड में अंग्रेजी शासन-काल में भारतीय शिक्षा का इतिहास वर्णित किया गया है। इस इतिहास के प्रमुख द्वन्द्वों का उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया गया है।

इन द्वन्द्वों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि आधुनिक भारत में भारतीय शिक्षा का इतिहास एक ऐसा इतिहास है, जिसकी घटनाओं के आधार पर एक कलाकार एक हृदयग्राही नाटक की रचना कर सकता है। वस्तुतः आधुनिक भारत की शिक्षा के विकास का इतिहास एक महान् नाटक के समान ही है। इस नाटक के पाँच प्रमुख अंक होंगे, जिनकी घटनाओं एवं चरित्रों की विशेषताओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अगले पृष्ठों में आधुनिक भारत की शिक्षा के इस महान् नाटक के विभिन्न अंकों के उतार-चढ़ाव को पल्लवित करने की चेष्टा की गई है। *

---

* The history of the evolution of the modern system of education may be likened to a great drama,'—Nurullah and Naik—History of Education in India—Introduction.

दूसरा अध्याय

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय शिक्षा की स्थिति

प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम भाग के द्वितीय खण्ड में मुसलिम शासकों के अधीन भारतीय शिक्षा की प्रगति का वर्णन किया जा चुका है। हम देख चुके हैं कि लगभग साढ़े छः सौ वर्षों के शासन में भी भारतीय शिक्षा सरकारी शासन पद्धति का अंग न बन सकी। फिर भी शासक-विशेष की वैयक्तिक चेष्टाओं से भारतीय शिक्षा को समय समय पर सम्बल और प्रोत्साहन मिलता रहा। मुसलिम शासकों ने भारतीय शिक्षा के आन्तरिक स्वरूप में किसी तरह के परिवर्त्तन की चेष्टा न की। इससे भारतीय शिक्षा की मूलधारा बहुतांश में अखण्डित रही। भारतीय शिक्षा का धार्मिक तथा परमार्थिक दृष्टिकोण मुसलिम काल में भी अधिकांशतः सुरक्षित रहा। विद्यालयों का पारिवारिक स्वरूप—गुरु-शिष्य का वैयक्तिक सम्बन्ध भी इस काल में लगभग अक्षुण्ण रहा। इस तरह मुसलिम विद्यालयों में भी भारतीय शिक्षा की प्रमुख विशेषतायें कायम रहीं। किन्तु व्यापकता की दृष्टि से मुसलिम शासन-काल में भारतीय शिक्षा की परिधि अवश्य ही संकुचित हो गई। उत्तर मुगलकाल में केन्द्रीय शासनकी शिथिलता, राजनीतिक अव्यवस्था तथा बाह्य आक्रमणों के कारण भारतीय शिक्षा की दशा और भी बुरी हो गई। फिर भी अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ में, शिक्षा के क्षेत्र में, भारत की स्थिति अधिकांश यूरोपीय देशों से अच्छी थी †।

---

†'The state of education, here exhibited, low as it is ompared with that of our own country, is higher than it was in most European conuntries at no very distance period'- Munro : quoted in Nurullah and Naik—History of Education in India.—P. 4.

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा के प्रसार के लिए मुसलिम काल में प्राचीन ढंग के संस्कृत विद्यालय तथा मुसलिम पद्धति के मदरसे क्रियाशील रहे। इन विद्यालयों तथा मदरसों की संख्या के बारे में कहना कठिन है। फिर भी आदम(Adam)की तृतीय रिपोर्ट से यह पता चलता है कि बंगाल में ऐसे विद्यालय काफी संख्या में १६ वीं सदी के प्रारम्भ में भी विद्यमान थे। केवल वर्दवान जिले में १६० संस्कृत विद्यालयों के अस्तित्व के बारे में आदम को पता चला था। दक्षिण बिहार जिले में फारसी तथा अरबी विद्यालयों की संख्या क्रमशः २६६ तथा १२ थी। उपर्युक्त संस्कृत विद्यालय जिले के विभिन्न गाँवों में इस प्रकार वितरित थे।

८६ गाँवों में — एक एक विद्यालय
२६ गाँवों में — दो दो विद्यालय
६ गाँवों में — तीन तीन ,,
३ गाँवों में — चार चार ,,
१ गाँव में — पाँच पाँच ,,
२ गाँव में — छः छः ,,

प्रत्येक विद्यालय प्रायः एक ही शिक्षक के अधीन रहता था। विद्यालय का खर्च विभिन्न स्रोतों से चलता था। कतिपय शिक्षक वर्दवान के राजा से अनुदान प्राप्त किया करते थे। कुछ को जमीन दी हुई थी। शिक्षकों की औसत आय ६३ रु० ४ आ० ५ पा० वार्षिक थी। अधिकांश विद्यालयों को अपने मकान थे, जो कि स्वयं शिक्षक उसके मित्रों तथा हितैषियों अथवा धनीमानी व्यक्तियों के द्वारा बनाये गये थे। कुछ विद्यालयों को अपने मकान न थे। उनका कार्य शिक्षक के निजी मकान अथवा किसी अन्य व्यक्ति के बैठकखाने या "चान्दी मण्डप" पर होता था।

इन विद्यालयों की छात्रसंख्या १३५८ थी। इस तरह एक स्कूल की औसत छात्रसंख्या लगभग ६ थी। ये छात्र विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा पाया करते थे। विषयों के अनुसार छात्रों का वितरण इस प्रकार था :—

व्याकरण	—	६४४	पिंगल	—	८
कोष	—	३१	धर्मशास्त्र	—	२३८
साहित्य	—	६०	वेदान्त	—	३

औषधि	—	१५	पुराण	—	४३
ज्योतिष	—	७	तंत्र	—	२
तर्क शास्त्र	—	२७७ *			

फारसी तथा अरबी के उपर्युक्त २६१ स्कूलों का वितरण इस तरह था :—

१८० गाँवों में	—	एक एक स्कूल
२४ ,, ,,	—	दो दो ,,
५ ,, ,,	—	तीन तीन ,,
१ शहर में	—	१६ ,,
१ शहर में	—	११ ,,
१ ,, ,,	—	७ ,,
१ ,, ,,	—	६ ,,
१ ,, ,,	—	५ ,,

इस तरह मुसलिम शिक्षा के उच्च विद्यालय शहर तथा गाँव दोनों ही में स्थित थे। शहर में गाँवों की अपेक्षा स्वभावतः अधिक विद्यालय थे। इन विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या २६१ ही थी, अर्थात्, एक विद्यालय एक ही शिक्षक के अधीन था। इन शिक्षकों में १ हिन्दू थे, अन्य मुसलमान थे। दो ऐसे भी शिक्षक थे जो अपने छात्रों को भोजन भी देते थे। अन्य शिक्षक मासिक पारिश्रमिक अथवा वेतन लिया करते थे। ये सभी शिक्षक विद्वान थे, बहुधा ये लेखक भी होते थे।

इन विद्यालयों में छात्रों की संख्या १४८६ थी। इस तरह प्रत्येक शिक्षक के अधीन औसतन लगभग पाँच छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। अरबी विद्यालयों में अधिकांश छात्र मुसलमान थे। फारसी विद्यालयों में हिन्दू छात्रों की संख्या ८६५ तथा मुसलमान छात्रों की संख्या ५५६ थी। हिन्दू छात्रों में ७११ छात्र कायस्थ जाति के थे। केवल दो अरबी तथा दो फारसी विद्यालयों के लिए अलग मकान बने हुए थे। अन्य विद्यालय शिक्षक के दरवाजे पर ही लगा करते थे।*

आदम के इस विवरण से स्पष्ट है कि १६ वीं सदी के मध्य तक बंगाल में हिन्दू-मुसलिम दोनों पद्धति के उच्च विद्यालय काफी संख्या में विद्यमान थे। ये विद्यालय आधुनिक ढंग के संगठित स्कूल अथवा

*Adam's report—PP 26I-66

कालेज न थे, बल्कि इनका स्वरूप गृह-विद्यालय के समान था। इन विद्यालयों के शिक्षक स्वयं अपने घर पर अथवा किसी धनीमानी व्यक्ति के घर पर छात्रों को शिक्षा दिया करते थे। उन्नीसवीं सदी में भारत के अन्य प्रान्तों में उच्च शिक्षा की स्थिति क्या थी—इसके पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते। सम्भवतः, बंगाल की भाँति, अन्य प्रान्तों में भी, गृह-विद्यालयों के द्वारा उच्च शिक्षा का कार्य होता रहा होगा।

बम्बई प्रान्त के कलक्टरों की रिपोर्टों से पता चलता है कि सूरत में मुसलिम शिक्षा का एक उच्च विद्यालय पूर्ण रूप से क्रियाशील था। यह मदरसा बोहरा जाति के लोगों के लिए निर्मित हुआ था। उसका वार्षिक खर्च ३२,००० रुपये था, जो कि गैर सरकारी स्रोतों से उपलब्ध होता था। मदरसे में अरबी की शिक्षा दी जाती थी। भारत के सभी प्रान्तों से छात्र यहाँ विद्याध्ययन के निमित्त आया करते थे। रिपोर्टों के प्रेषित होने के समय यहाँ १२५ बोहरा छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। यह विद्यालय न केवल बोहरा जाति बल्कि समस्त भारत के लिए गौरव का विषय था।

हिन्दू पद्धति के उच्च विद्यालय भी बम्बई प्रान्त में कई थे। अहमदनगर में १६ ऐसे उच्च विद्यालय थे। केवल पूना नगर में १६४ विद्यालय थे जो कि उच्च शिक्षा प्रदान किया करते थे।† मद्रास प्रान्त में भी उच्च शिक्षा के अनेक विद्यालय विद्यमान थे, जिनमें दर्शन, धर्मशास्त्र तथा ज्योतिष आदि की शिक्षा दी जाती थी। ये विद्यालय सामान्यतः स्वयं शिक्षकों के द्वारा संचालित रहते थे, जो बिना शुल्क या पारिश्रमिक के ही, कुछ चुने हुए छात्रों को शिक्षा दिया करते थे। कुछ शिक्षकों के भरण-पोषण के लिए देशी राजाओं की ओर से अनुदान के रूप में भूमि स्वीकृत रहती थी।‡

---

† It was no doubt, an object of pride not only for the Bohras, but for all the people of western India"—Parulekar refered to in History of Education in India—Nurullah and Naik. P. 15.

‡ Where there are Colleges or other institutions for teaching theology, law, astronomy, etc, an account should be given of them. These sciences are usually taught without fee or rewards, by individuals to a few scholars, or disciples, but there are also some instances in which the native government have granted allowances in money or land for the maintenance of teachers.- Records of the Government of Madras—quoted in Nurullah and Naik- P. 3.

प्राथमिक शिक्षा

पुस्तक के प्रथम खंड में भारत के प्राचीन प्राथमिक विद्यालयों का वर्णन दिया जा चुका है। मुसलिम आधिपत्य के फलस्वरूप देश के प्राथमिक विद्यालयों में कई तरह के परिवर्तन हुए। हम कह चुके हैं कि मुसलमानों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भारत में मस्जिदों तथा उनसे संलग्न मकतबों का आविर्भाव हुआ। इन मकतबों के उदय से प्राचीन पद्धति के प्राथमिक शालाओं की संख्या घटने लगी। साथ ही फारसी के राज्य भाषा होने के कारण मकतबों में हिन्दू छात्र भी काफी संख्या में दाखिल होने लगे। इससे हिन्दू पद्धति के प्राथमिक विद्यालयों की छात्र संख्या तथा प्रतिष्ठा दोनों की काफी क्षति हुई। फलत: मुसलिम शासन काल में भारत में मुसलिम पद्धति के प्राथमिक विद्यालयों की ही श्रीवृद्धि हुई। फिर भी देश के प्राचीन पद्धति के प्राथमिक विद्यालय जीवित रहे और जन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। इन विद्यालयों के अधिकांश छात्र व्यावसायिक तथा कृषक वर्ग के थे। उनीसवीं सदी के प्रथम भाग में अंग्रेजी सरकार ने मद्रास, बम्बई तथा बंगाल में देशी शिक्षा की स्थिति की जाँच की। मद्रास में स्थानीय गवर्नर सर टामस मुनरो ने कलकटरों से उन के जिले की शिक्षा के संबंध में सन् १८२२ ई० में रिपोर्टें मांगी। कनारा को छोड़कर अन्य जिलों के कलक्टरों की रिपोर्ट उपलब्ध हैं।

सन् १८२३-२५ ई० में बम्बई के गवर्नर मन्सटुआर्ट एलफिन्सटन ने बम्बई की शिक्षा की स्थिति की जाँच की। एलफिन्सटन ने भी अपने प्रान्त के कलक्टरों से देशी शिक्षा की स्थिति के संबंध में रिपोर्ट मांगी। पुन: सन् १८२९ ई० में बम्बई की सरकार ने जिला न्यायधीशों से शिक्षा के संबंध में रिपोर्ट मांगी। लार्ड विलियम बेन्टिक की अनुमति से स्कॉट-लैंड के धर्मप्रचारक आदम ने लगभग ३ वर्षों तक देशी शिक्षा के संबंध में जांच पड़ताल की। इस अवधि में उसने अपनी जाँच की तीन रिपोर्टें प्रकाशित की। उसकी तीसरी रिपोर्ट, जो अप्रिल १८३८ ई० में प्रेषित हुई, सब से अधिक महत्वपूर्ण है। इन रिपोर्टों से १९वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय शिक्षा की स्थिति का परिचय मिलता है। यद्यपि ये रिपोर्टें मद्रास, बम्बई तथा बंगाल अंग्रेजी प्रांतों के कुछ जिलों से ही संबंधित थीं तथा अन्य कई रूपों में दोषपूर्ण थीं; फिर भी इन से हम तत्कालीन देशी शिक्षा के सम्बन्ध में एक अन्दाज प्राप्त कर सकते हैं।

प्राथमिक शिक्षा के संबंध में इन रिपोर्टों का सार नीचे उपस्थित किया जाता है।

मद्रास—बेलारी जिले में ५३३ स्कूल थे, जिन में ६६४१ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। एक स्कूल की औसत छात्र संख्या १२ थी। उन छात्रों में ६३६८ हिन्दू थे तथा २४३ मुसलमान। लड़कियों की संख्या केवल ६० थी, जो सभी हिन्दू थीं। इन स्कूलों के अतिरिक्त २३ ऊँच शिक्षा की संस्थायें थीं, जिन में संस्कृत के माध्यम से धर्मशास्त्र, तर्क शास्त्र, दर्शन तथा ज्योतिष आदि की शिक्षा दी जाती थी। हिन्दु छात्रों की शिक्षा साधारणतः ५ वर्ष की अवस्था में आरम्भ होती थी। विद्यालय प्रवेश के अवसर पर छात्र के घर पर एक समारोह का आयोजन होता था, जिस में गणेश जी की पूजा होती थी। विद्यालय में छात्र प्रायः १४-१५ वर्ष की अवस्था तक शिक्षा ग्रहण करते थे। स्कूल का कार्य ६ बजे सुबह को आरंभ हो जाता था। जो छात्र स्कूल में सबसे पहले उपस्थित होता था, उसकी हथेली पर सरस्वती शब्द अंकित कर दिया जाता था, जिस का तात्पर्य यह था कि वह छात्र शिक्षक का अत्यन्त कृपापात्र था। जो छात्र उस के बाद स्कूल में उपस्थित होता था, उस की हथेली पर शून्य अंकित कर दिया जाता था, जिस का तात्पर्य यह था कि वह छात्र न अच्छा था न बुरा। तीसरे छात्र की हथेली पर एक हलकी छड़ी लगती थी तथा चौथे छात्र की हथेली पर दो छड़ी। इस तरह पाँचवें तथा अन्य छात्रों को क्रमशः तीन चार या पाँच छड़ी लगायी जाती थी। अकर्मण्य छात्रों को कोड़े लगाये जाते थे तथा अन्य प्रकार के दण्ड दिये जाते थे। अपनी योग्यता के अनुसार छात्र विभिन्न वर्गों में बंटे रहते थे। निचले वर्गों के छात्र आंशिक रूप में बालचरों के अधीन रहते थे। साधारणतः एक स्कूल में चार वर्ग रहते थे। शिक्षा का प्रारम्भ लिखना से होता था। बालक बालू पर अपनी उंगली से विभिन्न अक्षरों को लिखते थे। इस में अभ्यस्त हो जाने पर वे काठ या कपड़े की बनी तख्ती पर लिखते थे। अक्षरों के ज्ञान के बाद बालक मात्रायें तथा संयुक्ताक्षर लिखते थे। इस के बाद वे मनुष्य, गाँव, जानवर आदि के नाम लिखते थे। अंत में अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी। १ से १०० तक की गिनती के बाद वे जोड़ की तालिका स्मरण करते थे। इस के बाद वे जोड़-घटाव तथा गुणा-भाग के सामान्य हिसाब हल करते थे। पुनः वे भिन्न का ज्ञान प्राप्त करते थे। जोड़ तथा गुणा की तालिका अथवा रुपये और वजन संबंधी विभिन्न

अजों को स्मरण करने के लिये छात्र कतार में खड़े हो कर आवृत्ति किया करते थे। बालचट कलार के बच्चों को निर्देशित किया करते थे। प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यविषयों में विभिन्न हस्तालिखित प्रतियों का पढ़ना, सामान्य पत्रों का लिखना, दस्तवेज आदि तैयार करना, कहानियों तथा पद्यों का स्मरण करना सन्निविष्ट थे। बेलारी के कलक्टर की दृष्टि में भारत की देशी प्राथमिक शालाओं की शिक्षा कई रूपों में बहुत ही अच्छी थी। इन स्कूलों में लिखना की शिक्षा बहुत ही कम समय में सफलतापूर्वक दी जा रही थी। बालचट प्रथा के अनुसार उच्च श्रेणी के प्रतिभावान छात्र निचली श्रेणी के बच्चों को शिक्षा दिया करते थे और साथ ही अपने ज्ञान की वृद्धि भी किया करते थे। बालचट-शिक्षण की यह प्रथा भारतीय विद्यालयों से ही इंगलैंड के स्कूलों में प्रचलित हुई। †

बेलारी के कलक्टर के उपरोक्त विवरण में उन स्कूलों का जिक्र नहीं है जो कि, गृह-विद्यालयों के रूप में, अनेक परिवारों में आयोजित रहते थे। कनारा के कलक्टर की रिपोर्ट के अनुसार गृह-शिक्षा के रूप में पढ़ाये जाने वाले बच्चों की संख्या इतनी अधिक थी कि, तथाकथित स्कूलों और उनमें पढ़नेवालों बच्चों की गणना से, जिले की स्थिति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना कठिन ही नहीं, भ्रमात्मक था। ‡

जिले के कलक्टरों की रिपोर्टों का समन्वय मुनरो ने स्वयं किया। इस समन्वय से यह पता चला कि कि मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत १२४९८ स्कूल क्रियाशील थे। इन स्कूलों मे १८८००० छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन छात्रों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे छात्र थे, जो कि घर पर शिक्षा ग्रहण करते थे। इन दोनों प्रकार के छात्रों की संख्या स्कूल

---

† The economy with which children are taught to write in the native Schools and the system by which the most advanced scholars are caused to teach the less advanced, and at the same time to confirm their own knowledge, is certainly admirable and well deserves the imitation, which it has received in England.

Selections from the record of the Government of Madras, No. 11 Appendix D.

‡ The late principal Collector (of kanara) reported that education is conducted in that district so much in private that any statement of the number of schools, & of scholars, attending them, would be of little or no use, but on contrary fallacious in forming an estimate of the proportion of the population receiving instruction '

Ibid-Appendix C, Para 10.

अवस्था के समस्त छात्रों की संख्या के एक तिहाई के लगभग थे। इस तरह हम देखते हैं कि अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मद्रास में प्राथमिक शिक्षा लगभग ३३⅓ प्रतिशत थी।* यह स्मरण रहना चाहिये कि शिक्षा का यह अनुपात केवल बालकों की शिक्षा से सम्बन्धित था।

बम्बई :—मद्रास की जाँच के कुछ ही दिन बाद सन १८२३ ई० में बम्बई के गवर्नर मन्सटुआर्ट एलफिन्सटन ने अपने प्रान्त में देशी शिक्षा की स्थिति के सम्बन्ध में जाँच करायी। मद्रास की भाँति यहाँ भी जिला के कलक्टरों से रिपोर्टें माँगी गयीं। अधिकांश कलक्टरों की रिपोर्टें १८२४-२५ में प्राप्त हो गयीं। इन रिपोर्टों में तत्कालीन बम्बई प्रान्त के सभी जिलों की शिक्षा की स्थिति का सन्निवेश न था। किन्तु इनसे प्रान्त को तत्कालीन शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ ऐसे सामान्य निष्कर्ष निकलते हैं, जो कि प्रान्त के सभी भागों के लिये लागू समझे जा सकते हैं। सन १८२८ ई० में बम्बई सरकार ने शिक्षा के सम्बन्ध में एक दूसरी रिपोर्ट माँगी। यह रिपोर्ट जिला के कलक्टरों से नहीं, अपितु जिला के न्यायाधीशों (डिस्ट्रिक्ट जजों) से माँगी गयी। इन दोनों प्रकार की रिपोर्टों की मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं।

१. बम्बई प्रान्त के दस जिलों में कुल मिलाकर १७०५ विद्यालय थे, जिनमें २५ को सरकारी सहायता प्राप्त थी। इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या ३५,१५३ थी। जिलों की जनसंख्या ४,६८१,७३५ थी। अतः छात्र और जनसंख्या का पारस्परिक औसत अनुपात १ : १३३३ था।

२. सामान्यतः स्कूलों के लिए स्वतन्त्र मकान न होते थे। ये गाँव के मन्दिर, धनीमानी व्यक्तियों के दालान अथवा शिक्षक के दरवाजे पर लगा करते थे।

३. स्कूलों की औसत छात्रसंख्या १५ के लगभग रहती थी। किसी-किसी स्कूल में १५० तक छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे।

---

* I am, however, inclined to estimate the portion of the male population who receive education to be nearer to one third than one fourth of the whole, because we have no returns from the provinces of the number taught at home.

Selections from the Records of Government of Madras, No. 11, Appendix E, quoted in Nurullah & Naik – A History of Education in India. P. 4.

४. स्कूलों के अधिकांश शिक्षक ब्राह्मण थे। शिक्षक की मर्यादा से ही ये अपने व्यवसाय की ओर प्रेरित रहते थे, न कि आर्थिक लाभ से।

५. शिक्षकों की आय भिन्न स्थानों में भिन्न हुआ करती थी। सामान्यतः इनका नियमित पारिश्रमिक ३ रु० से ८ रु० प्रति माह होता था। इसके अतिरिक्त पर्व, त्योहार, विवाह आदि के अवसर पर उन्हें आर्थिक लाभ हुआ करता था।

६. पाठ्य विषयों में पढ़ना, लिखना तथा अंकगणित ही प्रधान थे। छात्रों को विभिन्न पहाड़ों का अभ्यास पूरा दिलाया जाता था, ताकि वे रोजमर्रे के हिसाब-किताब जबानी कर लें। स्कूलों की दण्ड-व्यवस्था कठोर थी।

७. स्कूलों में बालचट-शिक्षण की पद्धति सर्वत्र प्रचलित थी। उच्च योग्यता के छात्र अपने से नीची योग्यता के छात्रों को शिक्षा देते तथा उसके आचार-विचार का निरीक्षण किया करते थे।

बंगाल :—आदम की प्रथम रिपोर्ट उस समय तक उपलब्ध शिक्षा सम्बन्धी सभी स्रोतों पर आधारित थी। इस रिपोर्ट के अनुसार बंगाल और बिहार में प्राथमिक स्कूलों की संख्या एक लाख थी। उस समय बंगाल और बिहार की जनसंख्या अनुमानतः ४ लाख के लगभग थी। इस तरह प्रत्येक ४०० जनसंख्या पर एक स्कूल अवस्थित था। स्कूली अवस्था के छात्रों तथा स्कूल का अनुपात ६३ : १ था। चूँकि लड़कियाँ स्कूलों में शिक्षा ग्रहण नहीं करती थीं अतः ३२.४ लड़कों के लिए एक स्कूल क्रियाशील था। इन आँकड़ों के आधार पर आदम का यह निष्कर्ष था कि बंगाल और बिहार में देशी प्राथमिक विद्यालय बहुत ही विस्तृत थे।

आदम की प्रथम रिपोर्ट के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। सर फिलिप हारटग ने बंगाल और बिहार में एक लाख प्राथमिक स्कूलों का होना गप्प अथवा किंवदन्ती माना है। दूसरी ओर श्री पारुलेकर ने इसे सर्वथा सत्य और प्रामाणिक माना है। वस्तुतः प्रत्येक गाँव में एक स्कूल का उल्लेख अन्य लोगों ने भी किया है। मुनरो ने मद्रास के प्रत्येक गाँव में एक स्कूल का होना सही समझा है। वार्ड के अनुसार बंगाल के लगभग सभी गाँवों में

प्राथमिक स्कूल स्थित थे, जिनमें पढ़ना-लिखना तथा अंकगणित सिखलाये जाते थे। सर हारटग का सन्देह सम्भवतः इसलिए था कि उन्हों ने उन स्कूलों को मान्यता प्रदान न की, जो कि गृह-स्कूलों के रूप में क्रियाशील रहते थे।

आदम की द्वितीय रिपोर्ट बंगाल के एक थाने के विशिष्ट अध्ययन पर आधारित थी। राजशाही जिले के नेतोर थाने की शिक्षा के सम्बध में आदम ने पूरी जाँच-पड़ताल की। थाने की जनसंख्या १६५२६६ थी, जिसमें १२६६४० हिन्दू थे तथा ६५६५६ मुसलमान। थाने में ४८५ गाँव थे। आदम ने इन गाँवों में कुल २७ प्राथमिक स्कूल पाये। इन स्कूलों की छात्रसंख्या केवल २६२ थी जिनमें १० स्कूलों में बंगला की शिक्षा दी जाती थी, ४ स्कूलों में फारसी की, ११ स्कूलों में अरबी की, और २ स्कूलों में बंगला और फारसी दोनों ही पढ़ायी जाती थीं। इन स्कूलों के अतिरिक्त, बहुत से परिवारों में गृह-शिक्षा के रूप में परिवार के बच्चों को शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार शिक्षित होने वाले छात्रों की संख्या २,३४२ थी। इस प्रकार पारिवारिक स्कूलों में शिक्षित होने वाले छात्रों की संख्या सामान्यतः सार्वजनिक स्कूलों में शिक्षित होने वाले छात्रों से कई गुणी अधिक थी। स्त्री-शिक्षा के लिए स्कूल न थे। आदम के अनुसार नेतोर थाने में कुल ६,१२१ लोग शिक्षित अथवा साक्षर थे। थाने की आवादी, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, १६५,२६६ थी। इस तरह थाने में कुल जनसंख्या के ३.१ प्रतिशत लोग ही शिक्षित थे। स्त्री शिक्षा प्रायः नहीं के बराबर थी।

आदम की तृतीय रिपोर्ट, शिक्षा के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस रिपोर्ट में आदम ने बंगाल के पाँच जिलों—मुर्शिदावाद, बीरभूम, वर्द्दवान, साउथ-बिहार तथा तिरहुत की शिक्षा की स्थिति का बिवरण दिया। आदम के द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों का सारांश निम्नांकित तालिका में उपस्थित किया गया है।

जिला	स्कूलों की संख्या								छात्रों की संख्या
	बंगला	हिन्दी	संस्कृत	फारसी	अरबी	अंग्रेजी	लड़कियों के स्कूल	कुल संख्या	
मुर्शिदाबाद	६२	५	२४	१७	२	२	१	११३	१,३९६
बीरभूमि	४०७	५	५६	७१	२	२	१	५४४	७,३५०
बर्दवान	६३०	—	१९०	९३	११	३	४	९३१	१५,८१४
द० बिहार	—	२८६	२७	२७९	१२	१	—	६०५	५,०३६
तिरहुत	—	८०	५६	२३४	४	—	—	३७४	१,३१९
कुल	१०९९	३७६	३५३	६९४	३१	८	६	२,५७७	३०,९१५

आदम के द्वारा प्रस्तुत इन आँकड़ों में उन गृह स्कूलों के आँकड़े सम्मिलित नहीं हैं, जिनकी संख्या जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, बहुत बड़ी थी। आदम ने गृहशिक्षा के सम्बन्ध में प्रत्येक जिले के केवल एक थाने की जाँच की थी। इस जाँच के आंकड़ों के अनुसार पाँच थानों में गृह-शिक्षा के स्कूलों की संख्या निम्नांकित है :—

मुर्शिदाबाद शहर	—	२१६
दौलतबाजार थाना	—	२५४
नंगलिया थाना	—	२०७
खुल्ना थाना	—	४७५
जहानाबाद थाना	—	३६०
भवरा	—	२३५
		१,७४७

इन थानों में सार्वजनिक स्कूलों की संख्या ४ सौ से नीचे ही थी। इस तरह गृह विद्यालयों की संख्या सार्वजनिक स्कूलों की संख्या से कहीं अधिक थी। इससे स्पष्ट है कि आदम की प्रथम रिपोर्ट में वर्णित बंगाल में एक लाख स्कूलों का होना असम्भव अथवा गप्प न था। सर फिलिप हारटग के इस सम्बन्ध में क्या विचार हैं, इसका निर्देश हम

कर चुके हैं। सर हारटग ने आदम की प्रथम रिपोर्ट को गलत इसलिये समझा है कि वे उन गृह-स्कूलों की स्थिति को स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं, जिनकी संख्या, जैसा कि हम कई बार पहले कह चुके हैं, काफी थी। इससे स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में बंगाल में प्राथमिक शिक्षा के लगभग एक लाख विद्यालय थे, जिनमें परिवार विशेष के छात्र शिक्षित हुआ करते थे। मद्रास तथा बम्बई प्रान्त में भी ये गृह-विद्यालय बड़ी संख्या में विद्यमान थे—यह हम जान चुके हैं। ऐसी स्थिति में यह पूर्णतया सिद्ध है कि अंग्रेजी राज्य के प्रारंभ में भारत में अनगणित देशी विद्यालय थे, जो कि जन-सामान्य की शिक्षा सम्बन्धी आश्यकताओं की पूर्ति अपने ढंग से किया करते थे।

स्त्रीशिक्षा

पुस्तक के प्रथम भाग में हम कह चुके हैं कि भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के प्रति किसी तरह के प्रतिबन्ध न थे। राजनीतिक हलचलों तथा सामाजिक एवं आर्थिक विश्रृंखलताओं के कारण भारत की स्त्रियों की स्थिति मध्ययुग में काफी नीचे गिर गयी थी। परदा, बाल-विवाह आदि कुरीतियों के प्रचलन के कारण स्त्री-शिक्षा की अवस्था शोचनीय हो गयी थी। फिर भी देश में विदुषी स्त्रियों की कमी न थी। मुसलिम शिक्षा के प्रसंग में हम उन मुसलिम राजकुमारियों तथा महिषियों का उल्लेख कर चुके हैं, जो कि न केवल विदुषी थीं, बल्कि कवयित्रियाँ तथा लेखिकायें भी थीं। † मध्यकाल में अनेक हिन्दू महिलाएं भी थीं, जिन्होंने आध्यात्मिक तथा लौकिक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। कृष्ण-भक्ति से अनुप्राणित मीरा के पद आज भी करोड़ों मुखों से गुंजरित होते रहते हैं। अहिल्या बाई की धर्मपरायणता तथा कार्य-पटुता की तह में पारिवारिक सुशिक्षा थी। दुर्गावती तथा लक्ष्मी बाई के शौर्य एवं देश-प्रेम इस बात के परिचायक हैं कि उन्हें बचपन में युद्धकला, सैन्य-संचालन तथा वीरत्व की पूर्ण शिक्षा मिली थी। १८ वीं सदी के साहित्य एवं अन्य प्रमाणों से तत्कालीन कई विदुषी महिलाओं का परिचय मिलता है। ‡ भारतचन्द्र की नायिका विद्या एक सुशिक्षिता रमणी थी।

† प्रसाद-भारतीय शिक्षा का इतिहास—प्रथम भाग—पृष्ठ २८७.

‡ Dr. K. K. Dutta—Education and Social amelioration of women in Pre-mutiny India. P. 4

रामप्रसाद के विद्यासुन्दर की नायिका भी ऐसी ही विदुषी थी। उसने केवल उस पुरुष से विवाह करने का निश्चय किया था जो उसे बौद्धिक वाद-विवाद में परास्त कर सके। ढाका जिले में विक्रमपुर ग्राम के कवि जयनारायण की भतीजी आनन्दमयी सुप्रसिद्ध कवयित्रि थी। अपने चाचा के साथ सन् १७७२ ई० में उसने हरिलीला काव्य की रचना की। नतोर की रानी भवानी भी विदुषी महिला थी। वार्ड के अनुसार १६ वीं सदी के प्रारम्भ में हतीविद्यालंकार नामक एक स्त्री दार्शनिक निवास करती थी। उसका जन्म बंगाल में हुआ था। अपने पति तथा पिता की मृत्यु से विरक्त होकर वह बनारस में, शान्ति की खोज में, रहने लगी थी। यहाँ उसने शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन किया तथा धार्मिक विषयों की शिक्षा देना भी उसने प्रारम्भ किया था। उसके अनेक शिष्य हुए। उनकी विद्वत्ता की धाक इतनी थी कि लोगों ने उसे हती विद्यालंकार कहना शुरू किया। नसिरपुर के एक ब्राह्मण यशोवन्त की पत्नी बंगला में हिसाब-किताब भली-भाँति लिख-पढ़ सकती थी। राजा नवकृष्ण की पत्नियाँ पढ़ने में कुशल थीं। फरीदपुर जिले में श्यामसुन्दरी नामक एक ब्राह्मणी व्याकरण तथा तर्कशास्त्र का अध्ययन कर रही थी। नदिया के महाराज कृष्णचन्द्र के दरबार के विदुषक रसराज्य की कन्या मातृभाषा के साहित्य में पारंगत थी। उड़ीसा में रानी निसंक राय नामक एक सुप्रसिद्ध कवयित्री थी। इनके अतिरिक्त, बंगाल में अनेक सुशिक्षिता वैरागिनी तथा सन्यासिनी थीं, जो संस्कृत जानती थीं तथा बंगला के वैष्णव साहित्य में पूरी योग्यता रखती थीं। वैष्णव मत के दो प्रसिद्ध केन्द्र शान्तिपुर तथा नदिया में कई ऐसी स्त्रियाँ थीं, जो कि न केवल पढ़ी-लिखी थीं बल्कि जन-सामान्य में धर्म-प्रचार की क्षमता रखती थीं। क्षेपी नामक एक विदुषी के पास वैष्णव मत की अनेक बहुमूल्य पुस्तकें संगृहीत थीं। इन पुस्तकों की व्याख्या वह सफलतापूर्वक किया करती थी। बंगाल के मुसलमान भी अपनी कन्याओं की शिक्षा की ओर ध्यान देते थे। सेर-उल-मुताखेरीम के अनुसार एक पितामही ने अपनी पोती की शिक्षा में बड़ी दिलचस्पी ली थी। † इस तरह हम देखते हैं कि अठारहवीं सदी में भारत की स्त्रियाँ शिक्षिता थीं, अज्ञान से परिवेष्टिता

†This man......had made his fortune by marrying an orphan virgin, in whose education that unfortunate grand-mother had taken pleasure. Sheir—ul-Mutakheirm. Vol. II P. 242.

नहीं। गाँवों तथा शहरों में ऐसी स्त्रियाँ मौजूद थीं जो कि न केवल विदुषी थीं, बल्कि कवयित्री तथा लेखिका भी थीं। ‡

किन्तु, मध्यकाल में भारत में सामान्य स्त्रियों की शिक्षा उपेक्षित थी। अधिकांशतः, सम्पन्न तथा धनीमानी व्यक्ति अपनी कन्याओं की शिक्षा गृहविद्यालयों में दिया करते थे। किन्तु, ऐसे सार्वजनिक स्कूल नहीं थे, जिनमें सर्वसाधारण की कन्याओं की शिक्षा दी जाती। आर्थिक परिस्थिति, सामाजिक कुरीतियाँ एवं कुछ प्रचलित अंध-विश्वासों के कारण सामान्य जनता अपनी बालिकाओं की शिक्षा की ओर उदासीन रहती थी। मद्रास, बम्बई तथा बंगाल की शिक्षा-सम्बन्धी जाँच-पड़तालों, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, से यह स्पष्ट है कि १६ वीं सदी के प्रारम्भ में भारत में स्त्री-शिक्षा की दशा शोचनीय थी। सार्वजनिक स्कूलों में लड़कियों की संख्या अत्यन्त न्यून थी। मद्रास की रिपोर्टों के अनुसार मुनरो ने यह सारांश उपस्थित करते हुए लिखा था, "स्कूलों में बहुत ही कम लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करती हैं।*

बम्बई की रिपोर्टों की समीक्षा करते हुए श्री पारुलेकर ने यह मत प्रकट किया कि १६ वीं सदी के प्रारम्भ में देश के सामान्य स्कूलों में बालक ही शिक्षा प्राप्त करते थे। बालिकाओं की शिक्षा का प्रवन्ध गृह-विद्यालयों तक ही सीमित था। † आदम के अनुसार बंगाल में

---

‡ Thus we see plainly enough that the women in India during the eighteenth cetury were not universally steeped in the darkness of ignorance, in the distant corners of the cities and villages there flourished female poets and writers, who claim to be regarded as worthy predeessors of their more educated sisters of the present day. Dr. K. K. Dutta—Education and Social Amelioration of women in Pre-Mutiny India—P. 5.

* But as only a very few females are taught in schools, we may reckon one School to every 500 of the population...... Munro-quoted in History of Education in India. – Nurullah and Naik. P.4.

† It must be admitted that in the year 1824, when the Reports were obtained from the district, there was no mention of female-scholar attending any of the common schools of the province. This is by no means due to hurry or omission. The common schools of the time were meant for boys only.-R. V. Parulekar quoted in ibid P. 14.

स्त्री-शिक्षा का नितान्त अभाव था तथा कुछ अपवादों को छोड़ कर, भारत की स्त्रियाँ अज्ञानता तथा अन्धकार में डूबी हुई थीं। इस स्थिति के कई कारण थे, जिनमें, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अन्ध-विश्वास, सामाजिक-कुरीतियाँ तथा आर्थिक समस्याएँ प्रमुख थीं। ‡ स्त्री-शिक्षा की सामान्य स्थिति अच्छी न होते हुए भी, जैसा कि हम सिद्ध कर चुके हैं, आधुनिक काल के प्रारम्भ में भारत में, अनेक विदुषी स्त्रियाँ थीं, जो अपनी विद्वता का उपयोग बहुधा ज्ञान-प्रसार तथा साहित्य-सृजन में किया करती थीं।

---

‡ The state of instruction amongst this unfortunate class can not be said to be low, for with a few individual exception there is no instruction at all. Absolute and hopeless ignorance is, in general, their lot.

Adam's Report P. 158-59,

तीसरा अध्याय

आधुनिक शिक्षा का प्रथम चरण
(सन् १७००-१८१३ ई०)

इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ के एक अधिकार पत्र (Charter) के अनुसार भारत तथा पूर्वीय देशों से व्यापार करने के निमित्त ईस्ट इन्डिया कम्पनी की स्थापना १६०० ई० में हुई थी। अपनी स्थापना के लगभग १५० वर्ष बाद तक कम्पनी नितान्त: एक व्यावसायिक संस्था रही। किंतु इस अवधि में भी कम्पनी की ओर से भारत में धर्मप्रचार तथा धार्मिक शिक्षा से संबंधित कुछ चेष्टाएं अवश्य हुई। सन् १६१४ ई० में कुछ भारतीय अपने देशवासियों को ईसाई धर्म की शिक्षा देने के लिये नियुक्त किये गये। इन भारतीय प्रचारकों के लिए कम्पनी ने अपने खर्च से ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की, जो उनके धर्म प्रचार के कार्य के लिए आवश्यक थीं। पीटर नामक एक भारतीय इसाई धर्म की शिक्षा के लिए इंगलैंड भी भेजा गया।

चैरिटी स्कूल :—

सन् १६५६ ईसवी में कम्पनी की संचालक-समिति (Court of Director) ने यह आदेश जारी किया कि भारतवासियों के बीच धर्म-प्रचार की पूरी चेष्टा की जाय। इस उद्देश्य से उन्होंने कम्पनी को जहाजों में धर्मप्रचारकों को भारत ले जाने की अनुमति भी दी। सन् १६६८ में कम्पनी को धर्मप्रचार तथा स्कूल निर्माण का वैधानिक अधिकार इंगलैंड की पार्लियामेंट से प्राप्त हुआ। इस वर्ष कम्पनी को दिये गये चार्टर के अनुसार उसे भारत स्थित अपने व्यावसायिक केन्द्रों में पादरियों को रखने का आदेश मिला। कम्पनी को यह भी आदेश दिया गया कि ५०० टन या अधिक के प्रत्येक जहाज में एक-एक प्रधान पादरी भारत भेजे जांय। इन पादरियों को प्रचलित विदेशी भाषा पुर्तगीज के अतिरिक्त स्थानीय देशी भाषाओं को सीखना भी अनिवार्य था, ताकि

वे देशी कर्मचारियों (Gentoos) को प्रोटेस्टेन्ट धर्म की शिक्षा दे सकें। चार्टर ने कम्पनी के संचालकों को यह भी आदेश दिया कि आवश्यकतानुसार कम्पनी के सभी बड़े कारखानों तथा फौजी छावनियों में चैरिटी स्कूल खोले जांय। इन आदेशों के अनुसार कम्पनी ने भारत-स्थित अपने तीन प्रमुख व्यावसायिक केन्द्रों—मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में धर्माचार्य नियुक्त किये। ये पादरी ईसाई बच्चों की शिक्षा के लिए प्रयत्नशील रहने लगे, विशेषत: उन बच्चों के लिए जो कि अंग्रेज सैनिक तथा भारतीय स्त्रियों से समुत्पन्न थे। इन बच्चों की देखरेख तथा शिक्षा के लिए पादरियों ने विशेष प्रकार के स्कूल खोले जो कि चैरिटी स्कूल (Charity School) के नाम से विख्यात हुए। जैसा कि नाम से ही प्रकट है, चैरिटी स्कूल, अनुदानों अथवा चन्दों से संचालित होते थे तथा गरीब एवं अनाथ बच्चों के लिए ही आयोजित रहते थे। इस तरह भारत में चैरिटी स्कूलों का सूत्रपात हुआ जो कि अठारहवीं शताब्दी में कम्पनी के द्वारा आयोजित शिक्षा के प्रधान स्तंभ रहे।

सर्व प्रथम सन् १७१५ ईसवी में मद्रास में पादरी स्टेभेन्सन ने सेंटमेरी चैरिटी स्कूल नामक एक चैरिटी स्कूल स्थापित किया। सन् १७५७ ई० में दो और चैरिटी स्कूल वहीं स्थापित किये गये, एक पुर्तगीज बच्चों के लिए और दूसरा तामिल बच्चों के लिए।

सन् १७१८ ईसवी में पादरी रिचर्ड कोब्बे के द्वारा बम्बई में चैरिटी स्कूल की स्थापना हुई। सन् १७२० तथा १७३१ ईसवी के बीच पादरी बेल्लामी ने कलकत्ते में एक चैरिटी स्कूल की स्थापना की, जिसके लिए सन् १७३६ ईसवी में एक नया मकान भी बनवाया गया था। सन् १७३१ ईसवी में सोसाइटी फौर दी प्रोमोसन ऑफ इन्डियन लर्निंग (Society for the promotion of Indian learning) नामक संस्था ने कलकत्ते में एक चैरिटी स्कूल खोला। सन् १७८७ ईसवी में मद्रास में अनाथ बच्चों के लिए दो अनाथालय खुले:—एक बच्चों के लिए और दूसरी बच्चियों के लिए। स्थानीय गवर्नर की पत्नी श्री कैम्बेल के नाम पर बालिका अनाथालय का नाम लेडी कैम्बेल अनाथालय (Lady Campbell Female Orphan Asylum) पड़ा।

चैरिटी स्कूल प्रधानतः अंग्रेज सिपाहियों के बच्चों के निर्मित होते थे। कुछ स्कूलों में अनाथ तथा निम्न श्रेणी के गरीब भारतीय बच्चे भी दाखिल होते थे। इन स्कूलों का पाठ्य-क्रम अधिकतर तीन "आर"

(पढ़ना, लिखना, गणित) से संबंधित रहता था। ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य ही थी। शिक्षा का माध्यम था प्रारम्भ में पौर्तुगीज, बाद में अंग्रेजी। स्कूल का खर्च धनी-मानी परोपकारी व्यक्तियों के अनुदानों तथा चन्दों से चलता था। कम्पनी की ओर से भी सहायता (Aid) मिला करती थी। यह सहायता प्रधानतः निम्नलिखित रूपों में दी जाती थी।

(१) स्कूलों के नियमित खर्च के लिए आवर्त्तक आर्थिक सहायता।

(२) स्कूल के मकान के लिए जमीन तथा मकान बनाने के लिए अनावर्त्तक खर्च तथा समय २ पर मकान बनाने के खर्च।

(३) अपने अफसरों तथा कर्मचारियों को सहयोग देने की अनुमति।

(४) स्कूल की आय को कम्पनी के खजाने में ऊंचे सूद पर रखने की अनुमति।

(५) रुपया इकट्ठा करने के लिए लाटरी लगाने की अनुमति।

अनुदानों और चन्दों के अतिरिक्त अनाथालय को प्रति छात्र ५ रु० प्रति माह की दर से कम्पनी की ओर से सहायता भी मिलती थी। सहायता की रकम ७५० रु० प्रतिमाह से अधिक न हो सकती थी। बालकों का अनाथालय डाक्टर ऐन्ड्रू बेल के द्वारा स्थापित हुआ। इस संस्था को भी कम्पनी की ओर से ५ रु० प्रति बालक प्रतिमाह सहायता मिलती थी। किंतु सहायता की रकम ५००) से अधिक न होनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त कम्पनी के द्वारा संस्था को अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता मिली। शिक्षा के इतिहास में इस स्कूल का विशेष महत्त्व है। भारत की प्राचीन शिक्षा रीति के अनुसरण पर आधुनिक स्कूलों में बालचट प्रथा का प्रयोग डा० बेल ने सर्वप्रथम यहीं किया था। इसके पश्चात् उन्होंने इंगलैंड में भी इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया। इस तरह चैरिटी स्कूलें कम्पनी की संरक्षणता में आयोजित स्वसंचालित संस्थाएं थीं। इनका कार्यक्षेत्र, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कम्पनी के कर्मचारियों के यूरोपीय बच्चे तथा भारत-यूरोपीय बच्चों (भारतीय स्त्रियों से उत्पन्न) की शिक्षा तक ही सीमित था। भारतीयों की शिक्षा से उनका संबंध न था और इसलिए ये भारत में अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था के आधार नहीं माने जा सके। इन स्कूलों के द्वारा भारत में रहनेवाले यूरोपीय बच्चों की शिक्षा का प्रबंध हुआ, भारतीय प्रजाका नहीं। १८वीं शताब्दी के अन्ततक कम्पनी की शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टायें प्रधानतः

इन्हीं चैरिटी स्कूलों के प्रोत्साहन की ओर केन्द्रित रहीं। इन स्कूलों का कार्य क्षेत्र बहुत संकुचित था। कम्पनी की ओर से भारतीय प्रजा की शिक्षा के प्रयत्न इस सदी तक लगभग नहीं हो पाये थे।

कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेजः—

सन् १७५० के पश्चात् भारत में कम्पनी का राजनीतिक प्रभुत्व तीव्र गति में बढ़ने लगा। १७५६ के पलासी युद्ध तथा १७६४ के बक्सर के युद्ध ने कम्पनी को पूर्वीय भारत का वास्तविक स्वामी बना दिया। १७६५ की दीवानी के फलस्वरूप कम्पनी का राजनीतिक प्रभुत्व वैधानिक रूप में मान लिया गया। इसके पश्चात् कम्पनी अपने को भारत के पूर्वी भूभाग के वास्तविक शासक के रूप में समझने लगी। ऐसी स्थिति में उसकी शिक्षा संबंधी नीति में परिवर्तन होना स्वभाविक था। अबतक कम्पनी की शिक्षा-संबंधी चेष्टाएं केवल यूरोपीय तथा भारत यूरोपीय बच्चों तक ही सीमित थी। अब कम्पनी यह समझने लगी कि भारत के निवासियों को शिक्षा की ओर उसे क्रियाशील होना आवश्यक है। देशी राजाओं तथा नवाबों की उत्तराधिकारणी कम्पनी अपने पूर्ववर्त्ती शासकों की तरह भारतवासियों की शिक्षा की ओर सचेष्ट रहना चाहती थी, ताकि देशवासियों की दृष्टि में जनहित के कार्यों में पूर्ववर्त्ती देशी राजाओं की अपेक्षा वह हेय न समझी जाय। इसके अतिरिक्त कम्पनी के उच्च पदाधिकारी इस बात को भलीभाँति समझ गये थे कि प्रभावशाली भारतीयों को शिक्षित बनाना अत्यावश्यक था, ताकि वे कम्पनी के अधीनस्थ उच्च नौकरियों में खपाये जांय तथा कम्पनी-राज्य का पाया सुदृढ़ बनावें। कुछ भारतीयों को उच्च शिक्षा देने की एक तात्कालिक आवश्यकता भी आ पड़ी थी। सन् १७८१ ई० के संशोधन-कानून (Amending Act of 1681) के अनुसार भारतीय मुकदमों का फैसला हिन्दू तथा मुसलमानों के रीति-नीतियों के अनुसार होना चाहिए था। फलतः अंगरेज न्यायाधीशों को कुछ ऐसे सुशिक्षित व्यक्तियों की जरूरत थी, जो उन्हें उक्त कार्य में उचित परामर्श दे सकते। इसके अतिरिक्त, कम्पनी के उच्च अधिकारी इस बात को भलीभांति समझ गये थे कि प्रभावशाली भारतीयों को कम्पनी की ओर आकृष्ट करने के लिए उनकी शिक्षा का प्रबन्ध अत्यावश्यक था।

इन मिलेजुले कारणों के फलस्वरूप सन् १७६५ ईसवी के पश्चात् कम्पनी ने भारतवासियों की उच्च शिक्षा के लिए कई संस्थाएं खोलीं,

जिनमें कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज प्रमुख थे। कलकत्ता मदरसा के संस्थापन का तात्कालिक कारण कलकत्ते के सभ्रान्त मुसलमानों का एक आवेदन-पत्र था। हेस्टिंग्स ने अपने पूर्व-निश्चित विचारों को कार्यान्वित करने का उपयुक्त अवसर पाया। कम्पनी की संचालक-समिति की अनुमति लेने में कफी विलम्ब की संभावना थी, अतः हेस्टिंग्स ने उनकी अनुमति के बिना ही अक्टूबर १७८० में मदरसा खोल दिया। मदरसा के शिक्षक सुप्रसिद्ध विद्वान मुद्‌गिद्-ओद्दीन नियुक्त हुए, जिनकी विद्वत्ता की धाक भारत भर में जमी हुई थी। वस्तुतः उनकी नियुक्ति के लिए स्वयं मुसलमानों ने अपने आवेदन-पत्र में प्रार्थना की थी। संचालकों की अनुमति के बिना हेस्टिंग्स कम्पनी के रूपये इसमें नहीं लगा सकता था। फलतः उसने अपने निजी रुपयों से मदरसा का खर्च वहन करना प्रारम्भ किया। शुरू में मदरसे में ४० विद्यार्थी भरती किये गये, जिनके रहने तथा खाने का प्रबन्ध मदरसे की ओर से होता था। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य छात्र भी बाहर से शिक्षा-ग्रहण करने के लिए आया करते थे। शीघ्र ही मदरसे में रहने वाले छात्रों की संख्या १०० हो गयी। कम्पनी के संचालकों ने हेस्टिंग्स के कार्य की प्रशसा की तथा मदरसे का प्रबन्ध कम्पनी के प्रबन्ध में ले लेने का आदेश दिया। संचालकों ने हेस्टिंग्स के निजी रुपये भी लौटा दिये। प्रचलित प्रथा के अनुसार शुरू में कम्पनी की ओर से मदरसे के खर्च के लिए २६,००० रु० वार्षिक आय की जायदाद निकाल दी गई। किन्तु जायदाद का प्रबन्ध भलीभाँति नहीं होता था तथा इसके सम्बन्ध में तरह तरह की शिकायतें होने लगीं थीं। फलतः यह निश्चय किया गया कि जायदाद की अपेक्षा सरकारी कोष से ३०,००० रु० प्रति वर्ष मदरसे के लिए दिए जायँ। मदरसे के प्रबन्ध के लिए एक अंग्रेज सेक्रेटरी भी नियुक्त हुआ। मदरसे में निम्नलिखित विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती थी।

(१) दर्शन (२) धार्मिक सिद्धान्त (३) मुस्लिम कानून
(४) नक्षत्र शास्त्र (५) ज्यामिति
(६) अंकगणित (७) तर्कशास्त्र
(८) काव्य शास्त्र (९) व्याकरण

शिक्षा की अवधि सामान्यतः ७ वर्ष थी। शिक्षकों के अतिरिक्त कुरान पढ़ाने के लिए एक कातिब तथा नमाज पढ़ाने के लिए एक

मुअध्धीन भी नियुक्त थे। मुसलिम रीति के अनुसार शुक्रवार को इबादत आदि के लिए अवकाश भी रहा करता था।

बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना सन १७६१ ई० में बनारस राज्य के रेसिडेन्ट जोनथन डुन्कन के द्वारा हुई। विद्यालय के संस्थापन के प्रमुख कारण राजनीतिक थे, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। विद्यालय के खर्च के लिए पहले १४,००० रु० की सहायता स्वीकृत हुई। किन्तु शीघ्र ही सहायता की रकम बढ़ा कर २०,०००) रु० वार्षिक कर दी गई। विद्यालय का प्रबन्ध यहाँ के पण्डितों को ही सौंपा गया। किन्तु उनके असफल सिद्ध होने पर कलकत्ता मदरसा की ही भाँति बनारस संस्कृत कालेज का प्रबन्ध एक यूरोपीय प्रबन्धक के जिम्मे सौंपा गया। विद्यालय के पाठ्य-विषय संस्कृत विद्यालयों की प्रचलित पाठ्य-विषय ही थे। विद्यालय के कार्य का संचालन धर्म-शास्त्रों में निर्देशित नियमों के अनुसार ही होता था।

शिक्षा की प्राच्यवादी नीति :—

कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज के संस्थापन के द्वारा कम्पनी ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी उस नीति का सूत्रपात किया, जो आगे चल कर प्राच्य नीति (Orientalist Policy) के नाम से विख्यात हुई। इस नीति के तह में धार्मिक तटस्थता थी, ताकि भारतीय जनमत नव-निर्मित अंग्रेजी राज्य की ओर किसी भी रूप में सशंकित न हो। व्यावहारिक रूप में इस नीति के निम्नलिखित पहलू थे।

(१) हिन्दू तथा मुसलमानों की प्राचीन शिक्षा-पद्धति सर्वथा भली तथा उपयुक्त थी। अतः कम्पनी को इसी शिक्षा-पद्धति को प्रश्रय देना चाहये था।

(१) हिन्दू तथा मुसलमानों की सांस्कृतिक शिक्षा संस्कृत तथा अरबी फारसी के माध्यम से पुरानी पद्धति पर दी जाय।

(२) भारतवासियों को पाश्चात्य ज्ञान देने की चेष्टा शीघ्र न कीजाय।

(३) कम्पनी यूरोपीय धर्म-प्रचारकों (Missionaries) को धर्म-प्रचार तथा शिक्षा-प्रचार के कार्य में किसी प्रकार का प्रोत्साहन न दे।

भारत में शिक्षा सम्बन्धी कम्पनी की यही नीति १७६५-१८१३ तक क्रियाशील रही।

धर्म-प्रचारकों के प्रयत्न :—

सन् १७००-१८१३ ई० की अवधि में कम्पनी के अतिरिक्त भारत में शिक्षा-प्रसार की चेष्टायें यूरोपीय धर्म-प्रचारकों के द्वारा भी हुईं। वस्तुतः आधुनिक भारत में, शिक्षा के क्षेत्र में, गैरसरकारी प्रयत्नों का श्रीगणेश इन्हीं यूरोपीय धर्म-प्रचारकों के द्वारा हुआ। भारत में शिक्षा-प्रसार की प्रेरणा इन्हें कई रूपों में प्राप्त हुई। शिक्षा-प्रसार के द्वारा वे अपने धर्म-प्रचार के कार्य में अधिक सफल हो सकते थे। उनकी धारणा थी कि नये ढंग से पढ़े-लिखे लोग उनके धर्म (ईसाई) की ओर ज्यादा आकृष्ट हो सकते थे। दूसरा लाभ यह था कि अपने स्कूलों के द्वारा वे भारतीय जनता के साथ अपना सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। स्कूल-निर्माण की आवश्यकता उन्हें इसलिए भी प्रतीत हुई कि ईसाई धर्म में दीक्षित भारतीयों की शिक्षा की व्यवस्था उन्हें करनी पड़ी। शुरू में भारतीय समाज के निम्न श्रेणी के लोगों ने ही ईसाई मत को स्वीकार किया था। ये लोग साधारणतः निरक्षर होते थे। ईसाइयों के लिए 'बाइबुल' का पढ़ना जानना आवश्यक था। अतः धर्म-प्रचारकों को भारतीय ईसाइयों के पढ़ने-लिखने का प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया। इस उद्देश्य से धर्म-प्रचारकों के द्वारा बहुत से स्कूल खोले गये। भारतीय ईसाइयों के लिए स्थानीय भाषाओं में बाइबुल तथा अन्य पुस्तकों का निर्माण किया गया। पुस्तक के प्रकाशन की सुगमता के लिए धर्म-प्रचारकों द्वारा छापाखाने भी खोले गये। भारतीय ईसाइयों की भौतिक सुविधाओं की पूर्त्ति के लिए धर्म-प्रचारकों ने उनके लिए कई व्यावसायिक स्कूल भी खोले तथा सरकारी नौकरियों के लिये उन्हें हर तरह से उपयुक्त बनाने की चेष्टा की। इस तरह धर्म-प्रचार के कारण तथा परिणाम दोनों ही रूपों में यूरोपीय धर्म-प्रचारकों को भारतीय शिक्षा की ओर ओर सचेष्ट होना पड़ा।*

प्रारम्भ में निम्नलिखित दो धर्म-प्रचारक मण्डलों ने भारत में शिक्षा-प्रसार की ओर कदम उठाया।

(१) डेनमार्क का धर्म-प्रचारक मण्डल, जिसका कार्य-क्षेत्र मद्रास प्रान्त था।

(२) सेरामपुर के धर्म-प्रचारक तथा अन्य धर्म-प्रचारक जिनका कार्य-क्षेत्र बंगाल था।

---

* Nurullah & Naik—A History of Education in India—P. 60.

१—डेनमार्क के धर्म-प्रचारकों के कार्य—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य में कार्य करने वाले धर्म-प्रचारकों में डेनमार्क के प्रोटेस्टेण्ट धर्म-प्रचारक मुख्य थे। सन १७१३ ई० में इन्होंने तामिल भाषा का एक छापाखाना खोला। सन १७१६ ई० में, शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए त्रावनकोर में इनके द्वारा एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया। सन १७१७ ई० में अन्डलर नामक धर्म-प्रचारक ने मद्रास में दो स्कूलों की स्थापना की। सन १७४२ ई०, कीरैन्डर नामक प्रचारक ने फोर्ट सेन्ट डेविड (मद्रास) के निकट यूरोपीय तथा भारतीयों की शिक्षा के लिए दो स्कूल खोले। उसके कार्य से प्रभावित होकर क्लाइव ने उसे बंगाल आमन्त्रित किया। कीरैन्डर ने अपने जीवन के शेष दिन बंगाल में ही शिक्षा-प्रसार के कार्य में व्यतीत किये। सन १७५८ ई० में कलकत्ते में उसने एक चैरिटी स्कूल खोला। एक दूसरे धर्म-प्रचारक स्वार्ज ने त्रिचनापल्ली (मद्रास) में सन १७८८ ई० में एक स्कूल खोला। तंजोर में भी उसने एक चैरिटी स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल के लिए मैसूर राज्य का सर्वेसर्वा सुप्रसिद्ध हैदरअली ने उसे रुपये दिये थे। भारतीय बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के उद्देश्य से उसने तंजोर, रामनद तथा शिवगंगा में तीन स्कूल खोले। इस कार्य में उसे तंजोर के रेजिडेण्ट जान सुलिवान से काफी सहायता मिली। भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने के लिए ये प्रथम स्कूल कहे जाते हैं। † सुलिवान को यह आशा थी कि इन स्कूलों द्वारा भारतीय तथा कम्पनी के पारस्परिक सद्भाव बढ़ेंगे। कम्पनी के संचालकों ने स्वार्ज तथा सुलिवान के इन प्रयत्नों की बड़ी प्रशंसा की। इनके द्वारा स्थापित स्कूलों की सहायता के लिए संचालकों ने २५० पैगोडा वार्षिक अनुदान भी स्वीकृत किया। ‡

---

†These may be said to be the earliest schools for teaching the English language to Indians and Sulivan hoped that they would help "the Company and the people to understand each other"

Nurullah and Naik—History of Education in India—Page 62

‡ Highly approving of institntions calculated to establish mutual good faith, to enlighten the minds of the natives and to impress them with sentiments of esteem and respect for the British Nation·········we have determined to evince our desire of contributing 250 pagodas per annum towards the support of each of the schools above mentioned······Sharp vol—P. 4.

डेनमार्क के धर्म-प्रचारकों के उपरोक्त वृतान्त से यह स्पष्ट है कि भारत में धर्म-प्रचारकों के द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टायें बहुत पहले शुरू हो गयी थीं। इनके द्वारा स्थापित स्कूल कम्पनी के पादरियों के द्वारा स्थापित स्कूलों से कई रूपों में भिन्न थे। इन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा था। इन स्कूलों की शिक्षा न केवल यूरोपीय तथा यूरोपीय बच्चों के लिए आयोजित रहती थी, बल्कि यह भारतीय ईसाई बच्चों के लिए भी आयोजित रहती थी। कई स्कूलों में तो अन्य भारतीय बच्चे भी शिक्षा ग्रहण करते थे। इन स्कूलों में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा कम्पनी तथा भारतीय प्रजा से सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से दी जाती थी। इन्हीं धर्म-प्रचारकों ने भारत में पहले पहल छापाखाना खोले तथा भारतीय भाषाओं में पुस्तकों का मुद्रण प्रारम्भ किया। इन धर्म-प्रचारकों को कम्पनी की सहानुभूति प्राप्त होती रही, जिससे इन्हें अपने कार्य में काफी सहूलियतें मिलीं। हम अभी देखेंगे कि धर्म-प्रचारकों के प्रति कम्पनी का रुख शीघ्र ही बदल गया, जिसके कारण अन्य प्रान्तों में शिक्षा-प्रसार के उनके कार्य में कम्पनी की ओर से काफी रुकावटें हुईं।

बंगाल में धर्म-प्रकारकों के कार्यः—

सेरामपुर त्रय—हम देख चुके हैं कि मद्रास में किरैन्डर के कार्यों से प्रभावित होकर क्लाइव ने उसे बंगाल बुलाया था। किरैन्डर ने ही बंगाल में धर्म-प्रचारकों के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का श्रीगणेश किया। उसके पश्चात् डाक्टर कैरे (Karey) ने बंगाल में शिक्षा-प्रसार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। डाक्टर कैरे 'बैपटिस्ट मिशन' मण्डल के सदस्य थे। उन्होंने सर्वप्रथम कलकत्ते में अपना कार्य शुरू किया। किन्तु शीघ्र ही उन्हें कलकत्ता छोड़कर मालदा जाना पड़ा। यहाँ ये एक नील कोठी का निरीक्षण करते थे। फुरसत का समय ये अपने धर्म-प्रचार के कार्य में व्यतीत करते थे। इस सिलसिले में उन्होंने बाइबुल को बंगला में रुपान्तरित किया तथा एक स्कूल का निर्माण भी किया। सन १७६६ ई० में वार्ड तथा मार्शमैन ये—दो धर्म-प्रचारक भारत पहुँचे। वे कैरे के साथ साथ मिलकर उत्तरी भारत में धर्म-प्रचार कार्य कराना चाहते थे। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरोध के कारण उन्हें अपना विचार बदलना पड़ा। इन्होंने डच बस्ती सेरामपुर में अपना कार्य करना निश्चय किया। कैरे भी उनके

अनुरोध से सेरामपुर आ गये। इस तरह सेरामपुर में इस सुप्रसिद्ध धर्म-प्रचारक त्रय का कार्य आरम्भ हुआ। इनके प्रमुख कार्य थे बाइबुल का भारतीय भाषाओं में अनुवाद करना, इन अनुवादों को प्रकाशित करना, तथा बालकों के लिए स्कूलों का निर्माण करना। इनकी चेष्टाओं से अनुप्राणित होकर भारत में अन्य धर्म-प्रचारकों ने भी बाइबुल का अनुवाद स्थानीय भारतीय भाषाओं में करना शुरू कर दिया। इसमें बाइबुल की शिक्षाओं के प्रसार को बड़ा बल मिला। इन धर्म-प्रचारकों का कार्य कुछ इतना बड़ा था कि इसाई धर्म के समस्त इतिहास में बाइबुल के रूपान्तर करने में इतना उत्साह तथा उतना जोश कभी नहीं देखा गया।† कुछ ही दिनों में उन धर्म-प्रकारकों के प्रयत्नों से बाइबुल की प्रतिलिपियाँ ३१ भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो गयीं।

सेरामपुर-त्रय तथा कम्पनी सरकार का सामान्य सम्बन्ध विरोधात्मक न था। किन्तु, सन १८०८ ई० में इसने 'ऐड्रेसेज टू हिन्दू एंड मुहम्मडनस' नामक एक पर्चा प्रकाशित किया। इससे हिन्दू तथा मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँच सकता था। अतः कम्पनी सरकार ने अपने राज्य में इस प्रकाशन के प्रति प्रतिबन्ध लगा दिया। कम्पनी ने यह भी आदेश दिया कि सेरामपुर त्रय का छापा-खाना सेरामपुर से कलकत्ता लाया जाय। किन्तु सेरामपुर के गवर्नर के हस्तक्षेप से यह आज्ञा वापस ले ली गयी। उसके बदले यह आदेश जारी किया गया कि धर्म-प्रचारक मण्डल के वे प्रकाशन, जो कम्पनी के राज्य में चालू होने वाले थे, कम्पनी के आफिसरों के निरीक्षण के निमित्त भेजे जायँ। इस घटना के बाद सेरामपुर त्रय अपने धर्म-प्रचार के कार्य में सतर्क रहने लगे। किन्तु, इससे उनकी शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टाओं में किसी तरह की कमी न हुई।

सेरामपुर त्रय के अतिरिक्त बंगाल में कुछ अन्य धर्म-प्रचारक मण्डल भी इस काल में क्रियाशील थे। इनमें "लन्डन मिशनरी

---

†In no country in the world, and in no period in the history of christianity, was there ever displayed such an amount of energy in the translatation of the sacred scriptures from their orginals into other tonges, as was exhibited by a handful of earnest men in Calcutta and Serampore in the first ten years of the present century

Sherring—The History of Protestant Mission in India—P. 75

सोसाइटी" प्रमुख था। इसके तत्त्वाधान में रेवरेन्ड एन० फौरसीथ ने डच बस्ती चिन्सुरा में एक मण्डल स्थापित किया। सन १८१२ ई० में रेवरेन्ड आर० 'मे' ने उनका स्थान ग्रहण किया। उन्होंने बंगाल में शिक्षा-सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किये, जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे।

इस तरह हम देखते हैं कि सन १८१३ ई० तक भारत में यूरोपीय धर्म-प्रचारकों के शिक्षा-सम्बन्धी काय बहुत ही सीमित थे। बंगाल में धर्म-प्रचारकों के अड्डे सेरामपुर, दीनाजपुर, चिन्सुरा तथा जैसोर में केन्द्रित थे। मद्रास में डैनिश धर्म-प्रचारकों के अतिरिक्त अन्य मण्डलें स्थापित न हुई थीं। सन १८१२ ई० में कनारा के बेलारी नामक स्थान में एक मण्डल क्रियाशील हुआ। बम्बई में एक अमेरिकी मण्डल बड़ी तत्परता से आगे बढ़ रहा था। १८वीं सदी के अन्त तक कुल मिलाकर ५० धर्म-प्रचारक मण्डल भारत में प्रविष्ट हुए और किसी भी समय दस से अधिक मण्डल क्रियाशील न रहे।‡ इन मण्डलों के प्रधान कार्य थे ईसाई धर्म ग्रन्थों को भारतीय भाषा में अनुवाद करना, ईसाई धर्म से सम्बन्धित पुस्तकों तथा परचों का लिखना, स्कूलों के लिए नियमावली बनाना तथा धर्म-प्रचारक मण्डलों के लिए सुविधाजनक मार्ग तैयार करना। इन धर्म-प्रचारक मण्डलों को किसी तरह की सहायता प्राप्त न थी। स्वदेशों में भी इन्हें सम्बल देने वाली बड़ी संस्थायें प्रादुर्भूत न हुई थीं।

सन १८१३ ई० के पूर्व भारत में धर्म-प्रचारकों के कार्य सीमित रहने के कई कारण थे। इन कारणों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विरोध ही प्रधान था। हम कह चुके हैं कि सन १७६५ ई० के पहले कम्पनी का रुख धर्म-प्रचारकों के प्रति अच्छा था, जिसके फलस्वरूप इन्हें अपने कार्य में काफी सहूलियतें मिली थीं। किन्तु १७६५ ई० के पश्चात भारत में कम्पनी का राजनीतिक प्रभुत्व तीव्र गति से बढ़ने लगा। अपने नवार्जित राज्य की सुरक्षा के लिए कम्पनी ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहती थी, जो उसे खतरे में डाल दे। धर्म-प्रचारकों के प्रति सहानुभूति अथवा उनकी सहायता कम्पनी के अधिकारियों के विचार में, ऐसा कार्य था जिससे भारतीय प्रजा क्षुब्ध हो जा सकती थी और कम्पनी राज्य के प्रति असन्तोष फैल सकता था। वेल्लोर के सिपाही विद्रोह ने इस विचार को पुष्ट कर दिया था।

‡ Sherring—The History of Protestant Missions in India. P. 49.

फलतः सन १८०० ई० तक कम्पनी की यह निश्चित नीति हो गयी कि वह धर्म-प्रचारकों के कार्यों का पूर्ण विरोध करे और उन्हें सरकार की ओर से दी गई सारी सुविधाओं से वंचित कर दे। धर्म-प्रचारकों के विपक्ष में एक दूसरी बात यह थी कि कम्पनी-सरकार ने भारत में प्राच्य ज्ञान के प्रसार की ही नीति अपनानी शुरू कर दी थी। इसी नीति के अनुसार कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना हुई थी, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं। इस तरह राज-नीतिक तथा शिक्षात्मक दोनों दृष्टिकोणों से कम्पनी धर्म-प्रचारकों के विरुद्ध आ पड़ी।

कम्पनी के इस रुख से स्वभावतः धर्म-प्रचारकों को बड़ा क्षोभ था। अपने कार्य की सफलता के लिए यह आवश्यक था कि वे कम्पनी के उनके प्रति इस रुख में उचित परिवर्त्तन लावें। इस उद्देश्य से उन्होंने भारत तथा इंग्लैंड दोनों ही देशों में जोरदार आन्दोलन शुरू किया। इंगलैंड में धर्म-प्रचारकों का प्रबल समर्थक विलबरफोर्स था, जिसका नाम दास-प्रथा के विनास के इतिहास में उल्लेखनीय है। सन १७६३ ई० में कम्पनी के अधिकार-पत्र के पुनरावर्त्तन के अवसर पर, विलबरफोर्स ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसका आशय यह था कि पार्लियामेण्ट भारतीय प्रजा के मानसिक, धार्मिक एवं नैतिक समुन्नति के लिए उपयुक्त उपाय करे। † इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए विलबरफोर्स ने यह भी परामर्श उपस्थित किया कि कम्पनी के नये अधिकार-पत्र में उसे आदेश दिया जाय कि वह उपरोक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिए भारत में सुयोग्य तथा अनुभवी व्यक्ति पर्याप्त संख्या में भेजे, जो कि शिक्षक तथा धर्म-प्रचारक के कार्य सुचारू रूप से कर सकें। ‡ किन्तु, संचालक समिति ने विलबर

---

† That it is the peculiar and bounden duty of the British legislature to promote by all just and prudent means the interests and happiness of the inhabitants of the British Dominions in India, and that for these ends such measures ought to be adopted as may gradually lend to their advancement in useful knowledge and to their religious and moral improvement. Richter—P. 149.

‡ The court of Director of the company shall be empowered and commissioned to nominate and send out from time to time a sufficient number of skilled and suitable persons who shall attain the aforesaid object by serving as school masters, missionaries or...... .....ibid—P. 150.

'फोर्स के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। उनके विचार में "हिन्दुओं की धार्मिक तथा नैतिक पद्धति किसी अन्य जाति से हीन न थी। उनके धर्म-परिवर्त्तन एवं उनके अपने ज्ञान के अतिरिक्त अन्य प्रकार के ज्ञान-प्रदान की चेष्टा व्यर्थ थी। * कहने की आवश्यकता नहीं कि संचालक समिति के विचार राजनीतिक तथा धार्मिक उद्देश्यों से ही प्रेरित थे। कम्पनी अपने नये राज्य को धार्मिक हस्तक्षेप से खतरे में डालना नहीं चाहती थी और न शिक्षा-प्रसार के लिए धार्मिक उत्तरदायित्व ही ग्रहण करने के लिए तैयार थी। संचालक-समिति के जोरदार विरोध के समक्ष विलफोर्स के उपरोक्त प्रस्ताव स्वीकृत न हो सके। और फलतः धर्म-प्रचारकों की स्थिति में किसी प्रकार की उन्नति न हुई। अपनी असफलता के कारण धर्म-प्रचारक खुल्लम-खुल्ला कम्पनी का विरोध करने लगे। यहाँ तक कि वे कम्पनी के उच्च अधिकारियों को भी बदनाम करने लगे जो कि उनकी दृष्टि में, ईसाई धर्म की अवहेलना करते पाये जाते थे। गवर्नर जेनरल हेस्टिंग्स तथा फिलिप फ्रैंसिस जैसे उच्च अधिकारी भी धर्म-प्रचारकों की सम्मति में दुराचार में प्रवृत्त रहते थे। धर्म-प्रचारकों के इन प्रयत्नों के प्रतिक्रिया के रूप में कम्पनी के भारत-स्थित अधिकारियों का रुख उनके प्रति और भी खराब हो गया। बंगाल के धर्म-प्रचारक त्रय के विरुद्ध कम्पनी का जो व्यवहार हुआ, उसका परिचय मिल चुका है। इसके पश्चात भी कई धर्म-प्रचारक मण्डल को कम्पनी के अधिकारियों का कोपभाजन बनना पड़ा तथा अनेक मुसीबतें उठानी पड़ीं। कई मण्डल तो देश से निष्कासित का दिये गये। वस्तुतः १७६२–१८१३ के बीच कम्पनी ने सामान्यतः किसी धर्म प्रचारक को अपने राज्य में कार्य करने की अनुमति न दी। साथ ही कई मण्डल कम्पनी के राज्य से बाहर कर दिये गये। स्वभावतः धर्म-प्रचारकों के द्वारा इस अवधि में शिक्षा प्रसार का कार्य नहीं के बराबर हुआ।

चार्ल्स ग्रान्टः—कम्पनी के अधिकारियों के इस रुख के समक्ष धर्म-प्रचारकों के लिए भारत में कोई भी सहूलियत प्राप्त नहीं हो सकती थी। फलतः धर्म-प्रचारकों तथा उनके हितैषी मित्रों ने

* The Hindoos had as good system of morals as most people and that it would be madness to attempt their conversion or to give them any more bearing or any other description of learning than what they already possessed.

Sharp—Selections from Educational Records. P 17.

इङ्लैंड में ही एक जबर्दस्त आन्दोलन खड़ा किया, ताकि पार्लियामेन्ट भारत में धर्मप्रचारकों को सहूलियतें देने के लिए मजबूर किया जा सके। इस आन्दोलन के नेताओं में चार्ल्स ग्रान्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ग्रान्ट कम्पनी के कर्मचारी तथा व्यावसायिक के रूप में भारत में बहुत दिनों तक रह चुका था। यहाँ उसने पर्याप्त सम्पत्ति भी उपार्जित की थी। इंग्लैंड लौटने पर कई वर्षों तक वह संचालक-समिति का सदस्य एवं अध्यक्ष भी रहा। सन् १८०२ ईसवी में वह पार्लियामेन्ट का सदस्य भी चुना गया तथा इस पद पर लगातार १६ वर्षों तक "इनभरनेस" क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता रहा। विलवरफ़ोर्स, जिसका उल्लेख उपर किया जा चुका है, के साथ रहकर इसने भारत में धर्म-प्रचारकों के सहूलियतें देने के पक्ष में बहुत पहले से कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् १७६२ ई० में उसने अपना सुप्रसिद्ध "आवजरवेसन" लिखा, जो कि सन् १७६७ ई० में प्रकाशित हुआ। भारतीय-शिक्षा के इतिहास में आवजरवेसन का नाम चिरस्मरणीय है। इसमें चार्ल्स-ग्रान्ट ने भारत में अंगरेजी शिक्षा का जो स्वरूप अंकित किया, वही स्वरूप आगे चलकर अंगरेजों द्वारा प्रचलित भारतीय शिक्षा का आधार बना। इस दृष्टि से ग्रान्ट का "आवजरवेसन" भारत में अंगरेजी शिक्षा-पद्धति का अग्र-सूचक अथवा भावी-संकेतक का स्थान रखता है। "आवजरवेसन" में चार्ल्स ग्रान्ट ने तत्कालीन भरतीय समाज का अत्यन्त ही दयनीय चित्र उपस्थित किया। उसके विबरण के अनुसार १८वीं ईसवी में भारतीयों का मानसिक एवं नैतिक स्तर बहुत ही नीचे गिरा हुआ था। झूठ, जालसाजी, विश्वासघात आदि आदि उनके चरित्र की विशेषताएं थीं। मानसिक संकीर्णता, अन्ध विश्वास तथा अर्थ-लोलुपता उनके व्यक्तित्व का अंग सा हो गया था। देश प्रेम तो उनके लिए सर्वथा अनजानी बस्तु थी। समस्त बंगाल में चार्ल्स ग्रान्ट को एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दीख पड़ा जो कि पूर्णत: सचरित्र कहा जा सकता था। † भारतीयों की इस अधोगति के, ग्रान्ट के बिचार में दो

In the worst part of Europe there are no doubt a great number of men, who are sincere, upright and conscientious, In Bengal, a man of real veracity and integrity is a great phenomenon, one conscientious in the whole of his conduct, it is to be feared, is an unknown character,

† Paranjpe—A Source Book of Modern Indian Education P. P. VIII & IX.

प्रमुख कारण थे:—एक भारतीयों की अशिक्षाजनित मानसिक अज्ञानता, दूसरा उपयुक्त धर्म का अभाव। अतः भारतीयों की मानसिक एवं नैतिक समुन्नति के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा दी जाय; तथा उन्हें बाद में ईसाई धर्म में दीक्षित किया जाय। पहले के द्वारा भारतीयों का अन्धकार मय मस्तिष्क सच्चे ज्ञान के प्रकाश से उद्भासित हो उठता तथा दूसरे के द्वारा वे निष्ठावान तथा सच्चरित्र बनते। ‡ शिक्षा के विषय स्पष्टतः अंगरेजी साहित्य तथा प्राकृतिक विज्ञान आदि थे, जिनके द्वारा मनुष्य की विवेकशक्ति जागृत हो सकती थी तथा वे वस्तु के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर अन्धविश्वास आदि से दूर रह सकते थे। किन्तु इन विषयों में ईसाई धर्म की शिक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण थी, जिसके द्वारा ही वे एक सर्वशक्तिमान ईश्वर में विश्वास तथा श्रद्धा के लिए प्रेरित किये जा सकते थे तथा अपने नैतिक जीवन को समुन्नत बना सकते थे। * शिक्षा के माध्यम के संबंध में चार्ल्स ग्रान्ट का निश्चित मत था कि अंगरेजी भाषा ही भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान सिखलाने के लिए उपयुक्त थी तथा यह माध्यम सुगमता से प्रयुक्त किया जा सकता था। शुरू में शिक्षण-कार्य के लिए सुयोग्य अंगरेज शिक्षक नियुक्त होने चाहिए थे।

किन्तु ग्रान्ट ने यह विश्वास प्रकट किया कि शिक्षण कार्य के लिए शीघ्र ही भारतीय शिक्षक तैयार हो जायंगे। अंगरेजी स्कूलों की सफलता तथा लोकप्रियता के संबंध में ग्रान्ट ने निश्चयपूर्वक भविष्य-वाणी की, कि इन स्कूलों में भरतीय विद्यार्थी पूर्णतः आकृष्ट होंगे।

---

‡ The true cure of darkness is the introduction of light. The Hindoos err, because they are ignorant, and their errors have never been fairly laid before them. The communication of our light and knowledge to them would prove the best remedy for their disorders.
Ibid P—VIII

But, undoubtedly, the most important communication which the Hindoos could receive through the medium of our language, would be the knowledge of our religion.

* The first communication, and the instrument of introducing the rest must be the English language, this is a key which will open to them a world of new ideas, and policy alone might have impelled us, long since, to put it into their hands.

Syed Mahmood—History of English Education in India—P.P. 11-13

उपरोक्त सिफारिशों के पश्चात् ग्रान्ट ने अपने 'आवजरवेसन, में इन आशंकाओं का परीक्षण किया जो कि इन सिफारिशों के संबंध में उठायी जाती अथवा उठायी जा सकती थी। सिद्धान्त:, ग्रान्ट के विचार में, भावी आशंकाओं के भय से भारतीय प्रजा को अन्धकार एवं पाप में रखना अंगरेजी पार्लियामेन्ट के लिए सर्वथा अनुचित तथा अधार्मिक था। पार्लियामेन्ट का यह कर्त्तव्य एवं धर्म था कि वह भावी आशंकाओं का कुछ भी विचार न कर भारतीयों को अंधकार से प्रकाश में लावे। † इस नैतिक उत्तरदायित्व के अतिरिक्त ग्रान्ट के विचार में, भारत में अंगरेजी राज्य के हितों के विचार से भी, भारत में अंगरेजी शिक्षा एवं ईसाई धर्म का प्रसार आवश्यक था। उनके द्वारा अंगरेजी राज्य को खतरा की अपेक्षा दृढ़त्व प्राप्त होता। ‡ अंगरेजी शिक्षा के द्वारा अंगरेजी शासकों को अपनी भारतीय प्रजा के साथ निकटतम संबंध स्थापित होता, वे भारतीय प्रजा के श्रद्धा-पात्र बनते तथा भारत में अंगरेजी व्यवसाय की भी वृद्धि होती। अंगरेजी शिक्षा की व्यवहारिक एवं आर्थिक उपयोगिताओं से भारतीय शीघ्र ही पूर्णत: अवगत हो जाते, तथा इसको-ओर स्वत: आकृष्ट होते रहते। अंगरेजी शिक्षा तथा भाषा का प्रोत्साहन वस्तुत: ईस्ट-इन्डिया कम्पनी के ऐतिहासिक उत्तरदायित्व था, जो कि मुगलसम्राटों के द्वारा प्रदत्त था। जिस प्रकार मुसलिम शासकों ने फारसी भाषा को प्रश्रय दिया उसी प्रकार कम्पनी को भी अंगरेजी भाषा को राज्य भाषा के रूप में पूर्ण प्रश्रय देना चाहिए था। जिस प्रकार मुसलिम काल में हिन्दुओं ने फारसी को खुशी खुशी अपनाया, उसी प्रकार अंगरेजी काल में वे अंगरेजी को भी सहर्ष स्वीकार करते।

"आवजरवेसन" में अभिव्यक्त चार्ल्सग्रान्ट के उपरोक्त विचारों में अतिशयोक्ति एवं असत्य की मात्रा स्पष्टत: पर्याप्त थी। यह सही है कि अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मुगल साम्राज्य की अधोगति के फलस्वरूप देश में राजनीतिक अव्यवस्था फैली हुई थी तथा कई प्रकार की सामाजिक विशृंखलतायें परिलक्षित हो गयी थीं। भारत का वैयक्तिक

‡ The people would rise in the scale of human beings, and as they found their character, their state and their comforts improve they would prize more highly the security and the happiness of a well-ordered Society.—ibid P. 14.

तथा समाजिक जीवन पतनोन्मुख हो रहा था। फिर भी, भारतीयों का नैतिक एवं मानसिक स्तर निस्सन्देह इतना गिरा नहीं था, जितना कि ग्रान्ट ने चित्रित किया। उसकी ईसाई धर्म-सम्बन्धी उक्तियाँ भी अधिकांशत: बेतुकी थी। भारतीयों को इनकी स्वल्प आवश्यकता न थी, न इसके प्रसार की सुगमता ही। अंगरेजी राज्य के प्रति भारतीयों की आस्था तथा इसके विरूद्ध आवाज उठाने की आशंका भी सर्वथा भ्रमजनित थे। किन्तु, ग्रान्ट की शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें तथा भविष्य वाणियाँ लगभग सही निकलीं। लगभग ४० वर्षों की अवधि में उसकी शिक्षा संबंधी लगभग सभी सम्मतियां, जैसा कि हम आगे देखेंगे, पूर्णत: स्वीकृत हुई। इन्हीं सम्मतियों तथा भविष्यवाणियों के कारण चार्ल्स ग्रान्ट बहुधा भारत में अंगरेजी शिक्षा के निर्माता के रूप में स्वीकृत होता है। †

अपनी भाविष्य वाणियों के अतिरिक्त ग्रान्ट के 'आवजरवेसन' ने इग्लैंड में धर्मप्रचारकों के आन्दोलन को एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया, जिसकी बुनियाद पर उन्होंने अपने पक्ष के तर्क उपस्थित किए। भारत की वास्तविक स्थिति जो भी हो, इग्लैंड के लोगों को यह विश्वास सा हो गया कि भारतीयों की मानसिक तथा नैतिक स्थिति बुरी थी तथा इस स्थिति में सुधार लाना अंगरेजी पार्लियामेन्ट का कर्तव्य था। चूंकि धर्मप्रचारक इस सुधार के लिए उपयोगी साधन थे, इसलिए अंगरेजी शासक की ओर से भारत में पूरी सुविधाएँ मिलनी चाहिए थी। इस प्रकार चार्ल्स ग्रान्ट के पद, उसकी प्रतिष्ठा तथा उसके 'आवजरवेशन' ने धर्मप्रचारकों के पक्ष में एक उपयुक्त वातावरण तैयार किया। वस्तुतः १८१३ का अधिकार-पत्र, जिसकी चर्चा हम अभी करेंगे। चार्ल्स ग्रान्ट तथा उसके साथियों के ही अथक परिश्रम का प्रतिफल था।

धर्म-प्रचारकों के आन्दोलन को इग्लैंड की तत्कालीन परिस्थितियों से भी बड़ी सहायता मिली। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप अनेकानेक कलकारखाने खड़े हुए। इन कारखानों ने शहरों तथा मजदूर वर्ग को जन्म दिया। शुरू में मजदूरों की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियाँ अत्यंत ही शोचनीय थी। विचारकों की दृष्टि में मजदूरों

† It is because of these practical and prophetic suggestions that Grant's book still retains its interest and it is because of them that Grant is sometimes described as the father of modern education in India—Nurrullah & Naik—P. 77.

की दुरावस्था के मुख्य कारण उनकी अशिक्षा तथा चरित्रहीनता थी। फलतः मजदूरों की शिक्षा तथा उनकी नैतिक समुन्नति के लिए सन् १७६०-१८५० की अवधिमें एक जोरदार आन्दोलन जारी था। इस उद्देश्य से देश में अनेक संस्थाएं स्थापित हुईं जिनका प्रधान लक्ष्य मजदूरों को शिक्षित, सचरित्र तथा मितव्ययी बनाना था। सन् १८०७ ई० में व्हाइटब्रेड ने पार्लियामेन्ट में एक बिल उपस्थित करवाया, जिसके अनुसार ७ से १४ वर्ष के बच्चों को दो साल की निःशुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए थी। इसके लिए स्थानीय करों से संचालित निःशुल्क स्कूल खोले जाने चाहिए थे। बिल कामन्स-सभा (House of Commons) से तो पास हो गया, किंतु लार्ड-सभा (House of Lords) से अस्वीकृत हो गया। सन् १८१५ ईसवी में पार्लियामेन्ट ने देश के गरीब बच्चों की शिक्षा की जाँच के लिए एक कमीटी नियुक्त की। इसतरह गरीब बच्चों की शिक्षा की ओर अंगरेजी जनमत जोर से अकृष्ट हो गया था। इस जागृति का प्रभाव अंग्रेजों की भारत की शिक्षासंबंधी नीति पर पड़ना स्वाभाविक था। भारतीय प्रजा के बच्चे इंग्लैंड के गरीब मजदूरों के बच्चों की भाँति ही दया के पात्र थे और इसलिए अंगरेजी पार्लियामेन्ट का यह कर्तव्य था कि वह भारतीय बच्चों की शिक्षा का प्रयत्न भी करे। स्पष्टतः इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए भारत में कार्य करनेवाले अंगरेजी अथवा अन्य ईसाई धर्म-प्रचारक-मण्डल उपयोगी सिद्ध हो सकते थे। फलतः पार्लियामेन्ट की ओर से इन मण्डलों को सुविधाएँ मिलनी चाहिए, ताकि वे भारत में धर्मप्रचार के साथ साथ शिक्षा कार्य भी कर सकें।

सन् १८१३ के अधिकार पत्र की एक तीसरी प्रेरणा भारत के उच्च अंगरेज अधिकारियों से प्राप्त हुई। हम देख चुके हैं कि हेस्टिंगस ने कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना प्राच्य ज्ञान के पुनरुद्धार तथा प्रसार के निमित्त की थी। हेस्टिंगस के परवर्ती गवर्नर जेनरल तथा अन्य उच्च अधिकारी भी इस बात में सहमत थे कि भारत में कम्पनी को शिक्षा की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए और यह व्यवस्था प्राच्यज्ञान से ही संबंधित रहनी चाहिए। सन् १८११ ई० (६ मार्च) को गवर्नर जेनरल मिन्टो ने एक अधिस्ताव (Munute) प्रेषित किया, जिसमें उसने भारत के सुसमृद्ध प्राचीन ज्ञान का उल्लेख किया, इसकी तत्कालीन अधोगति का विवरण दिया तथा

उसके पुनरुद्धार की जबर्दस्त सिफारिश की। भारतीय साहित्य तथा दर्शन का पुनरुद्धार न केवल भारतीय हित के लिए आवश्यक था, बल्कि इसके द्वारा यूरोप के लोग भी लाभान्वित हो सकते थे।

सन् १८१३ ई० का अधिकारपत्र :—

इन सम्मिलित आन्दोलनों के फलस्वरूप अँगरेजी पार्लियामेंट को भारतीय प्रजा की शिक्षा के विषय में क्रियाशील होना पड़ा। सन् १८४३ ई० में कम्पनी के चार्टर के पुनरावर्त्तन (Renewal) के अवसर पर निम्नलिखित प्रश्नों पर घोर वाद विवाद हुआ।

(क) भारत में धर्म-प्रचारकों के प्रवेश तथा धर्म-प्रचार की अनुमति दी जाय अथवा नहीं ?

(ख) भारतवासियों को शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व ईस्ट इंडिया कम्पनी ग्रहण करे अथवा नहीं ? यदि हाँ, तो इस उत्तर-दायित्व का रूप क्या हो, अर्थात्, अँगरेजों द्वारा किस तरह की शिक्षा पद्धति भारत में प्रचलित की जाय ?

चार्ल्स ग्रान्ट तथा उसके साथियों के अनुसार, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, धर्म-प्रचारकों को भारत में जाने तथा धर्म-प्रचार करने की पूर्ण सुविधाएँ मिलनी चाहिये थीं। अतः इस दल के लोगों ने धर्म-प्रचारकों के पक्ष में पूरा जोर लगाया। मिन्टो तथा कम्पनी के उच्च अधिकारियों के विचार में धर्म-प्रचारकों की ये सुविधाएँ कम्पनी की धार्मिक तटस्थता के सिद्धान्त के प्रतिकूल था तथा उनसे नव-निर्मित अंगरेजी राज्य को खतरे में पड़ जाने का सन्देह था। अतः इस दल के लोगों ने धर्म-प्रचारकों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। दूसरे प्रश्न पर पहला विरोध कम्पनी के संचालकों के द्वारा हुआ। कम्पनी के संचालकों को भय था कि वे शिक्षा के प्रश्न पर भारत में कई तरह की उलझन में पड़ जा सकते थे। साथ ही वे शिक्षा-प्रसार के कार्य के लिए किसी प्रकार का खर्च वहन करने के लिए तैयार न थे। स्मरण रहना चाहिये कि उस समय तक इंग्लैंड में भी शिक्षा-प्रसार का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर न था। स्पष्टतः कम्पनी अपनी भारतीय प्रजा के लिये विशेष उदार होना नहीं चाहती थी। किन्तु कम्पनी के भारतीय अफसरों का निश्चित मत था कि कम्पनी इस उत्तरदायित्व को ग्रहण करने के लिए तैयार हो। धर्म-प्रचारकों

के शिक्षा-सम्बन्धी प्रयत्नों को बेकार बनाने के लिए भी यह आवश्यक था कि कम्पनी की ओर से सरकारी शिक्षा पद्धति जारी की जाय। इस तरह अपने अफसरों के दबाव से संचालकों को भारत में शिक्षा-प्रसार का उत्तरदायित्व ग्रहण करना पड़ा। इस पृष्ठभूमि में १८१३ ई० के अधिकार पत्र के ४३ वें धारा में धर्म-प्रचारकों तथा शिक्षा-प्रसार के सम्बन्ध में निम्नलिखित निर्णय सन्निविष्ट हुए।

१—इंग्लैड का यह कर्त्तव्य है कि वह भारतीय प्रजा के हितों की ओर पूर्ण ध्यान दे तथा उनकी मानसिक एवं नैतिक समोन्नति के लिए उपयुक्त व्यवस्था करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि जो लोग भारत में जाकर शिक्षा-प्रसार तथा धर्म-प्रचार करना चाहें उन्हें इन कार्यों के लिए कानून के द्वारा पूरी सहूलियतें दी जायँ।

२—भारत के गवर्नर का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपये साहित्य के पुनरुद्धार तथा समुन्नति विद्वान भारतीयों के प्रोत्साहन तथा भारतीय प्रजा के बीच विज्ञान की शिक्षा के प्रसार के लिए व्यय करे।

उपरोक्त निर्णयों के द्वारा सन १८१३ ई० के अधिकार पत्र ने एक लम्बे संघर्ष की इतिश्री की जो कि लगभग २०वर्षों से चला आ रहा था। पहले निर्णय के अनुसार धर्म-प्रचारकों की माँगे स्वीकृत हुईं, जिसके लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील थे। अब उनके भारत प्रवेश तथा धर्म-प्रचार के मार्ग में कोई कानूनी अड़चन न थी। दूसरे निर्णय के द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का यह राजकीय उत्तरदायित्व हो गया कि वह भारतीय प्रजा की शिक्षा की व्यवस्था करे। इस उत्तरदायित्व का स्वरूप लगभग वही हुआ, जिसके लिए मिन्टों तथा कम्पनी के अन्य उच्चाधिकारी प्रयत्नशील थे। "साहित्य की पुनरोद्धार तथा समुन्नति" स्पष्टतः संस्कृत तथा अरबी साहित्य के पुनरोद्धार एवं विकास का ही संकेत करता था। "भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन" से तात्पर्य उन भारतीय पंडितों की सहायता से था, जोकि सर्वदा से राज्य का प्रोत्साहन

It shall be lawful for the Governor General in Council to direct that a sum of not less than one lac of rupees in each year shall be set apart and applied to the revival of literature and encouragement of the learned natives of India, and for the introduction and promotion of a knowledge of the Sciences among the inhabitants of the British territories in India. Sharp—Selection from Edcational Records. P. 22.

पाते आते थे। "विज्ञान की शिक्षा" के निर्देश के द्वारा कम्पनी के द्वारा संचालित शिक्षा पद्धति को पूर्ण बनाने की चेष्टा की गई ताकि वह असम्प्रदायिक रूप में भारतीयों को पूर्ण रूप से ग्राह्य हो सके। तथा धर्म प्रचारकों के साम्प्रदायिक स्कूलों की रोकथाम कर सके प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सम्मिश्रण से एक ऐसी पद्धति खड़ी हो सकती थी, जो कि धर्म-प्रचारकों की साम्प्रदायिक शिक्षा की बाढ़ को रोकने के लिए शक्तिशाली बाँध का कार्य कर सकती थी† संभवत: यह नहीं समझा जा सकता था कि धर्म प्रचारकों की चेष्टाओं को नियन्त्रित रखने की यह योजना स्वयं एक प्रबल प्रवाह का रूप धारण करेगी तथा भारत में अंगरेजी शिक्षा का मार्ग निरूपित करेगी। वस्तुत: १८१३ ई० के अधिकार पत्र ने भारत में अंगरेजी शिक्षा की इमारत का शिलान्यास किया। इसने भारतीय जनता की शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार के कंधों पर निश्चित रूप से रख दिया। समय के विचार से एक लाख रुपये का वार्षिक व्यय कम न था। अधिकार पत्र ने धर्म-प्रचारकों के लिए भारत का दरवाजा पूर्णत: खोल दिया, जिसके फलस्वरूप अनेक मण्डल भारत में प्रविष्ट होने लगे। इनके द्वारा अँगरेजी पद्धति के स्कूल धड़ल्ले से स्थापित होने लगे, जिन्हों ने भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति की बुनियाद डाली।

---

† "A reliable counterpoise, a protecting breakwater against the threatened deluge of missionary enterprise" would be created. —Richter quoted in Nurullah & Naik P. 82.

चौथा अध्याय

आधुनिक शिक्षा का द्वितीय चरण

(सन् १८१३–१८५४ ई०)

सन् १८१३ ईस्वी के अधिकार-पत्र ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ऊपर भारतीय प्रजा की शिक्षा की व्यवस्था का उत्तरदायित्व आरोपित किया, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि कम्पनी इस उत्तरदायित्व को कैसे वहन कर सकती है, अर्थात् भारत में शिक्षा-प्रसार की रीति (Methods) क्या होती। शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में अधिकार-पत्र में दो-एक निर्देश अवश्य दिये गये, किन्तु ये इतने अस्पष्ट थे कि आगे चलकर इन निर्देशों के सम्बन्ध में भी विवाद उठ खड़े हुए। "साहित्य के पुनरोद्धार तथा समोन्नति" (Revival and improvement of literature) में साहित्य (literature) शब्द का तात्पर्य क्या था—यह स्पष्ट नहीं किया गया था। फलतः इस शब्द के विभिन्न अर्थ बाद में लगाये जाने लगे। कुछ लोगों के विचार में साहित्य शब्द भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के लिए प्रयुक्त हुआ था, कुछ लोगों के विचार में पाश्चात्य साहित्य के लिए। इसी तरह "भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन" तथा भारतीय प्रजा के बीच विज्ञान की शिक्षा का प्रसार" का ठीक-ठीक तात्पर्य निर्देशित नहीं किया गया था। फलतः इन वाक्यों के अर्थ भी विभिन्न तरह से ग्रहण किये जाने लगे। इस तरह सन १८१३ ई० के अधिकार-पत्र में ही इन संघर्षों के बीज छिपे हुए थे, जिनसे आगे चलकर लगभग ४० वर्षों तक भारतीय शिक्षा का इतिहास परिव्याप्त रहा। संघर्षों के विषय प्रधानतया ये थे :—

१. भारत में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये ?
२. भारत में अंग्रेजी शिक्षा के साधन क्या हों ?
३. भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की रीति क्या हो ?
४. भारत में अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम क्या हो ?

शिक्षा के उद्देश्य के चित्रण स्वभावत: दो दृष्टिकोणों से किये जाते थे—सांस्कृतिक तथा व्यावसायिक। सांस्कृतिक स्वरूप के विषय में निम्नलिखित विचारधारायें थीं।

(क) शिक्षा के विषय भारत के प्राचीन सांस्कृतिक ज्ञान से सम्बन्धित हों, जो कि संस्कृत या अरबी में लिपिबद्ध थे।

(ख) शिक्षा के विषय पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित हों, जो कि प्रधानत: अंग्रेजी में लिपिबद्ध थे।

(ग) शिक्षा के विषय ऐसे हों, जिनमें उपरोक्त दोनों प्रकार के ज्ञान सन्निविष्ट रहें।

हम देख चुके हैं कि अंग्रेजी शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य के सम्बन्ध में ये विचारधाराएँ पहले से ही प्रादुर्भूत थीं। कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज के संस्थापन उपरोक्त प्रथम विचार के ही प्रतिफल थे। वारेन हेस्टिंग्स, मिन्टो तथा कम्पनी के अनुभवी उच्च अधिकारी इसी विचार के समर्थक थे। दूसरे विचार के समर्थक धर्म-प्रचारक तथा कम्पनी के कुछ नवयुवक अधिकारी थे जिन्हें पाश्चात्य ज्ञान के प्रति अत्यधिक आस्था थी। चार्ल्स ग्रांट के 'आवजरवेशन' में पाश्चात्य ज्ञान के सम्बन्ध में अभिव्यक्त भ्रमपूर्ण भावनाओं का उल्लेख किया जा चुका है। सन १८१३ ई० के पश्चात शिक्षा के स्वरूप के सम्बन्ध में यह सैद्धांतिक मतभेद और भी उग्र हो गया। सन १८१३ ई० के पहले कम्पनी-सरकार भारत में शिक्षा-प्रसार के लिए न प्रस्तुत थी, न उस पर इसके लिए किसी तरह का वैधानिक उत्तरदायित्व था। सन १८१३ ई० के पश्चात् कम्पनी सरकार का यह फर्ज हो गया था कि वह भारतवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करे। इस कार्य के लिए एक अच्छी रकम भी निर्दिष्ट कर दी गई थी। अत: उपरोक्त दोनों दलों को अपने अपने सैद्धांतिक विचारों की सफलता का व्यावहारिक महत्त्व बहुत बड़ा दीख पड़ने लगा। प्रत्येक दल इस चेष्टा में लग गया कि कम्पनी सरकार के श्रम तथा रुपये उसके द्वारा प्रतिपादित अंग्रेजी शिक्षा के स्वरूप को ही विकसित करने में व्यय हों। पहले दल के नये समर्थकों में श्री प्रिंसेप (Prinsep) तथा एच० एच० विल्सन (H. H. Wilson) प्रमुख थे, जिनका विशेष परिचय आगे उपस्थित किया जायगा। इस दल के अनुसार भारतीयों की शिक्षा प्राच्य ज्ञान से ही प्रधानतया सम्बन्धित रहनी चाहिये थी, जिसके चार प्रमुख शिलाधार थे।

(क) हिन्दुओं तथा मुसलमानों का सांस्कृतिक साहित्य काफी समुन्नत था।

(ख) इस साहित्य के अध्ययन दोनों वर्ग के भारतवासियों के लिए आवश्यक थे।

(ग) इस साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता अंग्रेज तथा यूरोपीय विद्वानों के लिए भी आवश्यक थी।

(घ) सरकारी प्रोत्साहन के अभाव में इस साहित्य की दशा शोचनीय थी। अतः यह आवश्यक था कि कम्पनी सरकार इसे संरक्षण प्रदान करे।

दूसरे दल के नये समर्थकों में मेकाले (Macaulay) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस दल की यह धारणा थी कि प्राच्य साहित्य अत्यन्त निम्नकोटि का साहित्य है तथा इसके अध्ययन से भारतीयों की सांस्कृतिक उन्नति असम्भव थी। मेकाले ने यहाँ तक कह डाला कि "यूरोप के किसी अच्छे पुस्तकालय की एक आलमारी की पुस्तकें भारत तथा अरब के समस्त साहित्य के बराबर है"।† फलतः मेकाले की सम्मति में भारतवासियों के लिए वही शिक्षा समीचीन हो सकती थी जो प्राच्य साहित्य के बदले पाश्चात्य साहित्य की शिक्षा उन्हें दे सके।

इन दो सर्वथा विरोधी दलों के अतिरिक्त एक तीसरा दल भी उत्पन्न हो गया था, जो दोनों के बीच 'मध्य मार्ग' का अवलम्बन करना चाहता था। इस दल के लोगों के विचार में वही शिक्षा भारतीयों को दी जानी चाहिये थी, जो कि प्राच्य तथा पाश्चात्य–भारतीय तथा यूरोपीय ज्ञान को समन्वित कर सके। इस दल के उन्नायकों में कुछ भारतीय विद्वान भी थे, जिनमें राजा राममोहन राय प्रमुख थे। दुर्भाग्यवश, यह 'मध्य मार्ग' कम्पनी सरकार के अधिकारियों को आकृष्ट न कर सका और फलतः भारतीय शिक्षा की गतिविधि बहुत दिनों तक अनिश्चित रही। सन् १८३३ ई० तक प्राच्य दल का हाथ ऊपर था, किन्तु इसके पश्चात् पाश्चात्य दल की विजय हुई और लगभग २० वर्षों तक पाश्चात्य विचार का प्रभुत्व भारतीय शिक्षा पर जमा रहा।

† A single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India & Arabia—Macaulay.

जहाँ तक शिक्षा के व्यावसायिक स्वरूप का सम्बन्ध था, कम्पनी सरकार की दृष्टि में इसका प्रधान उद्देश्य ऐसे भारतीयों को उत्पन्न करना था, जोकि राज्य-संचालन में सरकार की सहायता दे सकें। अंग्रेजी राज्य के विस्तार के साथ साथ कम्पनी सरकार को ऐसे कर्मचारियों की आवश्यकता बढ़ने लगी थी, जिनकी सेवाएँ राज्य के नीचे दर्जे के कार्यों के लिए आवश्यक थीं। इन कार्यों के लिए इंग्लैंड से बहुसंख्यक लोगों को बुलाना अव्यावहारिक था, साथ ही उसमें खर्च भी अधिक पड़ता। अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षित भारतीय युवक इस कार्य के लिए बहुत उपयुक्त थे। शिक्षा के इस व्यावहारिक स्वरूप के अतिरिक्त सरकारी दृष्टि में इसका अन्य कोई व्यावसायिक महत्व स्पष्टतः परिलक्षित नहीं था। इने-गिने सरकारी अंग्रेजी स्कूलों से जो छात्र परीक्षोत्तीर्ण होकर निकलते थे, वे अनायास ही सरकारी नौकरियों में लग जाते थे। अतः अंग्रेजी पद्धति में शिक्षित नवयुवकों के लिए बेरोजगारी का प्रश्न ही न उठता था।

किन्तु यह कहना उचित न होगा कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा का निर्माण ही इसलिए हुआ कि इसके द्वारा अंग्रेजी राज्य के लिए सेवक उत्पन्न किये जायँ। जैसा कि हम आगे देखेंगे, सरकारी चेष्टाएँ उपयोगी विषयों की ओर बहुत पहले आकृष्ट हो चुकी थीं। हाँ, इसका महत्व अपेक्षाकृत बहुत कम था।

निस्यन्द सिद्धान्त
(Filtration theory)

अंग्रेजी शिक्षा की दूसरी समस्या शिक्षा-प्रसार की रीति से सम्बन्धित थी। क्या सरकारी चेष्टा वर्ग-विशिष्ट की शिक्षा की ओर प्रेरित की जाय या जन-सामान्य की शिक्षा की ओर? यदि पहले विचार को ही प्रश्रय दिया जाय तो जन-सामान्य की शिक्षा की व्यवस्था क्या हो? यदि दूसरे विचार को प्रश्रय दिया जाय तो इसका व्यावहारिक रूप क्या हो? स्पष्टतः इन प्रश्नों की तह में शिक्षा-प्रसार के लिए आर्थिक तथा अन्य साधनों की न्यूनता थी। एक लाख वार्षिक रुपये से सरकार जन-सामान्य की अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकती थी। अतः यह समीचीन समझा जाने लगा कि सरकारी चेष्टाएँ ऊपर वर्ग के लोगों की अंग्रेजी शिक्षा की ओर प्रेरित की जाय। जन-सामान्य की शिक्षा इसी अंग्रेजी पद्धति में शिक्षित विशिष्ट वर्ग के द्वारा प्रसारित

होनी चाहिये थी। इसी विशिष्ट वर्ग के द्वारा पाश्चात्य ज्ञान छन छन कर भारतीय जन-समूह को अभिसिक्त करता। इसी विचार ने सुप्रसिद्ध निस्यन्द अथवा स्रवण सिद्धांत (downward Filtration theory) का जन्म दिया, जिस पर ही भारत की अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति बहुत दिनों तक आधारित रही। इस सिद्धान्त के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम के द्वारा कुछ लोगों को दी जानी चाहिये थी। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित यही लोग जन-सामान्य (masses) को देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करते। जन-सामान्य को शिक्षित बनाने की, तत्कालीन साधनों के विचार से, अन्य रीति न थी। इस सिद्धान्त का संकेत मेकाले के निम्नलिखित विचारों में है।

"मैं इस विचार से सहमत हूँ कि अपने सीमित साधनों से जन-समूह को शिक्षित बनाना असम्भव है। सम्प्रति हम लोगों को एक विशिष्ट वर्ग उत्पन्न करने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए जो कि हमारे तथा हमारी करोड़ों प्रजा के बीच माध्यम का कार्य कर सकें। यह वर्ग उन व्यक्तियों से निर्मित होगा जो कि रंग रूप में भारतीय होंगे, किन्तु रुचि, विचार, आचरण तथा समझ-बूझ में अंग्रेज।* इसी वर्ग के ऊपर हमलोग प्रचलित देशी भाषाओं को शुद्ध करने, पाश्चात्य वैज्ञानिक शब्दों से समृद्ध करने तथा क्रमशः भारतीय जन-समूह में ज्ञान-प्रसार के लिए उपयुक्त बनाने का उत्तरदायित्व सौंप सकते हैं।"

भारतीय शिक्षा पद्धति में व्यवहृत निस्यन्द सिद्धान्त (downward Filtration theory) का उपयोग इन्हीं अर्थों में हुआ है। इस सिद्धांत का आशय यह नहीं था, जैसा कि बहुधा समझा जाता है, कि अंग्रेजी शिक्षा केवल कुलीन अथवा उच्च वर्ग के लोगों को दी जाय, जिन्हें कम्पनी सरकार राजनीतिक कारणों से सन्तुष्ट रखना चाहती थी।

किन्तु कई कारणों से, निस्यन्द सिद्धांत जन सामान्य में शिक्षा-प्रसार के कार्य में, शुरू में, नितान्तः असफल रहा। अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भिक युग में, लगभग सभी व्यक्ति, जो कि अंग्रेजी स्कूलों से शिक्षा प्राप्त कर निकलते थे, सरकारी नौकरियों में आबद्ध कर लिये जाते थे। फलतः इन व्यक्तियों को देहातों में जाकर जन सामान्य को शिक्षित

* a class of persons Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect—Macaulay.

बनाने के अवसर उन्हें न शिक्षक के रूप में मिलते थे, न अन्य रूप में। साथ ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति में शिक्षित व्यक्तियों का दृष्टिकोण एवं रहन-सहन कुछ इस ढंग का हो जाता था कि उन्हें अपने गाँव के भाइयों से किसी प्रकार की सहानुभूति अथवा आत्मीयता न रह जाती थी। किन्तु बाद में इस सिद्धान्त ने जन-सामान्य की शिक्षा के क्षेत्र में कुछ योग अवश्य दिया। यह योग दो रूपों में मिला। अंग्रेजी पद्धति में शिक्षित कुछ व्यक्तियों में देश प्रेम की भावना इस रूप में प्रादुर्भूत हुई कि उन्होंने अपना समस्त जीवन देशवासियों के समुत्थान के कार्य में समर्पित कर दिया। सरकारी नौकरियों के प्रलोभन से सर्वथा विमुख होकर ये देशप्रेमी युवक जन-सामान्य के मानस क्षितिज को आलोकित करने की अनवरत चेष्टा में संलग्न हो गये। इन्हीं व्यक्तियों के द्वारा आधुनिक पद्धति के स्कूल आयोजित तथा संचालित हुए। वस्तुत: अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कार्य में गैरसरकारी स्कूलों का भाग सरकारी स्कूलों की अपेक्षा कहीं अधिक रहा है। निस्पन्द सिद्धांत की सफलता का दूसरा कारण यह था कि कालान्तर में अंग्रेजी स्कूलों से निकलने वाले छात्रों की संख्या सरकारी नौकरियों की संख्या से कहीं ज्यादा हो गई थी। स्पष्टत: इन सभी छात्रों को नौकरियाँ न मिल सकती थीं। साथ ही उन्हें अपनी जीविका भी उपार्जित करनी थी। इन व्यक्तियों ने शिक्षक के रूप में अर्थोपार्जन करना प्रारम्भ किया इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा के शिक्षण के लिए अनेक भारतीय शिक्षक प्रस्तुत हो गये। जन साभान्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से इन विद्वानों तथा प्रारम्भिक शिक्षकों ने देशी भाषाओं को भी समृद्ध तथा समुन्नत बनाने की चेष्टा की। इन्हीं के प्रयत्नों से देशी भाषा के छापाखाने भी चालू किये गये। भारत में अंग्रेजी काल में जो कुछ भी शिक्षा प्रसार हुआ उसका श्रेय अधिकांशत: उन्हीं लोगों को है, जिन्हों ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति में स्वत: उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। इस तरह, निस्पन्द सिद्धांत की आधारभूत मान्यताएँ सर्वथा निष्फल न सिद्ध हुईं। किन्तु इसका परिसरण बहुत दिनों तक अत्यन्त सीमित रहा। राष्ट्रीय जागरण के पश्चात ही इस सिद्धांत का व्यावहारिक उपयोग व्यापक रूप में परिलक्षित हुआ।

शिक्षा का माध्यम

विवाद का सबसे महत्वपूर्ण विषय शिक्षा के माध्यम से सम्बन्धित था। इस विवाद के दो रूप थे :—

(क) शिक्षा का माध्यम संस्कृत तथा अरबी हो अथवा अंग्रेजी ?
(ख) शिक्षा का माध्यम प्रचलित देशी भाषाएँ हों या अंग्रेजी ?

प्रथम विवाद का स्फुरण बंगाल में हुआ तथा दूसरे का बम्बई में। पहले हम देख चुके हैं कि शिक्षा के स्वरूप के सम्बन्ध में दो दल क्रियाशील थे, जो कि प्राच्यवादी तथा पाश्चात्यवादी के नाम से सुप्रसिद्ध थे। हम यह भी देख चुके हैं कि पहले दल का नेतृत्व श्री एच० टी० प्रिंसेप कर रहे थे तथा दूसरे का मेकाले। शिक्षा के माध्यम का प्रश्न वस्तुतः शिक्षा के स्वरूप अथवा विषय से ही सम्बन्धित था। यदि शिक्षा के विषय अंगरेजी साहित्य तथा पाश्चात्य ज्ञान से सम्बन्धित रहते थे, तो इनके शिक्षण की उपयुक्त भाषा अंगरेजी रहनी चाहिये थी। यदि शिक्षा के विषय भारत के सांस्कृतिक ज्ञान से सम्बन्धित रहते थे, तो अवश्य ही इसके लिए संस्कृत तथा अरबी भाषाएँ उपयुक्त थीं, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं। मेकाले के आविर्भाव के बाद पाश्चात्यवादी दल का प्रभुत्व बढ़ने लगा था और यह उचित समझा जाने लगा था कि शिक्षा के विषय पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान ही हों। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उस ज्ञान विज्ञान की शिक्षा किस भाषा के द्वारा भारतवासियों को दी जाय, प्रचलित देशी भाषाओं के द्वारा, संस्कृत अथवा अरबी (भारत की सांस्कृतिक भाषाओं) के द्वारा अथवा अंगरेजी के द्वारा। मेकाले ने इन तीन माध्यमों का परीक्षण किया और यह सिद्ध किया कि पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा के लिए अंगरेजी ही सब तरह से उपयुक्त थी।

देशी भाषाओं के सम्बन्ध में मेकाले ने यह मत प्रकट किया कि "सामान्यतः इस प्रान्त (बंगाल) में बोली जाने वाली भाषाओं में लिखित पुस्तकों का न कोई पुस्तकालय है, न इन भाषाओं में कोई वैज्ञानिक बातें ही लिपिबद्ध हैं। साथ ही ये भाषाएँ इतने हीन तथा ग्रामीण हैं कि जबतक इनको सुसमृद्ध न किया जाय, इन भाषाओं में किसी अच्छी पुस्तक का अनुवाद करना असम्भव है। सभी लोग इस बात को लगभग मानने लगे हैं कि उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों का मानसिक विकास देशी भाषाओं के द्वारा नहीं, अपितु किसी अन्य

भाषा के द्वारा ही हो सकता है।" संस्कृत तथा अरबी के सम्बन्ध में मेकाले की धारणा इससे अच्छी न थी। यह कहा जा चुका है कि उसके विचार में समस्त संस्कृत तथा अरबी साहित्य का मान यूरोप के किसी अच्छे पुस्तकालय की एक आलमारी की पुस्तकों से अधिक न था। अंगरेजी के सम्बन्ध में उसके विचार द्रष्टव्य हैं। "अंगरेजी में सभी प्रकार की पुस्तकों का बाहुल्य है। ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं राजनीति सम्बन्धी रचनाएं अनुपमेय हैं। जो कोई इस भाषा से परिचित है, उसके लिए वह सुविशाल बौद्धिक ज्ञान भंडार का द्वार खुला हुआ है, जो ६० पुश्त के विद्वानों के द्वारा संगृहीत हुआ है।† वस्तुतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि अंगरेजी के प्राचीन साहित्य में समस्त विश्व के प्राचीन साहित्य का ज्ञान भरा है। भारत में अंगरेजी शासक वर्ग की बोलचाल की भाषा है। उच्च वर्ग के भारतवासियों के द्वारा भी यह भाषा बोली जाती है। पूर्वी देशों के वाणिज्य-व्यापार की भाषा भी सम्भवतः यही होगी।"

ऐसी दशा में क्या उचित था, मेकाले ने प्रश्न किया, कि "सरकारी पैसे से अंगरेजी के बदले भारतवासियों को ऐसी भाषा की शिक्षा दी जाय जिसके साहित्य में ऐसा चिकित्सा ज्ञान हो, जो एक अंगरेज अश्व-चिकित्सक को हीन दीख पड़े, ऐसी ज्योतिष की बातें हों, जो कि एक अंगरेजी स्कूल के बालिका को हास्यास्पद दीख पड़ें, ऐसे इतिहास हों, जिनमें ३० फीट ऊँचे और ३० हजार वर्ष तक राज्य करने वाले राजाओं के नाम हों, जिसके इतिहास में मधु और मक्खन के समुद्र भरे पड़े हों।" ‡

अंगरेजी के प्रति भारतीयों की तथाकथित अश्रद्धा की चर्चा करते हुए मेकाले ने यह कहा कि इसे सत्य मानते हुए भी इंग्लैंड का यह धर्म था कि वह भारतवासियों के लिए वही वस्तु दे, जो कि उनके

† Whoever knows that language has ready access to all the vast intellectual wealth which all the wisest nation of the earth have created and hoarded in the course of ninety generations.

‡ and whether, we shall countenance at the public expense, medical doctrines which would disgrace an English farrier, astronomy which would move laughter in girls at an English boarding school, history abounding with kings thirty feet high and reigns thirty thousand years long, and geography made of seas of treacle and seas of butter—Macaulay.

स्वास्थ्य के लिए हितकर हो, न कि वह जो कि उनके स्वाद को प्रिय लगे।" जहाँ तक उसका अपना विश्वास था, भारतवासी संस्कृत तथा अरबी फारसी की अपेक्षा अंगरेजी का सीखना अधिक पसन्द करते थे। इसके प्रमाण में मेकाले ने एजुकेशन कमिटी की चर्चा की, जिसने अरबी तथा संस्कृत की पुस्तकों के प्रकाशन में गत तीन वर्षों में लगभग ६० हजार रुपये खर्च किये थे, किन्तु जिसकी बिक्री से एक हजार रुपये भी प्राप्त न हो सके थे। दूसरी ओर स्कूल बुक सोसा-इटी अंगरेजी पुस्तकों की लगभग ८ हजार प्रतियाँ प्रति वर्ष बेचा करती थी, जिससे न उसके प्रकाशन का व्यय निकल जाता था, बल्कि लागत पर सैकड़े २० नफा भी होता था। मेकाले यह भी कहा कि कोई व्यक्ति संस्कृत और अरबी की शिक्षा तबतक ग्रहण नहीं करता जब तक उसे किसी तरह की वृति नहीं दी जाती। इसके विरुद्ध, अंगरेजी की शिक्षा लोग शुल्क देकर भी प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

संस्कृत तथा अरबी की शिक्षा मेकाले ने इसलिए भी आवश्यक नहीं समझी कि इन्हीं भाषाओं में भारतवासियों की धार्मिक बातें लिपिबद्ध थीं। मेकाले ने भारतवासियों की धार्मिक बातों में तटस्थता की नीति को स्वीकार करते हुए भी, संस्कृत की शिक्षा को सर्वथा अनुचित बताया, क्योंकि इसके माध्यम से केवल भ्रमात्मक एवं गलत बातों का प्रचार होता। "क्या यह उचित था कि सरकारी पैसे से भारतीय विद्यार्थी अपना बहुमूल्य समय केवल यह जानने में खो डालें कि गदहे को छूने के बाद आत्म-शुद्धि कैसे हो सकती थी और बकरे को मारने के बाद उसके पाप से मुक्त होने के लिए वेद का कौन सा मन्त्र उच्चरित किया जाता ?"

कम्पनी की अनिश्चितता ने उपरोक्त संघर्षों को दृढ़ होने का अवसर दिया। जैसा कि ऊपर कहा चुका है, १८१३ ईसवी में कम्पनी ने यह स्वीकार कर लिया था कि भारतीय प्रजा की शिक्षा की देखरेख उसके उत्तरादायित्वों में से था, यह भी निश्चय हो चुका था कि शिक्षा का विषय पाश्चात्य ज्ञान ही होना चाहिए। किन्तु यह निश्चय न हो सका था कि इस ज्ञान की शिक्षा किस माध्यम के द्वारा दी जाय। इस सम्बन्ध में कम्पनी बहुत दिन बाद तक अनिश्चित रही, जिस के फलस्वरूप भारत में एक भीषण संघर्ष हुआ जो कि प्राच्य

तथा पाश्चात्य के नाम से प्रख्यात है। इस संघर्ष के विस्तृत विवरण के पहले १८१३-३३ तक की प्रमुख घटनाओं पर एक दृष्टिपात आवश्यक है।

सन् १८१३-३३ ई० की प्रमुख घटनाएं:-

१८९३ ईसवी के बाद भी कम्पनी के संचालक भारत की शिक्षा के प्रति उदासीन थे। इनमें से कई ने अधिकारपत्र के द्वारा स्वीकृत १ लाख रुपये को भारत में शिक्षा के लिए व्यय करना ही नही चाहते थे। ३ जून १८१४ के प्रथम शिक्षा संदेश-पत्र में उन्हों ने कुछ विद्वान भारतीयों को विशेष योग्यता का प्रमाण पत्र (honorary mark of distinction), कुछ को विद्योपार्जन के लिए आर्थिक सहायता तथा कम्पनी के नौकरों को संस्कृत के अध्ययन के लिए प्रोत्साहन आदि पर ही ध्यान दिया। शिक्षा के प्रसार के लिए विद्यालय खोलने आदि की चर्चा तक नहीं की गई। स्पष्टतः कम्पनी अपने नये उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए तत्पर न थी। किन्तु कम्पनी के उच्च अधिकारी उस की नीति से सहमत न थे।

लार्ड म्यौरा ने सन् १८१५ में कम्पनी के संचालकों के पास एक पत्र लिखा, जिस में उसने यह सिफारिश की कि एक लाख रुपयों को पुराने स्कूलों की उन्नति तथा नये स्कूलों के आयोजन में व्यय किया जाय। शिक्षा प्रसार का कार्य एक ऐसा उत्तरदायित्व था, जिसे कम्पनी सरकार को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए था †। लगभग उसी समय चार्ल्स मेटकाफ ने यह लिखा कि शिक्षा-प्रसार से कम्पनी के शासन को बल प्राप्त होगा, न कि इसे खतरा पहुंचेगा, जिस का सन्देह कम्पनी को तब भी था।‡ कम्पनी के अधिकारियों के इन प्रयत्नों को इंगलैंड की तत्कालीन समाजिक परिस्थितियों से बल बड़ा प्राप्त हुआ। सन् १८२३-३३ की अवधि में इंग्लैंड में उदारबाद की वेगवती वायु चल रही थी। समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों से सारा देश परिव्याप्त था। इन

† To be the source of blessings to the immense population of India is an ambition worthy of our country.—Selection from Educational Records P.P. 28-9.

‡ My own opinion is that the more blessings we confer on them, the better hold we shall have on their affection and in consequence the greater strength and duration to our empire. Adam's Report P 466

आन्दोलनों के फलस्वरूप कई तरह के अमानुषिक और कठोर दण्ड-विधान रद्द कर दिये गये, मजदूरों के पक्ष में नियम चालू किये गए, तथा कैथोलिकों के विरुद्ध कानूनी मजबूरियाँ उठा ली गई।' सन् १८३२ ईसवी में दास प्रथा का अन्त हो गया। इसी वर्ष पार्लियामेंट ने इंग्लैंड में शिक्षा प्रसार के लिये पहली बार आर्थिक सहायता स्वीकृत की। स्वाभावतः इन आन्दोलनों का प्रभाव कम्पनी की भारत-नीति पर भी पड़ा और फलतः १८२३-३३ में भारतीय शिक्षा सम्बन्धी उदासीनता एक क्रियशील शिक्षा-नीति में परिवर्तित हो गई। सन् १८१४ ईसवी में संचालकों ने भारत के गवर्नर जेनरल को यह संदेश भेजा कि वे भारतीय शिक्षा के प्रति सचेष्ट होना चाहते थे, और इस के आवश्यक खर्च के लिए भी प्रस्तुत थे।*

संचालकों के आदेश की देर थी। सभी प्रान्तों में लगभग एक ही साथ शिक्षा प्रसार के प्रचार के प्रयत्न शुरु हो गए और शिक्षा सम्बन्धी एक सुव्यवस्थित राजकीय नीति का विकास होने लगा।

बंगालः—१७ जुलाई १८३२ को गवर्नरजेनरल ने अपने मंत्रियों की सलाह से एक प्रस्ताव पास किया जिस के अनुसार बंगाल प्रेसिडेन्सी में शिक्षा की देख रेख के लिए "जेनरल कमिटि ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन" (General Committee of Public Instruction) नामक एक समिति बनायी गयी। समिति के दस सदस्य थे, जिन में एच. पी. प्रिंसेप तथा एच. एच. विलसन के नाम उल्लेखनीय हैं। समिति के अधिकांश सदस्य कम्पनी के पुराने अफसर थे, जिन्हें भारतीय ज्ञान के प्रति बड़ी आस्था थी। ये सदस्य संस्कृत तथा अरबी के प्रबल समर्थक थे। समिति को यह हक था कि वह १८१३ के अधिकार पत्र के द्वारा प्रदत्त एक लाख रुपये को अपने इच्छानुसार व्यय करे। सन् १८२२-३३ के बीच इस समिति ने भारतीय शिक्षा तथा सांसकृतिक भाषा के लिए निम्नलिखित मुख्य कार्य किये।

(क) कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज का पुनर्गठन किया गया।

---

* We wish you to be fully apprised of our zeal for the progress and improvement of education among the natives of India, and of our willingness to make considerable sacrifice to that important end.

Selection from Educational Records
Vol I. P. 92.

(ख) सन् १८२४ ईसवी में कलकत्ते में एक संस्कृत कालेज की स्थापना हुई।
(ग) आगरा और दिल्ली में भी एक एक बिद्यालय की स्थापना हुई।
(घ) संस्कृत तथा अरबी की पुस्तकें छपाई तथा प्रकाशित की गईं।
(ङ) कुछ उपयोगी अंगरेजी पुस्तकों को संस्कृत तथा अरबी में अनुवाद करने के निमित्त प्राच्य भाषा के विद्वान नियुक्त किये गए।

राजा राममोहन राय और प्राच्यदलः—किन्तु, समिति को शीघ्र ही जवर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने गवर्नर जेनरल के समक्ष एक आवेदन पत्र ११ दिसम्बर १८२३ के उपस्थित किया। इस आवेदन-पत्र में उन्होंने प्रस्तावित संस्कृत कालेज के निश्चय को न केवल त्यागने की प्रार्थना की, वलिक यह भी लिखा कि सरकार को गणित, प्रकृति, ज्योतिष, रशायनशास्त्र, आदि विषयों की नवीन बातों की शिक्षा का आयोजन करना चाहिए तथा इस के लिए यूरोप में शिक्षित कुछ विद्वानों को नियुक्त करना चाहिए। इस आवेदन-पत्र से यह स्पष्ट पता चलता है कि उदारवादी भारतीयों की शिक्षा-संबंधी बिचारधारा क्या थी, तथा किसी तरह पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का प्रभुत्व क्रमशः बढ़ता जा रहा था। भारतीयों की ओर से विरोध के अतिरिक्त समिति को कम्पनी के संचालकों की ओर से यह-आदेश मिला कि वह प्राच्य शिक्षा के कार्यक्रम तथा संस्कृत के प्रोत्साहन से अपना मुँह मोड़ ले। १८ फरवरी १८२४ के संदेश-पत्र में संचालकों ने संस्कृत आदि भाषाओं की विज्ञान-संबंधी न्यूनता प्रकट की और समिति को यह परामर्श दिया कि पाश्चात्य ज्ञान के प्रचलन के लिये वह जोरदार प्रयत्न करे।†

वस्तुतः, समिति के सदस्यों में भी भारतीय ज्ञान की उपयोगिता के संबंध में पूर्ण मतैक्य नहीं था। यह मतभेद क्रमशः उग्रतर होता

We apprehend that the plan of the institutions to the improvement of which our attention is now directed was originally and fundamentally erroneous. The great end should not have been to teach Hindoo learning, but useful learning.

In professing on the other hand to establish seminars for the purpose of teaching mere Hindoo or mere Mahomedan literature you bound yourself to teach a great deal of what was frivolous, mischivious and a small remainder indeed in which utility was in any way concerned.

—Selection from Educational Records
Vol I. pp. 91-92

गया, जिसका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा। कुछ दिनों तक प्राच्यवादी सदस्यों का जोर रहा, जिसके फलस्वरूप समिति ने भारतीय ज्ञान के प्रसार तथा संस्कृत-अरबी की समुन्नति के लिए प्रशंसनीय कार्य किया, किन्तु पाश्चात्यवादियों के प्रयत्नों के आगे प्राच्यवादियों को झुकना पड़ा और अपनी इच्छा के विरुद्ध उन्हें अंगरेजी शिक्षा की ओर कुछ ध्यान देना ही पड़ा। सन् १८३३ ई० तक आगरा के संस्कृत कालेज तथा कलकत्ता मदरसा में अंगरेजी पढ़ाने की व्यवस्था की गई। दिल्ली और बनारस में जिला अंगरेजी स्कूल (District English School) की स्थापना भी हुई। किन्तु इन प्रयत्नों से पाश्चात्य दल को तृप्ति न हो सकी और वे अपने विचारों की पूर्ण स्वीकृति के लिए पूरी चेष्टा करने लगे। मेकाले के आविर्भाव से एक ऐसी परिस्थित उत्पन्न हुई, जिस से इस मतभेद का निपटारा आवश्यक हो गया। सन् १८३४ ई० के लगभग, समिति के दस सदस्यों में पाँच प्राच्य शिक्षा के समर्थक थे तथा पाँच पाश्चात्य शिक्षा के। प्राच्य दल के नेतृत्व एच. टी. प्रिंसेप के हाथ में था. जो कि बंगाल सरकार के शिक्षा-सचिव भी थे। किन्तु, मेकाले की प्रतिभा तथा तर्क के समक्ष प्राच्य दल को हार खानी पड़ी। समिति के सदस्यों के समद्विभाग के कारण समिति किसी भी निश्चय पर पहुंचने में असमर्थ हो गयी। अन्त में यह निश्चय किया गया कि मतभेद का निपटारा गवर्नर जेनरल करें। प्रत्येक दल ने अपने विचारों को इनके समक्ष प्रस्तुत किया।

प्राच्य दल ने अपने मत की पुष्टि में अधिकारपत्र (१८१३ ई०) को उद्धृत किया और यह दिखलाने की चेष्टा की कि उक्त अधिकारपत्र की ४३वीं धारा में 'सहित्य' शब्द का अर्थ हिन्दू और मुसलमानों का सांस्कृतिक साहित्य अथवा संस्कृत तथा अरबी था। अत: सरकारी चेष्टा इसी साहित्य के सध्ययन तथा प्रसार की ओर केन्द्रित रहनी चाहिए थी। विज्ञान-संबंधी ज्ञान के प्रसार के लिए, जिसका आदेश भी अधिकार पंच में था, प्राच्य दल के अनुसार, संस्कृत तथा अरबी माध्यम ही उपयुक्त थे । इन भाषओं के प्रति भारतीयों की बहुत बड़ी आस्था थी, और इसलिए यह आवश्यक था कि इन्हीं के जरिये नये ज्ञान प्रस्तुत किये जाएं। फलत: प्राच्य ज्ञान तथा संस्कृत और अरबी भाषाओं के प्रोत्साहन के कार्य को तब तक बन्द नहीं किया जा सकता था, जब तक कि चार्टर कानून की ४३वीं धारा रद्द अथवा संशोधि न की जाती।

मेकाले तथा पाश्चात्य दल:—इस के विपरीत मेकाले ने २ फरवरी

१८३५ के अपने सुप्रसिद्ध प्रस्तावपत्र में यह प्रतिपादित किया कि अधिकार पत्र १८१३, ४३वीं धारा के 'साहित्य' शब्द का अर्थ प्राच्य साहित्य नहीं, बल्कि अंगरेजी साहित्य होना चाहिए तथा "विद्वान देशवासियों" का तात्पर्य अंगरेजी दर्शन तथा साहित्य के भारतीय पंडितों से होना चाहिए। अंगरेजी साहित्य के प्रसार का उपयुक्त माध्यम संस्कृत तथा अरबी नहीं बल्कि अंगरेजी था, जिस के प्रसार का उत्तरादायित्व सरकार पर था। मेकाले ने यह भी संकेत किया कि यदि ४३वीं धारा के ये उद्देश्य नहीं थे, तो इस धारा को रद्द करने की आवश्यकता थी।

मतभेद का दूसरा विषय यह था कि प्राच्य शिक्षा के लिए स्थापित सरकारी विद्यालय जारी रखे जायं अथवा बन्द कर दिये जायं।

प्राच्य दल स्वभावतः उन विद्यालयों की न केवल सुरक्षा के लिए उत्सुक थी, बल्कि उन्हें उत्तरोत्तर समृद्धिशील देखना चाहती थी। इस दल का यह भी कहना था कि इन विद्यालयों के बन्द करने का प्रयत्न सरकार की उदारवादी शासन-नीति के सर्वथा विरुद्ध था तथा इस से भारतीयों को भारी क्षोभ हो सकता था। किन्तु दल के सदस्य यह भी समझ रहे थे कि उच्च वर्ग के भारतीयों में अंगरेजी शिक्षा का मोह काफी जड़ पकड़ चुका था, और इस लिए वे यह मानने के लिये तैयार थे कि इन स्कूलों में पढ़ने अथवा न पढ़ने का निश्चय विद्यार्थियों पर ही छोड़ दिया जाय। मेकाले ने इन प्राच्य शिक्षा के विद्यालयों को बन्द कर देने की सिफारिश की, क्योंकि, उस के विचार में, इन विद्यालयों से किसी तरह का लाभ नहीं था।

विवाद का तीसरा विषय शिक्षा के माध्यम से संबंधित था। प्राच्य दल की धारणा थी कि पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा के लिए संस्कृत, अरबी आदि ही उपयुक्त थीं। मेकाले ने इस के विरोध में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यह शिक्षा संस्कृत तथा अरबी में न केवल अनुपयुक्त थी, बल्कि अव्यवहारिक भी थी। प्रचलित देशी भाषाएं तो इस के लिए सवर्था अनुपयुक्त थीं। ये इतनी कमजोर तथा ग्रामीण थीं कि इन भाषाओं में विज्ञान संबंधी किसी पुस्तक का अनुवाद सम्भव नहीं था। संस्कृत तथा अरबी के संबंध में भी वही बात लागू थी। मेकाले के विचार में, जैसा पहले कहा जा चुका है, किसी अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी की पुस्तकें संस्कृत तथा अरबी भाषाओं की समस्त पुस्तकों के बराबर थीं। साथ ही संस्कृत और अरबी की व्यावहारिक महत्व अंग्रेजी से बहुत न्यून था। मेकाले यह मानने के लिए

प्रस्तुत नहीं था कि भारतीयों को अंगरेजी भाषा के प्रति श्रद्धा नहीं थी। संस्कृत तथा अरबी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सरकारी सहायता के बल पर आकृष्ट किया जाता था। किन्तु अंगरेजी पढ़ने वाले विद्यार्थी अपने खर्च से पढ़ने के लिए प्रस्तुत थे। इस के अतिरिक्त, समिति के द्वारा प्रकाशित संस्कृत और अरबी की पुस्तकों की बिक्री का मान तीन वर्षों में सिर्फ एक हजार रुपये था। किन्तु स्कूल बुक सोसाइटी, प्रति वर्ष, ७-८ हजार रुपयों की अंगरेजी किताबें बेचती थी। इन प्रमाणों से यह सिद्ध था कि अंगरेजी के प्रति भारतीयों की श्रद्धा अरबी और संस्कृत की अपेक्षा अधिक थी। यदि यह बात नहीं भी होती, तब भी सरकार का फर्ज था कि भारतीयों के हितों की सुरक्षा करती, न कि उनकी रुचियों की। † कानून सम्बन्धी मामलों के लिए संस्कृत तथा अरबी के अध्ययन की आवश्यकता को मेकाले ने अनिवार्य नहीं समझा। उसने यह प्रस्ताव किया कि हिन्दू तथा मुसलिम धर्म-ग्रन्थों की कानून संबंधी बातें अंगरेजी भाषा में सुव्यवस्थित कर संगृहीत कर दी जायं, जो न्याय वितरण के आधार बनें।

लार्ड बेंटिंक का प्रस्ताव १८३५:—

लार्ड विलियम बेंटिंक ने इन दोनों दलों के विचारों के परीक्षण के बाद मेकाले के प्रस्ताव-पत्र को मार्च १८३५ में स्वीकृत किया और अपनी कौंसिल के सातवें प्रस्ताव के अनुसार उन्होंने मेकाले की लगभग सभी बातें मान लीं। इस तरह लगभग २२ वर्षों के निरन्तर संघर्ष की इति श्री हुई। ७ वे प्रस्ताव में यह घोषित किया गया कि :—

क—भारत सरकार का यह निश्चित मत है कि भारत में शिक्षा का उद्देश्य यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रसार होना चाहिये और शिक्षा के लिए सभी सरकारी रकम इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खर्च होनी चाहिये।

ख—प्राच्य विद्यालय बन्द नहीं किये जायँ। विद्यमान अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की वृत्तियाँ जारी रहें। किन्तु, विद्यार्थियों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी सरकार पर नहीं रहे। नये विद्यार्थी को किसी तरह की वृत्ति नहीं दी जाय। किसी अध्यापक की जगह रिक्त होने पर नियुक्ति सरकार के विचाराधीन रहे।

† It was the duty of England to teach Indians what was good for their health, and not what was palatable to their taste.

—Macaulay.

ग—प्राच्य पुस्तकों के मुद्रण में, भविष्य में, सरकारी रुपये व्यय न किये जायं।

घ—अंगरेजी साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा का माध्यम अंगरेजी भाषा हो। "जन शिक्षा की सामान्य समिति" इसके लिए एक योजना शीघ्रातिशीघ्र उपस्थित करे।

मेकाले का महत्त्व :—

भारत में अंगरेजी शिक्षा के प्रतिष्ठापन का श्रेय साधारणतया मेकाले को ही दिया जाता है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि मेकाले ही के कारण भारतीय सांस्कृतिक भाषाओं की उपेक्षा हुई। किन्तु ये धारणाएं सत्य नहीं। मेकाले न तो पाश्चात्य दल का प्रवर्त्तक था और न उसने इस दल के समर्थन के लिए किसी तरह की अनुचित कारवाइयाँ ही की। पाश्चात्य दल का सूत्रपात उसके भारत पहुँचने के बहुत पहले ही हो चुका था। अंगरेजी भाषा के व्यावहारिक महत्व की ओर भी भारतीय बहुत पहले ही आकृष्ट हो चुके थे। कम्पनी के नये अफसर, विदेशी धर्म-प्रचारक तथा भारतीय समाज-सुधारक अंगरेजी भाषा तथा पाश्चात्य ज्ञान के पक्ष में बहुत कुछ कर चुके थे। मेकाले ने सिर्फ इतना किया कि अपने जोरदार तर्कों से सरकार को एक निश्चय पर पहुँचने के लिए वाध्य किया। यह निश्चय अंगरेजी भाषा तथा पाश्चात्य ज्ञान के पक्ष में होना अनिवार्य था। मेकाले ने केवल अनिश्चितता की अवधि कम कर दी। † प्राच्य धर्म यथा साहित्य की भर्त्सना, जो कि मेकाले ने की, वह अवश्य ही निन्दनीय है तथा उसकी विद्वता को धूमिल करता है। किन्तु, यहाँ भी मेकाले के उद्देश्य बुरे न थे। प्राच्य धर्म और साहित्य की निन्दा उसने निन्दा के लिए न की, वल्कि पाश्चात्य ज्ञान के प्रसार की आवश्यकता की पुष्टि में। यह भी कहना उचित नहीं कि मेकाले ने भारतीय वोलचाल की भाषाओं की उपेक्षा की। उसका निश्चित मत था कि शिक्षा के माध्यम के लिए प्रचलित देशी भाषायें उपयुक्त थीं। 'जेनेरल कमिटी आफ पब्लिक इन्सट्रक्शन' ने सन १८३६ ई० में

† He was only responsible for the quick decision of a controversy that would otherwise have dragged on for years but which, nevertheless, could never have been decided in favour of classical languages.

—Nurullah & Naik——pp. 140-41

मेकाले के सभापतित्व में प्रचलित देशी भाषाओं के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया था कि सरकार को प्रचलित देशी भाषाओं के साहित्य के निर्माण की ओर पूर्णतः सचेष्ट होना चाहिये।* यदि मेकाले के ये विचार कार्यान्वित न हो सके, तो इसका उत्तरदायित्व परवर्ती सरकारी अधिकारियों पर है न कि मेकाले पर। कुछ लोग मेकाले के सर पर भारत के राजनीतिक असन्तोष के प्रादुर्भाव का उत्तरदायित्व मढ़ते हैं। यह कहना पूर्णतः ठीक नहीं कि अंगरेजी शिक्षा के प्रसार के बिना भारत में राजनीतिक आन्दोलन जन्म ही न लेता। "इस परिवर्त्तन विशिष्ट युग में पदाक्रान्त भारतीय चरित्र का भी उक्त अशान्ति में उतना ही हाथ है, जितना पाश्चात्य शिक्षा का।" यदि इसे सच भी मान लिया जाय तो यह एक ऐसा परिणाम न था, जिसके लिए मेकाले की निन्दा की जाय। वस्तुतः, मेकाले ने अंगरेजी शिक्षा के परिणाम स्वरूप भारत के राष्ट्रीय जागरण की कल्पना की थी। इस संभावना के समक्ष भी, अपने निश्चय पर दृढ़ रहकर, उसने एक ऐसे उदारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया जिसके लिए वह हमारा प्रशंसापात्र है।

फिर भी, "मेकाले सर्वथा दोष-रहित नहीं माना जा सकता। उस पर निस्सन्देह जल्दबाजी, अहमन्यता, अपने पर महत विश्वास और अयोग्यता आदि दोषारोपण किये जा सकते हैं, क्योंकि उसने शिक्षा के बौद्धिक पक्ष का ही अवलोकन किया था। उसमें उस संवेदनात्मक अन्तर्दृष्टि का अभाव था, जिसके माध्यम से वह पूर्व और पश्चिम,

---

†" We are deeply sensible of the vernacular languages...... we conceive the formation of a vernacular literature to be the common object to which all our efforts must be directed" Trevelyan—on the Education of India pp 22-3

* It may be that the public mind of India may expand under our system until it had outgrown that system, that by good governments we may educate our subjects into a capacity for better government, that having become instructed in European knowledge, they may, in some future age, demand European institutions. Whether such a day will ever come I know not. But never will I attempt to avert or retard it. Whenever it comes, it will be the proudest day in English History.

Macaulay—Speech in the house of Commons—quoted in Dadabhai Naoriji's—Poverty and Un—British Rule in India. p. 93

भारत और इंग्लैंड के पारस्परिक सम्बन्ध की सूक्ष्मातिसूक्ष्म ग्रन्थियों को स्पष्ट रूप से देख सकता।"

आकलैंड का आदेश—प्राच्य-पाश्चात्य संघर्ष का अन्त

यद्यपि बेंटिंक ने उपरोक्त प्रस्ताव के द्वारा सरकारी शिक्षा-नीति के स्वरूप को पूर्णत: स्पष्ट कर दिया, फिर भी उसके प्रस्ताव से प्राच्य और पाश्चात्य दल के पारस्परिक संघर्ष का अन्त न हुआ। यह संघर्ष पाँच वर्ष तक चलता रहा। संघर्ष का निपटारा बेंटिंक के उत्तराधिकारी गवर्नर जेनरल लार्ड आकलैंड के समय में (सन १८३६ ई०) में हुआ।

लार्ड आकलैंड ने प्राच्य तथा पाश्चात्य दलों के संघर्ष की समस्या को एक नये दृष्टिकोण से देखा। आकलैंड के विचार में संघर्ष का मूल कारण यह था शिक्षा की मद में सरकार के द्वारा बहुत कम रुपये दिये गये थे। इस छोटी रकम को हर दल अपने लिए उपयुक्त करना चाहता था। यदि इस रकम को बढ़ा दी जाती, तो दोनों दलों की आवश्यकतायें पूरी हो जाती।† इस धारणा से अनुप्राणित होकर आकलैंड ने एक आदेश जारी किया। जिसके अनुसार यह तय किया गया कि—

(१) सरकारी सहायता की तत्कालीन रकम अर्थात २४००० पौंड (२,४०,००० रु०) को काफी बढ़ाया जाय, ताकि दोनों श्रेणियों के विद्यालयों के विकसित होने के अवसर मिलें। सरकार दोनों तरह की विद्यालयों के प्रोत्साहनके लिए उचित सहायता दे।

(२) प्राच्य शिक्षा के स्वीकृत विद्यालय जारी रखें जायं तथा इन विद्यालयों की ओर सुयोग्य अध्यापकों को आकृष्ट करने के लिए उचित सरकारी आर्थिक सहायता दी जाय। विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ पर्याप्त संख्या में दी जाय।

(३) प्राच्य भाषा की उपयोगी पुस्तकों के लेखन तथा प्रकाशन को प्रोत्साहित किया जाय, किन्तु इसका खर्च निर्धारित रकम के अन्दर ही सीमित रहे।

(४) प्राच्य विद्यालयों का प्रधान उद्देश्य प्राच्य शिक्षा का प्रसार ही

† I may observe that the insufficiency of funds assigned by the state for the purposes of public instruction has been amongst the main causes of the violent disputes which have taken place on the education question,

Selections from Educational Records Vol. I. pp. 148-9.

होना चाहिये। इन विद्यालयों में अंगरेजी कक्षा खोले जा सकते हैं, किन्तु विद्यालय के मूल उद्देश्य को आघात नहीं पहुंचना चाहिये।

आकलैंड के प्रस्ताव से प्राच्य दल के व्यथित हृदय को काफी शान्ति प्राप्त हुई। कम्पनी की संचालक समिति ने आकलैंड के प्रस्तावों को स्वीकृत किया और इसके लिये ३१००० रुपयों का अतिरिक्त खर्च भी मंजूर किया। इस मामूली रकम की स्वीकृति से दोनों दल प्रसन्न रहेंगे—इस बात से उन्हें बड़ी खुशी हुई।

आकलैंड न केवल प्राच्य दल का स्नेह भाजन रहा, बल्कि पाश्चात्य दल भी उससे खुश था। अंगरेजी शिक्षा के प्रसार के लिए उसने लगभग एक लाख से अधिक रुपये अलग निकाल दिये। साथ ही उसने शिक्षा सम्बन्धी एक नीति प्रतिपादित की, जिससे पाश्चात्य दल वालों की प्रायः सभी बातें स्वीकृत की गईं। इसके अनुसार सरकार की शिक्षा-प्रसार की नीति का प्रधान लक्ष्य यह था कि अंगरेजी माध्यम के द्वारा यूरोपीय साहित्य, दर्शन तथा विज्ञान का प्रचलन हो। आकलैंड ने यह भी निर्धारित किया कि उच्च शिक्षा के सरकारी प्रयत्न कुछ उच्च वर्ग के कुलीन व्यक्तियों तक सीमित रहें। इसी शिक्षित कुलीन वर्ग के द्वारा पाश्चात्य ज्ञान का साधारणीकरण होगा और वह जनता तक पहुँच सकेगा। इस तरह आकलैंड ने पुराने निस्यन्द सिद्धांत को सरकारी स्वीकृति दी, जिसके आधारभूत मान्यताओं के अनुसार सन १८७० ई० तक सरकारी शिक्षा-नीति संचालित होती रही।

इन तरह यद्यपि आकलैंड ने प्राच्य दल को पूर्णतया विनष्ट होने से बचा लिया, उसने वास्तव में अंगरेजी शिक्षा के प्रसार को काफी प्रोत्साहन दिया।*

आकलैण्ड तथा प्रचलित देशी भाषाएं :—

माध्यमिक शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में आकलैंड के समक्ष प्रचलित देशी भाषाओं के पक्ष में कई स्थानों से परामर्श उपस्थित किये गये। बम्बई में इस विचार का पूरा समर्थन हुआ। किन्तु, आकलैंड ने इसे अस्वीकार कर दिया, क्योंकि मातृभाषा के माध्यम की स्वीकृति से अंगरेजी शिक्षा की प्रचलित पद्धति (status quo) में गड़बड़ी होने की आशंका थी।

*Nurrullah & Naik — Page 144

इस तरह आकलैंड ने माध्यमिक शिक्षा की गलत शिक्षण पद्धति को सुधारने का अवसर खो दिया। चार्टर कानून १८३३ के अनुसार बंगाल के शासन का आधिपात्य अन्य प्रान्तों पर पूर्णतया प्रतिष्ठापित हो गया। फलतः जिन प्रान्तों में मातृभाषा के जोरदार प्रयत्न हो रहे थे, उन्हें भी बंगाल के अनुशासन में अपने विचारों को कार्यान्वित करने से बंचित रह जाना पड़ा।

आकलैंड और देशी स्कूल :—देशी स्कूलों के पुनरुत्थान के संबंध में भी आकलैंड के निश्चय हितकर न हुए। बेंटिक ने आदम को देशी स्कूलों की स्थिति के संबंध में जांच पड़ताल करने के लिए नियुक्त किया था। जांच का उद्देश्य था देशी स्कूलों की वास्तविक स्थिति का पता लगाना तथा इन स्कूलों के सुधार के लिए आवश्यक परामर्श उपस्थित करना। आदम ने देशी स्कूलों की शोचनीय स्थिति पर ध्यान आकर्षित करते हुए निम्नलिखित सुझाव उपस्थित किये :—

(क) 'निस्यन्द सिद्धांत' को त्याग दिया जाय। इसके समर्थन में आदम ने कई युक्तियां पेश कीं। पहला यह कि इस सिद्धांत के व्यवहार से देशी शिक्षा की सुव्यवस्थित तथा दीर्घकालीन प्रणाली सर्वथा उपेक्षित हो जाती थी। दूसरा यह कि प्रत्येक उच्च श्रेणी के विद्यालयों के लिए उपयुक्त सामग्री निचली श्रेणी के विद्यालयों से ही प्राप्त हो सकती थी थी और इस लिए इन विद्यालयों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी। *

(ख) चाहे जिस अवस्था में देशी प्राथमिक विद्यालय हों; इन्हीं विद्यालयों के आधारस्तम्भ पर किसी सामान्य अथवा राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का निर्माण होना चाहिए। साथ ही, यही शिक्षा पद्धति भारतीयों के लिये सुगम, सुन्दर तथा सस्ती हो सकती थी।

इन सुझावों के आधार पर आदम ने एक सुनिश्चित शिक्षा प्रणाली उपस्थित की, जिसमें सात विभिन्न चरण अथवा श्रेणियाँ थी। किंतु

---

*The efficiency of every successive higher grade of institution cannot be secured except by drawing instructed pupil from the next lower grade, which consequently by the necessity of the case demands prior attention.

To make the superstructure lofty and firm the foundations must be broad & deep.

Adam's Reports.—Page 357-8

आदम के सभी प्रस्ताव आकलैंड ने अस्वीकृत कर दिए। मेकाले ने भी इसका विरोध किया। इस तरह 'आदम' के प्रशंसनीय प्रयत्न व्यर्थ हो गये।

सन् १८४०—४३ की अवधि में बंगाल में शिक्षा की कुछ प्रमुख बातें हुईं। जेनरल कमिटि आफ पब्लिक इंसट्रकसन, सन् १८४२ई० में 'कौंसिल आफ एजुकेशन' के रूप में परिवर्तित हो गयी। सन् १८४४ ई० में एक सरकारी घोषणा के द्वारा यह प्रकट किया गया कि शिक्षित भारतीयों के प्रोत्साहन के लिए उन्हें सरकारी नौकरियाँ दी जायंगी।

सन् १८५४ ई० में 'कौंसिल आफ एजुकेशन' के द्वारा बंगाल में १५१ विद्यालय थे, जिनमें १३,१६३ विद्यार्थी थे। इन विद्यालयों पर सरकारी कोष से ५,६४,४२८ रुपये खर्च किए जाते थे। इनमें ५ एंग्लो-वर्नाकुलार कालेज तथा जिला स्कूल सम्मलित थे। जन शिक्षा के लिए सरकारी प्रयत्न नगण्य था। देशी प्राथमिक स्कूलों की संख्याएं ३३ थीं, जिनमें १४०० छात्र शिक्षित होते थे। इन स्कूलों की अवस्था शोचनीय थी।

बम्बई:—

(सन १८१८ ई० में पेशवा-राज्य का अन्त हो गया। लगभग ५ लाख रुपये वह ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में दिया करता था। अंग्रेजी सरकार ने मराठा राज्य का यह खर्च बन्द कर दिया और इसके कुछ अंश को संस्कृत की शिक्षा में व्यय करने का निश्चय किया। फलस्वरूप, सन १८२१ ई० में पूना संकृत कालेज की स्थापना हुई। सौभाग्य से इस समय बम्बई प्रान्त के गवर्नर श्री मौंटस्टूआर्ट एलफिन्स्टन (Mountstuart Elphinstone) थे उनमें भारतीयों में शिक्षा प्रचार की बड़ी लगन थी। उन्हीं की प्रेरणा से सन १८२३ ईस्वी में देश-वासियों में नये ज्ञान के प्रचार के लिये, 'बम्बई नेटिव एजुकेशन सोसाइटी' (Bombay Native Education Society) नामक संस्था स्थापित हुई। सन १८२३ से सन १८४६ ईस्वी तक इस समिति ने बम्बई में शिक्षा के प्रचार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया।) समिति को कम्पनी की संचालक समिति ने कुछ वार्षिक अनुदान भी स्वीकृत किया। समिति के शिक्षा-सम्बन्धी प्रमुख कार्य ये थे :—

जिला :—समिति ने बम्बई, थाना, पनवेल तथा पूना में एक एक जिला स्कूल संस्थापित किया। ये सभी स्कूल पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा

अंग्रेजी की शिक्षा की ओर सरकारी तथा गैरसरकारी चेष्टाएँ क्रियाशील थीं।

सन् १८४० ई० में बम्बई सरकार ने अपने प्रान्त में देशवासियों की शिक्षा के संचालन तथा प्रबन्ध के लिए एक शिक्षा बोर्ड (Board of Education) संस्थापित किया। इस बोर्ड में उपरोक्त, बम्बई देशवासी शिक्षा-समिति भी सम्मिलित कर दी गई। बोर्ड के ७ सदस्य थे, जिनमें ३ सदस्य बम्बई देशवासी शिक्षा समिति के द्वारा मनोनीत हुए थे। शिक्षा बोर्ड ने सन् १८४५ ई० में समूचे प्रान्त को तीन भागों में विभाजित किया तथा प्रत्येक भाग की शिक्षा की देख-भाल के लिए एक यूरोपीय इन्सपेक्टर तथा एक भारतीय सहायक इन्सपेक्टर नियुक्त किया। बोर्ड ने अपने अधीनस्थ सभी प्रकार के स्कूलों के लिए उपयुक्त नियम बनाए। बोर्ड ने यह निश्चय किया कि जिस गाँव की आबादी २ हजार की हो, वहाँ एक प्राथमिक स्कूल स्थापित किया जाय। किन्तु प्राथमिक स्कूल के संस्थापन के लिए यह आवश्यक था कि स्थानीय जनता स्कूल का मकान स्वयं आयोजित करती तथा प्रति छात्र एक आना मासिक शुल्क देने का वचन देती। बोर्ड ने सन् १८५३ ई० तक शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य किये।

सन् १८५१ ई० में पूना संस्कृत कालेज स्थानीय पूना इंग्लिस स्कूल से संबद्ध कर दिया गया। इस सम्मिलित संस्था का नाम पूना कालेज पड़ा। आगे चल कर यही कालेज डेक्कन कालेज (Deccan College) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बोर्ड ने प्रत्येक जिला में अंगरेजी जिला स्कूल तथा देहाती क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूल के विस्तार का कार्य जारी रखा।

प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए बोर्ड ने बम्बई-स्थित उपरोक्त 'एलफिन्सटन' इन्सटीट्यूशन में प्रशिक्षण की व्यवस्था की।

सन् १८५४ ई० में बोर्ड के द्वारा २१६ देशी भाषा के स्कूल संचालित थे। इन स्कूलों में १२ हजार से अधिक ही छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। बोर्ड द्वारा नियुक्त निरीक्षकों में एक भारतीय, श्री महागोबिन्द शास्त्री भी थे। देशी स्कूलों के प्रबन्ध तथा शिक्षण दोनों ही अच्छी अवस्था में थे। सन् १८५४ के सन्देशपत्र ने बम्बई सरकार की उपरोक्त शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टाओं की सराहना की और देशी स्कूलों की निगरानी तथा प्रोत्साहन की सिफारिशें कीं।

बम्बई प्रान्त में देशी स्कूलों के सम्बन्ध में सरकार की क्या नीति होनी चाहिए थी—इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण विवाद उठ खड़ाहुआ। स्थानीय गवर्नर श्री मौंटस्टुआर्ट एलफिन्स्टन के विचार में सरकार की अधिकांश चेष्टाएँ देशी स्कूलों के प्रोत्साहन की ओर अभिप्रेत रहनी चाहिए थी। सन् १८३३ ई० में उपरोक्त, बम्बई देशवासी शिक्षा समिति ने अनुदान के लिए सरकार के पास दर्ख़ास्त की। इस दर्ख़ास्त की सिफारिश के रूप में एलफिन्स्टन ने अपना सन् १६३४ का सुप्रसिद्ध प्रस्ताव-पत्र उपस्थित किया। इस प्रस्ताव-पत्र में एल-फिन्स्टन ने भारतीय स्कूलों के सम्बन्ध में निम्नलिखित ७ सिफारिशें कीं।

१—देशी स्कूलों की संख्या बढ़ायी जाय। इन स्कूलों के शिक्षण में पूरा सुधार किया जाय।

२—देशी स्कूलों में पाठ्य-पुस्तकों का प्रबन्ध किया जाय।

३—देशी स्कूलों से लाभ उठाने के लिए देश की निम्न श्रेणी के लोग प्रोत्साहित किये जायँ।

४—यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के लिए सरकार द्वारा उच्च स्कूल स्थापित किये जायं।

५—देशी भाषाओं में दर्शन तथा विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित की जायँ।

६—अंगरेजी साहित्य तथा यूरोपीय अन्वेषणों के अध्ययन के इच्छुक भारतीय छात्रों के लिए अंगरेजी स्कूल स्थापित किए जायँ।

७—भारतीयों को उच्च ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन दिया जाय।

एलफिन्स्टन के इन सिफारिशों से यह स्पष्ट है कि वह मातृभाषा के माध्यम से भारत में जन-शिक्षा के प्रचार के पक्ष में था। उसकी सिफारिशों में देशी स्कूलों की समुन्नति प्रथम स्थान रखती थी। उच्च स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम के उपयोग के विरुद्ध वह न था।

These results are very creditable to the Province of Bombay and we trust that each Govt. school will now be made a centre from which the schools of the adjecent districts may be encouraged.

किन्तु उसका निश्चित विचार था कि अंग्रेजी माध्यम भारतीय छात्रों को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता था। अत: उसकी सम्मति में अंग्रेजी की शिक्षा साहित्य के रूप में दी जानी चाहिए थी। इसके लिए बम्बई में एक विशेप स्कूल खोलने की आवश्यकता थी। इस स्कूल में अंग्रेजी माध्यम के द्वारा इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान की शिक्षा भी दी जा सकती थी। अंग्रेजी की ओर भारतीयों को आकृष्ट करने की यही सुगम रीति थी। *

दुर्भाग्यवश, एलफिन्स्टन के विचार उसकी कौंसिल में स्वीकृत न हो सके। इस कौंसिल के वार्डेन (Warden) नामक एक सदस्य ने इन प्रस्तावों का घोर विरोध किया। वार्डेन निस्यन्द सिद्धान्त के प्रवर्त्तकों में एक था। अत: उसने एलफिन्स्टन के जन-शिक्षा के प्रस्ताव की कड़ी आलोचना की। उसके विचार में सरकारी चेष्टाएँ अंगेजी माध्यम से कुछ लोगों को पूर्ण शिक्षित बनाने की ओर ही संलग्न रहनी चाहिए थी। कौंसिल के इस मतभेद के कारण एलफिन्स्टन की सभी सिफारिशें संचालक समिति के द्वारा स्वीकृत न हो सकीं। बम्बई देशवासी शिक्षा समिति के संस्थापन की स्वीकृति उसने दी। समिति को ६००) रूपये वार्षिक अनुदान स्वीकृत हुए तथा इसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के खर्च भी स्वीकृत किये गये। इस तरह वार्डेन द्वारा प्रतिपादित निस्यन्द सिद्धान्त के कारण बम्बई प्रान्त में जन-शिक्षा की एक सुन्दर योजना कुंठित हो गई।

बंगाल की तरह बम्बई में भी शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में एक जबर्दस्त विवाद उठ खड़ा हुआ। लगभग ६ वर्षों (१८४३-१८४६) तक बम्बई प्रान्त के शिक्षा का इतिहास इस विवाद से आक्रान्त रहा। किन्तु, इस विवाद का विषय अंगेजी बनाम संस्कृत तथा फारसी न था, बल्कि यहाँ विवाद का विषय था अंगेजी बनाम स्थानीय भाषाएं। इस तरह व्यावहारिक दृष्टि से बम्बई प्रान्त का माध्यम-सम्बन्धी संघर्ष बंगाल के संघर्ष की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। वस्तुत:

---

* The first step towards creating such a desire could be to establish a school at Bombay where English might be taught classically, and where instruction might be given in that language on history, geography, and popular branches of the sciences. But the object of giving a good deal of knowledge to a few can only by promoted by a better system of Education and the method of diffusing a better system is by making the study of English language.

शिक्षा के माध्यम के लिए संस्कृत तथा अरबी-फारसी उतना ही अनुपयुक्त थीं, जितना अंग्रेजी। यदि अंग्रेजी दल के लोग एक विदेशी भाषा का प्रतिष्ठापन करना चाहते थे, तो प्राच्यवादी ऐसी भाषाओं का समर्थन करना चाहते थे जिनका व्यावहारिक मूल्य अत्यन्त सीमित था। किन्तु बम्बई में अंग्रेजी का प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन भाषाएं नहीं, अपितु प्रचलित देशी भाषाएं (मातृभाषाएं) थीं जो कि शिक्षा के माध्यम के लिए सब से अधिक उपयुक्त थीं।

बम्बई का माध्यम-सम्बन्धी संघर्ष बंगाल से लगभग १० वर्ष पश्चात् शुरु हुआ। सन् १८४३ ई० में प्रान्त के शिक्षा बोर्ड (Board of Education) के अध्यक्ष सर एर्स्किन पेरी (Sir Erskine Perry) हुए। अंग्रेजी के समर्थक होने के कारण उन्हों ने बोर्ड के समक्ष यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि बंगाल की भांति बम्बई में भी उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेजी ही हो। हम देख चुके हैं कि बम्बई में एलफिन्स्टन ने देशी भाषाओं को ही शिक्षा का माध्यम बनाया था। देशी भाषाओं के समर्थक स्वयं शिक्षा बोर्ड में भी मौजूद थे। अत: सर एर्स्किन के प्रस्ताव का जबर्दस्त विरोध हुआ। बोर्ड के तीन भारतीय सदस्यों के अतिरिक्त कर्नल जर्विस (Jervis) नामक यूरोपीय सदस्य भी देशी भाषाओं के पक्ष में ही था। कर्नल जर्विस ने अपने पक्ष की पुष्टि बड़े ही जोरदार तथा युक्तिसंगत शब्दों में की। संघर्ष दिनों दिन उग्रतर होता गया। समझौते का कोई लक्षण न देख कर बोर्ड ने सरकार के पास शिक्षा के माध्यम का प्रश्न पेश किया। ५ अप्रील १८४८ ई० को बम्बई सरकार ने देशी भाषाओं को ही शिक्षा के माध्यम के लिए उपयुक्त समझा और यह आदेश दिया कि इन माध्यमों के द्वारा ही शिक्षा प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। किन्तु सरकार ने यह मत भी प्रकट किया कि प्रचलित अंगरेजी शिक्षा-पद्धति भी जारी रखी जाय। † देशी भाषाओं की ओर विशेष आकृष्ट रहते हुए भी सरकारी आज्ञा अंगरेजी के पक्ष में थी। फलत: उनका

---

† The Governor in council is of opinion that the present system should be maintained in as efficient a state as possible... The chief and greatest exertions should, however, be directed to the promotion generally of education by means of Vernacular classes and schools.

Selections from Educational Records. Vol. II P.P. 19-20.

निर्णय कुछ ऐसा था, जिससे संघर्ष का पूर्ण निपटारा न हो सका और दोनों दल सरकारी आज्ञापत्र को, अपने पक्ष की ओर, तोड़-मरोड़ करने लगे। फलतः सरकारी निर्णय से देशी भाषाओं को वे सुविधाएं नहीं प्राप्त हो सकीं, जो कि इनके हितों के लिए आवश्यक थीं। देशी भाषाओं के दुर्भाग्य से बंगाल सरकार का रुख इनके प्रति अच्छा न था। उस समय बम्बई सरकार को, सभी नये खर्चों की स्वीकृति, बंगाल की केन्द्रीय सरकार से लेनी पड़ती थी। केन्द्रीय सरकार देशी स्कूलों के निमित्त सभी नयी आर्थिक मांगों को अस्वीकृत करती गई। साथ ही उसने यह भी सम्मति प्रकट की कि देशी स्कूलों की अपेक्षा बम्बई सरकार की चेष्टाएं थोड़े सी अंगरेजी स्कूलों के विकास की ओर ही केन्द्रित किए जायं। इस तरह बम्बई प्रान्त में स्थानीय अनिश्चितता तथा केन्द्रीय शासन के हस्तक्षेप ने देशी भाषाओं के विकास की गतिविधि अवरुद्ध कर दी। † देशी भाषा के समर्थकों के प्रयास से केवल इतना हुआ कि, माध्यमिक शिक्षा तक, शिक्षा के माध्यम देशी भाषाएं ही रहीं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंगरेजी ने अपना प्रभुत्व जमा ही लिया। जैसा कि हम आगे देखेंगे, सन् १८५४ ई० के संदेशपत्र ने भी यही स्थिति स्वीकृत की।

मद्रास—१८२२ ई० में मुनरो (Munro) ने देशी शिक्षा की अवस्था की जाँच की। जाँच में यह अवस्था अत्यन्त शोचनीय दिखलाई पड़ी। मुनरो के मतानुसार देशी शिक्षालयों की दुरावस्था के दो मुख्य कारण थे—सरकारी प्रोत्साहन की कमी तथा जनता की गरीबी। अतः १० मार्च १८२६ ई० को उसने एक प्रस्ताव-पत्र तैयार किया जो एलफिन्स्टन के प्रस्तावों से मिलती-जुलती थी। इस प्रस्ताव-पत्र में मुनरो ने देशी स्कूलों के द्वारा जन-शिक्षा के प्रचार की सिफारिश की। देशी स्कूलों को सबल बनाने के लिए मुनरो ने इन स्कूलों में सुयोग्य शिक्षक की नियुक्ति की सम्मति दी।

उपयुक्त शिक्षक तैयार करने के निमित्त मुनरो ने जिला तथा तहसील में विशिष्ट स्कूल खोलने का परामर्श दिया। प्रत्येक जिले में दो ऐसे विशिष्ट स्कूल स्थापित होने चाहिए थे—एक हिन्दुओं के लिए और एक मुसलमानों के लिए। प्रत्येक तहसील या तालुकों में केवल एक ही ऐसा स्कूल खुलना चाहिए था। इन स्कूलों में सरकार को ५०,०००) पच्चास हजार रुपये खर्च लगते। मुनरो के ये सभी प्रस्ताव संचालक

समिति के द्वारा सन् १८२८ ई० में स्वीकृत कर लिए गये। किन्तु, दुर्भाग्यवश, इस स्वीकृत के पहले ही मुनरो की मृत्यु सन् १८२७ ई० में हो गयी। मुनरो के उत्तराधिकारियों में उसकी योजना में न रूचि थी, न इसे समझने की क्षमता। फलतः उसकी योजना, संचालक-समिति के द्वारा स्वीकृत होने पर भी, अच्छी तरह कार्यान्वित नहीं की गयी। सन् १८३० ई० तक केवल ७० तहसीलदारी स्कूल खोले गये थे। जन शिक्षा के दुर्भाग्य से संचालक-समिति ने भी अपना पहला निश्चय त्याग दिया। सितम्बर १८३० ई० में समिति ने यह आदेश जारी किया कि मद्रास सरकार, जन-शिक्षा के प्रसार की अपेक्षा, अंगरेजी शिक्षा के प्रसार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करे। संचालक-समिति के इस आदेश के समक्ष मुनरो की योजना विकसित न होने पायी। इसके द्वारा स्थापित स्कूल किसी तरह कुछ दिनों तक चलते रहे। किन्तु, सन् १८३६ ई० में इनका भी अस्तित्व मिट गया। इसी वर्ष बंगाल की केन्द्रीय सरकार ने जिले तथा तहसीलदारी स्कूलों की वृत्तियाँ बन्द कर देने की सिफारिश की। इन स्कूलों के स्थान में मद्रास में एक अंगरेजी कालेज तथा प्रांत के कुछ प्रमुख जगहों में अंगरेजी स्कूलों के खोलने का आदेश दिया गया।

सन् १८३६ ई० के बाद मद्रास प्रान्त में शिक्षा-संबन्धी विशेष उल्लेखनीय कार्य न हुआ। सन् १८४१ ई० में मद्रास में एक अंगरेजी उच्च स्कूल स्थापित हुआ, जो उस समय विश्वविद्यालय(University) कहा जाता था। सन् १८५३ ई० में इसी विश्वविद्यालय में एक स्कूल विभाग खोला गया।

प्रान्त में शिक्षा-प्रसार के लिए सरकार के द्वारा ५० हजार रुपये स्वीकृत थे। किन्तु यह रकम भी पूरी खर्च नहीं हो पाती थी। प्रति वर्ष काफी रुपये बच जाते थे। सन् १८५३ ई० तक शिक्षा की मद में मद्रास में ३ लाख रुपये बचे हुए थे।

उत्तर-पच्छिम प्रदेश—सन् १८४३ ईस्वी में उत्तर-पच्छिमी सीमा प्रान्त की शिक्षा-संस्थाओं को बंगाल के प्रभुत्व से मुक्ति मिली। इस समय प्रांत में तीन कालेज थे जो कि आगरा, बम्बई तथा दिल्ली में अवस्थित थे। इनके अतिरिक्त कई एंग्लो-वर्नाकुलर स्कूल (Anglo-vernacular school) भी सरकार के द्वारा संचालित थे। इस समय

उत्तर-प्रदेश का गवर्नर थोमसन (Thomson) था। थोमसन देशी स्कूलों के द्वारा जन-शिक्षा के प्रसार के प्रबल समर्थक था। इसने अपने प्रान्त की शिक्षा के लिए एक सुव्यवस्थित योजना उपस्थित की, जिसके तीन आधार-स्तंभ थे।

(१) भारतीय शिक्षा पद्धति में देशी स्कूलों का सन्निवेश हो।
(२) शिक्षा के लिए एक स्थानीय कर लगाया जाय।
(३) प्रान्त में एक शिक्षा विभाग स्थापित किया जाय।

थोमसन की यह योजना भारतीय शिक्षा के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है। थोमसन देशी स्कूलों को ही भारतीय शिक्षा की रीढ़ मानता था। सन् १८४५ ईस्वी में जिला अफसरों को उसने एक आदेश पत्र भेजा, जिसमें देशी स्कूलों के पुनर्गठन तथा इनके प्रसार का आदेश दिया। इस आदेशपत्र में थोमसन ने यह विचार प्रकट किया कि भारतीय शिक्षा के साधन देशी स्कूलों के रूप में पहले ही से सारे प्रान्त में बिखरे पड़े थे। सरकारी अफसरों का कर्त्तव्य केवल यह था कि वे इन साधनों को सबल तथा समृद्ध बनावें।* सौभाग्यवश थोमसन को गवर्नर-जेनरल तथा संचालक-समिति का समर्थन भी प्राप्त हुआ। उस समय तक निस्यन्द सिद्धान्त की अव्यवहारिकता सिद्ध होने लग गयी थी। संयोगवश, तत्कालीन गवर्नर-जेनरल डलहौजी को भारतीय संथाओं के प्रति आस्था थी। अतः थोमसन की योजना को अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हुई। यह योजना संचालक समिति के द्वारा भी प्रशंसित हुई। इस तरह अंग्रेज शासकों ने सर्वप्रथम देशी स्कूलों के विकास को सरकारी शिक्षा पद्धति का अंग माना।

थोमसन की दूसरी सिफारिश प्राथमिक स्कूलों के खर्च के लिए स्थानीय कर लगाने की थी। वस्तुतः सन् १८५१ ई० में ही उसने यह कर लगाना शुरु कर दिया था। इसके लिए कानून बनाने की अपेक्षा, उसने प्रत्येक जागीरदार को, अपनी भूमि कर का १/२ प्रतिशत

*That the means for educating the people were at hand in the indigenous schools which are scattered over the face of the country. Their number may not at present be large and the instruction conveyed in them is known to be rude and elementry, but these numbers may be increased and the instruction conveyed in them may be inproved.

Thomson—quoted in Nurullah & Naik. , P 127.

शिक्षा-कर के रूप में देने के लिए, राज़ी कराया। बाद में उसने संचालक समिति से यही रकम सरकार की ओर से देने की स्वीकृति प्राप्त की। इस तरह स्कूलों के लिए स्थानीय कर तथा सरकारी अनुदान—दोनों ही रीतियों का प्रतिष्ठापक थोमसन था। स्मरण रहना चाहिए कि स्थानीय शिक्षा के लिए स्थानीय कर की प्रथा उस समय तक इंग्लैंड में भी अनजानी थी। यह स्थानीय कर ग्रामीण स्कूलों के संस्थापन तथा संचालन पर ही खर्च होना था। ये ग्रामीण स्कूल हलकाबन्दी स्कूल के नाम से प्रसिद्ध थे। हलकाबन्दी अथवा सर्किल स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा-प्रसार के बहुत ही उपयोगी साधन थे। हलकाबन्दी योजना के अनुसार सन्निकट के कुछ गाँव, एक हलका अथवा सर्किल के रूप में, संयोजित किए जाते थे। इस ग्राम-समूह के किसी भी केन्द्रस्थ स्थान में एक प्राथमिक स्कूल खोला जाता था। केन्द्रस्थ स्थान चुनने में इस बात पर ध्यान दिया जाता था कि वह स्थान हल्का के किसी स्थान से २ मील से अधिक दूर न हो।

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में थोमसन की तीसरी देन एक सुव्यवस्थित शिक्षा विभाग का संगठन थी। देशी स्कूलों के निरीक्षण तथा सुधार के निमित्त थोमसन ने सन् १८५० ई० में अपने प्रान्त के ८ जिलों में एक योजना चालू की। योजना के दो पहलू थे—

(क) सरकारी प्राथमिक स्कूलों का संस्थापन।

(ख) सरकारी तथा गैरसरकारी-सभी-स्कूलों का निरीक्षण।

पहले के अनुसार तहसील के केन्द्र (Headquarters) में एक सरकारी ग्राम स्कूल खोला जाता था। यह स्कूल एक सुयोग्य शिक्षक के द्वारा संचालित रहता था, जिसे १० से १२ रुपये प्रतिमास वेतन मिलता था। वेतन के अतिरिक्त शिक्षक छात्रों से शुल्क भी ले सकता था। स्कूल के पाठ्य-विषयों में हिन्दी और उर्दू का पढ़ना-लिखना तथा देशी हिसाब प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त स्थानीय जनता के इच्छानुसार मातृभाषा के माध्यम से इतिहास, भूगोल, ज्यामिति आदि पढ़ायी जा सकती थीं। ये सरकारी स्कूल किसी भी रूप में देशी स्कूलों के प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकते थे। इन स्कूलों में भरती की शर्तें देशी स्कूलों की अपेक्षा कड़ी रखी जाती थीं। निःशुल्क भरती उन्हीं छात्रों की हो सकती थी, जो कि देशी स्कलों के शिक्षकों के द्वारा अधिस्तावित होते थे।

स्कूलों के निरक्षण के लिए प्रत्येक दो-तीन तहसीलों पर एक परगना निरीक्षक नियुक्त था। इन परगना निरीक्षकों के ऊपर प्रत्येक जिला में एक जिला निरीक्षक रहता था। जिला निरीक्षकों के ऊपर निरीक्षक प्रधान (Visitor General) रहता था। निरीक्षण विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी यही था। परगना निरीक्षकों का वेतन २० से ४० रुपये प्रति मास था, तथा जिला निरीक्षकों का १०० से २०० रुपये प्रतिमास। परगना निरीक्षकों का यह कर्त्तव्य था कि वे सभी शहरों तथा प्रमुख गाँवों का दौरा करते थे तथा यह देखते थे कि इन स्थानों में शिक्षा के साधन उपलब्ध थे या नहीं। जिस गाँव में स्कूल न होता था, वहाँ की जनता को वे शिक्षा की उपयोगिता समझाते हुए स्कूल खोलने का अनुरोध करते थे, सुयोग्य शिक्षक ढूंढ़ते थे, तथा पुस्तक आदि का आयोजन करते थे। जिस स्थान में स्कूल चालू होता था उस स्कूल के पाठ्यक्रम, छात्र-संख्या आदि की वे जाँच करते थे तथा शिक्षक को, यथासम्भव, विभिन्न रूपों में सहायता करने की चेष्टा करते थे। यदि शिक्षक उनकी सहायता प्राप्त करता तो उसका स्कूल सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलों की सूची में दर्ज कर लिया जाता था।

जिला निरीक्षकों को परगना निरीक्षकों के कार्यों की निगरानी रखनी थी। उन्हें तहसीलदारी स्कूलों की ओर विशेष ध्यान देना होता था। इन स्कूलों की सामयिक परीक्षाएं (Periodical examinations), छात्रों की प्रगति तथा क्षमता, शिक्षकों की योग्यता आदि के सम्बन्ध में भी उन्हें आवश्यक जाँच-पड़ताल करनी होती थी। जिला निरीक्षकों के जिम्मे ५००) रुपये जिला के छात्रों को पारितोषिक आदि के लिए प्रदत्त रहते थे। जिला निरीक्षक को अपने जिले की शिक्षा-सम्बन्धी प्रगति की एक रिपोर्ट तैयार करनी थी। इस रिपोर्ट में जिला की सभी संस्थाओं—सरकारी तथा गैर सरकारी—के बारे में पूर्ण विवरण उसे उपस्थित करना था। जिला निरीक्षक का यह भी कर्त्तव्य था कि वह अपने जिले में स्कूली किताबों के विवरण तथा विक्रय की व्यवस्था करे। किताबों की बिक्री पर उसे १० प्रतिशत कमीशन भी, पारिश्रमिक के रूप में, उपलब्ध रहता था।

प्रधान निरीक्षक (Visitor General) को प्रान्त के सभी निरीक्षकों के कार्य पर निगरानी रखनी थी। उनकी नियुक्ति आदि की व्यवस्था भी उसे ही करनी थी।

शिक्षा के मामलों में उसका सम्बन्ध सीधे प्रान्तीय सरकार से था। प्रति वर्ष, १ मई के पश्चात उसे अपने अन्तर्गत के सभी जिलों की शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में सरकार को एक वार्षिक रिपोर्ट पेश करनी होती थी।

इस तरह हम देखते हैं कि थोमसन की उपरोक्त व्यवस्था आधुनिक शिक्षा विभाग का पूर्व रूप था। सरकारी स्कूलों के संस्थापन तथा समस्त स्कूलों के निरीक्षण की व्यवस्था आज भी थोमसन की योजना का विकसित रूप है। स्वभावत: थोमसन की योजना तत्कालीन गवर्नर जेनरल डलहौजी को बड़ी आकर्षक दीख पड़ी। यह कहा जा चुका है कि यह योजना थोमसन के द्वारा, प्रयोग के रूप में, पश्चिमोत्तर प्रदेश के केवल ८ जिलों में ही कार्यान्वित थी। डलहौजी ने प्रान्त के शेष २३ जिलों में भी इसे लागू करने की अनुमति दी। साथ ही उसने बंगाल तथा बिहार में भी इसी योजना को व्यवहृत करने की सिफारिश की। १८५४ के संदेश-पत्र ने भी थोमसन की योजना की प्रशंसा की।*

पंजाब :—सन् १८४६ ई० में पंजाब प्रान्त का निर्माण हुआ। उस समय प्रान्त में विभिन्न प्रकार के देशी स्कूल क्रियाशील थे। हिन्दू, मुसलिम तथा सिक्ख—प्रान्त की इन तीन प्रमुख जातियों की शिक्षा तीन तरह के स्कूलों के द्वारा संचालित होती थी। मुसलिम तथा सिक्ख स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की प्रधानता थी। स्त्री शिक्षा का भी प्रचार था। बहुधा बालिकाओं की शिक्षा स्त्री शिक्षिकाओं के द्वारा ही सम्पन्न होती थी।

सन् १८४६ से १८५३ ई० तक सरकार की ओर से प्रान्त में शिक्षा सम्बन्धी विशेष कार्य न हुआ। सन् १८४६ ई० में अमृतसर में एक सरकारी अंगरेजी स्कूल स्थापित हुआ। इस स्कूल में हिन्दी, फारसी, अरबी तथा गुरुमुखी पढ़ाने के लिए भी अलग अलग प्रबन्ध था। अंगरेजी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या कुल छात्र संख्या की लगभग एक चौथाई थी। सन् १८५३ ई० तक इस प्रान्त में अन्य कोई स्कूल स्थापित न हुआ।

---

*We shall be prepared to sanction the gradual extension of some such system as this to the other districts of the Agra Presidency, and we have already referred to it as the model by which the efforts of other Presidencies for the same object should be guided. Despatch of 1854--Para 93.

स्त्री शिक्षा :-

सन १८१३-५३ की अवधि में, भारत में स्त्री शिक्षा के प्रति कम्पनी सरकार की नीति के सम्बन्ध में भी एक विवाद उठ खड़ा हुआ। सरकार के दकियानूसी अफसरों के विचार में स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करना सरकार के लिये उचित न था। यह प्रोत्साहन सरकार की धार्मिक तथा सामाजिक तटस्थता की नीति के विरुद्ध होता। यह भी सम्भावना थी कि इस दिशा में कम्पनी की कुछ भी चेष्टा एक भीषण हलचल उत्पन्न कर सकती थी। गवर्नर जेनरल की कौंसिल के एक सम्मानित सदस्य सर जे० एल० लिट्लर (Litler) की सम्मति इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। श्री बेथ्यून ने कुछ ही दिन पहले एक कन्या स्कूल स्थापित किया था। इस स्कूल को सरकारी प्रबन्ध में ले लेने का प्रस्ताव उन्होंने कौंसिल के समक्ष उपस्थित किया। श्री लिट्लर ने इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में सन १८५० ई० में यह लिखा कि "भारत में स्त्री शिक्षा अच्छी दृष्टि से नहीं देखी जाती; तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इससे सशंकित रहते हैं। क्या यह तटस्थता के सिद्धांत को आघात न पहुंचावेगा, जिसके प्रतिपालन के लिए सरकार प्रतिज्ञावद्ध है?"† श्री लिट्लर ने यह भय प्रकट किया कि स्त्री शिक्षा सम्बन्धी चेष्टाएँ भारतवासियों के हृदय में यह शंका उत्पन्न कर सकती थीं कि सरकार उनके धर्म-परिवर्तन की ओर अग्रसर हो रही थी।†

भारतीय स्त्रियों के सौभाग्य से तत्कालीन गवर्नर-जेनरल लार्ड डलहौजी के विचार लिट्लर के विचार के ठीक उल्टे थे। लार्ड विलियम बेंटिक ने सती-प्रथा के उन्मूलन से सामाजिक सुधार में एक दृढ़ कदम उठाया था। डलहौजी ने, उसी दृढ़ता के साथ, स्त्री शिक्षा की ओर अपना निश्चय दिया।‡

"गवर्नर-जेनरल का यह विचार है कि भारतीय कन्याओं में शिक्षा-प्रचार से बढ़कर अन्य कोई सुधार भारतवासियों के लिए अधिक हितकर नहीं सिद्ध होगा।"

---

†The scheme of Female Education is doubtless unpopular, and looked upon by the mass, with fear and dread, whether Hindus or Mahomedans. Will it not involve a dereli ction of the principle of neutrality to which the government is pledged in like cases ?

‡It appears to me also that suspicious, ill-disposed natives may consider it subservient in some degree to the views of Proselytism.

Selections from Educational Records: 11 P. 57

गवर्नर-जेनरल का यह विचार है कि भारत में एक सुव्यवस्थित स्त्री शिक्षा की नींव पड़ चुकी है और सरकार को इसे निस्संकोच अपनी हार्दिक सहायता देनी चाहिये ।"

"गवर्नर जेनरल-इन-कौंसिल का यह आदेश है कि अब से 'कौंसिल ऑफ एजुकेशन' देशी स्त्री शिक्षा की देखभाल अपना एक कर्त्तव्य समझे। जहाँ कहीं देशवासी कन्या स्कूल खोलने के इच्छुक हों 'कौंसिल ऑफ एजुकेशन' का यह कर्त्तव्य होगा कि वह उनकी यथासम्भव सहायता करे और उनकी योजना को सब तरह से आगे बढ़ावे। ......गवर्नर जेनरल-इन-कौंसिल की यह इच्छा है कि देहाती क्षेत्रों के प्रमुख अफसरों को इसी आशय के आज्ञा पत्र द्वारा किये जायं। उनका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया जाय कि भारतीय कन्या स्कूल खोलने के लिए उत्सुक हो चुके हैं, और उनका यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसे स्कूलों को पूर्ण प्रोत्साहन दें तथा लोगों को ज्ञात करा दें कि सरकार ऐसे स्कूलों को प्रशंसा-पात्र समझती है।"†

व्यावसायिक शिक्षा :—

सन् १८१३-५३ की अवधि में व्यावसायिक शिक्षा की दिशा में भी कुछ कार्य हुए। किंतु इस काल में व्यावसायिक शिक्षा की प्रेरणा जनहित के कार्य से प्रादुर्भूत न हुई। बल्कि इसकी प्रेरणा सरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में आविर्भूत हुई। सेना के लिए सुशिक्षित डाक्टरों की आवश्यकता थी। "पब्लिक वर्क्स" विभाग के लिए सुशिक्षित इन्जिनियर तथा सरवेयर की आवश्यकता थी। कानून

---

† It is the opinion of the Governor-General in Council that no single change in the habits of the people is likely to lead to more important and benificial consequences than the introduction of education for their female children.

The Governor-General in Council considers that a great work has been done in the first succeseful introduction of Native female education in India on a sound and solid foundation, and that the Covt. ought to give to it its frank and cordial support.

The Governor-General in Council requests that the Council of Educations may be informed that it is henceforward to consider its functions as comprising the superintendence of native female education, and that wherever any disposition is shown by the natives to establish female schools it will be its duty to give them all possible encouragement.

Selections from Educational Records Vol II. P. 59-60.

जानने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता सरकार के द्वारा संगठित नए न्यायालयों के लिए थी। इस तरह व्यावसायिक शिक्षा की प्रेरणा सांस्कृतिक शिक्षा की प्रेरणा सर्वथा भिन्न थी। जैसाकि हम देख चुके हैं, सामान्य शिक्षा की प्रेरणा पाश्चात्य ज्ञान के सांस्कृतिक महत्व की भावना से प्रस्फुटित हुई थी। किन्तु व्यावसायिक शिक्षा, नितान्त: सरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में ही, विकसित हुई।

यावसायिक शिक्षा की कुछ प्रारम्भिक चेष्टाएँ निम्नलिलिखत हैं।

चिकित्सा शिक्षाः—सन १८२२ ईसवी में कलकत्ता में एक देशी चिकित्सा विद्यालय (Native Medical Institution) स्थापित किया गया। सन् १८२० ईसवी में बनारस संस्कृत कालेज तथा कलकत्ता मदरसा में चिकित्सा विभाग खोला गया। सम्भवत: इन संस्थाओं में आयुर्वेदी तथा युनानी पद्धति पर ही शिक्षा दी जाती थी। युरोपीय पद्धति का भी कुछ समिश्रण होता था। सन् १८५३ ईसवी में यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि चिकित्सा शिक्षा के विषय क्या हों? पाश्चात्य युरोपीय चिकित्सा-विज्ञान अथवा देशी चिकित्सा-विज्ञान? कुछ वाद-विवाद के पश्चात यही निश्चय हुआ कि सामान्य शिक्षा की तरह चिकित्सा के पाठ्य-विषय एंव प्रशिक्षण-प्रणाली युरोपीय विज्ञान एंव युरोपीय पद्धति पर ही आधारित रहें। इस निश्चय के अनुसार उपरोक्त देशी चिकित्सा-विद्यालय तथा कलकत्ता संस्कृत कालेज एंव कलकत्ता मदरसा के चिकित्सा-विभाग बन्द कर दिए गए; और जून १८३५ ई० में पाश्चात्य पद्धित पर कलकत्ता मेडिकल कालेज की स्थापना हुई। सन १८४४ ई० में इस कालेज के ४ विद्यार्थी चिकित्सा शास्त्र के विशिष्ट अध्ययन के लिये यूरोप भेजे गये। सन १८३५ ईसवी में मद्रास में एक चिकित्सा स्कूल (Medical School) खोला गया। इस स्कूल में यूरोपीय तथा भारतीय दोनों ही छात्र शिक्षित होते थे। पाठ्य-विषय यूरोपीय चिकित्सा विज्ञान से संबंधित था। शिक्षा का माध्यम अंगरेजी था। सन १८५१ ईसवी में यह स्कूल कालेज के रूप में परिवर्तित हो गया।

सन् १८४५ ई० में दिवंगत स्थानीय गवर्नर सर राबर्ट ग्रांट की स्मृति में बम्बई में ग्रांट मेडिकल कालेज की स्थापना हुई। सन १८४५ ई० में यह कालेज लन्दन के "रायल कालेज आफ सर्जन्स" के द्वारा संवद्ध (affiliated) किया गया।

सामान्य शिक्षा की भाँति व्यवसायिक शिक्षा भी देशी-विज्ञान की शिक्षा से ही आरम्भ हुई, किन्तु आगे चलकर यह शिक्षा भी यूरोपीय विज्ञान से सम्बन्धित हो गयी। शिक्षा का माध्यम भी अंगरेजी ही हो गया।

यूरोपीय पद्धति के प्रतिष्ठापन से चिकित्सा शिक्षा में कुछ दिनों तक एक विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी। यूरोपीय पद्धति में शरीर की चीर-फाड़ (dissection) अनिवार्य थी। कुलीन भारतीय विद्यार्थी इसके लिये प्रस्तुत न थे। काफी प्रयत्न के बाद एक भारतीय युवक मधुसूदन गुप्त ने पहली बार एक मृत शरीर में छूरी भोंकी।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मधुसूदन गुप्त की पहली शल्य-क्रिया चिकित्सा शिक्षा के इतिहास में एक क्रान्तिकारी घटना थी।† इस घटना ने उस परम्परा का उन्मूलन किया जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन में भारतीय छात्रों के मार्ग में एक जबर्दस्त रुकावट उत्पन्न कर रही थी। चिकित्सा शिक्षा की पाश्चात्य पद्धति के विरुद्ध भारतीय धारणा अब सर्वथा प्रतिकूल न रह सकी। फलतः चिकित्सा शिक्षा के विद्यालयों में भारतीय विद्यार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इन विद्यार्थियों ने यह शीघ्र प्रमाणित कर दिया कि वे आधुनिक विज्ञान के अध्ययन की यथेष्ट क्षमता रखते थे। सन् १८४३ ई० में गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल ने यह घोषित किया कि भारतीय विद्यार्थी किसी भी विज्ञान के अध्ययन में पूर्णतः समर्थ थे और थोड़े प्रयास से ही वे इन विषयों की ओर पूर्णतया आकृष्ट किये जा सकते थे।

इंजिनियरिंग—इंजिनियरिंग की शिक्षा चिकित्सा की शिक्षा से कुछ पीछे आरम्भ हुई। सन् १८४४ ई० में कलकत्ता की "कौंसिल आफ एजुकेशन" ने इंजिनियरिंग के शिक्षक का एक स्थान स्वीकृत किया। किन्तु उपयुक्त शिक्षक न मिलने के कारण यह स्थान रिक्त रहा। सन १८५४ ई० में कौंसिल ने कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेज के अन्तर्गत एक इन्जिनियरिंग स्कूल खोलने की सिफारिश की। लगभग इसी समय बंगाल के प्रधान इंजिनियर जनकार्य विभाग के सुधार के लिए एक

---

† Psychologically, this first dissection by Madhusudan Gupta is a revolutionary event in the history of medical education.
Nurrullah and Naik P. 159.

इंजिनियरिंग कालेज की स्थापना के लिए जोर दे रहे थे। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप कम्पनी की संचालक समिति ने एक इंजिनियरिंग कालेज खोलने की स्वीकृति दी और फलतः सन् १८५६ ई० में कलकत्ता में एक इंजिनियरिंग कालेज की स्थापना हुई।

बम्बई में इंजिनियरिंग की शिक्षा की ओर "नेटिव एजुकेशन सोसाइटी" का ध्यान काफी पहले आकृष्ट हो चुका था। सन् १८२४ ई० में ही उक्त सोसाइटी ने इंजिनियरिंग शिक्षा के निमित्त एक कक्षा खोलने का आयोजन किया था।

सन् १८४४ ई० में स्थानीय एलफिंस्टन कालेज में भी इंजिनियरिंग शिक्षा की एक कक्षा खोली गई। सन् १८५४ ई० में पूना में इंजिनियरिंग तथा यन्त्रशास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था की गई।

सन् १७९३ ई० में मद्रास में एक "सरवे स्कूल" खोला गया था। इसके अतिरिक्त सन् १८५७ तक इस प्रान्त में इंजिनियरिंग शिक्षा की कोई संस्था न थी।

उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में "रुड़की कालेज" का प्रादुर्भाव हो चुका था। सन् १८४५ ई० में यह कालेज सहारनपुर में, एक छोटी-सी इंजिनियरिंग कक्षा के रूप में, आविर्भूत हुआ। लेफ्टिनेण्ट गवर्नर जेनरल मि० थौमसन ने भी इस संस्था के विकास की ओर विशेष रुचि ली। सन् १८४७ ई० में यह कक्षा एक कालेज के रूप में परिवर्तित हो गया। सन् १८५३ ई० में थौमसन की मृत्यु के पश्चात यह कालेज उनके नाम पर थौमसन रुड़की इंजिनियरिंग कालेज के नाम से विख्यात हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कालेज की स्थापना भी सरकारी इंजिनियरों के प्रशिक्षण के उद्देश्य से ही हुई थी।

कानून की शिक्षा

कानून की शिक्षा का सूत्रपात बंगाल में बहुत पहले हो चुका था। हम देख चुके हैं कि कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज के संस्थापन का प्रधान उद्देश्य "मुसलिम तथा हिन्दू कानूनों के अध्ययन तथा संरक्षण ही था।" सन् १८४२ ईस्वी में हिन्दू विश्वविद्यालय, कलकत्ता में कानून के एक आचार्य का पद स्वीकृत किया गया। मद्रास में इसी तरह एक पद सन् १८५५ ईस्वी में स्वीकृत हुआ तथा इसी वर्ष बम्बई में भी एक पद स्वीकृत किया गया।

उपरोक्त व्यावसायिक संस्थाओं के अतिरिक्त मद्रास तथा बम्बई प्रान्तों में दो एक अन्य व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाएँ थीं, जो उल्लेखनीय हैं।

सन् १८४० ई० में मेजर मेटलैंड ने अस्त्र-संबंधी एक व्यावसायिक स्कूल खोला।

डाक्टर हन्टर ने मद्रास में औद्योगिक कला (Industrial Arts) का एक स्कूल खोला। इस संस्था की स्थापना के उद्देश्य "उपयोगी कारीगरी की शिक्षा के अतिरिक्त स्थानीय औद्योगिक संस्थाओं को उन्नत बनाने, स्थानीय साधनों को विकसित कर अनेक स्थानीय माँगों की पूर्ति करने, विदेशी वस्तुओं के स्थान पर देशी वस्तुओं के प्रसार करने आदि" थे।

ये दोनों संस्थाएँ १८५५ ईस्वी में मिला दी गईं तथा सरकार के प्रबन्ध में ले ली गईं।

सन् १८५३ ई० में सुप्रसिद्ध व्यवसायी जमशेत जी जीजी भाई ने बम्बई में कला तथा उद्योग के एक स्कूल के निर्माण के लिए एक लाख रुपये का अनुदान दिया। इसी अनुदान से सन् १८५६ ई० में बम्बई का सुप्रसिद्ध "जे० जे० आर्ट्स स्कूल" स्थापित हुआ।

गैरसरकारी चेष्टाएं
१८१३–५३ ई०

गत अध्याय में भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी चेष्टाओं का उल्लेख किया गया है। किन्तु इस अवधि में इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण गैर-सरकारी चेष्टाएं भी क्रियाशील थीं। इन चेष्टाओं का अध्ययन निम्नलिखित चार विभागों में किया जा सकता है।

(क) ईसाई धर्म-प्रचारकों की चेष्टाएं।
(ख) कम्पनी-सरकार के अफसरों की वैयक्तिक चेष्टाएं।
(ग) आधुनिक ढंग से शिक्षा-प्रसार की भारतीय चेष्टाएं।
(घ) पुरानी परिपाटी की देशी पाठशालाएं।

इन चार प्रकार की चेष्टाओं का एक संक्षिप्त परिचय नीचे उपस्थित किया जाता है।

धर्म-प्रचारकों की चेष्टायें सन् (१८१३-३३ ई०)

(क) हम देख चुके हैं कि सन् १८१३ के अधिकारपत्र ने भारत का द्वार ईसाई-धर्म प्रचारकों के लिए पूर्ण रूप से खोल दिया था। स्वभावतः इस वर्ष के बाद भारत में विदेशी ईसाई धर्म-प्रचारकों का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। पुराने धर्म-प्रचारक मण्डलों के अतिरिक्त, कई नए मण्डल भारत में प्रविष्ट हुए, जिनमें वैपटिस्ट मिसनरी सोसाइटी, लन्डन मिसनरी सोसाइटी, चर्च मिसनरी सोसाइटी, वेसलेयन मिसनरी सोसाइटी, स्कौच मिसनरी सोसाइटी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन मण्डलों ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में अपने-अपने कार्य प्रारम्भ किए। इन मण्डलों का प्रधान उद्देश्य धर्म-प्रचार था। किन्तु इन्हें अपने नये मतानुयायियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती थी। साथ ही इन्हें धर्म प्रचार के निमित सुशिक्षित भारतीय ईसाई प्रचारक भी तैयार करने थे। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन मण्डलों को भारत में शिक्षा-प्रसार की व्यवस्था भी करनी पड़ी। इनके शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टाएं केवल लड़कों की शिक्षा तक ही सीमित न थीं, लड़कियों की शिक्षा की ओर भी धर्म-प्रचारकों ने पूरा ध्यान दिया। धर्म-प्रचारक मण्डलों के द्वारा स्त्री-शिक्षा की निम्नलिखित रीतियाँ सामान्यतः व्यवहृत होती थीं।

(क) स्त्री-शिक्षा के निमित्त कन्या-पाठशालाओं के संस्थापन।

(ख) अनाथालयों के संस्थापन।

(ग) उच्च वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा के लिए उनके घरों में ही गृह-शिक्षा अथवा जनाना शिक्षा का आयोजन।

कन्या-स्कूलों के संस्थापन का कार्य बंगाल में सन् १८२० ई० में प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष कन्या स्कूलों के संस्थापन तथा उनके प्रोत्साहन के विचार से 'कलकत्ता जुवेनाइल सोसाइटी' (Culcutta Juvenile Society) आयोजित की गई। इस समिति के द्वारा कई कन्या स्कूल कलकत्ते में खोले गये। सन् १८२४ ई० में "लेडीज सोसाइटी फौर नेटिव फिमेल एजुकेशन" (Ladies Society for Native Female Education in Calcutta and its Vicinity) नाम की एक संस्था स्थापित हुई। इस संस्था के तत्वावधान में कलकत्ते में एक सेंट्रल कन्या स्कूल (Central Girl's School) स्थापित हुआ। स्त्री-शिक्षा के इतिहास में मिस कोक (पीछे मिसेज विलसन) का नाम उल्लेखनीय है। सन् १८२१ ई० में ये धर्म-प्रचार के निमित्त भारत आयी थीं।

इन्होंने अपना समस्त जीवन स्त्री-शिक्षा के प्रसार में उत्सर्ग कर दिया था। सन् १८२४ ई० में इनके तत्त्वावधान में २४ स्कूल संचालित थे, जिनमें औसतन ४०० छात्राएँ विद्याध्ययन करती थीं। आगे चलकर इन स्कूलों की संख्या ३० हो गयी तथा छात्राओं की संख्या ६००। संख्या-वृद्धि की अपेक्षा, स्कूल को समुन्नत बनाने की ओर अब विशेष ध्यान दिया जाने लगा। फलस्वरूप सन् १८२८ ई० में उपरोक्त सेंट्रल स्कूल की स्थापना हुई। इस स्कूल में ३२० छात्रायें भरती थीं, जो कि बाहर से आकर पढ़तीं थीं। इनके अतिरिक्त ७० ईसाई छात्रायें स्कूल के अहाते में ही रहती थीं। इस स्कूल में संभ्रान्त कुल की हिन्दू कन्याओं को घर से स्कूल लाने का विशेष प्रबन्ध किया गया था। इसके लिये दाइयाँ नियुक्त की गई थीं, जिन्हें प्रति कन्या १ पैसा पारिश्रमिक अथवा भत्ता मिलता था।

इन स्कूलों के अतिरिक्त लन्दन मिसनरी सोसाइटी के तत्त्वावधान में तीन स्कूल चल रहे थे।

बम्बई प्रान्त में सर्वप्रथम अमरीकी धर्म-प्रचारकों ने स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान दिया। सन् १८२४ ई० में उन्होंने एक कन्या स्कूल खोला। दो वर्ष में ही ऐसे स्कूलों की संख्या ६ हो गयी, जिनमें कुल मिलाकर ३४० लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। सन् १८२६ ई० में लड़कियों की संख्या ४०० हो गयी। सन् १८३१ ई० में अमरीकी धर्म-प्रचारकों ने दो कन्या स्कूल खोले। कुछ ही दिन बाद यहाँ एक और कन्या स्कूल खोला गया, जिसमें छात्राओं के आवास का भी प्रबन्ध था। सन् १८२६-३० ई० में विलसन दम्पति ने बम्बई में ६ स्कूल खोले, जिनमें २०० लड़कियाँ पढ़ती थीं। अमरीकी धर्म-प्रचारकों के अतिरिक्त चर्च मिशनरी सोसाइटी नाम के एक मण्डल ने सन् १८२६ ई० में एक कन्या स्कूल खोला। इस मण्डल के द्वारा थाना, बेसिन तथा नासिक में लड़के तथा लड़कियों के लिए कई स्कूल अलग-अलग खोले गये।

उपर्युक्त कन्या स्कूलों के संस्थापन के अतिरिक्त, धर्म-प्रचारकों ने अनाथालय भी संस्थापित किये, जिनमें अनाथ बच्चों को शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार के अनाथालय तीनों अंग्रेजी प्रान्तों में स्थापित हुए। गरीबी, बीमारी तथा सामाजिक बन्धन आदि के कारण अनाथालयों में अनाथ बच्चों की संखया उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सन् १८३२-३३ ई० के भीषण बाढ़, अकाल तथा महामारी के कारण बंगाल में बहुत से

लोग मर गये और बहुत से बच्चे निस्सहाय हो गये। मिसेज विलसन ने अनेक बच्चियों का उद्धार किया और उनके आवास, भोजन एवं शिक्षा के प्रबन्ध के लिये अनाथालय की स्थापना की। सन् १८३४ ई० में उत्तरी प्रान्तों में अकाल पड़ा जिसमें अनेक बच्चे निराश्रय हो गये। फलत: अनाथालयों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। सन् १६३६ ई० में इस अनाथालय में १०८ बच्चे थे।†

जनाना शिक्षा :—जनाना शिक्षा की पद्धति धर्म-प्रचारकों के द्वारा उच्च हिन्दू परिवार की महिलाओं से सान्निध्य प्राप्त करने के उद्देश्य से आविष्कृत हुई थी। इस पद्धति के अनुसार मण्डल की कोई धर्म प्रचारिका हिन्दू परिवारों में जाकर उनकी स्त्रियों को शिक्षा दिया करती थीं। यह पद्धति लगभग सभी प्रान्तों में व्यवहृत होती थी। किन्तु बंगाल में इसका प्रचलन अधिक था। प्रारम्भ में जनाना शिक्षा के कार्य में प्रचारकों को काफी कठिनाई उठानी पड़ी। जो लोग इस प्रकार की शिक्षा से लाभ उठाना चाहते थे, उन्हें शीघ्र ही सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ता था। फलत: किसी परिवार की जनाना शिक्षा शायद ही लगातार चलती थी। बहुधा असमय में ही लोग प्रचारिकाओं को अपने घर आने की अनुमति बन्द कर देते थे, जिससे शिक्षा का कार्य स्थगित अथवा बन्द हो जाया करता था। इन कठिनाइयों के होते हुए भी धर्म-प्रचारक मण्डल जनाना शिक्षा के कार्य में बड़ी तत्परता से लगे रहे, क्योंकि इसके द्वारा ही वे उच्च श्रेणी के लोगों से अपना सम्पर्क स्थापित कर सकते थे।

धर्म-प्रचारक और देशी भाषायें

धर्म-प्रचारकों ने देशी भाषाओं की ओर उदासीनता न दिखलाई। वे भली भांति जानते थे कि भारत के निम्न श्रेणी के लोग, जिनके बीच ही उनके धर्म प्रचार का कार्य सीमित था, अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा समझने में असमर्थ थे। अत: धर्म-प्रचारकों ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही अपना धर्म-प्रचार का कार्य शुरू किया। इस उद्देश्य से इन्होंने भारतीय भाषाओं का स्वयं अध्ययन किया, इन भाषाओं के कोष तैयार किये तथा इनमें बाइबुल के रूपान्तर किए। इन धर्म-प्रचारकों को भारतीय भाषाओं की न्यूनता अथवा अनुपयुक्तता

† Selection from Educational Record with. II. P. 42.

न दीख पड़ी। हम देख चुके हैं कि मेकाले ने भारतीय भाषाओंको गंवारू तथा अपर्याप्त माना था और यह निष्कर्ष निकाला था कि इन भाषाओं में किसी भी पाश्चात्य ज्ञान का रूपान्तर नहीं हो सकता। किन्तु धर्म-प्रचारकों ने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय भाषाओं में पाश्चात्य ज्ञान भलीभांति लिपिवद्ध किया जा सकता था। वस्तुत: भारतीय भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण का श्रेय इन्हीं धर्म-प्रचारकों को है।‡

धर्म प्रचारकों की चेष्टायें (सन् १८३३-५३ ई०)

हम कह चुके हैं कि सन् १८१३ ई० के अधिकारपत्र ने भारत का द्वार अंग्रेज धर्म-प्रचारक मण्डलों के लिये खोल दिया था। सन १८३३ ई० के अधिकार पत्र ने यह द्वार अन्य देश के ईसाई धर्म-प्रचारकों के लिये भी पूर्णत: खोल दिया। फलत: इसी वर्ष से भारत में अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य धर्म-प्रचारकों के प्रचार शुरू हुए। इन धर्म-प्रचारक मण्डलों में जर्मन तथा अमेरीकी धर्म-प्रचारक मण्डल प्रमुख थे। जर्मन मण्डलों में बैसेल मिशन सोसाइटी, प्रोटेस्टेन्ट लुथेरन मिशनरी सोसाइटी तथा "वीमेन्स असोसियेशन ऑफ एजुकेशन फौर फिमेल्स इन दि ओरियेन्ट" के नाम उल्लेखनीय हैं। बैशेल मिशन सोसाइटी ने दक्षिण भारत के कन्नाड़ा तथा मलयालम प्रदेशों में कई अड्डे कायम किये। अमेरीकी मण्डलों में अमेरिकन बैपटिस्ट यूनियन, अमेरिकन बोर्ड तथा "अमेरिकन प्रेसबिटेरियन मिशन बोर्ड नार्थ" प्रमुख थे। अमेरिकन बेपरिस्ट यूनियन का कार्य-क्षेत्र दक्षिण भारत में नेल्लौर तथा उत्तरी भारत में आसाम-स्थित सिवसागर, नोगाँग तथा गौहाटी था। अमेरिकन बोर्ड के द्वारा तामिल भाषी क्षेत्र में कई अड्डे खोले गये। मराठा प्रदेश के कई स्थानों में भी इस मण्डल के द्वारा कई अड्डे कायम हुए। प्रेसबिटेरियन मिशन ने उत्तर-पश्चिमी प्रदेश के कई स्थानों में कार्य प्रारम्भ किये। लुधियाना, सहारनपुर, इलाहाबाद, फतेहगढ़, मनीपुर उनके कार्य के प्रधान केन्द्र थे। पंजाब में भी इन्होंने लाहौर, रावलपिण्डी तथा अम्बाला में केन्द्र खोले। चर्च मिशनरी सोसाइटी नामक एक संस्था ने भी पंजाब के कई प्रमुख स्थानों—अमृतसर, कांगड़ा, मुल्तान तथा पेशावर—में धर्मप्रचार के

‡ the honour of having compiled the first school text-books in Indian languages goes to the missionaries.
Nurullah & Naik P. 106

निमित्त केन्द्र स्थापित किये। पंजाब के तत्कालीन गवर्नर की सहानुभूति के कारण इन धर्म-प्रचारक-मण्डलों को उस प्रान्त में अपने अड्डे कायम करने में काफी सुविधा मिली।

सन् १८३३-५३ के बीच में धर्म-प्रचारकों के द्वारा भारत में शिक्षा-सम्बन्धी जो कार्य हुए, उनकी प्रमुख विशेषताएँ ये थीं :—

(१) हम देख चुके हैं कि सन् १८३३ ई० के पहले तक धर्म-प्रचारकों की शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टाएं मातृभाषा के माध्यम से प्राथमिक स्कूलों के निर्माण की ओर केन्द्रित थीं। किन्तु सन् १८३३ ई० के बाद वे माध्यमिक स्कूलों तथा कालेजों की ओर अधिक ध्यान देने लगे। इनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। धर्म-प्रचारकों की इस नीति-परिवर्तन के दो प्रमुख कारण थे। धर्म-प्रचारकों के बीच यह धारणा जड़ जमा रही थी कि अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भारतीय छात्र स्वभावतः ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट होंगे और इसे अंगीकार करेंगे। दूसरा कारण यह था कि सन १८३३ ई० के बाद धर्म-प्रचारकों का विचार उच्च श्रेणी के हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन की ओर अधिक आकृष्ट होने लगा। उन्हें यह भली भाँति मालूम था कि उच्च श्रेणी के भारतीय विद्यार्थी अंग्रेजी सीखने के लिये इच्छुक रहते थे, क्योंकि इसके द्वारा वे सरकारी नौकरियों को प्राप्त कर सकते थे तथा प्रतिष्ठा एवं सम्मान के पात्र भी बन सकते थे। अतः ये विद्यार्थी धर्म प्रचारकों के द्वारा स्थापित स्कूलों में, कम से कम अंग्रेजी सीखने के निमित्त, अवश्य दाखिल होते। सभी मिशन स्कूलों में बाइबुल का अध्ययन अनिवार्य हो जाने के कारण, धर्म-प्रचारकों का यह समझना असंगत न था कि उनके माध्यमिक स्कूल धर्म-प्रचार के कार्यों में सफलीभूत हो सकते थे। उच्च श्रेणी के भारतीय विद्यार्थियों के पास पहुँचने का अन्य साधन इन धर्म-प्रचारकों के पास न था।

सन् १८३३-५३ की अवधि में धर्म-प्रचारकों के प्रति कम्पनी का रुख सामान्यतः बहुत अच्छा रहा। इसके दो कारण थे। सन् १८३३-५३ के बीच इंग्लैंड में सामाजिक सुधार की चर्चा जोर-शोर से चल रही थी। फलतः कम्पनी के उच्च कर्मचारी भी इस भावना से अनुप्राणित थे और भारत में सुधारवादी कार्य को प्रश्रय देना चाहते थे। दूसरी ओर सरकार की यह आशंका कि भारतीयों की धार्मिक बातों में हस्तक्षेप करने से उसे

खतरे में पड़ जाने का डर था—इस काल में काफी कम हो गयी थी। यह धारणा इस बात से दृढ़ हो गयी थी कि, लार्ड विलियम बेन्टिंक के सती-प्रथा के बन्द कर देने पर, विशेष हो-हल्ला न मचा, अपितु अनेक संभ्रान्त भारतवासियों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की थी। इसी तरह सरकार ने बड़े-बड़े मन्दिरों तथा धार्मिक मेलों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था, किन्तु इसके विरुद्ध भी कहीं से आपत्ति नहीं हुई। अत: उच्च सरकारी अधिकारी अब धर्म-प्रचारकों की सहायता में किसी तरह का खतरा नहीं देख पाते थे। इन दो बातों ने सन् १८३३-५३ के बीच सरकार तथा धर्म-प्रचारकों के पारस्परिक सम्बन्ध को स्निग्ध बना दिया।

सन् १८३३-५३ ई० के बीच जिन धर्म-प्रचारकों ने भारत में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य किये, उनमें रेभरेन्ड जे विलसन, रेभरेन्ड जौन एन्डरसन तथा अलेक्जेन्डर डफ के नाम उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी भारत में रेभरेन्ड विलसन ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के महत्त्वपूर्ण कार्य किये। बम्बई का विलसन हाई स्कूल तथा विलसन कालेज उन्हीं के नाम पर स्थापित हैं। रेभरेन्ड जौन एन्डरसन ने मद्रास में शिक्षा-प्रसार का कार्य किया। अलेक्जेन्डर डफ का कार्यक्षेत्र बंगाल था, जहाँ इन्होंने कई अँग्रेजी स्कूलों तथा कालेजों की स्थापना की और शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी नीति को अंग्रेजी के पक्ष में काफी प्रभावित किया। इन तीन धर्म-प्रचारकों ने शिक्षा-सम्बन्धी एक ही नीति व्यवहृत की। इस नीति के मुख्य शिलाधार, जैसे कि पहले कहा जा चुका है, दो थे। डफ तथा उनके सहकर्मियों के विचार में धर्म-प्रचारकों का लक्ष्य निम्न श्रेणी के हिन्दुओं को ईसाई बनाना न होना चाहिए था; बल्कि उनका प्रधान कार्य उच्च श्रेणी के हिन्दुओं को ही ईसाई धर्म में दीक्षित करना था। उनके विचार में ब्राह्मण तथा अन्य उच्च हिन्दुओं को ईसाई बनाकर हिन्दू धर्म के गढ़ को ही ध्वस्त करना उचित था। इस गढ़ के ध्वस्त होने के पश्चात् निम्न श्रेणी के हिन्दुओं को ईसाई बनाने का कार्य बिलकुल सरल हो जाता। डफ का दूसरा विचार यह था कि धर्म-प्रचारकों के द्वारा स्थापित स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा वैकल्पिक अथवा छिपे रूप में न दी जाय, बल्कि इसकी शिक्षा अनिवार्य और खुले आम कर दी जाय।

डफ तथा उनके साथियों का तीसरा विचार यह था कि भारत-

वासियों की शिक्षा का उपयुक्त माध्यम अंग्रेजी ही था। बंगला भाषा के सम्बन्ध में डफ की यह धारणा थी कि "चौसर के पहले की अंग्रेजी की भाँति, यह सर्वथा हीन भाषा थी, जिसमें कुछ मामूली बातों के अतिरिक्त, न मौलिक रूप में, न अनुवाद के रूपमें, अध्ययन के उपयुक्त किसी प्रकार का ज्ञान उपलब्ध था।"† अतः डफ की सम्मति में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही होना चाहिए था। यह शिक्षा, स्वभावतः, माध्यमिक शिक्षा के प्रसार से सम्बन्धित रहनी चाहिए थी। डफ तथा उनके साथियों का यह विचार पूर्ववर्ती धर्म-प्रचारकों के विचार से सर्वथा भिन्न था। हम देख चुके हैं कि अब तक धर्म-प्रचारकों का मुख्य लक्ष्य मातृभाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा का प्रसार था। अतः पुराने विचार के धर्म प्रचारकों ने डफ की नवीन नीति का घोर विरोध किया। किन्तु, डफ के व्यक्तित्व तथा उसके दृढ़ विश्वास एवं अटूट निष्ठा ने विरोधियों पर विजय पायी और धर्म-प्रचारकों की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य अंग्रेजी के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा का प्रसार हो गया।

अलेक्जेन्डर डफ तथा उनके अनुयायियों की चौथी धारणा यह थी कि सरकारी स्कूलों में भी ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। यदि सरकार के लिये ऐसा करना सम्भव नहीं था तो उसे शिक्षा प्रसार का कार्य धर्म-प्रचारकों के जिम्मे छोड़ देना चाहिए था। डफ का यह विचार था कि जिस भांति इङ्गलैंड में पादरियों के द्वारा स्थापित स्कूलों को सरकारी सहायता प्राप्त रहती थी, उसी भांति भारत स्थित धर्म-प्रचारकों के स्कूलों को भी कम्पनी सरकार के द्वारा सहायता मिलनी आवश्यक थी। इस तरह डफ ने भारत में स्कूलों को ग्रान्ट-इन-एड देने की पद्धति को दृढ़ बनाने में अपना पूरा योग दिया और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि शिक्षा के क्षेत्र में सरकार को गैरसरकारी संस्थाओं के कार्य से होड़ नहीं लगाना चाहिये। इस सिद्धांत के प्रतिपादन से डफ ने धर्म-प्रचारकों के लिये भारत में शिक्षा प्रसार का एकाधि-

---

† "It was a poor language, like English before Chancer, had in it, either by translation or by original composition, no works embodying any subjects of study beyond the merest elements.

G. Smith : The life of Alexandar Duff
Vol. I P, 180

कार प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की। उसके पूर्ववर्ती धर्म-प्रचारक जन सामान्य की शिक्षा की अपेक्षा भारतीय ईसाइयों की शिक्षा के लिये ही प्रयत्नशील थे।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं डफ के विचारों का पुराने धर्म-प्रचारकों के द्वारा काफी विरोध हुआ। किन्तु, उसे प्रगतिशील धर्म-प्रचारक—जैसे कैरी का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। राजाराम मोहन राय ने भी उसे अपना सहयोग दिया। इससे प्रोत्साहित होकर डफ ने सन् १६३० ई० में कलकत्ते में एक 'इङ्गलिश स्कूल' की स्थापना की। यह स्कूल इतना सफल सिद्ध हुआ कि कुछ ही दिनों में लोग डफ के विचारों के कायल हो गये। सन् १८४०–५० की अवधि में डफ ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक 'नार्मल स्कूल' की स्थापना की। अपने ढंग का यह स्कूल बंगाल में पहला था। इस स्कूल की स्थापना का प्रधान उद्देश्य मिशन स्कूलों के लिये प्रशिक्षित शिक्षकों को तैयार करना था। किन्तु इसमें सरकारी स्कूलों के लिये भी शिक्षक प्रशिक्षित किये जाने लगे। आगे चल कर इस प्रकार के नार्मल स्कूलों का संस्थापन धर्म-प्रचारकों की शिक्षा का एक प्रमुख अंग बन गया। इन स्कूलों में मिशनरी तथा सरकारी स्कूलों के अतिरिक्त भारतीय गैरसरकारी स्कूलों के लिये भी उपयुक्त शिक्षक तैयार होने लगे। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी डफ ने प्रशंसनीय कार्य किया। सन् १८५० ई० में डफ ने इङ्गलैंड जाकर पार्लियामेन्ट की 'सेलेक्ट कमिटी' के सम्मुख भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में बयान दिये। सन् १८५४ ई० का शंदेशपत्र, जिसका विवरण हम आगे प्रस्तुत करेंगे डफ के विचारों से प्रभावित था। भारत लौटकर डफ ने १८५४ ई० के संदेशपत्र को कार्यान्वित करने में अपना पूरा योग दिया। सन् १८५७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट के निर्माण के साथ ही डफ इसका सदस्य नियुक्त हुआ और सन् १८६३ ई० तक इस पद पर रहा। विश्वविद्यालय की नीति के सृजन में डफ का बहुत बड़ा हाथ रहा। सन् १८६३ ई० में स्वास्थ्य की खराबी के कारण डफ इङ्गलैंड लौट गया। सन् १८७८ ई० में वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। अपने अन्तिम दिनों तक डफ धर्म-प्रचारकों के कार्य को अपना पूरा सम्बल देता रहा।

डफ ने अपने विचारों में तत्कालीन धर्म-प्रचारकों की धारणाओं का प्रतिनिधित्व किया। कई दृष्टि से ये विचार दोषपूर्ण थे। अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा उच्च वर्ण के हिन्दुओं के धर्म परिवर्त्तन की आशा, मिशनरी

स्कूलों में बाइबुल की अनिवार्य शिक्षा, शिक्षा-प्रचार के क्षेत्र में मिशनरी स्कूलों का एकाधिकार—ये विचार ऐसे थे जिनका कोई भी ठोस आधार न था। डफ की गलतफहमियों तथा महत्वाकांक्षाओं के ये परिचायक मात्र थे। कालान्तर में इनमें से एक भी आशा फलीभूत नहीं हो सकी। फिर भी डफ के व्यक्तित्व ने भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कार्य किये। इन विचारों ने ही आधुनिक शिक्षा पद्धति में ग्रान्ट-इन-एड प्रथा की मान्यता दिलवायी तथा स्कूलों के खोलने में गैरसरकारी चेष्टाओं के पक्ष में सरकारी चेष्टाओं को हटा लेने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।† इन विचारों ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने तथा पठ्य-विषयों में पाश्चात्य ज्ञान के सम्मिश्रण के निश्चयमें भी अपना पूरा योग दिया। अतः सन् १८३३–५३ ई० के बीच भारतीय शिक्षा को दिशा-संकेत देने में डफ तथा उसके साथियों का बहुत बड़ा योग था।

सन् १८५१ ई० में धर्म-प्रचारकों के द्वारा संचालित स्कूलों तथा इनमें पढ़नेवाले छात्रों की संख्या निम्नांकित है। इन आँकड़ों में केवल उन्हीं स्कूलों का सन्निवेश है, जो कि प्रोटेस्टेन्ट धर्म-प्रचारक मंडलों के द्वारा संचालित थे। स्पष्टतः सभी प्रकार के धर्म-प्रचारकों के स्कूलों की संख्या इससे काफी अधिक रही होगी। इस समय सभी सरकारी स्कूलों की संख्या १,४७४ थीं। इस तरह सन् १८५६ ई० तक भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में, धर्म-प्रचारकों का स्थान प्रथम था। फिर भी कम्पनी सरकार के द्वारा स्थापित स्कूल, धर्म-प्रचारकों के स्कूलों के लिये जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हो रहे थे। धर्म-प्रचारकों को यह बात बुरी तरह खटक रही थी। शिक्षा के क्षेत्र में वे अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते थे। अतः उन्होंने यह माँग पेश करनी शुरू की कि सरकार शिक्षा के क्षेत्र से, धर्म-प्रचारकों को पक्ष में हट जायं। हम आगे देखेंगे कि वुड के सन्देश-पत्र ने धर्म-प्रचारकों की इस माँग को बहुतांश में स्वीकृत कर लिया।

---

† Duff thus became a pioneer of Grants-in-aid system in India and one of the earliest champions of the view that the state must withdraw in favour of private educational enterprise

—Nurullah & Naik P. 174

स्कूलों की संख्या

	बंगाल	बम्बई	मद्रास	उत्तर-पश्चिम प्रांत	पंजाब	मध्य भारत	कुल
पुरुषों के लिए ऐंग्लो-वर्नेकुलर स्कूल तथा कालेज	२२	७	४३	१३	३	३	९१
लड़कों के लिए वर्नाकुलर स्कूल	१२६	८५	८२४	४७	९	८	१०९९
लड़कों के लिए आवासिक स्कूल	२०	४	३२	१०	०	१	६७
लड़कियों के लिए दिवस स्कूल	२६	३१	२१७	८	—	३	२८५
लड़कियों के लिए आवासिक स्कूल	२७	८	३९	९	२	१	८६

छात्र-संख्या

	बंगाल	बम्बई	मद्रास	उत्तर-पश्चिम प्रांत	पंजाब	मध्य भारत	कुल
पुरुषों के लिए एंग्लो-वर्नेकुलर स्कूल	६०५४	९०७	४०९६	१०२९	१७८	१३७	१२४०१
लड़कों के लिए वर्नेकुलर स्कूल	६३१९	४६७९	२४१७८	२६४०	४८८	३५७	३८६६१
लड़कों के लिए आवासिक स्कूल	७०८	६४	७८७	२०९	—	२०	१७८८
लड़कियों के लिए दिवस स्कूल	६९०	११८६	६७६८	२१३	—	६२	८९१९
लड़कियों के लिए आवासिक स्कूल	७९७	१३९	१११०	१७३	३५	२०	२२७४
कुल	१४५६८	६९७५	३६९३९	४२६४	७०१	५९६	६४०४३

अंग्रेज अफसरों तथा शिक्षा-प्रेमी अंग्रेजों की चेष्टायें

धर्म-प्रचारकों के अतिरिक्त, कम्पनी के अंग्रेज अफसर तथा शिक्षा-प्रेमी अंग्रेज सज्जनों ने भी आधुनिक शिक्षा के निर्माण में पूरा योग दिया। इनमें से कुछ ने धर्म-प्रचारकों के कार्यों में अपना पूर्ण सहयोग दिया। किन्तु कुछ ऐसे थे, जो धर्म-प्रचारकों की धार्मिक शिक्षा में आस्था न रखते थे और शिक्षा का प्रसार असाम्प्रदायिक ढंग से करना चाहते थे। इनका यह भी विचार था कि शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय चेष्टायें प्रस्फुटित तथा पल्लवित हों। व्यापकता की दृष्टि से इन अफसरों तथा व्यक्तियों के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य सीमित थे। किन्तु इनके असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण तथा भारतीय प्रयत्नों के प्रोत्साहन के कारण इनकी चेष्टायें महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

जिन अंग्रेज अफसरों ने अपने वैयक्तिक रूप में भारतीय शिक्षा को प्रश्रय दिया, उनमें निम्नलिखित के नाम उल्लेखनीय हैं—

जे० इ० डी० बेथ्यून

(J. E. D. Bethune)

इनका जन्म सन १८०१ ई० में इंगलैंड में हुआ था। इन्होंने ट्रिनिटी कालेज, कैम्ब्रिज में उच्च शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् इन्होंने सन १८३७ ई० में वकालत शुरू की। इङ्गलैंड में इन्होंने कई सरकारी पदों को भी सुशोभित किया। स्त्री-शिक्षा से उनकी खास दिलचस्पी थी। सन १८४८ ई० में वे गवर्नर जेनरल की कौंसिल के कानून-सदस्य बनकर भारत आये। 'कौंसिल आफ एजुकेशन' के अध्यक्ष भी वे नियुक्त हुये।

भारत पहुँचते ही इन्होंने भारतीय शिक्षा में अभिरुचि लेनी शुरू की। उनका ध्यान स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष रूप से गया। हम देख चुके हैं कि इस समय तक कम्पनी सरकार स्त्री-शिक्षा के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन थी। इस कारण, श्री बेथ्यून अपने पद का उपयोग स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिये न कर सके। अतः उन्होंने वैयक्तिक रूप में ही स्त्री-शिक्षा की ओर कार्य करना शुरू किया। बेथ्यून को यह समझने में देर न लगी कि संभ्रान्त हिन्दू अपनी कन्याओं को धर्म-प्रचारकों के स्कूलों में कभी भेजने को प्रस्तुत न होते। अतः उन्होंने स्त्री-शिक्षा के लिये एक असाम्प्रदायिक स्कूल (Secular school) खोलने का निश्चय किया। इस स्कूल में शिक्षा के

विषय बंगला से ही प्रधानतः सम्बन्धित थे। सरल तथा आकर्षक विषयों की शिक्षा भी दी जा सकती थी। अंग्रेजी की शिक्षा केवल उन्हीं लड़कियों को दी जाती थी, जिनके माता-पिता इसके लिये इच्छुक थे।

अपने विचारों को कार्यान्वित करने में बेथ्यून को कई भारतीयों से पूरा सहयोग मिला। इनमें बाबू रामगोपाल घोष, बाबू दक्षिणारंजन मुकर्जी और पंडित मदनमोहन तारकांलकार के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने बेथ्यून के विचार का न केवल समर्थन किया, बल्कि भूमि, रुपये तथा छात्राओं की भरती से उनकी मदद की। मई सन् १८४६ ई० में बेथ्यून का कन्या स्कूल कलकत्ते में स्थापित हुआ। कुछ ही दिनों में इसमें लड़कियों की संख्या पर्याप्त हो गयी। बेथ्यून की देखादेखी कई भारतीयों ने इसी तरह के कन्या स्कूल खोलने शुरू कर दिये। सन १८५१ ई० में बेथ्यून का देहावसान हो गया। मृत्यु के पहले उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति अपने प्रिय स्कूल को वसीयत कर दी। बेथ्यून के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने स्कूल का प्रबन्ध अपने हाथों में लिया और इसका सारा खर्च स्वयं चलाते रहे, जबतक कि स्कूल कम्पनी-सरकार के अधीन न आया। बेथ्यून की स्मृति में इसका नाम "बेथ्यून कन्या स्कूल" पड़ा, जो कि कुछ हीं दिनों में "बेथ्यून कन्या कालेज" के रूप में परिवर्तित हो गया।

मौंटस्टूआर्ट एलफिंस्टन

मौंटस्टूआर्ट एलफिंस्टन कम्पनी सरकार के एक उच्च पदाधिकारी थे। सन् १८१६ ई० में वे बम्बई के गवर्नर नियुक्त हुए। उस समय बम्बई में धर्म-प्रचारकों के अतिरिक्त गैरसरकारी क्षेत्र में शिक्षा-संबंधी चेष्टायें अत्यन्त सीमित थीं। 'बम्बई एजुकेशन सोसाइटी' नामक एक संस्था थी, जिसका प्रधान उद्देश्य एंग्लो-इंडियन तथा गरीब यूरोपियनों को शिक्षित बनाना था। संस्था के द्वारा संचालित स्कूलों में भारतीय बच्चे भी दाखिल हो सकते थे और उन्हें धार्मिक शिक्षा में भाग लेना अनिवार्य न था। इस सुविधा से लाभ उठाकर बहुत से हिन्दू, मुसलमान तथा पारसी बच्चे इन स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते थे। सन् १८२० ई० में बम्बई एजुकेशन सोसाइटी के द्वारा कई स्कूल चलाये जा रहे थे, जिनमें भारतीय बच्चे शिक्षा ग्रहण करते थे। इन स्कूलों की छात्र-संख्या २५० थी।

मौंटस्टूआर्ट एलफिंस्टन, जो कि सोसाइटी के अध्यक्ष थे, की प्रेरणा

से सोसाइटी ने एक विशेष कमिटी नियुक्त की। इस कमिटी के दो मुख्य उद्देश्य थे—(१) भारतीय बच्चों के लिये पुराने स्कूलों की उन्नति और इन बच्चों के लिये नये स्कूलों की स्थापना। (२) भारतीय बच्चों के लिये स्कूली पुस्तकों का आयोजन। यही समिति आगे चलकर 'बम्बई नेटिव एजुकेशन सोसाइटी के' नाम से विख्यात हुई, जिसका उद्देश्य भारतीय बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध था। इस कमिटी ने भारतीय बच्चों की शिक्षा के लिये जो जो कार्य किये, उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस कमिटी की स्थापना तथा इसकी सफलता में मौंट स्टूआर्ट एलफिंस्टन का प्रमुख हाथ था। उन्हीं की प्रेरणा से कम्पनी की संचालक समिति ने 'बम्बई नेटिव एजुकेशन सोसाइटी' को वार्षिक अनुदान देना स्वीकृत किया और इसे भारतीय बच्चों के शिक्षा-प्रसार का मुख्य साधन माना। मौंटस्टूआर्ट एलफिंस्टन की अध्यक्षता में सोसाइटी ने भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया, जिनका ब्योरा हम पहले दे चुके हैं।

प्रो० पैट्टन

प्रो० पैट्टन एलफिंस्टन कालेज, बम्बई के प्राध्यापक थे। उन्होंने कालेज में ही एक साहित्य तथा विज्ञान सोसाइटी (Literary and Scientific Society) का संगठन किया। इस सोसाइटी का उद्देश्य साहित्यिक तथा वैज्ञानिक समस्याओं पर समय-समय पर विचार करना था। किन्तु शीघ्र ही सोसाइटी का कार्यक्षेत्र विस्तृत हो गया। इसने मराठी तथा गुजराती भाषाओं के माध्यम से शिक्षा-प्रसार का कार्य करना आरम्भ किया। इसके अलावे, इसने बम्बई में कन्या पाठशालाओं के निर्माण में अपना पूरा योग दिया। बेथ्यून के स्कूल की तरह, ये कन्या स्कूल भी असाम्प्रदायिक थे। शुरू में सोसाइटी के सदस्यों ने इन स्कूलों में शिक्षक का कार्य अवैतनिक रूप में किया। किन्तु शीघ्र ही सोसाइटी को आर्थिक सहायता प्राप्त हुई और इसके द्वारा संचालित स्कूलों में वैतनिक शिक्षक नियुक्त होने लगे। सन् १८५४ ई० में सोसाइटी की संरक्षणता में ९ कन्या स्कूल क्रियाशील थे, जिनमें ६०० से अधिक छात्रायें शिक्षा ग्रहण करती थीं। आज भी सोसाइटी के द्वारा एक उच्च स्कूल तथा कई मिडूल तथा प्राथमिक विद्यालय चलाये जा रहे हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि बेथ्यून, एलफिंस्टन तथा पैट्टन ने अपनी वैयक्तिक चेष्टाओं से भारतीय शिक्षा के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। श्री बेथ्यून ने स्वयं स्कूल खोलकर भारतीयों के लिये उदाहरण प्रस्तुत किया। श्री एलफिंस्टन तथा पैट्टन ने स्वयं स्कूल न खोले, किंतु उनकी प्रेरणा तथा सहयोग से ऐसी संस्थायें कायम हुई, जिनके द्वारा शिक्षा-प्रसार का कार्य भारतीयों के द्वारा होने लगा। इन महानुभावों ने यह स्पष्टतः देखा कि भारत में शिक्षा-प्रसार का कार्य केवल सरकार तथा धर्म-प्रचारकों के द्वारा संपन्न नहीं हो सकता। इसके लिये गैरसरकारी भारतीय चेष्टाओं का विकास आवश्यक था। इस धारणा से अनुप्राणित होकर इन्होंने भारतीयों को शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में अग्रसर कराना शुरू किया और उन्हें, हर तरह का, प्रोत्साहन दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों में भारतीय गैरसरकारी चेष्टा को प्रेरणा तथा मार्ग-प्रदर्शन दोनों ही आवश्यक थे। इसके बिना, शिक्षा के क्षेत्र में, गैरसरकारी चेष्टाओं का विकास बहुत दिनों तक स्थगित रहता। इसी दृष्टि से, कम्पनी के उन अफसरों का, जिन्होंने भारतीय गैरसरकारी चेष्टाओं को आविर्भूत करने का प्रयत्न किया, महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय चेष्टाएँ (१८१३-५३)

सन् १८५४ ई० के पहले तक आधुनिक शिक्षा के प्रसार की भारतीय चेष्टायें नगण्य थीं। इस स्थिति के कई कारण थे। अभी तक भारत के लोग अंग्रेजी शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध थे। पुराने विचार के लोग, जिनकी संख्या अत्यधिक थी, अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में भेजना नहीं चाहते थे। उनकी धारणा कि नयी पद्धति में शिक्षित युवक अपने धर्म को छोड़ देंगे—बिलकुल गलत न थी। पाश्चात्य ज्ञान को ये लोग संदेह की दृष्टि से देखते थे, और यह समझते थे कि इसका प्रसार उनके धार्मिक विश्वासों को उखाड़ फेंकने के लिये किया जा रहा था। दूसरा कारण यह था कि स्कूलों की शिक्षा उन्हीं लोगों के द्वारा दी

---

† had it not been for the fostering care of officials working in their individual capacity, private Indian enterprise in education would have taken a very much longer time to develop.

—Nurullah & Naik, P, 190

जा सकती थी, जो कि स्वयं ऐसे स्कूलों में उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए हों। सन १८५४ के पहले ऐसे भारतीयों की संख्या बहुत ही कम थी। जो लोग ऐसे थे भी, उन्हें अच्छी सरकारी नौकरियाँ मिल जाती थी, जिनमें पैसे तथा प्रतिष्ठा दोनों ही उपलब्ध रहती थीं। स्वभावतः अंग्रेजी पद्धति में शिक्षित भारतीय युवक शिक्षण कार्य की ओर आकृष्ट न हो सकते थे, जिसमें, आज की तरह ही, न पैसे थे, न प्रतिष्ठा थी। तीसरा कारण यह था कि उस समय लोगों का विश्वास था कि अंग्रेजी स्कूलों के प्रधानाध्यापक अथवा प्राचार्य के पद के लिये यूरोपियन होना अनिवार्य था। भारतीयों के लिये ऐसे यूरोपियनों को अपने स्कूलों के लिये उपलब्ध करना बहुत ही कठिन था। आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय चेष्टा के विकास के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा यही था। भारतीयों की चौथी कठिनाई यह थी कि वे सहकारिता के आधार पर नये स्कूलों के संगठन तथा संचालन की रीतियों से सर्वथा अपरिचित थे। हाँ, यूरोपीय महानुभावों एवं अफसरों की ओर से जो चेष्टायें हो रही थीं, उनसे वे प्रकाश ग्रहण करने लग गये थे। किन्तु अभी तक उन्हें स्वतः शिक्षा-संस्थाओं के संगठन के लिये पर्याप्त अनुभव प्राप्त न हो सका था। इन मिले जुले कारणों के फलस्वरूप, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सन् १८५४ ई० तक नये स्कूलों के निर्माण में भारतीय चेष्टायें लक्षित न हो सकीं। किन्तु सन् १८१३-५३ की अवधि में भी कुछ ऐसे भारतीय विचारक तथा सुधारक विद्यमान थे, जिन्होंने भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता समझी और इस कार्य के लिये क्षेत्र तैयार करने के लिये प्रशंसनीय कार्य किये। इनमें राजा राममोहन राय, जगन्नाथ शंकरसेत तथा महात्मा फुले के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके कार्यों का संक्षिप्त परिचय लाभप्रद होगा :—

राजा राममोहन राय

आधुनिक भारत के जन्मदाता राजा राममोहन राय का जन्म बंगाल के राधानगर ग्राम के एक संभ्रात ब्राह्मण कुल में सन् १७७२ ई० में हुआ था। अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय से उन्होंने १६ वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत, अरबी तथा फारसी पर असाधारण प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। आगे चलकर उन्होंने अंग्रेजी भी भलीभाँति सीख ली। बाइबुल के मूलप्रति के अध्ययन के उद्देश्य से इन्होंने हिब्रू तथा ग्रीक भाषाओं

के भी अध्ययन किये। कुरान तथा सूफी साहित्य के प्रभाव से राजा राममोहन राय के धार्मिक विचारों में कई तरह के परिवर्त्तन हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके तथा उनके पिता के बीच धार्मिक बातों के प्रश्न पर मतभेद खड़ा हो गया। यह मतभेद इतना गहरा हो गया कि राममोहन राय ने कुछ, दिनों तक, अपना घर छोड़ दिया। कई वर्षों तक वे भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे और इस सिलसिले में उन्होंने विभिन्न धार्मिक धारणाओं एवं सामाजिक रीति-रिवाजों का परिचय प्राप्त किया। अन्त में पिता पुत्र में समझौता हुआ और राममोहन राय घर लौट आये। सन् १८०४ ई० में उन्होंने कम्पनी सरकार के अधीन नौकरी कर ली। अपनी योग्यता तथा अध्यवसाय से वे शीघ्र ही कम्पनी सरकार के कृपापात्र बन गये और राजस्व विभाग में दीवान के पद पर प्रतिष्ठित हुए। सन् १८१४ ई० में उन्होंने नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और अपना शेष जीवन मातृभूमि की सेवा में व्यतीत किया। सन् १८३३ ई० में राजा राममोहन राय की मृत्यु इंगलैंड में हुई।

राजा राममोहन राय ने भारतीय समाज के सर्वांगीण सुधार की कल्पना की और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वे २० वर्षों तक निरन्तर संघर्ष करते रहे। उनके प्रयत्न तथा उत्साह से भारतीय जीवन में जो नव-चेतना आयी, उससे इतिहास के विद्यार्थी परिचित हैं।† आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में भी राजा राममोहन राय के व्यक्तित्व का प्रभाव कई रूपों में पड़ा। उन्होंने स्पष्टतः देखा कि बाह्य संसर्ग के अभाव में भारतीय मस्तिष्क शिथिल तथा संकीर्ण हो गया था। इसे जागृत तथा उदार बनाने के लिये यह आवश्यक था कि भारतीयों को प्राच्य ज्ञान के साथ साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी जाय। किन्तु पाश्चात्य तथा प्राच्य ज्ञान का समन्वय वे इस ढंग से करना चाहते थे कि भारतीय संस्कृति में औदार्य तथा गतिशीलता तो आवे, किन्तु इसका आधारभूत स्वरूप

---

† He tackled an amazingly wide range of social, cultural and religious problems of our country, and through a long life spent in unflagging service to the cause of India's cultural reassertions, brought back the pure stream of India's philosophy to the futility of our immobile and unproductive national existence.

Tagore in The Father of Modern India.

विकृत न होने पावे ।* आधुनिक शिक्षा को राजा राममोहन राय की दूसरी देन यह थी कि उन्होंने अंग्रेजी भाषा तथा इसके द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के लिये अथक परिश्रम किया । स्वयं संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान होते हुए भी, उन्होंने संस्कृत के द्वारा आधुनिक ज्ञान के प्रचार को अनुपयुक्त तथा अव्यावहारिक माना; और उन लोगों का घोर विरोध किया जो संस्कृत तथा अरबी को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे । इस तरह के विचार ग्रान्ट आदि के द्वारा अभिव्यक्त हो चुके थे । किन्तु राजा राममोहन राय के द्वारा प्रकाशित होने पर इनका प्रभाव भारतीयों पर स्वभावतः बहुत अधिक पड़ा । उनकी शिक्षासम्बन्धी तीसरी देन यह थी कि उन्होंने अपनी विद्वत्ता, अपने जीवन, अपने व्याख्यानों, अपने लेखों आदि से भारतीय संस्कृति तथा साहित्य की महत्ता को इङ्गलैंड के लोगों के सामने खोल कर रख दिया । उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि प्राच्य संस्कृति बहुत ही समृद्ध थी तथा इसका विवेकपूर्ण अध्ययन भारतीय शिक्षा-पद्धति में अवश्य सम्मिलित होना चाहिये था । हम आगे देखेंगे कि 'ऊड' के सन्देश-पत्र (सन् १८५४ ई०) ने इस विचार को पूर्ण मान्यता दी । राजा राममोहन राय की चौथी शिक्षा-सम्बन्धी देन यह थी कि उन्होंने प्रचलित प्रादेशिक भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता प्रतिपादित कीं और उनको विकसित करने की प्रेरणा दी । उन्होंने स्वयं बंगला भाषा में कई पुस्तकें लिखीं और आधुनिक बंगला गद्य के जन्मदाता होने का यश प्राप्त किया । बंगला में उन्होंने कुछ कवितायें भी लिखीं । भारतीय शिक्षा को उनकी पाँचवीं देन स्त्री-शिक्षा के प्रोत्साहन से सम्बन्धित थी । उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री-शिक्षा सर्वथा शास्त्र-सम्मत थी तथा प्राचीन काल में, भारत में, बहुत-सी स्त्रियों ने उच्चतम शिक्षा प्राप्त की थी । राजा राममोहन राय के ब्रह्म-समाज ने भी स्त्री-शिक्षा के प्रसार के ठोस कार्य किये । यद्यपि आधुनिक भारत में स्त्री-शिक्षा का सूत्रपात विदेशी धर्म-प्रचारकों के द्वारा हुआ,

---

* He saw the need of a new synthesis of the best that Europe and Asia had to give and strove, consequently, to weave into the tapestry of Indian life such threads from the spindles of the West, without bringing about a complete alteration in the pattern upon the Indian loom.

Earl of Ronaldshay quoted in Nurullah & Naik. P. 194

किन्तु राजा राममोहन राय ने ही हिन्दुओं के बीच स्त्री-शिक्षा को प्रचलित किया।

महात्मा फूले

इनका जन्म सन् १८२८ ई० में पूना के एक माली परिवार में हुआ था। आर्थिक संकट के कारण ये किसी तरह मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर सके। विदेशी धर्म-प्रचारकों के कार्य से ये बहुत प्रभावित हुए और अपना जीवन नीची श्रेणी के लोगों के उत्थान में उत्सर्ग करने की इन्होंने ठान ली। २० वर्ष की अवस्था से ही ये सामान्य लोगों की सेवा में लग गये। आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में इन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बम्बई प्रान्त में कन्या स्कूल खोलने वाले ये प्रथम हिन्दु थे। स्कूल के शिक्षण का कार्य ये स्वयं करते थे। लड़कियों की संख्या बढ़ जाने पर उन्होंने अपनी पत्नी को शिक्षण कार्य के लिये तैयार किया। पति-पत्नि को कन्या स्कूल चलाने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किंतु ये अपने निश्चय से न डिगे और अपना कार्य सफलता पूर्वक निभाते रहे। महात्मा फूले ने ही सर्वप्रथम एक हरिजन स्कूल भी स्थापित किया। आगे चलकर पूना में अपने खर्च से इन्होंने दो हरिजन स्कूलों को चलाया।

आधुनिक शिक्षा को महात्मा फूले की सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने वर्ग-विशिष्ट के बदले जनसामान्य की शिक्षा का समर्थन किया। जिस समय में निस्यन्द सिद्धान्त के प्रतिपादन के द्वारा वर्ग-विशिष्ट की शिक्षा का बोलबाला हो रहा था, महात्मा फूले ने भारत में शिक्षा को अनिवार्य बनाने की सिफारिश की, ताकि भारत के सभी श्रेणी के लोग शिक्षित बन सकें।† उच्च हिन्दुओं, विशेषकर ब्राह्मण जाति के लोगों, के प्रति महात्मा फूले के विचार कठोर अवश्य थे। किंतु इसका कारण, इनके प्रति, उनकी घृणा न था, बल्कि इनकी स्वार्थपरता तथा वर्गीय नीति था, जिससे शूद्रों तथा दलित वर्गों को तरह-तरह की मुसीबतें

---

† He was one of the earliest thinkers to speak of compulsory education in India. When every one was talking of Downward Filtration Theory, Mahatma Phule raised his voice against the domination of the upper castes in Hindus and pleaded for the compulsory education of the lower castes in order to regenerate the life of the country.

Nurrullah and Naik P. 200.

उठानी पड़ती थीं। दलित जातियों के उत्थान के कार्य में महात्मा फूले को स्वभावतः ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी। जहाँतक सामाजिक कुरीतियों का सम्बन्ध था, महात्मा फूले ने इनके निराकरण में अपना पूरा योग दिया, चाहे ये कुरीतियाँ ब्राह्मणों अथवा उच्च जातियों में ही प्रचलित क्यों न हों। उनकी प्रेरणा से सन् १८६४ ई० में एक ब्राह्मण विधवा का पुनर्विवाह हुआ। उन्होंने एक अनाथालय भी स्थापित किया, जहाँ विधवायें समाज से बहिष्कृत होकर अवैध बच्चे दे सकती थीं और उन्हें भरण-पोषण के लिये छोड़ सकती थीं। महात्मा फूले के शिक्षा-सम्बन्धी विचार तथा उनकी सामाजिक धारणायें जमाने से बहुत आगे थीं। फलतः उनके विचारों का सम्मान उनके जीवनकाल में उतना न हुआ, जितना उनकी मृत्यु के बाद। वस्तुतः आधुनिक युग में, महाराष्ट्र में, समाज-सुधार की प्रेरणा जितनी इनके उपदेश से मिली, उतनी अन्य किसी के उपदेश से नहीं।‡

जगन्नाथ शंकरसेत

बम्बई के एक सुसंपन्न परिवार में जगन्नाथ शंकरसेत का जन्म सन् १८०३ ई० में हुआ था। १६ वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने जन-सेवा में अपना जीवन व्यतीत करना शुरू किया। बम्बई नेटिव-सोसाइटी के वे, प्रारम्भ से १८४५ तक, सदस्य रहे। इसके पश्चात् वे १६५५ तक बोर्ड आफ एजुकेशन के सदस्य निर्वाचित होते रहे। सन् १८४७ ई० के बाद वे, अपने जीवन-पर्यन्त बम्बई विश्वविद्यालय सिनेट के सदस्य रहे। बम्बई नगरपालिका तथा बम्बई धारा सभा की सदस्यता भी उन्होंने की।

राममोहन राय की भाँति, जगन्नाथ शंकरसेत भी भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान का समन्वय चाहते थे। स्कूलों में वे सर्वथा असाम्प्रादायिक शिक्षा को प्रश्रय देना चाहते थे। उनके विचार में धर्म-प्रचारकों के द्वारा भारतीयों की शिक्षा का आयोजन समुचित रूप से नहीं किया जा सकता था। अतः यह आवश्यक था कि इस दिशा में स्वयं भारतवासी अग्रसर हों। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान में पूरी आस्था रखते हुए भी वे भारतीय शिक्षा के विषय को इन तक ही सीमित रखना नहीं चाहते थे। भारतीयों के लिये, उनके विचार में, संस्कृत भाषा तथा साहित्य के

‡ Nurullah & Naik P. 202

अध्ययन आवश्यक थे। जहाँ तक शिक्षा के माध्यम का प्रश्न था, शंकर सेत अंग्रेजी के प्रबल विरोधी थे। वे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का प्रसार मराठी के द्वारा ही करना चाहते थे। उन्होंने पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों को मराठी भाषा में अनूदित करने में अपना पूरा योग दिया। वे स्त्री-शिक्षा के भी बड़े समर्थक थे। उन्होंने अपने मकान के एक भाग में एक कन्या स्कूल आवासित किया और अपनी पुत्रियों को इसमें भरती कराया। इस तरह, बम्बई प्रान्त के लिये जगन्नाथ शंकरसेत ने लगभग वे ही सेवायें कीं, जो कि राजा राममोहन राय ने बंगाल के लिये कीं।*

मुसलमानों की शिक्षा (सन् १८१३—५३)

सन् १८५४ ई० के पहले भारतीय मुसलमान अंग्रेजी स्कूलों के प्रति लगभग उदासीन थे। अत: अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ने वाले मुसलिम छात्रों की संख्या नगण्य-सी ही थी। सन् १७८२ ई० में कलकत्ता मदरसा, की स्थापना जिससे हम परिचित हैं, बंगाल के मुसलमानों को शिक्षित, तथा हिन्दुओं की तरह सरकारी नौकरियों के लिये योग्य बनाने के उद्देश्य से हुई थी। किन्तु ५० वर्ष की अनवरत चेष्टा से भी वे "उच्च अंग्रेजी शिक्षा की ओर आकृष्ट न किये जा सके। फलत: ४० वर्ष के बाद भी भारतीय मुसलमान सरकारी नौकरियों के लिये हिन्दुओं के साथ प्रतियोगिता में बैठने के लिये समर्थ न हो सके। अब भी उच्च शिक्षा की ओर उनका झुकाव पर्याप्त मात्रा में लक्षित न हुआ।" अत: सन् १८७२ ई० में भी उच्च शिक्षा में भारतीय मुसलमानों की स्थिति सन १७८२ ई० से विशेष अच्छी न थी। सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने कुछ प्रगति अवश्य की थी।†

अंग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीय मुसलमानों की इस उदासीनता के कई कारण थे, जिनमें "जातीय गर्व, अतीत गौरव के संस्मरण, धार्मिक आशंकाएँ तथा इसलाम की शिक्षा के प्रति स्वाभाविक आकर्षण प्रमुख" थे। कारण जो भी हो, आधुनिक शिक्षा के प्रति भारतीय मुसलमान बहुत दिनों तक उदासीन रहे।‡

---

* Nurullah & Naik P. 199

† Indian Education Commission Report. P. P. 483-4

‡ ,, Ibid 80

ऊड का संदेश-पत्र
(Wood's Despatch)

सन् १८१३-५३ ई० की अवधि की उपरोक्त घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया होगा कि, सन् १८५३ ई० में, भारत में आधुनिक शिक्षा एक ऐसे स्थल पर पहुँच गयी थी जहाँ से भूत की उपलब्धियों का सिंहावलोकन किया जाता और भविष्य के लिये दिशा-संकेत किया जाता। इसके लिये उपयुक्त अवसर भी पहुँच गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारपत्र के पुनरावर्त्तन का समय आ पहुँचा था। पहले की भांति, इस अवसर पर भी, पार्लियामेण्ट ने एक विशिष्ट कमिटी नियुक्त की, जिसने भारतीय शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में पूरी जाँच-पड़ताल की। इसी के आधार पर कम्पनी की संचालक समिति ने भारतीय शिक्षा के सुधार के उद्देश्य से सन् १८५४ ई० में एक संदेश-पत्र भारत भेजा। यह संदेशपत्र ऊड के संदेश-पत्र (Wood's Despatch) के नाम से विख्यात हुआ। 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' के अध्यक्ष चार्ल्स ऊड (Charles Wood) के द्वारा सम्भवतः यह संदेश-पत्र अनुप्राणित था। अतः इसका नाम ऊड का संदेश-पत्र पड़ा।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में ऊड के संदेश-पत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसने आधुनिक शिक्षा के विवादास्पद प्रश्नों पर अन्तिम निर्णय दिया तथा शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में एक सुव्यवस्थित नीति निर्धारित की, जिसके अनुसार भारतीय शिक्षा का आधुनिक रूप पल्लवित हुआ।

शिक्षा का उद्देश्य

भारत में कम्पनी की शिक्षा-नीति का विश्लेषण करते हुए, सन्देश-पत्र ने यह स्पष्ट किया कि इस नीति का उद्देश्य उपयोगी ज्ञान के प्रसार के द्वारा भारतीयों के न केवल बौद्धिक, नैतिक एवं आर्थिक स्तर को ऊंचा करना था, बल्कि इसका उद्देश्य यह भी था कि "कम्पनी को ऐसे सुयोग्य कर्मचारी प्राप्त हों, जिनके हाथों में शासन सम्बन्धी जिम्मेवारी के कार्य अधिक विश्वास के साथ सौंपे जा सकें।"

संदेश-पत्र ने यह भी आशा प्रकट की कि :—

"पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन से भारतीयों की भौतिक समृद्धि भी होगी। अपने श्रम तथा पूँजी के समुचित उपयोग से वे

शिक्षा का माध्यम

संदेश-पत्र ने यह स्वीकार किया कि अंग्रेजी माध्यम के प्रयोग से भारत की प्रादेशिक भाषाओं को भारी क्षति पहुँची थी। किन्तु उसने यह अंगीकार नहीं किया कि अंग्रेजी माध्यम का उपयोग केवल इसलिये किया गया था कि कम्पनी सरकार देशी शिक्षा तथा देशी भाषाओं को मृत करना चाहती थी। अपितु संचालक समिति की दृष्टि में देशी भाषाओं का बहुत बड़ा महत्व था और इस बात को वे भलीभाँति जानते थे कि जन सामान्य के बीच यूरोपीय ज्ञान का प्रसार देशी भाषाओं के ही माध्यम से ही हो सकता है।* अंग्रेजी माध्यम का उपयोग उन लोगों की शिक्षा में होना चाहिये, जो इसका इतना ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं कि इसके माध्यम से यूरोपीय ज्ञान की शिक्षा ग्रहण कर सकें। ऐसे कुछ लोगों को छोड़कर अधिकांश लोगों के लिये, जो कि अंग्रेजी में दक्ष नहीं हैं, देशी भाषायें ही शिक्षा का उपयुक्त माध्यम बन सकती हैं। अतः संदेश पत्र ने यह तय किया कि—

"भारत में यूरोपीय ज्ञान के प्रसार का माध्यम अंग्रेजी तथा देशी भाषायें—दोनों ही हों। भारत के सभी उच्च स्कूलों में, जिनमें योग्य शिक्षक हों, इन दोनों भाषाओं की शिक्षा आयोजित की जाय।"

इस तरह, भारतीय शिक्षा के उद्देश्य, विषय तथा माध्यम के सम्बन्ध में ऊड के संदेश-पत्र ने कोई नयी बात नहीं कही। इसने अधिकांशतः उन निश्चयों की जोरदार शब्दों में पुनावृत्ति की, जो कि बेंटिंक के समयमें किये जा चुके थे। किन्तु इन निश्चयों को संदेश-पत्र ने, वैधानिक स्वरूप देकर, दृढ़ तथा स्थायी बनाया। इसके अतिरिक्त संदेश-पत्र ने,

---

* It is indispensable, therefore, that in any general system of education, the study of them should be assiduously attended to, and any acquaintance with improved European knowledge, which is to be communicated to the great mass of the people ...... can only be conveyed to them through one or other of those vernacular languages.

Despatch of 1854—Para 7

† We look, therefore, to the English language and to the vernacular languages of India together as the media for the diffusion of European knowledge and it is our desire to see them cultivated together in all schools of India of a sufficiently high class to maintain a schoolmaster possessing the requisite qualification.

भारतीय शिक्षा के संगठन के सम्बन्ध में कई नयीं योजनाएं प्रस्तुत कीं, जिनसे भारतीय शिक्षा का आधुनिक स्वरूप पल्लवित हुआ। वे योजनाएं ये थीं :—

(१) लोक शिक्षा विभाग—संदेश-पत्र ने भारत के तत्कालीन चारों अंग्रेजी प्रान्तों में एक-एक लोक शिक्षा-विभाग (Department of Public Instruction) के संगठन का आदेश दिया। इस विभाग के संचालन का भार एक लोक-शिक्षा-निर्देशक (Director of Public Instruction) नामक पदाधिकारी को सौंपा गया।† इसकी सहायता के लिये कतिपय शिक्षा-निरीक्षकों (Inspectors of Schools) की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी। लोक-शिक्षा-निर्देशक को अपने प्रान्त की शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में सरकार को वार्षिक रिपोर्ट भी देनी पड़ती थी।

(२) विश्वविद्यालय—उच्चतम शिक्षा के आयोजन तथा देखभाल के लिये संदेश-पत्र ने कलकत्ता तथा बम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना का आदेश दिया।‡ मद्रास तथा अन्य प्रान्तों में भी, जहां काफी स्कूल होते तथा जहां 'डिग्री' के लिये पर्याप्त विद्यार्थी मिल सकते, विश्वविद्यालय स्थापित किये जा सकते थे। विश्व-विद्यालय का संगठन लण्डन विश्वविद्यालय के अनुकरण पर होना चाहिये था। इसका प्रबन्ध एक 'सिनेट' के हाथ में रहना चाहिये था, जिसमें कुलपति, उपकुलपति तथा अन्य अधिकारी होने थे। ये सभी सरकार के द्वारा मनोनीत होते। विश्वविद्यालय का कार्य प्रधानतः परीक्षाओं का आयोजन करना तथा डिग्री देना था।

---

† We are of opinion that it is advisable to place the superintendence and direction of education upon a more systematic footing, and we have, therefore, determined to create an Educational Department as a portion of the machinery of our Governments in the several Presidencies of India. Despatch of 1854—P. 17.

‡ The rapid spread of liberal education among the natives of India since that time.. ....have led us to the conclusion that the time is now arrived for the establishment of Universities in India, which may encourage a regular and liberal course of education by conferring academical degrees as evidences of attainments in the different branches of arts and science.

Despatch of 1854—Para 24.

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय से संलग्न उन विषयों की शिक्षा आयोजित होनी चाहिये थी, जिनका प्रबन्ध अन्य संस्थाओं में न था।† कानून, सिविल इन्जिनियरिंग आदि ऐसे ही विषय थे। प्रादेशिक भाषाओं तथा संस्कृत, अरबी, फारसी–इन सांस्कृतिक भाषाओं की विशेष शिक्षा का प्रबन्ध भी वांछित था। सांस्कृतिक भाषाओं के प्राध्यापकों को प्रादेशिक भाषाओं की समुन्नति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये था।* सांस्कृतिक तथा देशी भाषाओं के अध्ययन की यह व्यवस्था शिक्षा के इतिहास के लिये विशिष्ट स्थान रखता है। इससे स्पष्ट है कि संदेश-पत्र ने भारत की सांस्कृतिक तथा प्रादेशिक भाषाओं की उपेक्षा न की और देश की शिक्षा पद्धति में इनके अध्ययन की आवश्यकता को पूर्णत: स्वीकार किया। दुर्भाग्यवश, जैसा कि हम आगे देखेंगे, संदेश-पत्र की ये सिफारिशें कार्यान्वित न हो सकीं, जिससे प्रादेशिक भाषाओं के अध्ययन तथा समुन्नति की ओर कुछ भी ठोस कार्य न हुआ।

(३) श्रृंखला बद्ध स्कूल—संदेश-पत्र की तीसरी सिफारिश सारे देश में श्रृंखला-बद्ध स्कूलों के संगठन के लिए थी। इस श्रृंखला के शिखर पर विश्वविद्यालय रहते तथा जड़ में देशी प्राथमिक स्कूल। बीच की कड़ियाँ उच्च तथा माध्यमिक स्कूल बनातीं।

इस सम्बन्ध में संदेश-पत्र ने निस्पन्द सिद्धान्त की निन्दा की, जिसके कारण सरकारी चेष्टा "उच्च जातियों के एक विशिष्ट वर्ग को बहुत उच्च-कोटि की शिक्षा देने" तक सीमित रह जाती थी।‡ संदेश-पत्र की

† It will be advisable to institute, in connection with the Universities, professorships for the purpose of the delivery of lectures in various branches of learning, for the acquisition of which, facilities now do not now exist in other institutions of India. Despatch of 1854—P. 30.

* The grammars of these languages, and their application to the spoken languages of the country, are points to which attention of these professors should be mainly directed.

The Despatch Para 33.

‡ The Despatch..................regretted the adoption of the Downward Filtration Theory which led "to too exclusive a direction of the efforts of Government towards providing the means of acquiring a very high degree of education for a very small number of natives of India drawn, for the most part, from the higher class, Nurulla & Naik—P. 208.

सम्मति में, अब यह समय आ गया था कि निस्पन्द सिद्धान्त को त्याग दिया जाता और सरकारी चेष्टा जन-सामान्य के हर वर्ग के लिये अनुकूल—उपयोगी और व्यावहारिक शिक्षा देने की ओर प्रेरित किया जाता।† इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये यह आवश्यक था कि उच्च स्कूलों की संख्या बढ़ायी जाती। ऐसे उच्च स्कूलों में ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर तथा वर्नाक्यूलर दोनों ही प्रकार के स्कूल शामिल रहते। यद्यपि वर्नाक्यूलर स्कूलों की शिक्षा, ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूलों की शिक्षा से, न्यून थी, फिर भी इन्हें जन-सामान्य की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक था। संदेशपत्र ने यह आशा प्रकट की कि वर्नाक्यूलर भाषाओं के संवर्द्धन तथा सुयोग्य शिक्षकों के आविर्भाव से इन स्कूलों की शिक्षा में पर्याप्त सुधार होगा और ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर तथा वर्नाक्यूलर स्कूलों की शिक्षा में बहुत कम अन्तर रह जायगा।‡

उच्च तथा मिड्ल स्कूलों के नीचे देशी प्राथमिक स्कूल थे, जो कि शृंखला की प्रथम कड़ी थे। इन स्कूलों के सुधार के लिए संदेश-पत्र ने यह सिफारिश की कि इन्हें उपर्युक्त आर्थिक सहायता (ग्रान्ट-इन-एड) दी जाय। इस सम्बन्ध में संदेश-पत्र ने भारत सरकार का ध्यान उत्तर पश्चिम प्रान्त में व्यवहृत थोमसन की योजना की ओर आकृष्ट किया और यह आदेश दिया कि यह योजना, यथासंभव, सभी स्थानों में लागू की जाय।

---

† Our attention should now be directed to a consi deration..................how useful and practical knowledge, suited to every station of life, may be best conveyed to the great mass of the people, who are utterly incapable of obtaining any education worthy of the name by their own unaided efforts, and we desire to see the active measures of Government more specially directed, for the future, to this object, for the attainment of which we are ready to sanction a considerable increase of expenditure. Despatch—Para 41.

‡ But the difference will be less marked, and the latter mere efficient as the gradual enrichment of the Vernacular Languages in works of education allows their schemes of study to be enlarged, and as a more numerous class of school masters is raised up, able to impart a superior education.

Despatch—Para 44.

शृंखला की कड़ियों को अक्षुण्ण तथा सबल बनाने के उद्देश्य से संदेश-पत्र ने छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था की। ये छात्रवृत्तियां होनहार छात्रों को दी जानी चाहिए थीं, ताकि वे प्राथमिक स्कूलों से पास होकर उच्च स्कूल अथवा कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ हो सकते। इससे उच्चतम शिक्षा का द्वार क्रमशः सभी श्रेणी के लोगों के लिए खुल जाता।† शृंखलाबद्ध स्कूलों के संगठन से सम्बन्धित संदेश-पत्र की उपरोक्त सिफारिशों में सरकारी शिक्षा-नीति के कुछ महत्वपूर्ण निर्णय सन्निविष्ट हैं। इन सिफारिशों से यह स्पष्ट हो गया कि :—

(१) सरकार को वर्ग विशिष्ट नहीं अपितु जन सामान्य की शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

(२) प्रादेशिक भाषाओं को माध्यमिक शिक्षा के लिये भी माध्यम स्वीकार करना चाहिये।

(३) देशी प्राथमिक स्कूल राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के शिलाधार हों।

ये तीनों निर्णय आकलैंड के निर्णयों, जिनसे हम परिचित हैं, के विरुद्ध थे। भारतीय शिक्षा के सामान्यीकरण के विचार से इन निर्णयों का, शिक्षा के इतिहास में, महत्वपूर्ण स्थान है।

(४) ग्रान्ट-इन-एड—जन-सामान्य की शिक्षा की उपरोक्त योजना को कार्यान्वित करने के लिये स्पष्टतः बहुत अधिक रुपये की आवश्यकता थी। किन्तु, कम्पनी इतने अधिक खर्च के लिये प्रस्तुत न थी। यद्यपि संचालकों ने तत्कालीन खर्च में कुछ वृद्धि (considerable increase in the expenditure) का आश्वासन अवश्य दिया। इस स्थिति में एक ऐसी युक्ति आवश्यक थी, जिसके द्वारा कम सरकारी खर्च से, अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। अतः संदेशपत्र ने स्कूलों को आर्थिक अनुदान (grant-in-aid) की पद्धति को व्यवहृत करने की सिफारिश की। "इस पद्धति से भारतवासी बहुत पहले से परिचित थे और फलतः इसको वे प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करते। साथ ही इस पद्धति के अनुसरण से गैरसरकारी चेष्टाओं को प्रस्फुटित तथा विकसित होने के अवसर मिलते। गैरसरकारी तथा

† By means of such a system of scholarships as we shall have to describe, would, we firmly believe, impart life and energy to education in India, and lead to a gradual, but steady extension of its benefits to all classes of people.

Despatch—Para 47.

सरकारी प्रयत्नों के संयोग से शिक्षा की प्रगति केवल सरकारी प्रयत्नों की अपेक्षा कहीं तीव्र होती।"* ग्रान्ट-इन-एड को इन खूबियों के विश्लेषण के पश्चात, संदेश पत्र ने कुछ सामान्य शर्त्तों की चर्चा की, जो कि ग्रान्ट-इन-एड स्वीकृत करने के लिये प्रयुक्त की जा सकती थीं। प्रान्तीय सरकारों को इन शर्त्तों के आधार पर 'ग्रान्ट-इन-एड' की नियमावली बनानी थी। इन शर्त्तों के अनुसार, सामान्यतः उन्हीं स्कूलों को आर्थिक सहायता स्वीकृत की जानी चाहिये थी :—

क—जो अच्छी असाम्प्रदायिक शिक्षा देते हों।

ख—जिनका प्रबन्ध स्थानीय लोगों के द्वारा अच्छी तरह होता हो।

ग—जो सरकारी अफसरों के निरीक्षण के लिए तैयार हों, तथा जो सरकार द्वारा निर्धारित अन्य शर्तों को मानने के लिए प्रस्तुत हों।

घ—जो छात्रों से कुछ न कुछ शुल्क लेते हों।

ग्रान्ट-इन-एड की पद्धति को संदेश-पत्र के अनुसार इतना व्यापक बनाना चाहिए था कि इसके द्वारा सभी प्रकार के स्कूलों को सहायता दी जा सकती। सहायता की स्वीकृति विशेष प्रकार के खर्चों के लिए होनी चाहिए थी, जैसे शिक्षकों की वेतन-वृद्धि, छात्र-वृत्तियों का आयोजन-स्कूल का भवन-निर्माण आदि। ग्रान्ट-इन-एड की नियमावली बनाने में इंग्लैंड की ग्रान्ट-इन-एड पद्धति से सहायता लेने की सिफारिश भी संदेश-पत्र ने की, जहाँ यह पद्धति सफलता पूर्वक व्यवहृत की जा चुकी थी।

ग्रान्ट-इन-एड की प्रस्तावित योजना की सफलता पर संदेश-पत्र को इतना विश्वास था कि उसने यह आशा प्रकट की कि 'एक समय ऐसा आयेगा, जब कि अधिकांश सरकारी स्कूल बन्द कर दिये जायंगे और इनके स्थान पर सहायता प्राप्त स्कूल क्रियाशील हो जायंगे।"

सन् १८५४ ई० तक भारत में देशी गैर-सरकारी चेष्टाएं बहुत ही कम संख्या में प्रादुर्भूत हुई थी। यह बात संचालक समिति से छिपी न थी। ऐसी स्थिति में 'ग्रान्ट-इन-एड' पद्धति के विस्तार पर संदेश

---

* We have, therefore, resolved to adopt in India the system of grants-in-aid, which has been carried out in this country with great success, and we confidently anticipate by thus drawing support from local resourses, in addition to contributions from the state, a far more repaid progress of education than would follow a mere increase of expenditure by Government. Despatch—Para 92.

पत्र का इतना जोर आश्चर्यजनक दीख पड़ता है। स्पष्टतः उनका यह जोर धर्म-प्रचारकों के द्वारा प्रभावित था, जो कि उस समय तक गैर-सरकारी संस्था के रूप में भारत में काफी सशक्त हो चुके थे और जो इस बात की कोशिश में थे कि सरकारी कोष से अपने स्कूलों को अधिक से अधिक रुपये प्राप्त किये जायं।*

धर्म-प्रचारकों के प्रति संदेश-पत्र का स्नेह इस बात से भी द्योतित है कि उसने सरकारी तथा गैरसरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के प्रति दोरंगी नीति की सिफारिश की। संदेश-पत्र ने यह इच्छा प्रकट की कि सरकारी निरीक्षक सहायता प्राप्त गैर-सरकारी स्कूलों के निरीक्षण के समय इन स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के विषय पर कुछ भी ध्यान न दें।‡ स्पष्टतः निरीक्षकों के प्रति यह विचार धर्म-प्रचारकों के स्कूलों से ही सम्बन्धित था, क्योंकि उस समय सहायता प्राप्त गैरसरकारी स्कूल केवल धर्म-प्रचारकों के द्वारा ही संचालित थे। किन्तु सरकारी स्कूलों के निरीक्षण में संदेश-पत्र ने धार्मिक शिक्षा के विषय में इतनी छूट न दी। उसने साफ-साफ घोषित किया कि सरकारी स्कूलों की शिक्षा पूर्णतः असाम्प्रदायिक हो। इन स्कूलों में ईसाई धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें पुस्तकालय में रखी जा सकती थीं और इस धर्म पर छात्र स्कूल-घंटे के बाद शिक्षकों से पूछ-ताछ कर सकते थे। यदि इस तरह की धार्मिक शिक्षा किसी स्कूल में होती हो, तो निरीक्षकों को इस पर एत-

---

‡ We look forward to the time when,..................with the gradual advance of the system of grant-in-aid many of the existing Govt. institutions, especially those of the higher order, may be safely closed, or transfered to the management of the local bodies.

Despatch—Para 62

† And as missionaries like Dr. Duff had a distinct influence in the shaping of the famous despatch, it was perfectly clear that the main tendency of the new grant-in-aid system was to encourage the various missions to engage in the very congenial work of elementarv education to a larger extent than ever before.

Richter—A History of Missions in India P. 180

राज नहीं होना चाहिए।‡ इस तरह, धर्म-प्रचारकों के स्कूलों के निरीक्षण में निरीक्षकों को धार्मिक शिक्षा की ओर दृष्टि ही न डालनी थी, किन्तु सरकारी स्कूलों में उन्हें यह देखना था कि किसी भी रूप में धार्मिक चर्चा स्कूल-घंटे में न हो।

(५) शिक्षकों का प्रशिक्षण—संदेश पत्र ने शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था का भी आदेश दिया। इङ्गलैण्ड का उदाहरण देते हुए इसने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा के सुधार के लिए सुयोग्य शिक्षकों का होना अत्यावश्क था। इङ्गलैंड की अपेक्षा भारत में सुयोग्य शिक्षकों की कमी अधिक थी। अतः भारतीय शिक्षा के सुधार के लिये शिक्षकों को प्रशिक्षित करना, और भी जरूरी था। इसके लिए यह आवश्यक था कि भारत के हर अंग्रेजी प्रान्त में, जहाँ तक शीघ्र हो सके, प्रशिक्षण स्कूल तथा प्रशिक्षण कक्षायें खोली जाँय।† इस सिलसिले में संदेश-पत्र ने यह भी सिफारिश की कि सुयोग्य शिक्षकों का वेतन बढ़ाया जाना चाहिये और इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि शिक्षण-व्यवसाय भी, अन्य सरकारी नौकरियों की तरह, आकर्षक हो जाय। *

---

‡In their periodical inspection no notice whatsoever should be taken by them of the religious doctrines which may be taught in any school.

Despatch Para 56.

Such instruction being entirely voluntary on both sides it is necessary, in order to prevent slightest suspicion of an intention on our part to make use of the influence of Government for the purpose of proselytism, that no notice shall be taken of it by the inspectors in their periodical visits.

Despatch—Para 84

† This deficiency has been more palpably felt in India, as the difficulty of finding persons properly educated for the work of tution is greater, and we desire to see the establishment with as little delay as possible, of training schools and classes for masters in each Presidency in India.

Despatch—Para 67.

* Our wish is that the profession of school masters may for the future afford inducements to the natives of India such as are held out in other branches of public services.

Despatch—Para 69.

(६) शिक्षा और रोजगार—शिक्षा के प्रति लोगों का रूझान लाने के लिए संदेश-पत्र ने यह आदेश दिया कि सभी सरकारी नौकरियों में शिक्षित व्यक्तियों को अशिक्षितों पर तरजीह दी जाय। छोटी नौकरियों भी इस बात पर ध्यान दिया जाय कि निरक्षर उम्मीदवारों के बदले साक्षरों को नियुक्त किया जाय। किन्तु सरकारी नौकरियाँ शिक्षा-प्राप्ति के एकमत्र ध्येय न समझी जायं। लोगों को यह समझना चाहिए कि शिक्षित होने के अन्य उपयोग तथा लाभ हैं, जो कि सबों के लिए समान रूप से प्राप्त हो सकते हैं। †

(७) स्त्री शिक्षा—भारत में स्त्री शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता को संदेश-पत्र ने पूर्णतः स्वीकार किया और यह इच्छा प्रकट की कि सरकारी चेष्टा, इस दिशा में, पूर्ववत् जारी रहे तथा स्त्री शिक्षा के स्कूलों को सरकारी सहायता मिलती रहे। साथ ही, संदेश-पत्र ने यह भी सिफारिश की कि स्त्री शिक्षा में संलग्न गैर-सरकारी भारतीय चेष्टाओं को पूरा प्रोत्साहन दिया जाय। † इनके अलावे, संदेश-पत्र ने कुछ अन्य समस्याओं पर भी विचार प्रकट किये, जिनमें व्यावसायिक-शिक्षा की आवश्यकता तथा आयोजन, पाठ्य पुस्तकों के लेखन तथा प्रकाशन आदि प्रमुख थे।

एक समीक्षा

ऊड का संदेश पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक लम्बे संघर्ष का पटाक्षेप है। इन संघर्षों की जानकारी हमें हो चुकी हैं। ऊड के संदेश-पत्र ने इन संघर्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया तथा इनके सम्बन्ध में अपना निश्चित विचार जोरदार शब्दों में

---

† But, however large the number of appointments under Government may be, the views of the natives of India should be directed to the far wider and more important sphere of usefulness and advantages which a liberal education lays open to them.

Despatch—Para 78

‡ We have already observed that schools for females are included among those to which grants-in-aid may be given; and we can not refrain from expressing our cordial sympathy with the efforts which are being made in this direction.

Despatch—Para 83

प्रकट किया। यह सही है कि संदेश-पत्र के पहले ही इन संघर्षों के सम्बन्ध में निर्णय किये जा चुके थे। किन्तु इन निर्णयों की पुनावृत्ति कर, तथा इन्हें वैधानिक महत्त्व देकर, संदेश-पत्र ने भारतीय शिक्षा पद्धति में निश्चितता तथा व्यवस्था लायी, जो पहले न थी। साथ ही सन्देश-पत्र का दृष्टिकोण कुछ इतना उदार था कि दलबंदियों के संकीर्ण विचारों का समावेश इसमें नहीं हुआ। प्रचलित भाषा के सम्बन्ध में भी संदेश-पत्र के विचार प्रसंशनीय थे। यदि ये विचार कार्यान्वित होते, तो भारतीय शिक्षा का बड़ा हित हुआ रहता। स्कूलों के सम्बन्ध में भी संदेश-पत्र के निर्णय प्रशंसा के पात्र हैं, पर इनकी भी अवहेलना की गयी। ग्रान्ट-इन-एड प्रथा कि सिफारिश संदेश-पत्र ने अच्छी नियत से की थी। किन्तु इससे धर्म-प्रचारकों को ही अधिक लाभ हुआ। भारतीय प्रयत्न तब तक बहुत कम प्रस्फुटित हुए थे। इस लिये संदेश-पत्र का 'स्थानीय प्रयत्नों को प्रश्रय देने' का उद्देश्य बहुत दिनों तक कार्यान्वित न हो सका। साथ ही ग्रान्ट-इन-एड की नीति को उतना व्यापक न बनाया गया, जितना कि संदेश-पत्र ने कल्पना की थी। साम्प्रदायिकता का विरोध करते हुए भी संदेश-पत्र धर्म-प्रचारकों के विद्यालयों के प्रति निष्पक्ष नहीं था। इन प्रचारकों के लिये अपने विद्यायलों में बाइबुल पढ़ाने की इजाजत जारी रही। जैसा कि हम कह चुके हैं, निरीक्षकों को आदेश था कि अपने निरीक्षण में वे इस बात पर ध्यान न दें।

संदेश पत्र का एक बहुत बड़ा कार्य निस्यंद सिद्धान्त (Filtration theory) का परित्याग था। इससे भारतीय शिक्षा का वृत्त कुछ विस्तृत अवश्य हुआ, यद्यपि इसके प्रयत्न बहुत सीमित रहे। भविष्य के कार्य-क्रम की सुव्यवस्थित योजना प्रस्तुत कर संदेश पत्र ने भारतीय शिक्षा का बड़ा हित किया। हम आगे देखेंगे कि इस योजना का पूर्ण विकास नहीं हुआ। किन्तु जो कुछ भी कार्य इसके आधार पर हो सका, उसका श्रेय संदेश-पत्र को अवश्य है। सभी प्रान्तों में शिक्षा विभाग की स्थापना शीघ्र की गयी, तथा कलकत्ता बम्बई एवं मद्रास में विश्व विद्यालय स्थापित किये गये। उच्च तथा माध्यमिक स्कूलों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। देशी प्राथमिक स्कूलों के पुनरुत्थान की ओर भी कुछ प्रयत्न हुए।

इन सब विशेषताओं के समक्ष भी यह कहना युक्तिसंगत नहीं कि ऊड का संदेश-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में इगलैंड के

'मैगना कार्टा' का महत्त्व रखता है! सुप्रसिद्ध विद्वान परांजपे के अनुसार ऊड के संदेश-पत्र ने न प्रत्येक भारतीय की शिक्षा-व्यवस्था की और न शिक्षा का उद्देश्य ही ऐसा निर्धारित किया, जो कि भारतीयों को उनके सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख करता। फलत: उनके मत में संदेश-पत्र को शिक्षा सम्बन्धी व्यापक अधिकार पत्र की संज्ञा नहीं मिलनी चाहिये।† संदेश-पत्र की कुछ सिफारिशें ऐसी थी जो, आधुनिक दृष्टिकोण से देखे जाने पर, संकीर्ण तथा रूढ़िवादी प्रतीत होती हैं। जन सामान्य की शिक्षा के सम्बन्ध में संदेश-पत्र ने ऐसी शिक्षा की व्यवस्था का आदेश दिया जो कि हर व्यक्ति की स्थिति के अनुकूल (suited to every station in life) हो आज के गणतांत्रिक युग में शिक्षा का वर्गीय विभेद अवश्य ही [illegible] सा लगता है। इसी तरह संदेश-पत्र की यह मनोकामना कि शिक्षा प्रसार से भारतीय इंगलैंड के कारखानों के लिए कच्चे माल भेजेगें और स्वंय इन कारखानों के उत्पादक स्थायी ग्राहक बन जयंगे उस पूंजी-वादी और औपनिवेशिक मनोवृति को द्योतित करती है, जो कि आज भी मानवता के अभिशाप के रूप में कहीं कहीं प्रतिष्ठित है।

इन त्रुटियों के समक्ष भी ऊड के संदेश पत्र ने भारतीय शिक्षा के विकास के लिये जो लक्ष्य निर्धारित किये, वे तत्कालीन परिस्थिति के विचार से ओछे न थे। यदि संदेश-पत्र के आदेशों तथा परामर्शों को पूर्णत: कार्यान्वित किया जाता, तो आज भारतीय शिक्षा की स्थिति कुछ दूसरी होती। यदि संदेश-पत्र की आशायें पूरी न हो सकीं तो इसका उत्तरदायित्व संदेश पत्र पर नहीं, वल्कि उनलोगों पर है, जिनके जिम्मे संदेश-पत्र की सिफारिशों को अमली जामा पहनाने का भार था। फिर भी, आधुनिक शिक्षा की जो भी उपलब्धियाँ अंग्रेजी शासन काल में हुईं, उनका अधिकांश श्रेय संदेश पत्र को ही है।

† But inspite of all these features it would be incorrect to describe the educational Despatch of 1854 as an educational charter-Paranjpe Progress of Education. 51—52

पांचवां अध्याय

आधुनिक शिक्षा का तृतीय चरण

१८५४-१९०२

सामान्य परिचय

वुड के संदेश-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक सुनहले युग का आवाहन किया। किंतु, जैसा कि हम आगे देखेंगे, संदेश-पत्र के सपने वास्तविक सिद्ध न हो सके और भारतीय शिक्षा की वह प्रगति न हो सकी, जिसकी कल्पना संदेश-पत्र ने की थी। सन १८५५-६ में अंग्रेजी भारत के विभिन्न प्रान्तों में 'शिक्षा विभाग' का संगठन हुआ। सन् १८५७ ई० में विश्वविद्यालयों की स्थापना भी हुई। किंतु, इससे अधिक संदेश-पत्र के आदेशों को कार्यान्वित करने की चेष्टा न हो सकी। शीघ्र ही सन् १८५७ ई० में राष्ट्रीय क्रान्ति हुई, जिसके फलस्वरूप भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य का अंत हो गया और भारत का शासन सीधे अंग्रेजी राजमुकुट (British crown) के अधीन हो गया। इस महत्वपूर्ण घटना का प्रभाव भारतीय शिक्षा के इतिहास पर कई रूपों में पड़ा।

सन् १८५४ ई० के पहले भारत में अंग्रेजों की चेष्टायें अधिकांशतः अंग्रेजी राज्य के विस्तार, अंग्रेजी प्रभुत्व के प्रतिष्ठापन तथा विजित राज्यों के संगठन की ओर केन्द्रित थीं। देशी राज्यों से संघर्ष के फलस्वरूप सन् १८५४ ई०के पहले भारत का राजनीतिक वातावरण बहुत ही अशान्त था। किंतु सन् १८५७ ई० तक अंग्रेजी राज्य में भारत का लगभग २/३ भाग सम्मिलित हो गया था। शेष १/३ भाग पर भी अंग्रेजी प्रभुत्व पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापित हो गया था। इस तरह, सन् १८५७ ई० के बाद भारत का राजनीतिक वातावरण लगभग शान्त हो गया। यद्यपि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हो चुका था, किंतु इस सदी के अन्त तक इसका रूप शान्ति-प्रधान रहा, जिससे भारत की राजनीतिक स्थिति में किसी प्रकार का क्षोभ अथवा हिलोरें न उत्पन्न हुईं। देश का यह शान्तिमय युग, जो कि विक्टोरिया युग (Victorian era) कहा जाता है, शिक्षा की प्रगति के लिये अत्यन्त उपयुक्त था।

राजनीतिक शान्ति के साथ साथ, अंग्रेजी सरकार को, सन् १८५६ ई० के बाद, भारतीयों की सहानुभूति भी सामान्यतः प्राप्त हुई। मुगल साम्राज्य के पतन-काल में, केन्द्रीय शासन अत्यन्त ढीला पड़ गया था, जिससे देश में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विशृंखलताएं सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही थीं। भारतीय जनता त्राहि त्राहि कर रही थी। अंग्रेजी साम्राज्य तथा प्रभुत्व के प्रतिष्ठापन से देश में जो शान्ति स्थापित हुई, वह उत्पीड़ित भारतीय जनता के लिए आषाढ़ की प्रथम फुहार की भांति शीतल तथा स्निग्ध प्रतीत हुई। इस सुखद फुहार के पीछे आंधी और तूफान, बिजली और कड़क भी थीं—इसका भान लोगों को उस समय स्वभावतः न हुआ था। अतः भारतीय जनता अंग्रेजी राज्य को प्रारम्भ में बड़ी ही श्रद्धा, भक्ति तथा संतोष के साथ ग्रहण कर रही थी। लोगों को यह भी विश्वास होने लग गया था कि भारत का कल्याण अंग्रेजी शासन के कायम रहने में ही था और इसकी छत्रछाया में ही भारत के लोग सुखी तथा संपन्न हो सकते थे। अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीयों की यह श्रद्धा अंग्रेजी सभ्यता, साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान की ओर अनुसृत हो गयी। अब, भारतीय पाश्चात्य ज्ञान तथा अंग्रेजी साहित्य के प्रति पहले की भांति सशंकित न रहे। अपितु, वे इनके अध्ययन की ओर बड़े चाव से झुकने लगे। आधुनिक शिक्षा पद्धति के विकास में भारतीयों की इस परिवर्तित मनोवृत्ति ने बड़ा योग दिया। गैरसरकारी रूप में, भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में, अग्रसर होने लगे और १९ वीं सदी के समाप्त होते होते आधुनिक ढंग के अधिकांश विद्यालय भारतीयों के द्वारा आयोजित तथा संचालित हो गये।

जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, सन् १८५७ ई० की राष्ट्रीय क्रान्ति के फलस्वरूप भारत में कम्पनी राज्य का अन्त हो गया। अतः शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से, कम्पनी के शासन के अन्त के साथ साथ कम्पनी सरकार के अधीन भारतीय शिक्षा के दिन भी बीत गए। अब, भारतीय शासन के साथ-साथ भारतीय शिक्षा का उत्तरदायित्व भी सीधे अंग्रेजी राजमुकुट अथवा पार्लियामेन्ट के जिम्मे आ गया। इंग्लैंड की सरकार अब, भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में, बिना किसी अड़चन के, अपनी नीति निर्धारित कर सकती थी। भारतीय शासन की देखरेख के लिए अब इंग्लैंड में भारत-सचिव (Secretary of state for India) नियुक्त हुए।

किन्तु, व्यवहारतः, भारतीय शिक्षा के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व गवर्नर-जेनरल के द्वारा वहन होने लगा और लन्दन की अपेक्षा कलकत्ता ही इसका नेतृत्व करने लगा। सन् १८५७ ई० के पश्चात भारत सरकार ने शिक्षा की ओर अत्यधिक रूचि दिखलायी। फलतः इसके सुधार के लिए कई आयोग नियुक्त हुए, तथा अन्य प्रकार के कार्य हुए, जिनका परिचय हम आगे यथास्थान प्रस्तुत करेंगे।

फिर भी, भारतीय शिक्षा की प्रगति उतनी न हो सकी, जितनी होनी चाहिए थी। इसका प्रधान कारण यह था कि सन् १८५७–१९०२ की अवधि में, शिक्षा की मद में, बहुत कम रुपये सरकारी कोष से उपलब्ध रहे। यद्यपि सरकारी आय पहले की अपेक्षा बढ़ गयी थी और सरकार का युद्ध-जनित खर्च, कम हो गया था, शिक्षा के लिए सरकार की ओर से वांछित रकम न प्राप्त हो सकी। इस स्थिति के कई कारण थे, जिनमें प्रमुख यह था कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच देश की आय का संतुलित वितरण न होता था तथा भारत सरकार की दृष्टि में शिक्षा का महत्व उतना बड़ा न समझा जाता था, जितना अपेक्षित था। इस स्थिति के सुधार के लिए कई योजनाएं व्यवहृत की गयीं, किन्तु इनसे प्रान्तीय सरकारों की आय में आशातीत वृद्धि न हो सकी। शिक्षा का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों के जिम्मे था। किन्तु उपर्युक्त कारणों से, उनकी आय उतनी क्षीण थी कि इस कार्य के लिए वे पर्याप्त रकम खर्च न कर सकते थे। कालेज और उच्च स्कूलों के लिए तो कुछ रुपये मिल जाते थे, किन्तु जन-सामान्य की शिक्षा की व्यवस्था, अर्थाभाव के कारण, न हो सकती थी। फलतः सन् १८५४-१९०२ की अवधि में उच्च और माध्यमिक शिक्षा की तो कुछ प्रगति हुई, किन्तु प्राथमिक शिक्षा लगभग उपेक्षित ही रही।

जहाँ तक शिक्षा सम्बन्धी नीति का प्रश्न था, सन् १८५४–१९०२ का समय संघर्षों से अपेक्षाकृत मुक्त रहा। सन् १८५४ के संदेश-पत्र ने पुराने संघर्षों का अन्त कर दिया था और भविष्य के लिए एक सुव्यवस्थित योजना उपस्थित कर दी थी। इससे सामान्यतः पुराने संघर्षों को सर उठाने का मौका न मिला और शिक्षा के प्रसार के लिए एक प्रशस्त मार्ग तैयार हो गया था। किन्तु, ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए कि उपर्युक्त अवधि में शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में किसी तरह का मतभेद ही न उपस्थित हुआ। हर युग की विशिष्ट समस्याएं

होती हैं, और इन समस्याओं का प्रभाव उस युग की शिक्षा पर पड़ना भी अवश्यंभावी होता है। अस्तु, १८५४–१६०२ में भी शिक्षा सम्बन्धी संघर्ष उपस्थित अवश्य हुए। किन्तु उनका महत्व पहले की अपेक्षा कम रहा। इस काल में संघर्षों की अपेक्षा शिक्षा की उपलब्धियाँ ही प्रमुख रहीं। इसी काल में कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद तथा लाहौर में विश्वविद्यालय कायम हुए; हर प्रान्त में शिक्षा विभाग की स्थापना हुई; सरकार के द्वारा अनेक उच्च स्कूलों का निर्माण हुआ; गैरसरकारी स्कूलों के लिए ग्रान्ट-इन-एड की व्यवस्था की गयी; तथा अन्य रूपों में शिक्षा की समुन्नति हुई। यदि इस काल में शिक्षा-प्रसार के लिए पर्याप्त रुपये उपलब्ध रहते, तो शिक्षा की प्रगति और भी अधिक हुई रहती।

भारतीय शिक्षा आयोग
(Indian Education Commission)

सन् १८८२ ई० तक ऊड के संदेशपत्र के अनुसार भारत में शिक्षा प्रसार का कार्य लगभग २८ वर्षों तक चल चुका था; और इस सम्बन्ध में कई प्रश्न उपस्थित हो चुके थे। अब यह आवश्यक हो गया था कि सन् १८५४–१८८२ ई० तक शिक्षा की उपलब्धियों की जांच की जाय और यह देखा जाय कि ऊड के संदेशपत्र के आदेशों का पालन किस हद तक हुआ था। दूसरी ओर, जैसा कि हम आगे देखेंगे, ऊड के संदेशपत्र से भारत में कार्य करने वाले विदेशी धर्म-प्रचारकों को विशेष लाभ न हुआ, जिसकी आशा उन्हें थी। उन्होंने यह कहना शुरु किया कि संदेश-पत्र के अनुसार भारतीय शिक्षा संचालित नहीं हो रही थी। अतः यह आवश्यक हो गया कि भारतीय शिक्षा की तत्कालीन स्थिति की जाँच के लिए एक आयोग नियुक्त किया जाय। सन् १८८२ ई० का भारतीय शिक्षा आयोग इसी का प्रतिफल था। आयोग के अध्यक्ष श्री डब्ल्यू० डब्ल्यू० हन्टर (W. W. Hunter) थे, इसके सदस्यों में कई भारतीय भी थे। आयोग का प्रधान कार्य 'सन १८५४ ई० के संदेशपत्र को कार्यान्वित करने की रीति की जांच करना और इसकी नीति के अनुसार शिक्षा के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए उचित परामर्श देना" था।

आयोग ने सरकार के निर्देशों के अनुसार, भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में पूरी जांच-पड़ताल की। इस तरह की सर्वांगीण जांच भारतीय शिक्षा के विषय में पहले कभी न हुई थी। आयोग की

रिपोर्ट भी स्वभावतः बहुत ही व्यापक हुई। भारतीय शिक्षा के इतिहास में भारतीय शिक्षा आयोग की इस रिपोर्ट का विशिष्ट महत्व है। सन् १८५४ के संदेशपत्र में निर्धारित नीतियों से रिपोर्ट ने अपनी सहमति प्रकट की और इन्हें पूरी तरह कार्यान्वित करने के लिए, भारतीय शिक्षा के सभी प्रमुख पहलुओं के सम्बन्ध में, अपने सुझाव दिये। इनका विवरण हम आगे यथास्थान प्रस्तुत करेंगे। अपनी जांच के सिलसिले में आयोग ने प्रान्तीय कमिटियां नियुक्त कीं, बहुत से लोगों के बयान लिये और अनेक स्मृतिपत्र प्राप्त किये। इससे आयोग को भारतीय शिक्षा की वास्तविक स्थिति को जानने में सुविधाएं मिलीं और सरकारी नीति के प्रति भारतीयों की क्या क्या प्रतिक्रियाएं थीं इनका भी अन्दाज लगा। साथ ही आयोग की देश-व्यापी जांच से, समस्त भारत में शिक्षा के प्रति एक जागरुकता उत्पन्न हो गयी, जो कि शिक्षा के भारतीयकरण में बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई।

सन् १८५४–८२ में शिक्षा की प्रगति

उपर्युक्त सामान्य परिचय के साथ हम सन् १८५४–८२ की अवधि की शिक्षा की प्रगति, निम्नलिखित उप-विभागों में, वर्णित करते हैं:—

१—शिक्षा-विभागों का निर्माण तथा विकास
२—शिक्षा के साधनों का भारतीयकरण
३—ग्रान्ट-इन-एड पद्धति का विकास
४—विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा
५—माध्यमिक शिक्षा
६—प्राथमिक शिक्षा
७—स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा आदि

---

† It will be the duty of the commission to enquire particularly.........into the manner in which effect has been given to the principles of the Despatch of 1854, and to suggest such measures as it may think desirable in order to the further carrying out of the policy therein laid down—Resolution.

१. शिक्षा विभागों का निर्माण तथा विकास

सन् १८५४ ई० के पहले भारत में आधुनिक शिक्षा विभाग के जैसा कोई सरकारी संस्था का जन्म न हुआ था। किन्तु, हम देख चुके हैं कि बम्बई तथा उत्तर-पश्चिम प्रान्त में स्कूलों के निरीक्षण के लिये निरीक्षण विभाग जा चुके थे। ये सरकारी निरीक्षण विभाग, कई दृष्टि से, आधुनिक शिक्षा विभाग के पूर्ववर्ती रूप कहे जा सकते हैं। बम्बई का 'बोर्ड ऑफ एजुकेशन', जो कि सन् १८४० ई० में स्थापित हुआ थ, प्रान्त के सभी स्कूलों का प्रबंध करता था। बोर्ड प्रान्तीय सरकार के अधीन था। गवर्नर-इन-कौंसिल बोर्ड को अन्तिम आदेश दिया करता था। बोर्ड ने, अपने कार्यों के निवाह तथा सुप्रबन्ध के लिये, बम्बई प्रान्त को तीन प्रमण्डलों में बांट दिया था। प्रत्येक प्रमण्डल की शिक्षा की देख-रेख का उत्तरदायित्व एक विशेष शिक्षा अधिकारी के ऊपर था, जो कि अधीक्षक (सुपरिंटेंडेंट) कहा जाता था। प्रारम्भ में ये अधीक्षक अंशकालिक (part time) कार्य-कर्ता के रूप में अपना कार्य करते थे। किन्तु स्कूलों के विस्तार के साथ पूर्णकालिक (whole time) अधीक्षक नियुक्त होने लगे। इस तरह बम्बई प्रान्त में, आधुनिक शिक्षा-विभाग की रूपरेखा प्रस्तुत हो गयी थी। ऊड के संदेश-पत्र ने इस रूपरेखा को पल्लवित कर एक सुव्यवस्थित शिक्षा-विभाग का जन्म दिया। उत्तर-पश्चिम प्रान्त में भी, जैसा कि इस पुस्तक में पहले कहा जा चुका है, थोमसन ने स्कूलों के निरीक्षण के लिये एक सरकारी विभाग स्थापित किया था, जिसमें परगना निरीक्षक, जिला निरीक्षक तथा निरीक्षक प्रधान—ये तीन प्रकार के अधिकारी, स्कूलों के निरीक्षण के लिये, प्रतिष्ठित थे। अतः उत्तर-पश्चिम प्रान्त में ऊड के संदेश-पत्र के अनुसार, शिक्षा विभाग के संगठन में देर न लगी। तत्कालीन शिक्षा-विभाग ही कुछ सामान्य हेरफेर के साथ, ऊड के द्वारा आदेशित शिक्षा विभाग के रूप में बदल गया।

इन दो प्रान्तों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में शिक्षा-विभाग के निर्माण का पूर्ण श्रेय ऊड के संदेश-पत्र को ही प्राप्त है। संदेश-पत्र के अनुसार सभी प्रान्तों में शिक्षा-विभाग का निर्माण शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिये था। अतः, इस दिशा में प्रान्तीय सरकारों ने शीघ्र कार्य करना शुरू कर दिया और सन् १८५६ ई० के अन्त तक तत्कालीन

सभी अंग्रेजी प्रान्तों में राजकीय शिक्षा-विभाग क्रियाशील हो गये। राज्य विस्तार अथवा प्रान्तीय शासन के पुनर्गठन के परिणाम स्वरूप जो नये प्रान्त सन् १८५४ ई० के बाद कायम हुए, उनमें भी शिक्षा-विभाग की व्यवस्था प्रारम्भ से ही की गयी। इन प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के कार्य मुख्यतया ये थे :—

(१) प्रान्त की शिक्षा-संबंधी सभी प्रश्नों पर प्रान्तीय सरकार को परामर्श देना।

(२) प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों के द्वारा शिक्षा के लिये प्रदत्त सभी रुपयों के खर्च का प्रबन्ध करना।

(३) कुछ स्कूलों को सरकार की ओर से स्वयं चलाना।

(४) उन गैरसरकारी स्कूलों का निरीक्षण करना, जो कि स्वीकृति तथा आर्थिक अनुदान के लिये शिक्षा विभाग के प्रार्थी हों।

(५) अपने प्रान्तों को शिक्षा की प्रगति के संबंध में वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना तथा इसे प्रकाशित करना।

(६) शिक्षा के सुधार तथा विस्तार के लिये अन्य प्रकार के कार्यों का करना।

संदेश-पत्र ने यह आदेश दिया था कि शिक्षा-विभाग के प्रधान, निरीक्षक, तथा अन्य अधिकारी ऐसे व्यक्ति हों जो कि न केवल बहुत ही सुयोग्य हों, बल्कि जो भारतीयों का विश्वासपात्र बन सकें। इस संबंध में संदेश-पत्र ने यह परामर्श दिया कि शुरू में इन पदों पर आई. सी. एस. के लोग ही नियुक्त किये जायं। इन अधिकारियों का पारिश्रमिक ऐसा रखा जाना चाहिये था कि इनके पदों का महत्व, सार्वजनिक रूप से, स्वीकृत किया जा सकता।

इन आदेशों के अनुसार कुछ प्रान्तों के लोक शिक्षा निर्देशक (Director of Public Instruction) आई. सी. एस. के सदस्यों से ही चुने गये। कई स्थानों में निरीक्षक के पद पर भी आई. सी. एस. के नये लोग नियुक्त हुए। उनका वेतन भी काफी अधिक रखा गया। उदाहरणार्थ, बम्बई प्रान्त के लोक-शिक्षा निर्देशक का वेतन २००० रु० २५०० रु० से मासिक रखा गया। किंतु शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों के संबंध में, सदेश-पत्र की उपर्युक्त नीति, संचालक-समिति के द्वारा शीघ्र ही त्याग दी गयी। शिक्षा विभाग के उच्च पदों पर आई. सी. एस. के सदस्यों की नियुक्ति बन्द

हो गयी। अब जो लोग इन पदों पर नियुक्त होने लगे, उनका वेतन भी आई. सी. एस. के सदस्यों से बहुत कम रखा गया। इसका फल यह हुआ कि शिक्षा-विभाग में औसत दर्जे के लोग स्थान पाने लगे, जो कि योग्यता, चरित्र तथा अन्य बातों में संदेशपत्र के निर्धारित मानदण्ड से बहुत ही नीचे थे। इसके साथ ही, विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा-विभाग के अधिकारियों का वेतन विभिन्न ढंग से रखा जाने लगा, जिससे एक ही प्रकार के पदाधिकारी के वेतन में, विभिन्न प्रान्तों में, काफी अन्तर पड़ने लगा। इन त्रुटियों को दूर करने के निमित्त बम्बई के लोक-शिक्षा निर्देशक सर अलेक्जेण्डर ग्रान्ट ने "शिक्षा सेवा" निर्माण के लिये एक योजना उपस्थित की। इस योजना के अनुसार बम्बई प्रान्त के लिये शिक्षा सेवा के दो वर्ग रखे गये—एक विशिष्ट दूसरा सामान्य। सेवा के किसी भी सदस्य का वेतन ५०० रु० मासिक से कम न हो सकता था। वेतन की उच्चतम सीमा भी निर्धारित कर दी गयी थी। किंतु यह सीमा विभिन्न अधिकारियों के लिये विभिन्न थी। लोक-शिक्षा-निर्देशक का वेतन पहले की भांति २५०० रु० रहना चाहिये था। बम्बई सरकार ने सर ग्रान्ट की योजना स्वीकृत कर ली। उसने भारत सरकार को यह सिफारिश की कि ग्रान्ट की योजना के आधार पर, एक अखिल भारतीय शिक्षा-सेवा विभाग संगठित किया जाय। भारत सरकार ने यह सिफारिश मंजूर न की। किंतु, उसने शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के वेतन में सुधार का आदेश दिया और फलतः उनकी कई असुविधायें दूर करदी गयीं। प्रान्त प्रान्त के पदाधिकारियों के वेतन की विभिन्नता बहुत हद तक, दूर कर दी गयी। सन् १८८२ ई० तक भारत के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की एक सुव्यवस्थित शृंखला तैयार हो गयी थी। इस शृंखला में विभिन्न श्रेणी के निरीक्षक संगुफित थे। निरीक्षकों की क्रम-बद्ध श्रेणियां विभिन्न प्रान्तों में एक ही न थीं। कहीं दो ही श्रेणी के निरीक्षक थे, कहीं तीन श्रेणी के, कहीं चार श्रेणी के। इनके प्रान्तीय नाम भी भिन्न भिन्न थे। निरीक्षकों की संख्या भी सभी प्रान्तों में समान न थी, कहीं ज्यादा कहीं कम। सन् १८८२ ई० में कुल मिलाकर समस्त भारत में, ४५ इन्सपेक्टर तथा असिस्टेंट इन्सपेक्टर थे, २३८ डिप्टी इन्सपेक्टर तथा २४१ सब-इन्सपेक्टर। प्रति निरीक्षक के जिम्मे औसतन १३३ स्कूल थे। स्पष्टतः एक निरीक्षक के लिये १३३ स्कूलों का निरीक्षण करना बहुत ही कठिन था। आधुनिक दृष्टिकोण से एक

निरीक्षक के अधीन अधिक से अधिक ६० स्कूल रहने चाहिये। स्कूलों की अधिक संख्या के कारण सन् १८८२ में स्कूलों के निरीक्षण की द्वैध प्रणाली प्रचलित थी। इसके अनुसार स्कूल का निरीक्षण दो तरह से किया जाता था—स्थानिक (in situ) निरीक्षण तथा कैन्द्रिक (at centres) निरीक्षण। पहले के अनुसार निरीक्षक स्कूल पर स्वयं पहुंच कर उसका सर्वांगीण निरीक्षण करते थे। दूसरे के अनुसार निरीक्षक किसी सुविधाजनक केन्द्र-स्थान में डेरा डालते थे और आसपास के सभी स्कूलों को यहीं बुलावते थे और उनका निरीक्षण करते थे। स्पष्टतः दूसरी प्रणाली का निरीक्षण आंशिक निरीक्षण ही होता होगा। किंतु, निरीक्षकों के कमी के कारण यह पद्धति दोषपूर्ण होने पर भी, व्यवहृत हो रही थी। सन् १८८२ ई० तक शिक्षा विभाग के उच्च पदों पर भारतीय बहुत ही कम थे। बगांल में ऐसे भारतीय अधिकारियों की संख्या ३७ में केवल ७ थी।

भारतीय शिक्षा आयोग (१८८२ ई०) ने शिक्षा विभाग के सुधार के लिए निम्नलिखित सिफारिशें कीं :—

(क) हर प्रान्त की आवश्यकता के अनुसार निरीक्षकों की संख्या बढ़ायी जाय।

(ख) हर प्रान्त में अवर (subordinate) निरीक्षकों के पारिश्रमिक में सुधार किया जाय।

(ग) यह स्पष्ट कर दिया जाय कि निर्धारित योग्यता के भारतीय "इन्सपेक्टर आफ स्कूल" के पद पर आसीन हो सकते हैं। सुयोग्य भारतीयों की नियुक्ति इस पद पर पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में हुआ करे।

(घ) जहाँ तक संभव हो, स्कूलों के स्थानिक निरीक्षण की पद्धति व्यवहृत की जाय। सहायता-प्राप्त प्राथमिक स्कूलों का निरीक्षण स्थानिक ही हो।

किंतु इन सिफारिशों को कार्यान्वित करने की ओर कम चेष्टा हुई। अतः आयोग के सिफारिशों के कुछ वर्ष बाद तक भी भारत के शिक्षा विभागों की स्थिति में सुधार न हो सका।

सन् १८८६ ई० में, लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) ने शिक्षा विभाग की सेवा के सुधार के लिए कई सिफारिशें कीं। इन में प्रमुख ये थीं :—

(१) उच्च सेवा की क्रम-बद्ध श्रेणी (graded list) का अन्त कर दिया जाय।

(२) उच्च पदों की सभी नियुक्तियां इंगलैंड में हों।

इन सिफारिशों के आधार पर भारत-सचिव (Secretary of State for India) ने सन् १८६६ ई० में निम्नलिखित आदेश जारी किये।

(१) शिक्षा विभाग की सेवायें दो बड़े विभागों में बांटी जायं—श्रेष्ठ सेवायें तथा अवर सेवायें। श्रेष्ठ सेवा के भी दो विभाग हों—भारतीय शिक्षा सेवा (Indian Educational Service) तथा प्रान्तीय शिक्षा सेवा (Povincial Educational Service) भारतीय शिक्षा सेवा के सभी नियुक्तियां इंगलैंड में हों। प्रान्तीय सेवा की नियुक्तियां भारत में ही हों।

(२) प्रान्तीय सेवा में सामान्यत: प्रोफेसर, इन्सपेक्टर, संयुक्त तथा सहायक इन्सपेक्टर के पद सम्मिलित रहें। डिप्टी-इन्सपेक्टर, जिला स्कूल के हेडमास्टर तथा निम्न श्रेणी के अधिकारी – ये सब पद अवर सेवा में सन्निविष्ट हों।

(३) भारतीय शिक्षा सेवा के पदाधिकारियों का वेतन ५००–५०–१००० रु० प्रति मास हो। विशिष्ट योग्यता के व्यक्तियों को अधिक वेतन भी स्वीकृत किया जाय।

भारत सचिव के इन आदेशों के अनुसार भारतीय शिक्षा विभाग का पुनस्संगठन किया गया; इस तरह सन् १८९६–९७ में सुप्रसिद्ध भारतीय शिक्षा सेवा (I.E.S.) का भारत में प्रतिष्ठापन हुआ। कई कारणों से सेवा के प्रतिष्ठापन के उद्देश्य पूरे न हुये। किंतु, इसने बहुत दिनों के लिए भारतीय शिक्षा विभाग के उच्च पदों का एकाधिकार अंग्रेजों को अवश्य दे दिया।

सन् १९०१--२ ई० में समस्त भारत में ९० पदाधिकारी 'आई० ई० एस०' के सदस्य थे, २१५ प्रान्तीय सेवा के और १,१२७ अवर सेवा के। मद्रास प्रान्त में प्रति निरीक्षक २३९ स्कूल थे, बम्बई में ११९, बंगाल १८४, संयुक्त प्रान्त में ६६, पंजाब में ७३, मध्य प्रान्त में ७५, आसाम में ८८।

२. शिक्षा प्रसार के साधनों का भारतीयकरण

गत अध्याय में हमने देखा है कि सन् १८१३-५३ की अवधि में भारत में शिक्षा प्रसार का कार्य मुख्यत: विदेशी धर्म-प्रचारकों के हाथ में था। सरकारी चेष्टाओं का स्थान द्वितीय था। इस अवधि में भारतीय चेस्टायें नगण्य थीं। वैयक्तिक रूप में कुछ सरकारी अंग्रेज अफसर भी शिक्षा प्रसार के ठोस कार्य कर रहे थे। देशी स्कूल लगभग उपेक्षित थे। सन १८५४-१९०२ की अवधि में भी ये चेष्टाएं भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में क्रियाशील रहीं। किंतु, इस अवधि के अन्त होते-होते कुछ तो मृत हो गयीं। कुछ का महत्त्व घट गया, कुछ ने नया महत्त्व स्थापित किया। मृत होने वाली चेष्टाओं में वे चेष्टाएं थीं, जो कि सरकारी अफसरों के द्वारा, वैयक्तिक रूप में, प्रादुर्भूत रहती थीं। इनकी मृत्यु के कई कारण थे। सन् १८५८ के बाद, सरकारी अफसरों के अनुशासन आदि के नियम स्वभावत: कड़े कर दिये गये और उनके वैयक्तिक कार्यों की स्वतंत्रता कई तरह से सीमित कर दी गयी। फलत: इन अफसरों को शिक्षा सम्बन्धी कार्यों की गुजांइश बहुत कम हो गयी। साथ ही, इन चेष्टाओं की आवश्यकता भी क्रमश: जाती रही। सन् १९०२ ई० तक, भारतीय आधुनिक शिक्षा के संगठन तथा संचालन में पूर्णत: दक्ष हो चुके थे। अब उन्हें इस बात की आवश्यकता न थी कि सरकारी अंग्रेज अफसर उन्हें शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में राह दिखावें। अस्तु, प्रेरणा तथा अनुकूल परिस्थिति—दोनों ही के अभाव में, बीसवीं सदी के अन्त में, अंग्रेज अफसरों की वैयक्तिक चेष्टायें शिक्षा के क्षेत्र से लुप्त हो गयीं।

किंतु, इससे भारतीय शिक्षा को विशेष क्षति न हुई। जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, सन् १९०२ ई० तक सरकारी अफसरों की वैयक्तिक चेष्टाओं की अपेक्षा भारतीय शिक्षा को न रह गयी थी। भारतीय शिक्षा की क्षति देशी स्कूलों के लोप से अवश्य हुई। बीसवीं सदी के अंत होते होते भारत के देशी स्कूल, जो कि देश के कोने-कोनेमें जाल की तरह बिछे हुये थे, विनष्ट हो गये। इनकी अधोगति तो, जैसा कि हमने गत अध्याय में देखा है, बहुत पहले ही शुरू हो गयी थी। हमने यह भी देखा है कि ऊड के संदेश-पत्र ने इन्हें सजीव तथा समृद्ध करने का आदेश भारत सरका को दिया था। किंतु यह

आदेश कागज के पन्नों में ही सीमित रह गया। फलतः देशी स्कूल का पतन रोका न जा सका और उनकी अवस्था दिनोदिन अधिकाधिक शोचनीय होती गयी। हम आगे देखेंगे कि सन् १८८३ में 'भारतीय शिक्षा आयोग' ने भी देशी स्कूलों के पुनरुद्धार की सिफारिश की। किंतु, यह भी कार्यान्वित न हुई। लगातार उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि भारतीय शिक्षा के रंगमंच से देशी स्कूलों का अस्तित्व मिट गया। इससे अंग्रेजी स्कूलों के विस्तार के लिये मैदान साफ हो गया। फलतः सन् १८५४–१६०२ में आधुनिक अंग्रेजी स्कूलों की प्रगति बड़े जोरों से हुई। किंतु, यह कार्य सरकारी अथवा धर्म-प्रचारकों के द्वारा नहीं, अपितु स्वयं भारतीयों के द्वारा विशेषतः हुआ।

सन् १८५४ ई० के बाद धर्म-प्रचारकों का आधिपत्य क्रमशः क्षीण होने लगा। इसके कई कारण थे। धर्म-प्रचारकों की यह आशा कि अंग्रेजी पद्धति में शिक्षित भारतीय ईसाई धर्म की ओर जोर से झुकेंगे असत्य-सिद्ध होने लगी थी। फलतः धर्म-प्रचारकों के शिक्षा-प्रसार की प्रारम्भिक प्रेरणा शिथिल हो गयीं। ऊड के संदेश-पत्र ने उनके लिए 'मैगना कार्टा' का संदेश अवश्य दिया, किंतु यह सुनहला सपना सत्य न निकला। धर्म-प्रचारकों के विरुद्ध कई क्षेत्रों से आवाजें बुलन्द होने लगीं। भारतीय शिक्षा आयोग ने धर्म-प्रचारकों पर अन्तिम प्रहार किया। इसने स्पष्टतः घोषित किया कि "शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में भारतीय संस्थाओं का स्थान प्रथम होना चाहिए। धर्म-प्रचारकों का स्थान भारतीयों के बाद ही हो सकता है"।† अतः सन् १८८२ के बाद भारतीय चेष्टा की प्रगति, दिन दूनी रात चौगुनी, होने लगी। सन १६०२ तक भारत के अधिकांश अंग्रेजी स्कूल भारतीयों के द्वारा संगठित तथा संचालित थे। धर्म-प्रचारक, जो कि १८५४ ई० में शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थे, नीचे दब गये।

सन् १८५४–१६०२ की अवधि में, धर्म-प्रचारकों की भांति सरकारी चेष्टायें भी शिक्षा प्रसार के कार्य में सीमित रहीं। जैसाकि हम पहले देख चुके हैं, ऊड के संदेश-पत्र ने यह आशा प्रकट की थी कि शीघ्र ही

† But it must not be forgotten, that the private effort which it is mainly intended to evoke is that of the Indian themselves. Natives of India must constitute the most important of all agencies if educational means are ever to be co-extensive with educational wants-Indian Education Commission. Repot—P.54.

"ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के विकास के साथ सरकारी स्कूल, विशेषत: उच्च स्कूल, या तो बन्द कर दिये जायंगे या स्थानीय संस्थाओं के जिम्मे लगा दिये जायंगे"। हम कह चुके हैं कि ऊड के संदेश-पत्र के द्वारा निर्देशित शिक्षा के क्षेत्र से राजकीय निर्याण (State withdrawal) की नीति का ध्येय धर्म-प्रचारकों को प्रश्रय देना था। किंतु, संदेश-पत्र के आदेश शिक्षा-विभाग के अफसरों को मान्य न हुए और वे सरकारी स्कूलों के विस्तार की गति को रोकने के बदले, बढ़ाने की चेष्टा में लग गये।

इसके कई कारण थे। पहला कारण यह था कि धर्म-प्रचारकों के प्रोत्साहन से राजनीतिक हलचल उत्पन्न हो सकती थी। दूसरा कारण यह था कि उस समय तक भारतीय चेष्टायें, शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष क्रियाशील न थीं। तीसरा कारण यह था कि अफसरों की यह धारणा थी कि सरकारी स्कूल तथा कालेज धर्म-प्रचारकों के स्कूल-कालेजों से अच्छे थे। इन कारणों से शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की चेष्टायें सरकारी स्कूलों के विकास की ओर ही केन्द्रित होने लगीं। इससे १८८२ ई० तक सरकारी कालेजों तथा स्कूलों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। सन् १८५५ ई० में ऐसे स्कल केवल १,४०६ थे। सन् १८८२ ई० में इनकी संख्या १५,४६२ हो गयी। इनके अतिरिक्त, सन् १८८२ ई० में बहुत से प्राथमिक स्कूलऐसे थे, जो कि नाम के लिये गैरसरकारी थे, किंतु वास्तव में सरकारी छत्रछाया में ही संचालित थे।

सरकारी स्कूलों का यह तीव्र विस्तार धर्म-प्रचारकों को स्वभावत: खलने लगा। अत: उन्होंने, शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की नीति के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन शुरु कर दिया। यह आन्दोलन भारत तथा इंगलैंड दोनो ही देशों में चालू किया गया। आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि भारत सरकार ऊड के संदेश-पत्र के आदेशों के अनुसार, सरकारी कालेजों तथा स्कूलों को या तो बन्द कर दे या उसे गैरसरकारी संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दे। सरकार ने भारतीय शिक्षा आयोग को इस संबंध में उचित परामर्श देने का आदेश दिया। आयोग को दो बातों पर विचार करना था।

(क) क्या सरकार का शिक्षा के क्षेत्र से हट जाना, शिक्षा के हित की दृष्टि से, अच्छा था?

(ख) यदि 'क' का उत्तर हां था, तो सरकार की राजकीय निर्याण की नीति को किस तरह कार्यान्वित करना चाहिए था।

पहले प्रश्न के संबंध में आयोग के सामने कई तरह के विचार पेश किये गए, जो कि, एक दूसरे के विरोधी थे। कुछ लोग सरकारी प्रबंध को हटा लेने के पक्ष में थे, और कुछ विपक्ष में। दोनों पक्षों के विचारों के सम्यक् परीक्षण के पश्चात आयोग ने अपना निर्णय इस पक्ष में दिया कि सरकार को भारतीय शिक्षा के क्षेत्र से हट जाना ही समीचीन था। इसके कई कारण थे। सरकार के पास शिक्षा-प्रसार के लिये इतने कम रुपये थे कि इन से शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती थी। अतः यह आवश्यक था कि हर गैरसरकारी चेष्टा को शिक्षा के, हर क्षेत्र में, अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। तभी शिक्षा की मांगों तथा शिक्षा के साधनों में संतुलन स्थापित हो सकता था। दूसरा कारण यह था कि चूंकि सरकार के पास पैसे कम थे; इसलिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक पैसे से अधिकतम लाभ उठाया जाय। सरकारी स्कूल तथा कालेज, गैरसरकारी स्कूलों तथा कालेजों की अपेक्षा अधिक खर्चीले थे। यदि सरकारी स्कूलों को गैरसरकारी प्रबंध में हस्तान्तरित कर दिया जाता, तो इन स्कूलों से सरकार को काफी बचत हो जाती और यह बचत अन्य स्कूलों की सहायता में व्यय की जा सकती थी। इन धारणाओं से अनुप्राणित हो कर आयोग ने यह सिफारिश की कि—

(क) सरकार को सरकारी स्कूलों के विस्तार की गति को न केवल रोकना चाहिए।

(ख) बल्कि, जैसे ही उपयुक्त गैरसरकारी संस्था किसी स्थान में तैयार हो जाय, सरकार को वहाँ से अपना प्रबन्ध हटा लेना चाहिए। †

अब, प्रश्न यह था कि सरकारी प्रबन्ध किसके पक्ष में हटाया जाय, तथा इस प्रबन्ध को हटाने की रीति क्या हो? हमने देखा है कि आयोग धर्म-प्रचारकों के पक्ष में सरकारी प्रबन्ध हटाने के विरुद्ध था।

† Government should not only curtail the expansion of its institutions, but should also withdraw from direct enterprise as soon as a suitable agency public or private, became available to carry on the work— Report.

स्पष्टत:, सरकारी प्रबन्ध भारतीय गैरसरकारी प्रयत्नों के पक्ष में ही हटाये जा सकते थे। आयोग ने इस संबंध में दो सिफारिशें कीं :—†

(क) प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र से, सरकार लोकल बोर्ड तथा नगरपालिकाओं के पक्ष में, अपना प्रबन्ध पूर्णतया हटा ले।

(ख) उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार अपना प्रबन्ध क्रमशः हटावे।

सरकार ने आयोग की पहली सिफारिश ज्यों की त्यों मान ली और लगभग सभी प्राथमिक स्कूल लोकल बोर्ड तथा नगरपालिका आदि को हस्तान्तरित कर दिये गये। किंतु द्वितीय सिफारिश सरकार ने स्वीकृत न की और १८८२ ई० के बाद भी उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी चेष्टायें क्रियाशील रहीं। इस तरह १८५४–१९०२ की अवधि में सिद्धांत: सरकारी नीति शिक्षा के क्षेत्र से हट जाने की रही किंतु व्यवहारत: यह नीति कागज के पन्नों तक सीमित रही। प्राथमिक स्कूल स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं को अवश्य सौंपे गये, किंतु ये संस्थायें पूर्णत: गैरसकारी संस्थायें न थीं, अपितु ये सरकारी शासन-यंत्र का ही अंग थीं। अत: प्राथमिक स्कूलों के प्रशासन का विकेन्द्रीकरण तो अवश्य हुआ, किंतु इससे प्राथमिक स्कूलों को गैरसरकारी प्रबन्ध में न लाया जा सका, जिसकी परिकल्पना, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, ऊड के संदेश-पत्र ने की थी। हां, अर्थाभाव के कारण, सरकारी संस्थाओं का विस्तार सन् १८५४–१९०२ की अवधि में न हुआ। सरकारी प्रबन्ध के राजकीय-निर्याण की तथाकथित नीति सरकार की आर्थिक मजबूरियों पर परदा डालने में समर्थ अवश्य हुई।

इस तरह सन् १८५४–१९०२ की अवधि में धर्म-प्रचारकों तथा सरकार दोनों ही की चेष्टायें, शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में, अत्यन्त सीमित रहीं। यह स्थिति भारतीय गैरसरकारी भारतीय चेष्टाओं के विकास के लिये बहुत ही अनुकूल थी। भारतीयों ने इससे पूर्ण लाभ भी उठाया। नयी पद्धति में शिक्षित भारतीयों ने अपने स्वार्थ को त्याग कर अपने देशवासियों के बीच शिक्षा प्रसार के कार्य में, अपना समस्त जीवन उत्सर्ग कर दिया। आधुनिक शिक्षा के भारतीयकरण में इन आत्म-त्यागी महानुभावों का बहुत बड़ा हाथ। उन्होंने न केवल नये स्कूलों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया, बल्कि भारतवासियों में

† Nurullah & Naik P. 259

नयी शिक्षा के प्रति एक अभिरुचि उत्पन्न कर दी, जिससे इस शिक्षा के प्रसार के लिये समस्त देश में बलवती प्रेरणा उत्पन्न हो गयी। फलस्वरूप सन् १९०१–२ में भारतीय गैरसरकारी प्रयत्न शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में अग्रणी हो गया। हम कह चुके हैं कि सन् १८५४ ई० में भारतीय प्रयत्नों का स्थान, शिक्षा के क्षेत्र में तृतीय था, प्रथम स्थान धर्म-प्रचारकों का था, और द्वितीय सरकार का।

आधुनिक शिक्षा के इस भारतीयकरण में राष्ट्रीय जागरण का बहुत बड़ा हाथ था। सन् १८८० ई० के लगभग भारत में राष्ट्रीय जागरण का युग-प्रारम्भ हो गया था; और राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में नये विचारों का स्पन्दन होने लग गया था। सन् १८८५ ई० में, इंडियन नेशनल कांग्रेस, की स्थापना भी हुई, जिसकी छत्रछाया में राष्ट्रीय आन्दोलन उत्तरोत्तर समृद्धिशील होने लगा। राष्ट्रीय जागरण के उन्नायकों ने यह भली भांति समझ लिया था कि देश के उत्थान के लिये शिक्षा के साधनों का भारतीयकरण आवश्यक था। फलतः समस्त देश में आधुनिक स्कूलों तथा कालेजों के निर्माण की एक लहर सी दौड़ गयी। 'मुहम्मदन ऐंग्लो-ओरियेंटल कालेज, अलीगढ़' तथा 'डेकन एजुकेशन सोसाइटी' इसी नवचेतना से आविर्भूत हुईं।

धार्मिक शिक्षा—सरकार के, शिक्षा के क्षेत्र से, राजकीय-निर्याण की नीति का प्रश्न, स्कूलों के धार्मिक शिक्षा के प्रश्न से, संबद्ध था। धर्म-प्रचारकों की सम्मति में, कम्पनी सरकार की धार्मिक तटस्थता की नीति, भारतीयों के नैतिक हित के लिए अच्छी न थी। अतः उनके विचार में, सरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए थी तथा धर्म-प्रचारकों को स्कूलों में बाईबुल पढ़ाने की छूट रहनी चाहिए थी। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के प्रश्न पर सन् १८५४ के संदेश-पत्र ने जो आदेश दिये, उनसे हम परिचित हैं। हमने देखा है कि संदेश-पत्र ने धर्म-प्रचारकों के स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की अनुमति, अप्रत्यक्ष रूप से, दे दी थी; किंतु सरकारी स्कूलों में इसकी अनुमति न थी। स्वभावतः संदेश-पत्र के ये आदेश धर्म-प्रचारकों को रुचिकर न लगे। सन् १८५७ के बाद भारत का शासन, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अंग्रेजी राजमुकुट के अधीन चला गया। अतः धर्म-प्रचारकों ने एक बार फिर अपने विचारों की स्वीकृति प्राप्त करने की चेष्टा की।

उन्होंने महारानी विक्टोरिया के पास इस उद्देश्य से आवेदन-पत्र प्रेषित किया। किंतु इसी बीच भारत में सन् (१८५७-५६) की क्रान्ति हुई, जिसका प्रभाव एक यह भी हुआ कि सरकार की धार्मिक तटस्थता की नीति और भी दृढ़ हो गयी। किंतु धर्म-प्रचारकों ने हिम्मत न हारी। वे धार्मिक शिक्षा के पक्ष में आन्दोलन करते ही गये। धार्मिक तथा सामाजिक नव-जागरण के फलस्वरूप भारत में कई धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाएं जैसे ब्राह्म-समाज, आर्य समाज आदि इस समय उत्पन्न हो गयी थीं। ये संस्थाएं भी इस बात के लिए प्रयत्नशील थीं कि उन्हें अपने स्कूलों में धार्मिक विचारों की शिक्षा की छूट मिलनी चाहिये। सनातनी हिन्दु भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे थे कि हिन्दुओं को हिन्दु धर्म की शिक्षा के साथ पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा मिलनी चाहिए। इधर मुसलमानों की धारणा थी कि नये स्कूलों में कुरान की पढ़ाई अवश्य होनी चाहिए। इस तरह उन्नसवीं सदी के चौथे चरण में भारत में यह विचार-धारा प्रवाहित होने लगी थी कि स्कूलों में हर बच्चे को उसके धार्मिक सिद्धांतों की शिक्षा मिलनी चाहिए।

सन् १८८२ ई० के भारतीय शिक्षा आयोग को धार्मिक शिक्षा की समस्या पर उपर्युक्त स्थिति का सामना करना पड़ा। आयोग ने इस स्थिति का सामना दृढ़ता से किया और यह तय किया कि सरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का समावेश कदापि न हो। जहाँ तक गैर-सरकारी स्कूलों का सम्बन्ध था, आयोग ने यह सिफारिश की कि इन स्कूलों में धार्मिक शिक्षा, प्रबन्धकों के इच्छानुसार, दी जा सकती थी तथा सरकार को ऐसी धार्मिक शिक्षा की ओर कुछ भी ध्यान न देना चाहिए था। ऐसे गैरसरकारी स्कूलों के ग्रान्ट-इन-एड की स्वीकृति भी इस बात पर निर्भर करनी चाहिए थी कि इन स्कूलों में सामान्य शिक्षा किस ढंग की दी जाती थी। आयोग की इन सिफारिशों के अनुसार धर्म-प्रचारकों को धार्मिक शिक्षा की वे सुविधाएँ प्राप्त रहीं, जो कि उन्हें १८५४ ई० के संदेश-पत्र के द्वारा, अप्रत्यक्ष रूप से, मिल चुकी थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि गैरसरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के विषय में आयोग की उपर्युक्त सिफारिशें, धर्म-प्रचारकों के प्रभाव से ही अनुप्राणित थीं। स्पष्टतः इस से भारतीय क्षुब्ध हो सकते थे। अतः आयोग ने यह भी स्पष्ट किया कि यदि किसी स्थान में एक ही

गैर सरकारी स्कूल हो, तो उस स्थान के लोगों को यह अधिकार होगा कि वे अपने बच्चों को स्कूल की धार्मिक शिक्षा से, बिना किसी हानि के, हटा ले सकते थे। *

स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग की उपर्युक्त सिफारिशें किसी भी दल के लोगों को पूर्णतः संतुष्ट न कर सकीं। किंतु तत्कालीन परिस्थितियों में, आयोग शायद इससे अच्छा सुझाव दे भी न सकता था। जो हो, आयोग ने स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की दीर्घकालीन समस्या को कुछ दिन के लिए हल कर दिया। उसकी सुझावों के अनुसार ही धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में सरकारी नीति सन् १६११ ई० तक परिचालित होती रही।

३. ग्रान्ट-इन-पद्धति का विकास

शिक्षा साधनों के उपर्युक्त भारतीयकरण में ग्रान्ट-इन-एड पद्धति का बहुत बड़ा हाथ था। हमने देखा है कि ऊड के संदेश-पत्र ने गैरसकारी स्कूलों के सहायतार्थ ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के व्यापक व्यहार का आदेश दिया था। इस आदेश के अनुसार प्रान्त के शिक्षा विभागों ने ग्रान्ट इन एड की नियमावलियाँ तैयार कीं, जिनके आधार पर गैरसरकारी स्कूलों को सहायता देने की स्थितियां तथा शर्तें निर्धारित की गयीं। ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के व्यवाहर से गैरसरकारी शिक्षा संस्थाओं का उद्भव तथा विकास को बड़ा प्रोत्साहन मिला। फिर भी, इस पद्धति में कई दोष थे, जिनके कारण यह पद्धति उतनी उपयोगी सिद्ध न हो सकी, जितनी इसे होनी चाहिये थी। इस पद्धति के कुछ प्रमुख दोष ये थे :—

क—ग्रान्ट की रकम बहुधा इतनी कम होती थी कि इससे किसी संस्था की आर्थिक समस्यायें हल न हो पाती थीं।

† We therefore recomend that the system of grant-in-aid be based as hitherto, in accordance with paragraph 55 of the Despatch of 1854, on an entire abstinence from interference with the religions instruction conveyed in the institution assisted, provided that when the only institution of any particular grade existing in any town or village is an institution in which religions instruction forms a part of the ordinary course, it shall be open to parents to withdraw their children from attendance at such institution without forfeiting any of the benefits of the institution.

Report of the Indian Education Commission—P. 449.

ख—ग्रान्ट की रकम बहुधा समय पर न प्रेषित की जाती थी।

ग—स्वीकृत ग्रान्ट कभी-कभी, अकस्मात् तथा अकारण, बन्द कर दिया जाता था अथवा इसमें कटौती कर दी जाती थी।

घ—ग्रान्ट के वितरण में धर्म-प्रचारकों के स्कूलों के प्रति पक्षपात किया जाता था।

च—ग्रान्ट-इन-एड के नियम बोझिल तथा पेचीले थे। ये नियम भारतीय गैरसरकारी स्कूलों के प्रबन्धकों के परामर्श से न बनाये जाते थे।

छ—सार्वजनिक परीक्षाएं इस ढंग से संचालित होती थीं कि सभी स्कूलों को एक ही पाठ्य-क्रम तथा एक ही पाठ्य-पुस्तक व्यवहृत करनी होती थी। इससे गैरसरकारी संस्थाओं का स्वतंत्र विकास न हो पाता था।

ज—गैरसरकारी स्कूल, सम्मान तथा सुविधाओं के मामलों में, सरकारी स्कूल के समकक्ष न माने जाते थे।

झ—विभागीय अधिकारी बहुधा गैरसरकारी स्कूलों के प्रति उपेक्षा, विरोध अथवा प्रतिद्वन्दिता का भाव रखते थे।

ट—गैरसरकारी स्कूलों के प्रतिनिधियों को शिक्षा की नीति के निर्धारण में कुछ भी हाथ न रहता था।

ठ—बहुधा छात्रवृत्तियों के लिये सरकारी स्कूलों के छात्र ही उपयुक्त समझे जाते थे। परीक्षकों के चुनाव में भी गैर-सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की उपेक्षा की जाती थी।

'भारतीय शिक्षा आयोग' ने ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के इन दोषों का परीक्षण किया और उन्हें बहुलांश में यथार्थ पाया। इन दोषों के निराकरण के लिये यह आवश्यक था कि भारत में एक ऐसी ग्रान्ट-इन-एड पद्धति की स्थापना की जाय, जो कि गैरसरकारी स्कूलों की आवश्यकताओं की पूर्ति की पूरी क्षमता रखता हो। इसके लिये आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं।

१ गैरसरकारी शिक्षा संस्थाएं भारत की सामान्य शिक्षा पद्धति के अनिवार्य अंग माने जायं।

२ गैरसरकारी संस्थाओं के प्रबन्धकों के परामर्श, शिक्षा संबंधी सामान्य हित की बातों में, अवश्य लिये जायं, ताकि गैरसरकारी तथा सरकारी स्कूलों में पूर्ण सहयोग स्थापित हो सके।

३ गैरसरकारी स्कूलों के छात्र प्रमाणपत्र, छात्रवृत्तियां तथा अन्य उपलब्धियों के लिए, समानरूप से, प्रतियोगिता परीक्षाओं में स्वीकृत किये जायं।

४ सभी सार्वजनिक परीक्षाओं में गैरसरकारी स्कूलों के प्रबन्धक तथा शिक्षक शिक्षा विभाग के अधिकारियों के साथ संबद्ध किये जायं।

५ सरकार के द्वारा दी जानी वाली सभी छात्रवृतियां तथा पारितोषिक सरकारी स्कूलों के छात्रों को ही उपलब्ध न रहें, बल्कि ये सभी प्रकार के स्कूलों के छात्रों के लिये, समान रूप से, उपलब्ध रहें।

६ गैरसरकारी स्कूलों के ग्रान्ट के वितरण में इस बात पर ध्यान न दिया जाय कि कोई स्कूल किसी सरकारी स्कूल के अत्यन्त सन्निकट है।

७ सभी प्रान्तों में, स्थानीत आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के विचार से, ग्रान्ट-इन-एड की नियमों में संशोधन किया जाय। ये नियम, गैरसरकारी संस्थाओं के सहयोग से, इस ढंग से बनाये जायं कि ये स्थानीय साधनों को, अधिकतम परिमाण में, प्रादूर्भूत कर सकें। इन नियमों के द्वारा यह निश्चित रूप से तय कर दिया जाय कि ग्रान्ट की शर्तें, मकान, शिक्षण-सामग्रियां तथा फर्नीचर आदि के मामलों में, क्या होंगी तथा किसी संस्था को कितना ग्रान्ट, कितनी अवधि के लिए, उपलब्ध रहेगा।

८ ग्रान्ट-इन-एड की प्रत्येक दर्खास्त पर शिक्षा-विभाग विचार करे और अपना निर्णय दर्खास्त करने वाले को अवश्य प्रेपित करे। यदि दर्खास्त अस्वीकृत कर दी जाय, तो इसके कारणों से प्रेपक अवगत कराया जाया।

९ ग्रान्ट-इन-एट के निर्धारण में स्थान तथा संस्था के रूप पर अवश्य ध्यान दिया जाय। पिछड़े इलाकों की संस्थाओं को, अन्य इलाकों की संस्थाओं की अपेक्षा, ग्रान्ट की रकम अधिक दी जाय। इसी तरह, उन संस्थाओं—जैसे कन्या स्कूलों को, जिनमें स्वाश्रयिता का अनुपात कम हो, ग्रान्ट की रकम अपेक्षाकृत अधिक रहे।

१० ग्रान्ट-इन-एड की चुकती की निर्धारित तिथि पहुँचते ही, ग्रान्ट-इन-एड के रुपये संस्थाओं को प्राप्त हो जायं।

११ ग्रान्ट-इन-एड के संशोधित नियम न केवल सरकारी गजटों में प्रकाशित हों, बल्कि हिन्दी में अनूदित करायी जायं और इनकी प्रतियां सभी गैरसरकारी संस्थाओं के प्रबन्धकों को भेज दीं जांय। अखबारों में भी नियमों को प्रकाशनार्थ भेज जाय। उन व्यक्तियों के पास भी नियमावली की प्रतियां भेजी जायं, जो, किसी भी रूप में, शिक्षा को सहायता पहुंचा सकते हों।

१२ हर प्रान्त के बजट में शिक्षा की मद की रकम को क्रमशः बढ़ाया जाय, जिसका लक्ष्य गैरसरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलों का विस्तार हो।

१३ विशिष्ट अनुदानों के द्वारा सहायता-प्राप्त स्कूलों के पाठ्य-क्रम में विशिष्ट विषयों के सन्न्वेश की व्यवस्था की जाय।

१४ सहायता-प्राप्त स्कूलों के प्रबन्धकों को पाठ्य-क्रम के निर्धारण तथा शिक्षण के माध्यम के चुनाव में अधिक छूट दी जाय।

१५ इस बात पर ध्यान दिया जाय कि सार्वजनिक परीक्षाएं एक ही तरह का पाठ्य-क्रम तथा एक ही तरह की पाठ्य-पुस्तकें गैरसरकारी स्कूलों पर लाद न दें।

१६ भविष्य में, निर्धारित योग्यता रखने वाले भारतीय, इन्सपेक्टर के पद पर, अधिक संख्या में नियुक्त किये जायं।

भारतीय शिक्षा आयोग की उपर्युक्त सिफारिशों ने भारत में ग्रान्ट-इन-एड पद्धति को, शिक्षा-प्रसार के लिए, एक अत्यन्त उपयोगी और सफल साधन के रूप में परिवर्तित कर दिया। गैरसरकारी संस्थाओं के सम्मान तथा सुविधाओं की वृद्धि से आयोग ने भारतीय गैरसरकारी चेष्टाओं के विकास की एक नयी प्रेरणा उत्पन्न कर दी। ग्रान्ट की रकम की पर्याप्तता, स्कूलों के आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप की मनाही, भारतीय निरीक्षकों की नियुक्ति आदि सिफारिशें ऐसी थीं, जिनसे गैरसरकारी संस्थाओं को स्फूर्ति तथा शक्ति दोनों ही प्राप्त हो सकती थीं। ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के सौभाग्य से सरकार ने आयोग की सिफारिशें मान लीं। जैसाकि आशा की जाती थी, ग्रान्ट-इन-एड की नयी व्यवस्था में भारतीय चेष्टाएं, जो अब तक सहमी सी थीं, विभागीय प्रोत्साहन के स्नहेमय स्पर्श से पुलकित हो उठीं; और अगले २० वर्षों में देश के कोने कोने में स्व-संचालित गैरसरकारी

शिक्षा संस्थायें लहलहा उठीं। उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में यह नयी उत्तेजना, विशेषत:, परिलक्षित हुई। प्राथमिक शिक्षा अपेक्षाकृत कम प्रभावित हुई। ग्रान्ट-इन-एड के नये विधान से विदेशी चेष्टाओं (धर्म-प्रचारकों) को लाभ न हुआ। इसके कारणों का परीक्षण हम पहले ही कर चुके हैं। अत: भारतीय शिक्षा आयोग की व्यवस्थाओं से भारतीय चेष्टाओं ने पूर्ण लाभ उठाया।

४. विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा

विश्वविद्यालय—ऊड के संदेश-पत्रके आदेशों के अनुसार, भारत सरकार ने, भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की ओर शीघ्र ध्यान दिया। सन् १८५७ ई० में भारत सरकार ने कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना के निमित्त अलग अलग कानून पास किये। स्थानीय परिस्थितियों से संबंधित कुछ बातों को छोड़ कर ये तीनों कानून लगभग एक ही तरह के थे। फलत: उपर्युक्त तीनों विश्वविद्यालयों का एक ही रूप निखरा।

विश्वविद्यालयों का उद्देश्य, इन कानूनों के "अनुसार, परीक्षा के द्वारा उन विद्यार्थियों की योग्यताओं की जांच करना, जिन्होंने ज्ञान के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में क्षमता प्राप्त की हो, तथा इस क्षमता के अनुसार उन्हें शैक्षणिक उपाधियां प्रदान करना" रखा गया। तीनों विश्वविद्यालयों के लिए एक कुलपति, उपकुलपति तथा सदस्य नामजद किये गये। सदस्य दो प्रकार के होने चाहिये थे—पदेन तथा सामान्य। पदेन सदस्यों की जगहें प्रान्तीय शासन के कुछ उच्च अधिकारियों से भरी जाती थीं। इनमें प्रान्त के हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश, प्रान्तीय गवर्नर के कार्यकारिणी सभा के सदस्य, लोक शिक्षा-निर्देशक, कालेजों के प्राचार्य प्रमुख थे। सामान्य सदस्य गवर्नर के द्वारा जीवन-काल तक मनोनीत किये जाते थे। कुलपति स्थानीय गवर्नर होते थे। उपकुलपति गवर्नर-इन कौंसिल के द्वारा दो वर्षों के लिये मनोनीत होते थे। सिनेट का संगठन कुलपति, उप कुलपति तथा सदस्यों के द्वारा होता था। कानूनों के अनुसार, सिनेट को ही विश्व विद्यालय के, रोजमर्रे के, कार्यों का संचालन करना था।

यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त विश्वविद्यालय कानून कई तरह से दोषपूर्ण थे। इनके अनुसार कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्या-

लयों का संगठन लन्दन विश्वविद्यालय के अनुकरण पर किया गया, जिसका निर्देश भी ऊड के संदेश-पत्र ने किया था। उस समय लन्दन विश्वविद्यालय नितान्तः परीक्षक विश्वविद्यालय था। अतः भारतीय विश्वविद्यालयों का उद्देश्य भी परीक्षा ही लेना रखा गया। किंतु ऊड के संदेश-पत्र ने, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए 'परीक्षा' के अतिरिक्त शिक्षण संबंधी कार्यों का संकेत भी किया था, जिसके अनुसार भारतीय विश्वविद्यालयों के तत्त्वाधान में (कानून, इंजिनियरिंग, सांस्कृतिक तथा देशी भाषाओं) की उच्च शिक्षा के लिए व्याख्यान आयोजित किये जाने चाहिए थे। किंतु ऐसा नहीं हुआ और विश्वविद्यालय का कार्य केवल परीक्षा लेने तक सीमित रखा गया। इस तरह, ऊड के संदेश-पत्र के निर्देशों का पूर्ण पालन, विश्वविद्यालय कानूनों में, नहीं किया गया। हम जानते हैं कि विश्वविद्यालय को केवल परीक्षक संस्था बनाने से इनके द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रकार का ठोस तथा सृजनात्मक कार्य न हो सकता है। वस्तुतः उच्च शिक्षा में भारतीय विश्वविद्यालयों ने नयी उद्भावना बहुत कम की। इसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने अपनी सारी चेष्टायें परीक्षा लेने तथा उपाधि देने तक ही केन्द्रित रखीं। संबद्ध कालेज ही शिक्षण का भार सम्हालते रहे। साधन तथा अवसर के अभाव में ये कालेज उच्च शिक्षा में, मौलिकता लाने में अधिकांशतः असमर्थ रहे।

सन् १८५७ ई० के विश्वविद्यालय कानूनों के अन्य कई दोष थे। इनमें सदस्यों की अधिकतम संख्या निर्धारित न की गयी। साथ ही इनकी नियुक्ति आजीवन तक रखी गयी। इनका फल यह हुआ कि कालान्तर में 'सिनेट' का रूप अत्यन्त बोझिल हो गया और यह अपने कार्य में शिथिल पड़ने लगा। विश्वविद्यालयों के संगठन में 'सिन्डिकेट' की कोई व्यवस्था नहीं की गयी। आगे चलकर सिनेट ने स्वयं ही 'सिन्डिकेट' का निर्माण किया, किंतु विश्वविद्यालय कानून के द्वारा, इनको वैधानिक महत्त्व, प्रदत्त न हो सका।

इन त्रुटियों के बावजूद भी भारतीय विश्वविद्यालयों ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किये और भारत में बौद्धिक नव-जागरण के संदेश दिये। अब, हम सन् १८५७–१९०२ के बीच विश्वविद्यालयों के विस्तार का संक्षिप्त परिचय उपस्थित करते हैं। यह विस्तार विश्वविद्यालय के अधिकारों तथा उनकी संख्या-दोनों ही दिशाओं में हुआ।

सन् १८५७ ई० के विश्वविद्यालय कानून के अनुसार कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्यालय केवल वे ही उपाधियां प्रदान कर सकती थीं, जिनके नाम कानून में दिये हुए थे। किंतु यह शीघ्र ही स्पष्ट होने लगा कि इन उपाधियों के अतिरिक्त, विश्वविद्यालयों को अन्य उपाधियां देने का भी अधिकार मिलना चाहिये। इस उद्देश्य से सन् १८६० ई० में, इंडियन यूनिवर्सिटी डिग्रीज कानून (Indian Universities Degree Act) पास हुआ, जिसके अनुसार भारतीय विश्वविद्यालयों को उन उपाधियों तथा प्रमाण-पत्रों को प्रदान करने का अधिकार मिला, जो कि अधिनियम (bye-laws) के द्वारा स्वीकृत किये जाते। सन् १८८४ ई० में एक दूसरा कानून पास हुआ, जिसके अनुसार कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्यालयों को, एल० एल० डी० को सम्मान-सूचक (Honorary) उपाधि देने का, अधिकार मिला।

सन् १८५४-१९०२ ई० की अवधि में विश्वविद्यालयों का विस्तार अधिक न हुआ। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त केवल दो अन्य विश्वविद्यालय इस अवधि में स्थापित हुए। वे थे—पंजाब विश्वविद्यालय तथा एलाहाबाद विश्वविद्यालय। पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १८८२ ई० में हुई तथा एलाहाबाद विश्वविद्यालय की सन् १८८७ ई० में। पंजाब विश्वविद्यालय, कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्यालयों से, कई रूप में, भिन्न था। पंजाब विश्वविद्यालय की विशेषताएें ये थीं।

१ प्राच्य ज्ञान के क्षेत्र में उन विद्यार्थियों को स्नातक आदि की उपाधियां देना, जिन्होंने उर्दू के माध्यम से निर्धारित योग्यता प्राप्त की हो।
२ संस्कृत, अरबी तथा फारसी की योग्यता के संबंध में परीक्षाएें लेना तथा उनके आधार पर प्राच्य पद्धति की उपाधियां देना।
३ वर्नाक्यूलर भाषाओं में योग्यता तथा विशेष योग्यता की परीक्षाएें लेना।
४ विभिन्न स्कूली परीक्षाओं का आयोजन करना।
५ विश्वविद्यालय के तत्त्वाधान में एक प्राच्य तथा एक लॉ कालेज चलाना तथा अन्य स्कूलों एवं कालेजों को चलाना, जिनके संबंध में विश्वविद्यालय के 'सिनेट' का आदेश हो।

एलाहाबाद विश्वविद्यालय का उद्देश्य लगभग वही रहा जो कि कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्यालयों के थे। उनकी भांति इस

विश्वविद्यालय का कार्य परीक्षा लेने तथा उपाधि देने तक ही सीमित रहा।

कालेज—भारतीय विश्वविद्यालयों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इन विश्वविद्यालयों के द्वारा भारत में उच्च शिक्षा के प्रसार का कार्य सन् १८५४–१९०२ ई० की अवधि में न हुआ। इनका कार्य, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, परीक्षाएं लेने तथा उपाधियां देने तक सीमित रहा। किंतु इस अवधि में उच्च शिक्षा के प्रसार का कार्य उन कालेजों के द्वारा हुआ, जो कि इन विश्वविद्यालयों से संबद्ध होने लगे।

सन् १८५४ ई० के पहले भी, जैसा कि हम देख चुके हैं, अंग्रेजी भारत में उच्च शिक्षा की कई संस्थाएं क्रियाशील थीं, जो कि सरकार तथा धर्म-प्रचारकों के द्वारा संचालित थीं। ये संस्थायें सामान्यतः कालेज के नाम से ही गृहीत होती थीं, यद्यपि इनका रूप आधुनिक कालेजों से वहुत भिन्न था। हमने देखा है कि कम्पनी सरकार के द्वारा स्थापित कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज मुसलिम तथा हिन्दू पद्धति के विद्यालयों के आदर्शों पर आधारित थे। पाश्चात्य ज्ञान प्रदान करने वाले कालेजों का निर्माण पहले पहल धर्म-प्रचारकों के द्वारा हुआ। उनके अनुकरण पर सरकारी कालेजों में भी पाश्चात्य ज्ञान के वितरण की व्यवस्था की गयी। सन् १८५४ ई० तक ये कालेज कम्पनी सरकार तथा धर्म-प्रचारकों के द्वारा ही संचालित होते रहे। सन् १८५७ ई० में भारत में सामान्य शिक्षा के कुल २३ कालेज थे, जिनमें १४ कम्पनी सरकार के तथा ९ धर्म-प्रचारकों के प्रबन्ध में थे। इनके अतिरिक्त, ३ औषधि-विज्ञान (Medical) तथा १ इन्जिनियरिंग कालेज थे जो कि सरकार के द्वारा ही चलाये जा रहे थे। सन् १८५७ ई० तक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय चेष्टायें क्रियाशील न हुई थीं। हमने देखा है कि डेविड हेयर के द्वारा स्थापित 'हिन्दु विद्यालय' के प्रबन्ध-समिति में कुछ भारतीय सदस्य भी थे। किंतु आगे चल यह कर विद्यालय सरकारी प्रेसिडेन्सी कालेज में मिल गया, जिससे गैरसरकारी भारतीयों का कुछ संबंध न रहा। इस तरह १८५७ ई० में, भारतीय उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कोइ भी सक्रिय भाग न ले रहे थे। फिर भी उन्होंने कालेजों के निर्माण में कई तरह का

आर्थिक योग दिया था। बम्बई के 'एलफिन्सटन इंसटिच्यूसन' तथा आगरा और दिल्ली कालेजों में इन्होंने खुल कर चन्दा दिया था।

आधुनिक कालेजों का प्रादुर्भाव सन् १८५७ ई० के बाद ही आरम्भ हुआ। इसी वर्ष बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इनके तत्त्वावधान में ही आधुनिक कालेजों का विकास हुआ। ये कालेज विश्वविद्यालय के अंग से बन गये। इनके पाठ्य-क्रम विश्वविद्यालय के द्वारा निर्धारित होते थे। कालेजों में उन्हीं विद्यार्थियों को प्रवेश करने का अधिकार था, जिन्होंने विश्वविद्यालयों के द्वारा निर्धारित प्रवेशिक-परीक्षा (entrance examination) पास की थी।

विश्वविद्यालयों की छत्रछाया में कालेजों का विस्तार तीव्र गति से होने लगा। सन् १८५७ ई० में इनकी संख्या केवल २७ थी। सन् १८८२ ई० में यह संख्या ७२ हो गयी। इसी प्रकार छात्रों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १८५७ ई० में केवल २१६ परीक्षार्थी प्रवेशक-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। सन् १८८२ ई० में प्रवेशक-परीक्षा पास करने वाले छात्रों की संख्या ७,४२६ थी।

सन् १८५७ के बाद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रयत्न भी दृढ़ता के साथ अग्रसर होने लगा। सन् १८८२ ई० में भारतीयों के द्वारा ५ कालेज संचालित थे, जिन्हें सरकार के द्वारा सहायता मिलती थी। इनमें दो आधुनिक उत्तर प्रदेश में अवस्थित थे, तथा तीन मद्रास में। उत्तर-प्रदेश स्थित कैनिंग कालेज तथा मुहम्मडन एंग्लो ओरियेंटल कालेज, अलीगढ़ आगे चल कर विश्वविद्यालयों में परिवर्तित हो गये।

भारतीय शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालय तथा कालेजों के सुधार एवं उन्नति के सम्बन्ध में कोई ठोस सुझाव न दिया। इसका कारण यह था कि आयोग को विश्वविद्यालय के विषय में अपनी सिफारिशें सरकार के आज्ञानुसार, सीमित रखनी थीं। स्वभावतः आयोग ने विश्वविद्यालय की समस्याओं की, न पूरी जांच पड़ताल की, न इनके समाधान के लिए परामर्श ही उपस्थित किये। फलतः आयोग की सिफारिशों से विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा की समुन्नति में कुछ भी योग न मिला।

फिर भी १८८२ ई० के बाद कालेजों की संख्या तथा कालेजों में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई। इसके दो कारण थे—

स्थान था। स्पष्ट है कि सन् १९०२ ई० तक भारत में उच्च शिक्षा का विस्तार सरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उच्च वर्ग के भारतीयों की रुचियों से ही प्रधानतः संबंधित रही। उच्च शिक्षा का विस्तार इस रूप में न हुआ कि वह देश तथा राष्ट्र की मांगों की पूर्ति करती। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय स्त्रियां भी, इस अवधि में, लगभग उपेक्षित रहीं।

सन् १८५७–१९०२ की अवधि में उच्च शिक्षा का एक बड़ा दोष यह भी था कि इसके द्वारा आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के लिये किसी प्रकार की प्रेरणा न मिली। हमने देखा है कि वुड के संदेश-पत्र ने आशा प्रकट की थी कि विश्वविद्यालयों के निर्माण से भारत की आधुनिक भाषाओं (वर्नाक्यूलर्स) को प्रोत्साहन मिलेगा। उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आधुनिक भारतीय भाषाओं के शिक्षण के लिये प्राध्यापकों की नियुक्ति की सिफारिश भी की थी। किंतु ऐसा न हुआ। भारतीय विश्वविद्यालय परीक्षक संस्थायें रहीं और शिक्षण की व्यवस्था करने का अधिकार इन्हें न मिला। किंतु, तब भी ये आधुनिक भारतीय भाषाओं की समुन्नति के लिये कुछ कर सकते थे। आधुनिक भारतीय भाषाओं में परीक्षा लेने की व्यवस्था यदि विश्वविद्यालयों में हुई होती, तो इनके शिक्षण का प्रबन्ध अनिवार्यतः कालेजों में हुआ होता। किंतु विश्वविद्यालयों ने इतना भी न किया। फलतः, मद्रास को छोड़कर अन्य विश्वविद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषायें या तो एकदम उपेक्षित हो गयीं या उनका स्थान नगण्य रहा।

उच्च शिक्षा के निम्न स्तर के विद्यालयों में भी आधुनिक भारतीय भाषाओं की उपेक्षा की गयी। हमने देखा है कि बम्बई तथा बंगाल में अवर श्रेणी के चिकित्सा-विद्यालय थे, जिनमें चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा, आधुनिक भारतीय भाषाओं के द्वारा, दी जाती थी। इन भाषाओं में आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तकें भी लिखी जाने लगी थी। बम्बई में मराठी भाषा में कई अच्छी पुस्तकें चिकित्सा के विषय पर लिखी जा चुकी थीं। किन्तु, सरकारी अधिकारियों के अविश्वास तथा अंग्रेजी के प्रभाव से ये चेष्टायें भी क्रमशः लुप्त होने लगीं। सन् १८८० ई० में अवर श्रेणी के उच्च विद्यालयों में भी शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी ही बनाया गया। इस तरह, शिक्षा के भारतीयकरण की ये प्रारम्भिक चेष्टायें, प्रोत्साहन के अभाव में मृत हो गयीं। यदि ये चेष्टायें जारी रहतीं,

तो आज उच्च शिक्षा के माध्यम के संबंध में, हमें वह कठिनाई न उठानी पड़ती, जो आज पड़ रही है।

उपर्युक्त अवधि में उच्च शिक्षा के विस्तार का तीसरा दोष था शिक्षा के स्तर का पतन। राष्ट्रीय तथा सामाजिक भावनाओं से प्रेरित होकर भारतीयों ने कालेजों का निर्माण, जैसा कि कहा जा चुका है, धड़ल्ले से करना शुरू कर दिया। इस सिलेसिले में उच्च शिक्षा के मानदण्ड की सुरक्षा पर विशेष ध्यान न दिया गया। फलस्वरूप आगे चलकर यह स्पष्ट हो गया कि बहुत से कालेजों में शिक्षा का स्तर अत्यन्त नीचा हो गया था। इस प्रश्न को लेकर सरकारी अधिकारियों तथा भारतीय नेताओं में मतभेद उपस्थित हो गया। सरकारी अफसरों की, जिनके साथ धर्म-प्रचारक भी थे, धारणा था कि कालेजों का विस्तार शिक्षा के मानदण्ड की अवनति के मूल्य पर न होना चाहिये। उच्च शिक्षा के स्तर को सुरक्षित रखना अधिक आवश्यक था, न कि शिक्षा-संस्थाओं का विस्तार। भारतीय नेताओं के विचार में, देश की तत्कालीन परिस्थितियों में, आधुनिक शिक्षा का विस्तार ही अत्यावश्यक था। यदि कालेजों के द्वारा उच्चतम ज्ञान नहीं दिया जा रहा था; तो इससे देश का उतना अहित नहीं हो रहा था जितना कि इन संस्थाओं के द्वारा कुछ भी ज्ञान नहीं देने से होता।† अतः आधुनिक शिक्षा के कार्य में थोड़ा भी कार्य करने वाली संस्थाओं को जीवित रखना तथा बढ़ाना, राष्ट्रहित के विचार से, आवश्यक था। यदि कालेजों के विस्तार की गति अवरूद्ध कर दी जाती, तो भारतीय मस्तिष्क को कोई भी प्रकाश न मिलता, जिसकी ज्योति में वह अपने अमसावृत प्रांगन को आलोकित कर सकता।

इस तरह, उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में, सन् १८५७-१६०२ की अवधि में प्रसार का कार्य तो प्रशंसनीय हुआ। किंतु इसमें कई त्रुटियां और कई दोषपूर्ण मान्यताएं प्रविष्ट हो गयीं। हम आगे देखेंगे कि लार्ड कर्जन ने इनके सुधार तथा समाधान के लिये बहुत बड़ा कार्य किया।

---

†I think, my Lord,—and this is a matter of deep conviction with me that, in the present circumstances of India, all Western Education is valuable and useful. If it is the highest...... so much the better. But even if it is not the highest, it must not on that account be rejected. Gokhale—quoted in Nurullah & Naik—P. 295

माध्यमिक शिक्षा

ऊड के संदेश-पत्र के आदेशानुसार माध्यमिक स्कूलों का विस्तार शीघ्र ही शुरू हो गया। इस दिशा में प्रान्तों के नव-स्थापित शिक्षा-विभागों ने पहले कदम उठाया। उन्हें परिस्थिति भी अनुकूल मिली। इस समय तक अंग्रेजी शिक्षा की मांग भारतीयों में काफी बढ़ गयी थी। भारत सरकार की ओर से प्रान्तों को, शिक्षा-प्रसार के लिये, पहले की अपेक्षा अधिक अनुदान मिल रहा था। फलतः शिक्षा-विभागों को नये माध्यमिक स्कूलों के निर्माण में पर्याप्त सुविधायें मिलीं। सन् १८७२ ई० तक सरकारी माध्यमिक स्कूलों का अच्छा विस्तार हुआ। इस वर्ष सरकारी माध्यमिक स्कूलों की संख्या १३६३ थी, जिनमें ४४,६०५ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। सन् १८४२ ई० में इन स्कूलों की संख्या केवल १६६ थी।

सरकारी के अतिरिक्त सन् १८४४ ई० के बाद गैरसरकारी माध्यमिक स्कूलों का विस्तार भी तीव्रगति से प्रारम्भ हो गया। पहले तो गैरसरकारी क्षेत्र में धर्म-प्रचारक ही अधिक वेग से अग्रसर हुये। किंतु शीघ्र ही भारतीय प्रयन्तों ने, भी इस दिशा में बड़े उत्साह के साथ, प्रवेश किया। कुछ ही दिनों में गैरसरकारी क्षेत्र में भारतीय प्रयन्तों की प्रधानता हो गयी; धर्म-प्रचारकों का प्रयन्त इनके नीचे पड़ गया। सन् १८८३ ई० में भारतीयों के द्वारा सहायता प्राप्त की गैरसरकारी स्कूलों की संख्या १,३४१ थी, जिनमें ३,३६,८३७ छात्र पढ़ रहे थे। इसी वर्ष अन्य गैरसरकारी संस्थाओं के द्वारा कुल ७८७ स्कूल क्रियाशील थे, जिनमें २,८६८,७७ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इस तरह भारतीयों के द्वारा संचालित स्कूलों की संख्या, गैरसरकारी स्कूलों की संख्या से, लगभग दूनी हो गयी थी।

सन् १८८२ ई० के भारतीय शिक्षा आयोग को माध्यमिक शिक्षा के संबंध में दो बातों पर विशेष ध्यान देना था—(क) माध्यमिक शिक्षा का विस्तार पहले से अधिक तीव्र कैसे बनाया जाय ? (ख) माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए कौन सा सब से उपयुक्त साधन था ? हमने देखा है कि सन् १८५४–८२ की अवधि में माध्यमिक स्कूलों की संख्या में काफी वृद्धि हुई थी। किंतु स्कूलों की वृद्धि से अंग्रेजी शिक्षा की मांग की वृद्धि अधिक थी। अतः इस बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिए स्कूलों को बढ़ाना अत्यावश्यक। शिक्षा के साधन के संबंध में आयोग

को यह देखना था कि तत्कालीन परिस्थितियों में स्कूलों का विस्तार मुख्यत: किसके द्वारा होना चाहिए—सरकारी स्कूलों के द्वारा, धर्म-प्रचारकों के द्वारा अथवा गैरसरकारी भारतीय स्कूलों के द्वारा। आयोग ने इन प्रश्नों पर, पूरी जांच-पड़ताल के बाद, अपनी सिफारिशें दीं। आयोग के विचार में "माध्यमिक शिक्षा और राज्य का संबंध, प्राथमिक शिक्षा और राज्य के संबंध से भिन्न है। राज्य को प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध उन क्षेत्रों में भी करना था, जहाँ स्थानीय सहयोग उपलब्ध नहीं है। किंतु माध्यमिक शिक्षा के लिए सरकारी चेष्टा सामान्यत: उन्हीं स्थानों में क्रियाशील होनी चाहिए, जहाँ स्थानीय सहयोग परिलक्षित हो। अत:, सामान्यत: माध्यमिक स्कूलों का निर्माण ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के आधार पर ही होना चाहिए"।‡ आयोग ने यह भी कहा कि जिन स्थानों में सरकारी माध्यमिक स्कूल स्थापित थे, उन स्थानों से भी जहाँ तक शीघ्र हो सके, सरकारी प्रबंध हटा लेना चाहिए।

आयोग की ये सिफारिशें ऊड के संदेशपत्र के आदेशों के अनुसार ही थीं। किंतु, अब प्रश्न यह उठा कि सरकारी माध्यमिक स्कूलों का भविष्य किनके हाथों में सौंपा जाय; तथा जिन स्थानों में गैरसरकारी चेष्टायें ग्रान्ट-इन-एड पद्धति पर स्कूल खोलने में असमर्थ हों, उन स्थानों में सरकार की नीति क्या हो। प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध में आयोग ने यह सिफारिश की कि सरकार सरकारी स्कूलों को क्रमश: गैरसरकारी संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दे, यदि इन स्कूलों का अस्तित्व तथा उपयोगिता को खतरा का भय न हो।† दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में

‡ That it be distinctly laid down that the relation of the state to secondary is different from its relation to primary education, in that the means of primary education be provided without regard to the existence of local co-operation while it is ordinarily expedient to provide the means of secondary education only where adequate local co-operation is forthcoming; and that therefore, in all ordinary cases, secondary schools for instruction in English be hereafter established by the state preferably on the footing of the system of grants-in-aid.

Recommendation No. 23 Secondary Education,

† That all Directors of Public Instruction aim at the gradual transfer to local native management of government schools of secondary instruction, in every case in which the transfer can be effected without lowering the standard or diminishing the supply of education, and without endangering the permanence of the institution transferred.

Recommendation No. 30—External Relation of the Department.

आयोग ने यह सिफारिश की कि जिन स्थानों में स्थानीय साधन ग्रान्ट-इन-एड पद्धति पर माध्यमिक स्कूल चलाने में असमर्थ हों, वहाँ सरकारी स्कूल, ग्रान्ट-इन-एड पद्धति के अपवाद के रूप में, स्थापित किये जा सकते थे। किंतु आयोग ने यह स्पष्ट कर दिया कि "सरकार की नीति प्रत्येक जिले में एक आदर्श माध्यमिक स्कूल अपने प्रबन्ध में अथवा सहायता के आधार पर खोलने तक सीमित रहनी चाहिए। उस जिले में माध्यमिक शिक्षा के विस्तार का अन्य भार, जिले के लोगों पर ही छोड़ देना चाहिए"।

सरकार ने गैरसरकारी प्रयत्नों के प्रोत्साहन की आयोग की उपर्युक्त सिफारिशें मान लीं। फलतः सन् १८८२ ई० के पश्चात गैरसरकारी माध्यमिक स्कूलों का विस्तार तीव्र गति से होने लगा। सन् १८८२ ई० में माध्यमिक स्कूलों की संख्या ३,६१६ थी। सन् १९०२ ई० में यह संख्या ५,१२४ हो गयी। स्कूलों की संख्या की वृद्धि की अपेक्षा छात्रों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई। सन् १८८२ ई० में कुल २१४,०७७ छात्र, माध्यमिक स्कूलों में, शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। सन् १९०२ ई० में इन छात्रों की संख्या ५९०,१२९ हो गयी। इस तरह छात्रों की संख्या, १९०२ ई० में, १८८२ ई० की संख्या से दोगुनी से भी अधिक थी।

सन् १८५४–१९०२ की अवधि में भारत में माध्यमिक शिक्षा का विस्तार, जैसाकि हम अभी देख चुके हैं, पर्याप्त हुआ। किंतु इसके रूप में कई त्रुटियां आ गयीं; जिनके कारण माध्यमिक शिक्षा देश के कल्याण में पूरा योग न दे सकी। प्रमुख त्रुटियां ये थीं :—

हमने देखा है कि १८५४ ई० के संदेश-पत्र ने मातृभाषा के द्वारा शिक्षण की व्यवस्था माध्यमिक स्कूलों के लिए भी की थी। किंतु संदेश-पत्र के आदेशों का पालन माध्यमिक स्कूलों के निर्माण में न किया गया। फलतः इन स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम ही व्यवहृत होने लगा। भारतीय शिक्षा आयोग ने भी माध्यम स्कूलों के माध्यम के प्रश्न पर अपना परामर्श, अप्रत्यक्ष रूप से, अंग्रजी के पक्ष में ही दिया। मिडल श्रेणी में इसने मातृभाषा के माध्यम की गुंजाइश समझी, किंतु यहां भी उसकी

सिफारिशें जोरदार न थीं। † इस तरह सन् १८८२ ई० के बाद भी माध्यमिक स्कूलों में मातृभाषा को प्रश्रय न मिला। माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा का प्रधान लक्ष्य अंग्रेजी का ज्ञान उपार्जित करना भर हो गया। माध्यमिक स्कूलों में अंग्रेजी की पढ़ाई निम्न कक्षाओं में ही शुरू होने लगी, जब कि छात्र विदेशी भाषा सीखने के उपयुक्त न थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश छात्रों की शक्तियां अंग्रेजी सीखने में ही खप जाती थीं। पाठ्य-क्रम के अन्य विषय उपेक्षित हो जाते थे।

संदेश-पत्र ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये स्पष्ट आदेश दिया था। किंतु यह आदेश भी भारत सरकार ने लगभग ३० वर्षों तक कार्यान्वित न किया। सन् १८८२ ई० तक भारत में केवल दो प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित हो सके थे—एक मद्रास में तथा दूसरा लाहोर में। ये विद्यालय भी प्रशिक्षण के उत्तरदायित्व को भलिभांति न निभा रहे थे। भारतीय शिक्षा आयोग ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये निम्नलिखित सिफारिशें कीं।

क—शिक्षण के सिद्धान्त तथा व्यवहार के विषय में परीक्षा लेने की व्यवस्था की जाय। इस परीक्षा में सफलता प्राप्त होने पर ही किसी शिक्षक की स्थायी नियुक्ति माध्यमिक स्कूलों—सरकारी तथा सहायता प्राप्त—में हो।

ख—नार्मल स्कूलों में स्नातकों के प्रशिक्षण की अवधि अन्य योग्यता के छात्रों के प्रशिक्षण की अवधि से कम रखी जाय।

स्पष्टतः, ये सिफारिशें इतनी जोरदार न थीं कि इनके आधार पर प्रशिक्षण विद्यालयों की ओर सरकार का विशेष ध्यान जाता। फलतः सन् १८८२ ई० के बाद भी प्रशिक्षण के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति न हुई। सन् १९०२ ई० में भारत में केवल ६ ट्रेनिंग कालेज थे। इनके अतिरिक्त कई ट्रेनिंग स्कूल थे। सभी प्रान्तों में शिक्षकों के लिये "सार्टिफिकेट" परीक्षा की व्यवस्था हो चुकी थी।

---

† It is a question in the decision of which much must depend on local circumstances and hence the freest scope in dealing with it should be left to the mangers of schools, whatsoever be the view which the Department in any Province may be disposed to adopt.

Report—P. 211.

सन् २८४२-१६०२ की अवधि में माध्यमिक शिक्षा का तीसरा दोष यह थ कि इस शिक्षा में व्यावसायिक पक्ष का समावेश न था। हमने देखा है कि संदेशपत्र ने माध्यमिक स्कूलों में ऐसी शिक्षा का विधान किया था, जो हर स्थिति के भारतीयों के लिये व्यावहारिक तथा उपयोगी सिद्ध हो सके। स्पस्ट: संदेश-पत्र का निर्देश व्यावसायिक शिक्षा की ओर था। किंतु संदेश-पत्र का यह आदेश भारत के प्रशासकों को ग्राह्य न हुआ। सन् १८८२ ई० तक, बम्बई के सिवा, किसी भी प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा के लिये स्वल्प कार्य भी न हुआ था। बम्बई प्रान्त में कुछ कृषक छात्रों के लिये, सरकार की ओर से ४) मासिक वृति स्वीकृत थी, ताकि वे माध्यमिक स्कूलों से संलग्न कृषि फार्म में कृषि के सम्बन्ध में व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर सकें।

भारतीय शिक्षा आयोग ने माध्यमिक स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा के आयोजन के प्रश्न पर यह सुझाव दिया कि हाई स्कूलों की उच्च कक्षाओं में दो तरह की शिक्षा दी जाय। एक का उद्देश्य विश्वविद्यालयों की प्रवेशक-परीक्षा पास करना हो, दूसरे का उद्देश्य भारतीय युवकों को व्यावसायिक अथवा असाहित्यिक कार्यों में लगाना हो।†

किंतु आयोग के सामने इस सुझाव से संबंधित यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उपर्युक्त दूसरी श्रेणी की शिक्षा को किस भांति लोक-प्रिय बनाया जाय।। यह जान लेना अवश्यक है कि उस समय तक शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य सरकारी पदों को प्राप्त करना था, जिनके द्वारा सम्पत्ति और सम्मान दोनों ही उपलब्ध थे। ऐसी स्थिति में छात्र व्यावसायिक शिक्षा की ओर आकृष्ट कैसे हों—यह एक बड़ी समस्या थी। इस समस्या के हल के लिये आयोग के समक्ष कई तरह के सुझाव पेश किये गये। आयोग ने इन सभी सुझावों के परीक्षण के बाद अपनी सिफारिश यह दी कि माध्यमिक स्कूलों

---

† We, therefore, recommend that in the upper classes of High School there be two divisions one leading to the Entrance examination of the universities, the other of a more practical character, intended to fit youths for commercial or non-literary pursuits.

Report of the Indian Education Commission—p 221

में प्रस्तावित दो प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था हो जाने के पश्चात इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं में योग्यता का प्रमाणपत्र सरकारी नौकरियों के लिये पर्याप्त समझा जाय।

सन् १८८२ ई० के पश्चात सभी प्रान्तों के कुछ माध्यमिक स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा विभाग खोला गया। किंतु इन विभागों में बहुत कम छात्रों ने अपने नाम दर्ज करवाये। सन् १६०२ ई० विश्वविद्यालयों की प्रवेशक-परीक्षा में २३,००० छात्र सम्मिलित हुए थे, व्यावसायिक परीक्षाओं में केवल २,००० छात्र बैठे थे। स्पटष्त: सन् १६०२ ई० तक व्यावसायिक शिक्ष लोक-प्रिय न हो सकी थी और माध्यमिक शिक्षा का प्रधान उद्देश्य प्रवेशक–परीक्ष पास करना ही था।

प्राथमिक शिक्षा (१८५४-१९०२)

१६५४ के पहले तक प्राथमिक शिक्षा की ओर सरकार पूर्णत: उदासीन थी। न इस शिक्षा की आवस्यकता ही उसे दिखाई पड़ी थी और न शिक्षा के मद में इतने रुपये ही थे कि प्राथमिक शिक्षा की ओर कुछ ठोस प्रयत्न किया जाता। हमने देखा है कि १८५४ के संदेश-पत्र ने प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया और इसके प्रसार के लिए सरकार को उचित ध्यान देने का आदेश दिया। सरकारी प्रयत्न अब केवल एक विशिष्ट वर्ग के लिए उच्चतम शिक्षा की ओर ही केन्द्रित नहीं रहने थे, बल्कि ये प्रयत्न जन-सामान्य की शिक्षा की ओर भी प्रेरित होने चाहिए थे। इसके लिए संदेश-पत्र ने यह स्पष्टत: निर्धारित किया कि देशी प्राथमिक स्कूलों को आवश्यक प्रोत्साहन दिया जाय, ताकि वे जन-सामान्य के बच्चों को सामान्य ज्ञान की बातें सही-सही बतला सकें। इस सम्बन्ध में संदेश-पत्र ने थोमसन के द्वारा संचालित उत्तर-पश्चिम प्रदेश के प्रयोगों को व्यापक रूप से व्यवहृत करने का भी परामर्श दिया। †

किंतु संदेश-पत्र के उपरोक्त आदेश कार्यान्वित नहीं किये गये। निस्यंद सिद्धांत का प्रभुत्व अब भी, जबर्दस्त था, जिसके फलस्वरुप संदेश-पत्र के स्पष्ट आदेशों के समक्ष भी सरकरी चेष्टा अधिकतर उच्च वर्ग के लोगों की शिक्षा के लिए, उच्च स्कूलों की वृद्धि की ओर ही, संलग्न रहीं। हां, संदेश-पत्र के आदेशानुसार सभी प्रान्तों में ग्रान्ट-

† देखिए प्रस्तुत पुस्तक पृष्ट–१०६

इन-एड के नियम अवश्य निर्धारित किये गये। किंतु ये नियम कुछ ऐसे थे, जिनसे प्राथमिक शिक्षा को वांछित प्रश्रय न मिल सका। नियमित मासिक शुल्क, स्थानीय चन्दे आदि कुछ ऐसी बातें थीं, जो कठिन नहीं, किंतु अपरिचित अवश्य थीं। स्थानीय जनता इन प्रतिविधो से अभ्यस्त न थी और इसलिए इनके सम्यक् निर्वाह में वह बहुधा चूक जाती थी। तत्कालीन स्कूल-निरीक्षकों की रिपोर्टें इस संबंध में काफी प्रकाश डालती हैं। इस तरह ग्रान्ट-इन-एड की ऐसी प्रणाली नहीं निकाली गयी जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल तथा व्यावहारिक होती। फलतः संचालक-समिति की १८५६ ई० के संदेश-पत्र ने ग्रान्ट-इन-एड की प्रचलित प्रथा के प्रति असंतोष प्रकट किया और यह आज्ञा दी कि प्राथमिक शिक्षा का प्रसार सरकारी अफसरों के द्वारा किया जाय।† संचालकों का यह निर्णया; बिना जांच पड़ताल के तथा अति शीघ्रता मे, हुआ। अतः इससे प्राथिमक शिक्षा की समस्या का समाधान नहीं हो सका, बल्कि कई नये प्रश्न उठ खड़े हुए। यदि ग्रान्ट-इन-एड की पद्धति उपयुक्त नहीं थीं, तो प्राथमिक शिक्षा प्रसार के क्या साधन हों? क्या सरकार स्वयं इस उत्तरदायित्व को सम्हाले; अथवा प्रचलित देशी स्कूलों की सहायता मात्र दे; अथवा दोनों रीतियां प्रयुक्त हों? इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर नहीं निकल सका और फलतः प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की एक सुव्यवस्थित तथा व्यावहारिक योजना का आविर्भाव नहीं हो सका। प्रान्तीय सरकारें अपने अपने प्रान्तों में, अपने इच्छानुसार इस समस्या का समाधान करने लगीं।

बंगाल में प्राथमिक शिक्षा को १८५५ ई० में संचालित सर्किल-प्रथा जारी रखी गई। इसके अनुसार तीन चार गाँवों के स्कूलों की देख-रेख एक सर्किल पंडित के द्वारा होती थी। स्कूलों के शिक्षकों (गुरुओं) को सरकारी सहायता मिला करती थी। सहायता की रकम प्रायः उतनी होती थी, जितनी कि शिक्षक अपने छात्रों से शुल्क आदि के रूप में पाते थे। सन् १८६२ ईसवीं में नारमल स्कूलों की स्थापना की गई।

† On the whole, Her majesty's Government can entertain little doubt that the grant-in-aid system, as hitherto in force. is unsuited to the supply of vernacular Education to the masses of the population and it appears to them...... that the means of elementary education should be provided by the direct instrumentality of the officers of Government.

Despatch of 1859. Para 50

इन स्कूलों में देशी-पाठशालाओं के वास्तविक अथवा संभावित शिक्षक पाठ्य-विषयों के ज्ञान तथा शिक्षण-कला की जानकारी के लिए एक वर्ष के प्रशिक्षण में भेजे जाते थे। उन्हें प्रतिमास ५ रु० वृत्ति दी जाती थी। स्कूलों के कार्यक्रम में गणित, साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि-पाठ्य विषयों की शिक्षा के साथ साथ शिक्षण कला की शिक्षा भी सम्मिलित रहती थी। नारमल स्कूलों की योजना प्राथमिक स्कूलों के सुधार के लिए बड़ी उपयोगी थी। किंतु अर्थाभाव के कारण इस योजना से पूरा लाभ नहीं उठाया जा सका। सन् १८७२ में सर जौन कैम्बेल (Sir John compbell) ने देशी विद्यालयों के उत्थान के लिए ४ लाख रुपये मंजूर किये। इन रुपयों के व्यय के लिए एक विशेष योजना तैयार की गई। इस योजना के अनुसार देशी पाठ-शालाओं के शिक्षकों को प्रतिमास २ से ५ रुपये की वृत्ति दी जाती थी। यह वृत्ति सरकारी निरीक्षकों की सिफारिश पर दी जाती थी। स्थानीय जनता शिक्षकों को भोजनादि की सहूलियत पूर्ववत् दिया करती थी। कुछ दिन बाद वृत्ति की रकम उत्तीर्ण छात्रों की संख्या के अनुपात में निश्चित की जाने लगी। कैम्बेल की योजना काफी सस्ती थी, फलतः सरकारी सहायता-प्राप्त पाठशालाओं की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई। सन् १८८२ के लगभग इन स्कूलों की संख्या ४७,३७४ थी। योजना का सब से बड़ा दोष यह था कि सरकारी सहायता की रकम अत्यन्त कम थी। सन् १८८२ ई० में एक स्कूल की वार्षिक सहायता औसतन ११ रुपये मात्र थी।

मद्रास प्रान्त में सन् १८६८ तक प्राथमिक शिक्षा प्रायः उपेक्षित रही। उस वर्ष प्राथमिक स्कूलों के विकास के लिए एक योजना संचालित की गई, जिसके अनुसार देशी स्कूलों को उत्तीर्ण छात्रों की संख्या के अनुपात, में वृत्ति दी जाती थी। इस योजना से पाठशालाओं की प्रगति बड़ी तीव्र हुई। धर्म-प्रचारकों के स्कूलों को भी लाभ पहुंचा। केवल दस वर्ष में सहायता-प्राप्त देशी स्कूलों की संख्या ३,३५२ से बढ़ कर १३,३२३ हो गई।

बम्बई में देशी पाठशालाओं की स्थिति बहुत दिनों तक शोचनीय रही। सन् १८७० ई० में तत्कालीन लोक-शिक्षा निर्देशक मि० पिले ने (Mr. Peile) देशी स्कूलों की सहायता की एक योजना निकाली। किंतु इस योजना से भी देशी पाठशालाओं को सहायता प्राप्त न हो

सकी। सन् १८८१-८२ में बम्बई प्रान्त में केवल ७३ देशी पाठशालाओं को सरकारी सहयता मिलती थी, यद्यपि प्रान्त में ३०६५४ देशी पाठ-शालायें क्रियाशील थीं।

इस तरह लगभग सभी प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अत्यन्त सीमित थी। यह स्थिति सरकार तथा भारतीय नेताओं को प्राथमिक शिक्षा की ओर आकृष्ट किये बिना न रह सकी। फलतः भारतीय शिक्षा आयोग (१८८२) को सरकार की ओर से यह आदेश मिला कि वह भारत की प्राथमिक शिक्षा की समस्या का, विशेष रूप से, अध्ययन करे तथा इसके सुधार के लिए उचित परामर्श दे।

आयोग ने प्राथमिक शिक्षा को अपनी रिपोर्ट में वांछित महत्त्व दिया और इस शिक्षा के सभी पहलुओं पर अपने निश्चित सुझाव उपस्थित किये। इनमें प्रमुख ये थे:—

क—प्राथमिक शिक्षा उच्च शिक्षा का केवल साधन मात्र न हो, बल्कि यह स्वयं साध्य हो। यह शिक्षा स्थानीय प्रचलित भाषाओं के माध्यम से दी जाय। शिक्षा के विषय ऐसे हों जो कि जन-सामान्य को उनके जीवन के व्यावसायिक स्थितियों के उपयुक्त बना सकें। †

ख—सरकार की दृष्टि में प्राथमिक शिक्षा का महत्त्व सब से अधिक होना चाहिए और इस लिए यह आवश्यक है कि सरकारी चेष्टाएं, पहले से अधिक मात्रा में, इस शिक्षा की व्यवस्था, प्रसार तथा समुन्नति की ओर प्रेरित की जायं। ‡

ग—प्राथमिक शिक्षा का प्रसार जंगली इलाकों में भी किया जाय, जहाँ के निवासी अधिकांशतः आदिवासी हों। उनकी शिक्षा की व्यवस्था के लिए खास तरह के प्रबंध किये जायं।

† That primary education be regarded as the instruction of the masses through the vernaculars in such subjects as will fit them for their position in life, and be not necessarily regarded as a portion of instruction leading up to the university.

‡ That while every branch of education can justly claim the fortering care of the state, it is desirable, in the present circumstances of the country to declare the elementary education of the masses, its provision, extension and improvement, to be that part of the educational system to which the strenuous efforts of the state should now be directed in a still larger measure than heretofore.

Indian Education Commission Report—Primary-Paras. 1 & 3.

घ—सरकार की निम्नश्रेणी की नौकरियां उन्हें ही दी जायं जो कि साक्षर हों।

ङ—प्राथमिक शिक्षा के कोष के प्रबन्ध का प्रधान उत्तरदायित्व जिला तथा म्युनिसिपल स्कूल-बोर्डों पर सौंपा जाय। †

च—देशी पाठशालाएं प्राथमिक शिक्षा प्रसार के एक मुख्य अंग रहें। इन पाठशालाओं को समुचित प्रोत्साहन दिया जाय। इसके लिए निम्नलिखित परामर्श व्यवहृत किये जायं। ‡

(१) सभी असाम्प्रदायिक देशी पाठशालाओं को सरकारी स्वीकृति प्रदान की जाय।

(२) इन देशी पाठशालाओं को, सहायता देकर, प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के उपयुक्त बनाया जाय।

(३) जिला बोर्ड आदि अपना स्कूल वहीं स्थापित करें, जहाँ देशी पाठशाला पहले से प्रस्तुत नहीं हो। साधारणतया देशी पाठशालाओं को ही सहायता देकर प्राथमिक शिक्षा के प्रसार का साधन बनाया जाय। इन पाठशालाओं के आन्तरिक विकास तथा समृद्धि में किसी तरह की रुकावट नहीं दी जाय।

(४) देशी पाठशालाओं का प्रवेश-द्वार सभी वर्गों के बच्चों के लिए समान रूप से खुला रहे। आवश्यकतानुसार निम्नश्रेणी के बच्चों के लिए विशेष आर्थिक सहायता दी जाय। विशिष्ट वर्ग के लिए केवल वे ही विद्यालय हों, जो कि विशिष्ट विद्यालय की तरह (special school) सरकार से मंजूर किये जायं।

(५) देशी पाठशालाओं की स्वीकृति, निरीक्षण तथा सहायता के कार्य जिला तथा म्यूनिसिपल बोर्डों के द्वारा ही सम्पादित किये जायं। जो देशी स्कूल नियंत्रण तथा सहायता के इच्छुक न हों, उन्हें इनके लिए बाध्य न किया जाय।

† That general control over primary school expenditure be vested in the school-board, whether Muncipal or Local. which may now exist or may here after be created for Self-government in each Province.

—Indian Education Commission—Report—Para 32.

‡ That where indigenous schools exist, the principle of aiding and improving them be recognised as an imporant means of extending elementary education.

—Indian Education Commission Report—Primary—Para 5.

(६) देशी पाठशालाओं की आर्थिक सहायता की रकम उत्तीर्ण छात्रों के अनुपात में निर्धारित की जाय।

(७) शिक्षण-संबंधी समुन्नति के लिए देशी पाठशालाओं के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। वास्तविक तथा सम्भावित शिक्षक प्रशिक्षण के लिए प्रतिवर्ष प्रशिक्षण विद्यालयों में भेजे जायं। पुराने पाठ्य-विषयों के सुधार के अतिरिक्त, नये पाठ्य-विषय प्रशिक्षण विद्यालयों में क्रमशः प्रविष्ट किये जायं।

(८) आर्थिक :—

क—स्थानीय कोष पर प्राथमिक शिक्षा का दावा रहे। प्रान्तीय कोष पर भी उसका पर्याप्त अधिकार स्वीकृत किया जाय। †

ख—सभी बोर्ड स्कूलों में कुछ छात्र, गरीबी के आधार पर, निःशुल्क पढ़ाये जायं। निम्न आय वाले लोगों के लिए स्थापित विशिष्ट स्कूलों में निःशुल्क छात्रों की संख्या अधिक रहे।

ग—सभी पाठशालाओं में शुल्क लिया जाय। शुल्क के रुपये सिक्के अथवा किस्म में हों। कुछ विद्यार्थियों को शुल्क माफ किया जाय। शुल्क की आमदनी स्कूल के स्थानीय प्रबंधकों के जिम्मे रहे।

शिक्षकों के प्रशिक्षण:—आयोग ने, प्राथमिक शिक्षा की समुन्नति के लिये, शिक्षकों के प्रशिक्षण को बड़ा महत्त्व दिया।‡ देशी स्कूलों के सुधार के लिये, आयोग ने इनके वास्तविक तथा संभावित शिक्षकों के प्रशिक्षण की सिफारिश की—इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। सामान्य प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये आयोग ने ये सुझाव दिये :—

क—प्रशिक्षण स्कूलों की स्थापना वैसे स्थानों में की जाय, जहां वे स्थानीय स्कूलों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

ख—प्रत्येक निरीक्षण अपने अधीनस्थ नार्मल स्कूलों के कार्यों में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी ले।

† That primary education be declared to be that part of the whole system of Public Instruction, which possesses an almost exclusive claim on local funds set apart for education, and a large claim on provincial revenues.

—Indian Education Commisson Report-Primary—Para—28.

‡ It seems to us a matter of the greatest importance not merely that Normal Schools should be established at a few centres, but that they should be widely distributed throughout the country. Report—P.—132

ग—प्राथमिक शिक्षा के लिये निर्धारित सरकारी कोष पर प्रशिक्षण स्कूलों की व्यवस्था का पूरा दावा रहे। *

भारतीय शिक्षा आयोग की उपर्युक्त सिफारिशों ने भारत में प्राथमिक शिक्षा की समुन्नित तथा प्रसार के लिये सुव्यवस्थित योजना उपस्थित की। इसने प्रथामिक शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान जोर से आकृष्ट किया और इसके प्रसार का उत्तरदायित्व उसके कंधों पर आरोपित किया। प्रबन्ध के क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायी बनाया गया। स्वभावतः सीधे सरकारी साधनों से देश की प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकतायें पूरी न हो सकती थीं। देशी स्कूलों के सुधार के निमित्त, आयोग के जो सुझाव पेश किये, वे वस्तुतः अत्यन्त उपयोगी थे। आर्थिक क्षेत्र में, प्राथमिक स्कूलों के लिये एक अलग कोष का निर्माण, निश्चय ही, एक ऐसा सुझाव था जिससे प्रथामिक स्कूलों को आर्थिक दृढ़ता प्राप्त होती।

भारतीय शिक्षा आयोग की कुछ सिफारिशें सरकार ने तुरत स्वीकृत कर लीं। सभी प्रान्तों में नव-निर्मित जिला, लोकल तथा म्युनिसिपल बोर्डों पर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। कुछ प्रान्तों में यह नियम के द्वारा निर्धारित कर दिया गया कि लोकल बोर्ड आदि अपनी आमदनी का अमुक भाग शिक्षा में व्यय करें। प्राथमिक शिक्षा के संचालन के लिए अन्य प्रकार के नियम भी निर्धारित किये गये। ग्रान्ट-इन-एड की पद्धति भी प्रस्तुत की गई।

देशी स्कूलों से सम्बन्धित सिफारिशें केवल आंशिक रूप में स्वीकृत हुईं। स्वीकृत प्रस्तावों में प्रमुख यह था कि देशी पाठशालाओं की आर्थिक सहायता की रकम उत्तीर्ण छात्रों की संख्या के अनुपात में निश्चित किया जाय। १८८२ ई० के बाद देशी पाठशालों का स्वतंत्र अस्तित्व क्रमशः विलीन होने लगा। १६०२ के लगभग ये प्रायः नहीं के बराबर रह गये। कुछ प्रान्तों में ये, बोर्ड की प्राथमिक शिक्षा पद्धति में पूर्णतया सम्मिलित होकर, सरकारी स्कूलों में सर्वथा

* That the first charges on provincial funds, assigned for primary education be the cost of its direction and inspection and the provision of an adequate supply of normal schools.

Report P. 132

परिवर्तित हो गये। कुछ प्रान्तों में प्रोत्साहन की कमी के कारण ये अधिकतर विलुप्त हो गये। फलतः सन् १६०२ के बाद देशी पाठ-शालओं का अस्तिव मिट गया

स्थानीय बोर्डों के प्रबन्ध में प्रथामिक शिक्षा की प्रगति अवश्य हुई। सन् १८८२ में इस शिक्षा पर बोर्डों का खर्च केवल २४ लाख से कुछ अधिक था, सन् १६०२ में इस खर्च की रकम ४६ लाख रुपये के लगभग थी। किंतु भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के बावजूद भी प्राथमिक शिक्षा को सरकारी सहायता प्राप्त न हो सकी। प्राथमिक शिक्षा में सरकार का खर्च १६०२ में भी १६.६२ लाख था; सन् १८८२ में यह खर्च १६.७७ लाख था। इस तरह सरकारी खर्च में केवल १५ लाख रुपये की वृद्धि हुई। सरकार की इस नीति का प्रभाव प्राथमिक शिक्षा पर स्वभावतः अनुकूल नहीं पड़ा। सरकारी सहायता के अभाव में स्थानीय बोर्डों को केवल अपने साधनों पर निर्भर करना पड़ा। स्वष्टतः ये साधन इनने पर्याप्त नहीं थे कि इनके द्वारा प्राथमिक शिक्षा का पूर्ण विस्तार होता। सरकारी चेष्टा अधिकतर माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की ओर प्रेरित रही, जिसके कारण इन शिक्षाओं का प्रसार-कार्य प्राथमिक शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक रहा।

व्यावसायिक तथा स्त्री शिक्षा आदि

सन् १८५४ –१६०२ की अवधि में, भारत में, व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति कई रूपों में हुई। इसका अध्ययन हम निम्नलिखित विभागों में कर सकते हैं।

क—कानून की शिक्षा
ख—चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा।
ग—इन्जिनियरिंग की शिक्षा।
घ—कृषि की शिक्षा
ङ—औद्योगिक शिक्षा।

कानून की शिक्षा

गत अध्याय में हमने देखा है कि सन् १८५४ ई० के पहले कानून की शिक्षा का प्रबन्ध केवल बंगाल में था। सन् १८५४ के संदेश-पत्र ने कानून की शिक्षा के विस्तार की ओर भारत सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया। फलतः मद्रास तथा बम्बई में भी

कानून के अध्ययन की व्यवस्था शीघ्र की गयी। सन् १८५७ ई० में कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। विश्वविद्यालयों से कानून की शिक्षा को पूरा प्रश्रय मिला। कानून का व्यवसाय क्रमशः अधिक लाभप्रद होने लगा था। आधुनिक ढंग के न्यायालयों के लिये जजों तथा वकीलों की मांग बढ़ने लगी थी और आर्थिक दृष्टि से वकालत का पेशा बहुत ही लाभदायक सिद्ध होने लगा था। फलतः इस शिक्षा की ओर भारतीय विद्यार्थी जोर से झुकने लगे। स्वभावतः सन् १८५४–१६०२ की अवधि में कानून की शिक्षा-संस्थाओं की पर्याप्त वृद्धि हुई।

कानूनी शिक्षा की संस्थायें तीन तरह की थीं—कालेज, सामान्य कालेजों से संलग्न कानून कक्षाएं, कानून के स्कूल। पहली श्रेणी की संस्थाओं, अर्थात् कानून के विशिष्ट कालेजों, की संख्या कम थी। अधिकांशतः कानून की शिक्षा कला तथा विज्ञान कालेजों में ही अलग कक्षा में दी जाती थी। कई स्थानों में उच्च स्कूलों में ही कानून की शिक्षा आयोजित रहती थी। यहां की कानूनी शिक्षा का स्तर स्वभावतः कालेजों की अपेक्षा नीचा होता था।

विज्ञान को शिक्षा

गत अध्याय में हमने देखा है कि कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में मेडिकल कालेजों का निर्माण सन् १८५४ ई० के पहले हो चुका था। सन् १८६० ई० में लाहोर में भी मेडिकल कालेज की स्थापना हुई। अन्य प्रान्तों में सन् १६०२ ई० तक चिकित्सा-शिक्षा विकसित न हो पायी थी। अतः इन प्रान्तों से उपयुक्त छात्र उपर्युक्त कालेजों में ही चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के लिये जाया करते थे। इन्हें सरकार की ओर से छात्र-वृत्तियां मिला करती थीं।

इन कालेजों के अतिरिक्त चिकित्सा-शिक्षा के २२ स्कूल विभिन्न प्रान्तों में क्रियाशील थे। इनमें ११ सरकारी स्कूल थे, १ नगरपालिका के द्वारा चलाया जा रहा था तथा शेष पूर्णतः गैरसरकारी थे। गैर सरकारी स्कलों में केवल ४ को सरकारी सहायता मिल रही थी। सन् १६०२ ई० में मेडिकल कालेजों में १,४६६ छात्र थे तथा मेडिकल स्कूलों में २,७२७। हमने देखा है कि सन् १८५४ ई० में, धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं के कारण, भारतीय विद्यार्थी (विशेषतः उच्च हिन्दू) चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन की ओर आकृष्ट न हो सकते थे।

किंतु अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार तथा नवजागरण के फलस्वरूप स्तिथि में सुधार होने लगा और सन् १८५४-१६०२ की अवधि में भारतीय विद्यार्थी चिकित्सा विद्यालयों बिना हिचक के दाखिल होने लगे।

इन्जिनियरिंग की शिक्षा

सन् १८५४-१६०२ की अवधि में, कानून की शिक्षा की भांति इन्जिनियरिंग, शिक्षा की भी बड़ी प्रगति हुई। इसका प्रधान कारण यह था कि सरकारी तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं, रेलवे, मिलों तथा कारखानों में इन्जिनियरयों की मांग बढ़ रही थी और फलतः इन्जिनियरों के लिए अच्छी नौकरी सुगमता से उपलब्ध रहती थी। सन् १६०२ ई० में देश में चार इन्जिनियरिंग कालेज थे, जोकि रूड़की, शिवपुर, पूना तथा मद्रास में स्थित थे। रूड़की कालेज के विकास का वर्णन हम गत अध्याय में दे चुके है। सन् १८८० ई० में शिवपुर कालेज स्थापित हुआ। पूना कालेज स्थानीय इन्जिनियरिंग स्कूल, जो कि १८५४ ई० में ही कायम हो चुका था, से विकसित हुआ। इस कालेज में इन्जिनियरिंग शिक्षा के अतिरिक्त विज्ञान, कृषि तथा वन-विज्ञान (forestry) की शिक्षा भी दी जाती थी। मद्रास कालेज का विकास स्थानीय सरवे स्कूल से हुआ, जिसके बारे में हम जान चुके हैं। इन कालेजों के अतिरिक्त १८ इन्जिनियरिंग तथा सरवे स्कूल देश में क्रियाशील थे, जिनमें ७६७ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

कृषि की शिक्षा

भारत में कृषि शिक्षा का विषय बहुत दिनों तक उपेक्षित रहा। सन् १८८० ई० में अकाल आयोग (Famine Commission) ने सरकार का ध्यान, पहले पहल, कृषि शिक्षा की ओर आकृष्ट किया। किंतु, इस पर भी इस शिक्षा में सरकार की ओर से किसी प्रकार का ठोस कार्य न हुआ। सन् १८८६ ई० में कृषि के विषय पर भारत सरकार को परामर्श देने के उद्देश्य से इंगलैंड के एक कृषि विशेषज्ञ- डा० वोल्कर भारत भेजे गये। उन्होंने कृषि की शिक्षा को कृषि की उन्नति का आवश्यक अंग माना और इस आशय की अपनी सिफारिश भी दी। सन् १८६० ई० में प्रान्तीय सरकारों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें डा० वोल्कर की सिफारिशों पर विचार-विमर्श हुआ। इस सम्मेलन में भारत सरकार ने कृषि शिक्षा के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय किये, जिनसे आगे चलकर कृषि शिक्षा की व्यवस्था होने लगी। फिर भी, सन् १६०१-२ तक अंग्रेजी भारत में कृषि शिक्षा की

संस्थायें केवल ५ थीं, जिनमें २१६ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। ये संस्थायें पूना, शिवपुर, सैदपत (मद्रास), कानपुर तथा नागपुर में स्थित थीं। इन संस्थाओं में कृषि की शिक्षा का उद्देश्य प्रधानतः सरकारी कृषि विभाग तथा राजस्व विभाग के लिये अफसरों को तैयार करना था। फलतः इनकी शिक्षा से देश की कृषि की उन्नति का कार्य नहीं के बराबर हुआ।

पशु-चिकित्सा—इन्जिनियरिंग की शिक्षा की भांति, पशु-चिकित्सा की शिक्षा भी सरकारी तथा गैरसरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में विकसित हुई। सन १९०१–१९०२ में पशु-चिकित्सा के ४ विद्यालय थे, जिनमें ३ कालेज तथा १ स्कूल थे। कालेज बम्बई, बेलगछिया (बंगाल) तथा लाहोर में अवस्थित थे, स्कूल अजमेर में था। इन संस्थाओं में कुल मिलाकर ३०१ छात्र थे। पशु-चिकित्सा के संबंध में एक बात द्रष्टव्य है। उपर्युक्त ३०१ विद्यार्थी में केवल ८१ छात्र अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते थे; शेष मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा पाया करते थे।

कला की शिक्षा—जे० जे० टाटा, (बम्बई) आर्ट स्कूल का तथा मद्रास के आर्ट स्कूल का विवरण गत अध्याय में दिया जा चुका है। सन् १८७५ ई० में लाहोर में मेयो आर्ट स्कूल की स्थापना हुई। सन् १८९६ ई० में कलकत्ते के आर्ट स्कूल का पुनर्गठन किया गया। इस तरह सन् १९९१-१९०२ में कला की चार संस्थायें थीं। इन संस्थाओं में १,२२० छात्र कला की शिक्षा पा रहे थे। किंतु, इस समय तक कला की शिक्षा, विशुद्ध कला की शिक्षा न थी, बल्कि इसमें कई व्यावहारिक विषयों की शिक्षा सम्मिलित थी।

वाणिज्य-सम्बन्धी शिक्षा—वाणिज्य-व्यापार से सबन्धित शिक्षा, सन् १८५४-१९०२ की अवधि में विशेष प्रगति न कर सकी। इस विषय के लिये सारे भारत में केवल एक कालेज था, जो कि बम्बई में स्थित था। किंतु यह भी स्वतंत्र रूप से वाणिज्य-व्यापार की शिक्षा के लिये संगठित न था। इस कालेज के अतिरिक्त देश में १५ स्कूल थे, जिनमें वाणिज्य-व्यापार से सम्बन्धित शिक्षा, किसी तरह, दी जाती थी। इनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या १,१२३ थी।

टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा—सन् १८५४ से सन् १८७७ ई० तक भारत में टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा नितान्तः उपेक्षित रही। धर्म-प्रचारकों के द्वारा ईसाई छात्रों के लिये कुछ औद्योगिक स्कूल

अवश्य खुले हुये थे। किंतु इनमें पुरानी परीपाटी पर किसी देशी कारीगरी. जैसे, लोहारी अथवा काष्ठकारी की शिक्षा दी जाती थी। आधुनिक ढंग की टेकनिकल शिक्षा की व्यवस्था एकदम न थी। सन् १८७७ ई० में अकाल आयोग ने सर्वप्रथम टेकनिकल शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। किंतु इस पर भी कुछ कारवाई, इस दिशा में, न हुई। सरकार की इस नीति से भारत के लोग सहमत न थे। देश की उन्नति के लिये, टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता पूर्णत: महसूस की जाने लगी थी। अत: टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा के आयोजन के लिये भारतीय नेता प्रयत्नशील होने लगे। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन (सन् १८८७ ई०) में यह प्रस्ताव पास किया गका कि देश की आर्थिक उन्नति के लिये सरकार अन्य कार्यों के साथ-साथ टेकनिकल शिक्षा थी व्यवस्था करे।* कांग्रेस के कई परवर्ती अधिवेशनों में भी टेकनिकल शिक्षा का व्यवस्था की मांग जोरदार शब्दों में दुहरायी गयी।†

किंतु, इस आन्दोलन का फल सरकारी नीति पर शीघ्र न पड़ा और सन् १९०२ ई० तक सरकार की ओर से टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी ठोस कार्य न हुआ। सन् १९०१-२ ई० में सारे भारत में ८० स्कूल ऐसे थे, जिनमें टेकनिकल शिक्षा, तथाकथित रूप में, दी जाती थी। इनमें केवल ४ ही स्कूल सरकार के द्वारा प्रबन्धित थे। जैसा कि हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, ये स्कूल नाम के ही टेक-निकल स्कूल थे। अधिकांश स्कूलों की शिक्षा प्रधानत: विभिन्न देशी व्यवसायों से, पुराने ढंग पर, सम्बन्धित रहती थी। अत: आधुनिक

*"That having regard to the poverty of the people, it is desirable that the Government be moved to elaborate a system of technical education, suitable to the condition of the Country... ...."

Resolution of the Indian National Congress—1887.

† It reiterated this request in 1891, 1892 and 1893. In 1894 it affirmed in the most emphatic manner the importance of increasing public expenditure on all branches of education, and the expediency of establishing technical schools and colleges.

M. M Malviya—Report of the Indian Industrial Commission P. 261

टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध सन् १९०२ तक नाम मात्र का ही हुआ कहा जा सकता है।

स्त्री शिक्षा

गत अध्याय में हमने देखा है कि वुड के संदेश-पत्र ने स्त्री शिक्षा को सरकारी प्रोत्साहन देने का आदेश दिया था। अतः सन् १८५४ ई० के पश्चात भारत में स्त्री शिक्षा की प्रगति ज़ोरों से हुई। सन् १८८२ ई० में स्त्री शिक्षा की २६९१ संस्थाएं क्रियाशील थीं, जिनमें ६१६ सरकार के द्वारा प्रबन्धित थीं तथा १,६५२ सहायता-प्राप्त गैरसरकारी संस्थाएं थीं। शेष ४२३ ऐसी गैरसरकारी संस्थाएं थीं, जिन्हें सरकारी सहायता प्राप्त न थी, किंतु वे विभागीय निरीक्षण में थीं। इन सभी संस्थाओं में कुल मिलाकर १२७०६६ छात्राएं शिक्षा ग्रहण करती थीं। किंतु, इन छात्राओं में १२४,४९१ छात्राएं प्राथमिक स्कूलों में ही दाखिल थीं, जिनकी संख्या २५९४ थीं। माध्यमिक स्कूलों की संख्या केवल ८१ थीं, जिनमें केवल २०५४ छात्राएं भरती थीं। स्त्री शिक्षा के कालेज की संख्या केवल १ थी। इस तरह, सन् १८८२ ई० तक उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियां बहुत पिछड़ी हुई थीं। पढ़ने वाली कान्याओं में ९७·६ प्रतिशत स्कूलों में ही पढ़ती थीं। स्पष्टतः अभी तक, भारतीय जनमत आधुनिक उच्च शिक्षा को, कन्याओं के लिए, उपयुक्त न मानता था। बाल विवाह का प्रचलन भी कन्याओं की उच्च शिक्षा में बाधक था। तीसरा कारण यह था कि कन्याओं की उच्च शिक्षा की स्पष्ट प्रेरणा लोगों के सामने न थी। उस समय स्त्रियों के लिये सरकारी नौकरियों में प्रवेश करना एक ऐसी बात थी, जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी।

यद्यपि माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में स्त्रियों की अवस्था पिछड़ी हुई थी, शिक्षण-कला के क्षेत्र में सन् १८८२ ई० में स्त्रियों की स्थिति शोचनीय न थी। प्रशिक्षण संस्थाओं में उस समय ५१५ स्त्रियां शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इस क्षेत्र में भी धर्म-प्रचारकों ने पहला कदम उठाया, और उनके द्वारा कई प्रशिक्षण संस्थाएं कायम हुईं। किंतु ये संस्थाएं हिन्दु तथा मुसलमान स्त्रियों के बीच लोकप्रिय न हो सकीं। बाइबुल का अध्ययन अनिवार्य होने के कारण भले परिवार की कोई भी स्त्री धर्म-प्रचारकों के प्रशिक्षण स्कूलों में भरती होने के लिये तैयार न होती थी। इन स्कूलों के अतिरिक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था, देश में, सन्

१८७० के पहले न थी। ऊड के संदेश-पत्र के आदेशों के समक्ष भी भारत सरकार ने प्रशिक्षण स्कूलों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। स्त्री शिक्षा के सौभाग्य से सन् १८७० ई० के लगभग भारत में मिस कारपेन्टर नामक एक उदार-हृदया अंग्रेज महिला का पदार्पण हुआ, जिनकी प्रेरणा ने सरकार तथा जनता—दोनों को स्त्री शिक्षा की ओर जागरुक तथा क्रियाशील बना दिया। मिस कारपेन्टर को यह समझने में देर न लगी कि भारत में स्त्री शिक्षा की प्रगति के लिये प्रशिक्षित स्त्री शिक्षिकाओं का होना अनिवार्य था। अतः उन्होंने स्त्रियों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध भारत में अपने सेवा-कार्य का लक्ष्य बना लिया। उनके प्रभाव से तत्कालीन गवर्नर-जेनेरल सर जौन लारेन्स ने महिला ट्रेनिंग कालेजों के लिए एक रकम स्वीकृत कर दी। पहली मंजिल तय हुई। अब मिस कारपेन्टर को सुयोग्य अध्यापिकाओं की जरूरत हुई, जो कि ट्रेनिंग कालेजों को चला सकें। किंतु इनका बड़ा अभाव था। मिस कारपेन्टर स्वयं एक कालेज का भार वहन करने के लिये तैयार हो गयीं। सबसे कठिन प्रश्न था प्रशिक्षण के लिये स्त्रियों को ट्रेनिंग कालेजों में लाना। इस कार्य के लिये भारतीय स्त्रियों में न पर्याप्त योग्यता थी, न अभिरुचि। किन्तु यहां भी मिस कारपेन्टर ने समस्या पर विजय पायी। उन्हें सम्भ्रान्त लोगों का सहयोग प्राप्त हो गया; ट्रेनिंग कालेजों में भारतीय स्त्रियाँ दाखिल होने लगीं। मिस कारपेन्टर की साध पूरी हुई। इस तरह मिस कारपेन्टर ने, स्त्रियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था के द्वारा, भारत में स्त्री शिक्षा के प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया। †

सन् १८८२ ई० के भारतीय शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा की समस्या पर पूरा गौर किया और इसके सम्बन्ध में कई सिफारिशें की, जिनमें प्रमुख ये हैं:—

१—सभी प्रकार के सार्वजनिक कोष का उपयोग लड़कों के स्कूल तथा लड़कियों के स्कूल—दोनों ही में उचित अनुपात में किया जाय। ‡

† She should, therefore, be regarded as the pioneer of women's Training colleges which later on become so important an agency to develop the education of women.

Nurullah & Naik—P—390.

‡ We think it expedient to recommend that public funds of all kinds—local, municipal and provincial should be chargable in an equitable proportion for the support of girls schools as well as boys schools.

(२) जिन स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का स्थान प्रमुख हो, उन स्कूलों को भी, सामान्य-शिक्षा के आधार पर, सरकारी सहायता दी जाय।...... कन्या स्कूलों की सहायता की शर्तें, जहाँ तक सम्भव हो सके, सरल की जायं।

(३) लड़कों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम (curriculum) अनिवार्यतः लड़कियों के लिए भी उपयुक्त नहीं हो सकता। लड़कियों के लिए व्यावहारिक विषयों का महत्त्व साहित्यिक विषयों की अपेक्षा अधिक हो।

(४) कन्या स्कूलों के ग्रान्ट-इन-एड की स्वीकृति के लिए शुल्क का लेना अनिवार्य न रहे। लड़कियों की शिक्षा की अवधि को बढ़ाने के लिए छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध किया जाय।

(५) माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों का स्थान शोचनीय है। अतः माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएं विस्तृत की जायं, किंतु ये सुविधाएं वहीं दी जायं, जहाँ स्थानीय लोग इसके इच्छुक हों।

(६) बड़ी लड़कियों के लिए, घर से जाकर, दूरस्थ स्कूलों में उपस्थित होने में कई कठिनाइयाँ हैं। अतः कन्या स्कूलों में आवास का प्रबंध, आवश्यकतानुसार, किया जाय।

(७) कन्या स्कूलों का प्रबन्ध भरसक नगरपालिकाओं तथा स्थानीय बोर्डों के जिम्मे रहे। जहाँ ये अनिच्छुक हों, वहाँ सरकारी प्रबन्ध रहे।

(८) लड़कियों की शिक्षा के लिए स्त्री शिक्षिकाएं अधिक उपयुक्त हैं। अतः स्त्री शिक्षिकाओं को क्रमशः पुरुष शिक्षकों के स्थान पर नियुक्त किया जाय। *

(९) उच्च घरों की लड़कियाँ या तो स्कूलों में पढ़ने के लिए निकल नहीं सकतीं, या छोटी अवस्था तक ही स्कूल जा सकती हैं। अतः, दोनो स्थितियों में, उच्च घरों के लिए 'जनाना शिक्षा' अत्यन्त उपयोगी है;

* There can be no doubt that women are preferable for this purpose to men, and while we would not altogether exclude male teachers from girls school, we believe that female teachers should be gradually and cautiously substituted for them.

—Indian Education Commission—Report.

और इसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। किंतु 'जनाना शिक्षा' का क्षेत्र धार्मिक विषयों से बिल्कुल अछूता रहे *

(१०) लड़कियों की शिक्षा की जांच तथा प्रोत्साहन के लिए सुयोग्य निरीक्षिकाओं की सेवाओं का उपयोग अधिक किया जाय। ‡

(११) स्त्री शिक्षा की ओर जनता का सहयोग आकृष्ट करने के उद्देश्य से, यथासम्भव, वैसे पुरुषों तथा महिलाओं को कन्या स्कूलों के प्रबन्ध में संवद्ध किया जाय, जो स्त्री शिक्षा में रुचि रखते हों।

इस तरह, भारतीय शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में व्यापक रूप से अपनी सिफारिशें उपस्थित कीं। किंतु ये सिफारिशें ऐसी न थीं, जिनसे स्त्री शिक्षा की तीव्र प्रगति होती। आयोग ने स्त्री शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व अधिकांशतः जनता के ऊपर ही आरोपित किया। सरकार का कार्य इन्हें प्रोत्साहित करने तक सीमित रह गया। उस समय तक, जैसा कि हम देख चुके हैं, भारतीय जनमत स्त्री शिक्षा की ओर पूर्णतः आकृष्ट न हो सका था। वैसी दशा में गैरसरकारी चेष्टाएं इस दिशा में विशेष रूप से क्रियाशील न हो सकी थीं। 'जनाना शिक्षा' पर आयोग ने बल दिया, किंतु इस तरह की शिक्षा न पूर्णतः उपयोगी हो सकती थी, न स्त्री शिक्षा की मांगों को ही पूरी कर सकती थी। आर्थिक क्षेत्र में, आयोग ने स्त्री शिक्षा के लिये विशेष कोष का आयोजन न किया, जिसकी बड़ी आवश्यकता थी। अतः आयोग की सिफारिशों से स्त्री शिक्षा को यथेष्ट बल न मिला। हां, तत्कालीन स्थिति में सुधार अवश्य हुआ, और सन् १८८२ ई० के बाद भारत में स्त्री शिक्षा की कुछ प्रगति अवश्य हुई। इसका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

उच्च शिक्षा—उच्चशिक्षा के क्षेत्र में, सन् १८८२–१९०२ की अवधि में, कालेज में पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। सन् १८८१–२ में ऐसी लड़कियों की संख्या केवल ६ थी, सन् १९०१–२ में यह संख्या २६४ हो गयी। किंतु, इनमें केवल २८ लड़कियां हिन्दू थीं,

* Wa see no reason why this secular instruction, imparted under the supervision of ladies worthy of confidence, should not be recognised and assisted. ....

‡ In order that these results may be fairly estimated, it seems necessary that the services of well qualified inspectresses should be more largely made use of—Indian Education Commission.—Report.

शेष, एँग्लो-इंडियन, ईसाई, पारसी तथा अन्य वर्ग की थीं। एक भी मुसलिम लड़की अभी तक उच्च शिक्षा की छात्रा नहीं थीं।

सन् १८८२ ई० के पश्चात स्त्री शिक्षा के लिये अलग विद्यालयों का निर्माण भी हुआ। सन १८८२ ई० तक उच्च शिक्षा के लिये समस्त भारत में एक ही संस्था थी, जिसमें केवल स्त्रियां ही दाखिल हो सकती थीं। यह संस्था, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, थी 'बेथ्यून कालेज' थी। सन् १६०१–२ में इस प्रकार की विशिष्ट संस्थाएं १ से बढ़कर १२ हो गयीं।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में, सन् १८८२–१६०२ की अवधि में, उच्च शिक्षा की अपेक्षा, अधिक प्रगति हुई। सन् १८८१–२ में माध्यमिक स्कूलों में कुल मिलाकर २,०५४ छात्राएं थीं। सन् १६०१–२ में यह संख्या ४१,५८२ हो गयी। इन ४१,५८२ छात्राओं में हिन्दु छात्राओं की संख्या १३,६२३ थीं तथा मुसलिम छात्राओं की ८६५। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि सन् १६०१–२ ई० में भारतीय जनमत स्त्रियों की माध्यमिक शिक्षा की ओर काफी झुक चुका था और वह माध्यमिक शिक्षा को अनुपयुक्त तथा हानि-प्रद न समझता था। इस दृष्टिकोण-परिवर्तन का श्रेय अधिकांशतः उन समाज सुधारकों को है, जिन्होंने १६वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दू समाज के पुनरुद्धार के लिये परिश्रम किये। इन समाज-सुधारकों में पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्री महागोविन्द राणडे तथा बैरम जी मलाबारी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी चेष्टाओं से स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में काफी सुधार हुआ। समाज-सुधार के साधन के रूप में इन्होंने कन्या स्कूलों के निर्माण की ओर यथेष्ट ध्यान दिया। फलतः इनकी प्रेरणा से देश में स्त्री शिक्षा की अनेक गैरसरकारी संस्थाएं प्रादूर्भूत हुईं, जिन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार में अपना पूरा योग दिया।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में, उपर्युक्त अवधि में, भारतीय स्त्रियों ने सबसे अधिक प्रगति की। सन् १८८२ ई० में प्राथमिक स्कूलों में कुल मिलाकर १,२४,४६१ कन्याएं थीं। सन् १६०१-१६०२ में इन कन्याओं की संख्या ३४८,५१० थी। इनमें १,८८३४६ कन्याएं कन्या-प्राथमिक स्कूलों में पढ़ रही थीं और १६०,१८४ लड़का-स्कूलों में। इससे स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सह-शिक्षा के प्रति लोगों का रूख विरोधात्मक न था। प्राथमिक स्कूलों में पढ़ने वाली

कन्याओं में, हिन्दु कन्याएं २३००२४ तथा मुसलिम कन्याए ४७,५६६ थीं। इस तरह प्राथमिक शिक्षा में हिन्दु तथा मुसलिम कन्याओं का स्थान अन्य लोगों की कन्याओं से ऊपर था।

व्यावसायिक शिक्षा—सन् १६०१–१६०२ ई० में २,८०७ स्त्रियां व्यावसायिकशिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इनमें १४१२ स्त्रियां ट्रेनिंग स्कूलों में शिक्षिका का प्रशिक्षण पा रही थीं, शेष अन्य व्यवसायों के लिये प्रस्तुत हो रही थीं। इस क्षेत्र में ईसाई स्त्रियों का प्रथम स्थान था। १४१२ स्त्रियों में ६६६ ईसाई थीं। शिक्षण के बाद चिकित्सा की ओर स्त्रियां अधिक झुक रही थीं। भारतीय स्त्रियां पुरुष डाक्टरों से अपनी चिकित्सा कराने के लिये तैयार न रहती थीं। अत: स्त्री-चिकित्सकों की आवश्यकता स्पष्ट थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये स्त्री चिकित्सकों की मांग बढ़ रही थी। फलत: उपर्युक्त अवधि में भारतीय स्त्रियों में चिकित्सा-विद्या के अध्ययन की बलवती प्रेरणा प्राप्त हुई। चिकित्सा से संलग्न 'नर्सिंग' तथा जच्चा-विद्या के अध्ययन भी होने लगे। इसी अवधि में 'काउन्टेस आफ डफरिन कोष' कायम किया गया, जिसमें काफी रुपये जमा हुये। इस कोष के निर्माण का उद्देश्य स्त्रियों के लिये अस्पताल, जच्चागृह तथा अन्य संस्थाओं का खोलना था। कोष के रुपये से उन छात्राओं के लिये छात्रवृत्तियों का आयोजन किया गया, जो चिकित्सा-विद्या का अध्ययन करना चाहती थीं। अत: कोष ने भारतीय स्त्रियों को चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन में बड़ा योग दिया। व्यावासियक शिक्षा में एंग्लो-इंडियन, ईसाई तथा पारसी स्त्रियां ही अग्रणी रहीं। अभीतक हिन्दू तथा मुसलिम स्त्रियों के लिये व्यावसायिक कार्य वर्जित से ही थे। स्त्री-शिक्षा का आर्थिक पहलू हिन्दुओं तथा मुसलमानों के लिए कोई महत्त्व न रखता था। फलत: सन् १८८२–१६०२ की अवधि में व्यासायिक शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दु तथा मुसलिम स्त्रियाँ एकदम पिछड़ी रहीं।

सन् १८८२–१६०२ को अवधि के बीच स्त्री शिक्षा की प्रगति के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सन् १६०२ ई० स्त्री शिक्षा की सामान्य स्थिति सन् १८८२ ई० की अपेक्षा कहीं अच्छी थी। फिर भी, लार्ड कर्जन के शब्दों में, स्त्री शिक्षा की दशा संतोष-प्रद न थी। †

† Female education as a whole is still in a very backward condition—Lord Curzan-quoted in Nurullah & Naik—P. 433.

स्कूली अवस्था की कन्याओं में केवल २'४६ प्रतिशत ही स्कूलों में दाखिल थीं। साक्षरता के विचार से, सौ में ०'६ स्त्रियाँ ही साक्षर थीं। इस तरह, संख्यात्मक उपलब्धियों के विचार से १८८२-१६०२ की अवधि स्त्री शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण न थी। किंतु इस अवधि में स्त्री शिक्षा की ओर भारतीयों के दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। स्त्री शिक्षा की ओर अब लोगों की आशंकाएं कम हो गयीं और वे अपनी कन्याओं को स्कूलों में भेजने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक प्रस्तुत रहने लगे। इस परिवर्त्तन की तह में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, समाज सुधार आन्दोलन थे, जिन्होंने स्त्रियों के सामाजिक प्रतिबन्धों तथा कुरीतियों को हटाने की कोशिश की। इनके प्रभाव से स्त्रियों के प्रति एक नये दृष्टिकोण का उदय हुआ, जिसके कारण स्त्री शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हुआ। †

मुसलमानों की शिक्षा—हम पहले देख चुके हैं कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रति शुरू में मुसलमानों का रुख अच्छा न था। कई कारणों से कम्पनी सरकार भी इनकी शिक्षा की ओर प्रयत्नशील न थी। पहले-पहल लार्ड मेयो ने मुसलिम शिक्षा की ओर ठोस कदम उठाया। सन् १८७२ ई० में भारत-सरकार ने एक विशिष्ट प्रस्ताव पास किया, जिसके अनुसार मुसलमानों के बीच शिक्षा प्रसार के लिये निम्नलिखित आदेश दिये गये। ‡

१—माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा देशी भाषाओं के माध्यम से दी जाय।

२—सभी सरकारी स्कूलों तथा कालेजों में अरबी तथा फारसी भाषाओं को अधिक प्रोत्साहन दिया जाय।

† The initial inertia had been overcome, the foundations of the modern educational edifice had been laid and the stage set for a rapid expansion of the education of women in all directions.

Nurullah & Naik—P. 404.

‡ His Excellency in Council believes that secondary and higher education conveyed in the vernacular and rendered more accessible than now, coupled with a more systematic encouragement and recognition of Arabic and Persian literature, would be not only acceptable to the Muhammadan community but would enlist the sympathies of the more earnest and enlightened of its members on the side of education. Syed Mahmud—History of Education in India.—P. 184.

३—मुसलिम क्षेत्रों में स्थित स्कूलों में मुसलमान अंग्रेजी शिक्षक नियुक्त किये जाँय।

४—मुसलिम गैरसरकारी चेष्टाओं को ग्रान्ट-इन-एड के द्वारा आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाय।

५—मुसलमानों के उपयुक्त एक वर्नाक्यूलर भाषा के सृजन के लिए सरकार अधिक प्रोत्साहन दे।

इन आदेशों के अनुसार मुसलिम शिक्षा को प्रोत्साहित करने की चेष्टाएँ भिन्न-भिन्न प्रान्तों में शुरू हो गयीं। इनके फलस्वरूप मुसलिम शिक्षा की स्थिति में काफी सुधार हुआ। सन् १८८२ ई० में मुसलिम शिक्षा की स्थिति, सन् १८७२ की अपेक्षा, कहीं अच्छी थी। इस वर्ष मुसलिम छात्रों की संख्या कुल छात्रों की संख्या की १७·८ प्रति शत थी। सन् १८८१ ई० की जन-गणना के अनुसार मुसलमानों की आबादी कुल आबादी की १६·१ थी। इस तरह सन् १८८२ ई० में भारतीय मुसलमान, शिक्षा के क्षेत्र में, अन्य जातियों के लगभग समकक्ष थे। किंतु अभी भी वे हिन्दुओं से कई रूप में पिछड़े हुए थे। अभी तक अधिकांश मुसलिम छात्र सार्वजनिक स्कूलों में न पढ़कर खानगी स्कूलों में ही पढ़ते थे। धार्मिक शिक्षा, जिसे वे अपने लिए परमावश्यक समझते थे, खानगी स्कूलों में ही प्राप्त हो सकती थी। (२) माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय मुसलमान हिन्दुओं से बहुत पीछे थे। (३) स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मुसलिम महिलाएँ अत्यन्त पिछड़ी थीं। (४) सरकारी नौकरियों में मुसलमान उम्मीदवार, हिन्दुओं के सामने प्रतिद्वन्दिता में न टिक पाते थे।

सन् १८८२ के भारतीय शिक्षा आयोग ने मुसलिम शिक्षा के इन चार त्रुटियों को दूर करने की ओर विशेष ध्यान दिया। मुसलिम शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशें, न केवल न्याय-संगत थीं, बल्कि उदारतापूर्ण भी थीं। † आयोग की प्रमुख सिफारिशें ये थीं :—

(१) मुसलिम शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जाय। और इस तरह का प्रोत्साहन लोकल, म्यूनिसिपल तथा प्रान्तीय कोष का वैध उत्तरदायित्व समझा जाय।

† The recommendations we proceed to make have been framed, we believe, not merely with a regard to justice, but with a leaning towards generosity.

The Report, Paragraph 580.

(२) देशी मुसलिम स्कूलों को अपने पाठ्य-क्रम में भौतिक विषयों को सन्निविष्ट करने के लिए पूरा प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) मुसलिम प्राथमिक स्कूलों के लिए विशिष्ट मानदण्ड निर्धारित किये जायँ।

(४) प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में मुसलमानों की शिक्षा का मुख्य माध्यम हिन्दुस्तानी हो।

(५) जिन स्थानों में सरकार के द्वारा व्यवहृत वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त दूसरी भाषा हो, उन स्थानों में, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में पढ़ने वाले मुसलमानों के लिए उस भाषा को स्वेच्छा से पढ़ने की सहूलियत दी जाय।

(६) जिन क्षेत्रों में मुसलमानों की संख्या पर्याप्त हो, उन क्षेत्रों के सरकारी प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में हिन्दुस्तानी तथा फारसी भाषाओं को पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाय।

(७) मुसलमानों के लिये, उच्च अंग्रेजी शिक्षा के क्षेत्र में, सहायता की अधिक आवश्यकता है। अतः यह सहायता भरपूर दी जाय।

(८) मुसलमान छात्रों के लिये विशिष्ट प्रकार की क्रम-बद्ध छात्रवृत्तियाँ आयोजित की जायँ। ये छात्रवृत्तियाँ प्राथमिक स्कूलों से प्रारम्भ होकर विश्वविद्यालय तक जारी रहें।

(९) सरकारी स्कूलों में निःशुल्क पढ़ने वाले छात्रों में मुसलिम छात्रों के लिये, उचित अनुपात में, जगहें स्पष्ट रूप से संरक्षित कर दी जायँ।

(१०) जिन स्थानों में मुसलमानों के हित के लिये भूमि आदि वक्फ किये हों और इनका प्रबन्ध सरकार के द्वारा होता हो, उन स्थानों में वक्फ की सारी आय केवल मुसलमानों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने में व्यय की जाय।

(११) जिन स्थानों में वक्फ सम्पत्ति, गैर-सरकारी प्रबन्ध में हो, वहाँ इन प्रबन्धकों को ग्रान्ट-इन-एड पद्धति पर, स्कूल तथा कालेज स्थापित करने के लिये प्रोत्साहन दिया जाय।

(१२) जहाँ आवश्यकता हो, मुसलमान शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण-स्कूल तथा प्रशिक्षण-कक्षाएं खोली जायं।

(१३) जिन मुसलिम स्कूलों में हिन्दुस्तानी के माध्यम से शिक्षा दी जाती हो, उन स्कूलों में इस कार्य के लिये, जहाँ तक सम्भव हो, मुसलमान शिक्षक नियुक्त किये जायँ।

(१४) मुस्लिम प्राथमिक स्कूल के निरीक्षण के लिये मुसलिम निरीक्षक अधिक संख्या में नियुक्त किये जायँ।

(१५) मुसलिम शिक्षा की समुन्नति के लिये जो संस्थाएं कायम की जायँ, उन्हें सरकार स्वीकृत तथा प्रोत्साहित करे।

(१६) लोक-शिक्षा की वार्षिक रिपोर्ट में एक अध्याय, खास तौर से, मुसलिम शिक्षा से सम्बन्धित रहे।

(१७) स्थानीय सरकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जाय कि शिक्षित मुसलमानों तथा अन्य शिक्षित लोगों में सरकारी नौकरियाँ किस अनुपात में वितरित होती हैं।

आयोग की ये सिफारिशें, कुछ संशोधन के साथ, सरकार के द्वारा स्वीकृत कर ली गयीं। किंतु सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि मुसलमानों का हित अंग्रेजी शिक्षा के ग्रहण में ही था, न कि फारसी और अरबी के ग्रहण में, जिस पर आयोग ने आवश्यकता से अधिक बल दिया था। ऐसा करने पर ही वे उच्च सरकारी नौकरियों की प्राप्ति में हिन्दुओं के सामने प्रतिद्वन्दिता में टिक सकते थे। †

आयोग की सिफारिशों की स्वीकृति के फलस्वरूप सन् १८८२ ई० के पश्चात मुसलिम शिक्षा का प्रसार दृढ़ता से होने लगा और सन् १९०२ ई० में इसकी स्थिति पहले से काफी अच्छी हो गयी। सन् १९०१-१९०२ में सभी प्रकार की संस्थाओं में कुल मिलाकर ९,७८,००० मुसलिम छात्र पढ़ रहे थे। यह संख्या सभी धर्मों के छात्रों को संख्या की २१.६ प्रतिशत थी। किंतु इस संख्या में उन छात्रों की संख्या भी सम्मिलित है जो कि खानगी स्कूलों में पढ़ते हैं। यह संख्या २,४६,००० थी। इस संख्या को घटा लेने के बाद सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने वाले मुसलिम छात्रों की संख्या ७,३२,००० थी। यह संख्या समस्त छात्र संख्या की १८.८ प्रतिशत थी। जनसंख्या के विचार से यह अनुपात २२.६ होना चाहिये था। अतः सन् १९०१-१९०२ में भी भारतीय मुसलमान अन्य लोगों की

† It is only by frankly placing themselves in line with the Hindus, and taking full advantage of the Government system of high and esepecially of english education that the Muhammadans can hope fairly to hold their own in respect of the better description of state appointments.

Syed Mahmood—P. 14

अपेक्षा, शिक्षा के क्षेत्र में, पिछड़े थे। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में तो वे अन्य वर्गों से बहुत ही पीछे थे। * माध्यमिक स्कूलों में केवल १४.४ प्रतिशत मुसलिम छात्र दाखिल थे और कालेज में केवल ७.३ प्रतिशत।

सर सैयद अहमद खाँ —

उन्नीसवीं सदी में भारतीय मुसलमानों में शिक्षा की जो प्रगति हुई, उसका बहुत बड़ा श्रेय सर सैयद अहमद खाँ को है। वस्तुतः भारतीय मुसलमानों के नवोत्थान में सर सैयद अहमद का वही स्थान है, जो कि राजा राममोहन राय का हिन्दू समाज के पुनर्जागरण में है।

सर सैयद अहमद का जन्म सन् १८१७ ई० में दिल्ली में हुआ था। उनके पिता मुगल सम्राट के विश्वास-पात्र उच्च पदाधिकारी थे। सैयद अहमद ने अपने पिता के स्थान पर प्रतिष्ठित होना अस्वीकार कर दिया और कम्पनी के अधीन नौकरी की। अपनी योग्यता, ईमानदारी तथा अध्यवसाय से वे शीघ्र ही कम्पनी सरकार के अधीन ऊँचे पद पर पहुँच गये। सन् १८५७ की क्रान्ति में उन्होंने कम्पनी सरकार की बड़ी मदद की, जिसके फलस्वरूप वे इसके श्रद्धापात्र बने। दूसरी ओर उन्होंने सन् १८५७ ई० की क्रान्ति से भारतीय मुसलमानों को संगठित तथा जागृत करने की प्रेरणा प्राप्त की। † उन्होंने स्पष्टतः देखा कि भारत में अंग्रेजी शासन टिकाऊ हो चुका था और इस शासन से विमुख होकर भारतीय मुसलमान अपना अहित के सिवा और कुछ नहीं कर सकते थे। अतः इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि भारतीय मुसलमान पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करें और अपने समाज को समुन्नत बनावें। ऐसा न होने से उनका विनाश निश्चित था। ‡ उस धारणा से अनुप्राणित होकर सर सैयद अहमद ने अपना

* It is not however so much with regard to the total number of pupils under public instruction as to the proportion in the higher stages of instruction that the backwardness of Muhammadans is most apparent.

Quinquennial Review—[1887—1901], Paragraph—1123.

† The Mutiny, showed him, as by a flash of lightning, the frightful danger in which his community stood.

‡ He now saw clearly that the Muhammadans of India must absorb the science and education of the West, and must also introduce social reform among themselves, or else fall into complete helplessness or ruin.

H. V. Hampton—Biographical Studies in Modern Indian Education P. 221.

जीवन भारतीय मुसलमानों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में उत्सर्ग कर देने का निश्चय कर लिया। इतिहास के उस युग में जब कि भारतीय मुसलमान अवनति की हद को छू रहे थे, सर सैयद अहमद ने उन्हें गर्त से निकाल कर प्रगति-पथ पर आरूढ़ करने का बीड़ा उठाया। † अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने मुसलमानों के आन्तरिक संगठन, अंग्रेजी सरकार से सहयोग तथा अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार आवश्यक माने।

सन् १८७५ ई० में सर सैयद अहमद ने ऐंग्लो-ओरियेन्टल कालेज, अलीगढ़ की स्थापना की। आगे चलकर यह कालेज अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय में परिणत हो गया। भारतीय मुसलमानों के नवोत्थान के कार्य में अलीगढ़ कालेज सर सैयद अहमद के लिए एक अमोघ अस्त्र सिद्ध हुआ। सर सैयद के सुयोग्य निर्देश में अलीगढ़ ने, न केवल ऐंग्लो-मुसलिम साहचर्य्य स्थापित किया, बल्कि उसने मुसलमानों के एकीकरण का बौद्धिक वातावरण प्रस्तुत किया। ‡ अलीगढ़ के नवशिक्षित युवक भारत के हर कोने में मुसलिम संगठन के अग्रदूत बने। वस्तुतः भारतीय इसलाम के नवोत्थान में अलीगढ़ एक ऐसे प्रकाश-पुंज के रूप में परिलक्षित हुआ, जहाँ से नवजागरण की रश्मियाँ भारतीय मुसलिम जगत में सर्वत्र विकीर्ण हो गयीं। जातीय एकता तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के अतिरिक्त सर सैयद अहमद ने भारतीय मुसलमानों के बीच उर्दू को उनकी जातीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। अलीगढ़ के पाठ्य-क्रम में उर्दू को अनिवार्य बनाकर सर सैयद अहमद ने इसे शिक्षित मुसलमानों के बीच वही मान्यता दिलवायी जो कि ५० वर्ष पहले फारसी को प्राप्त थी।

† When the depression of Islam was at its height, he assumed the leadership of the more moderate elements, who saw that the future of Islam could only be safeguarded by an integration of the Mussalmans of India into a single community by a period of co-operation with the British, . . . and by an encouragement of English education.

Panikkar—A Survey of Indian History P.—282.

‡ He gave to Aligarh a missionary spirit. Under him it fulfilled a dual purpose : it created in the generation that followed a spirit of Anglo-Muslim co-operation, which no doubt paid immediate dividends to both sides and it also converted Aligarh into an intellectual general staff for the work of Islamic integration.

Panikkar—A Survey of Indian History. P.—282

सर सैयद अहमद ने कई पुस्तकों की रचना भी की, जिससे मुसलमानों के नवजागरण को प्रश्रय मिला।

कम्पनी सरकार ने सर सैयद अहमद की राजभक्ति को पुरस्कृत किया। लार्ड लारेन्स ने सन् १८६६ ई० में उन्हें स्वर्ण पदक से विभूषित किया। इग्लैंड में भारत सचिव ने उनका हार्दिक स्वागत किया और सी० एस० आई के खिताब से सम्मानित किया। सन् १८७८-१८८२ तक वे भारतीय 'लेजिसलेटिव कौन्सिल' के सदस्य भी रहे। किंतु, ये सम्मान उस सम्मान की तुलना में नगण्य हैं, जो उन्हें भारतीयों ने, विशेषत: भारतीय मुसलमानों ने, दिया। भारतीय मुसलमानों को आधुनिक शिक्षा के प्रति आकृष्ट करने तथा उन्हें जागरूक बनाने का श्रेय उन्हीं को है। अपने जीवन काल में उन्होंने भारतीय मुसलमानों को अंधकार के खड्ड से निकालकर एक प्रभावशाली शक्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया। इतिहास में इस तरह के दृष्टान्त अधिक नहीं हैं। † किंतु, इतिहास के विद्यार्थी को यह बात खटके बिना नहीं रह सकती कि सर सैयद अहमद के जातीय संगठन ने भारत की राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध ऐसी शक्ति उत्पन्न कर दी, जिसने आगे चलकर भारतीय राष्ट्रवाद को सर्वदा के लिए विश्रृंखल कर दिया। दो राष्ट्रों के सिद्धान्त के सूत्रपात से भारतीय मुसलमान, भारतीय राष्ट्र से विच्छिन्न होकर, उस स्वर्णिम संसार की कल्पना करने लगे, जिसकी परिणति आगे चलकर भारत के विभाजन और पाकिस्तान की सृष्टि में हुई।‡

‡ There are a few more impressive facts in modern history than this conversion of a great people in a single generation by the steady pressure of higher education combined with the influence of a commanding personality.

C. F. Andrews—quoted in Nurullah & Naik P.—418.

‡ The two nation theory which Sir Syed Ahmad had tentatively advocated when he declared that Hindus and Muslims were the two eyes of India had found its consummation. Islamic integration was complete, for everywhere in India the citadel of nationalism was permanently breached and the separation of Islam from the body politics of India, proclaimed in words which could not be misunderstood.

.... From separate electorates to Pakistan was but an easy and natural evolution.

Panikkar—A Survey of Indian History P.—288.

पिछड़ी जातियों की शिक्षा

पिछड़ी जाति का प्रयोग सामान्यत: निम्नलिखित चार प्रकार के जाति-समूहों के लिए होता है। ‡

क—डोम, चमार, दुसाध, मेहतर, महर आदि भारत का वह जाति-समूह जो कि सदियों से अछूत समझा जाता आया है। इस जाति-समूह के लिए कई नाम प्रचलित हैं; सबसे नवीन तथा संस्कृत नाम हरिजन है, जिसे महात्मा गांधी ने प्रचलित किया।

ख—कोल, भील, मुण्डा, उराँव, संथाल आदि आदिम जाति-समूह जो कि अधिकतर जंगली प्रान्तों में रहते हैं तथा जिनकी आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति शोचनीय रही है।

ग—हिन्दू समाज का वह जाति-समूह जो कि अछूत नहीं, किंतु सांस्कृतिक क्षेत्र में बहुत पिछड़ा रहा है। कोइरी, कुरमी, ग्वाला आदि जातियां इसी वर्ग में आती हैं।

घ—वे जातियाँ जो कि बहुत दिनों से भ्रमणशील रही हैं तथा जो चोरी, डकैती, लूट-मार, ठगी आदि निन्दनीय कर्मों में बहुधा प्रवृत्त रहती हैं। इन जातियों का एक अपना समूह है, जो शान्तिप्रिय तथा स्थायी जनसमूह से बहुतांश में भिन्न है।

सन् १८५४ ई० के पहले चारों प्रकार की पिछड़ी जातियों की शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी। द्वितीय अध्याय में वर्णित मुनरो की रिपोर्ट में इन जातियों की शिक्षा का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। एलफिन्सटन की रिपोर्ट में कोली, बेरद आदि कुछ जातियों के छात्र शिक्षा ग्रहण करते पाये जाते हैं। किंतु इन छात्रों की संख्या सैकड़े १ से भी कम थी। किन्तु आदम की रिपोर्ट में पिछड़ी जातियों के साथ-साथ इन जातितों के शिक्षकों का विवरण भी है। कुछ हरिजन (अछूत) जाति के छात्र भी वर्णित हैं। इससे स्पष्ट है कि आदम के समय (१८३८) में पिछड़ी जातियों की शिक्षा का प्रचलन देशी स्कूलों में होने लगा था, हालांकि इन जातियों के छात्रों की संख्या बिलकुल नगण्य थी। † सन् १८५४ ई० के पहले भारत के सरकारी प्राथमिक स्कूलों में भी पिछड़ी जातियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। अब तक कम्पनी की शिक्षा-संबंधी नीति सिर्फ उच्च वर्गों की शिक्षा तक

‡ Nurullah & Naik P. 417

† Nurullah and Naik P.—419.

सीमित थी। स्वभावतः इस नीति में पिछड़ी जातियों के बच्चों की शिक्षा की कोई गुंजाइश न थी। किंतु, विदेशी धर्म-प्रचारक (Missionaries) पिछड़ी जातियों की शिक्षा की ओर प्रयत्नशील शुरू से ही थे। इन्हीं जातियों में तो उनके धर्म-प्रचार की चेष्टाएं सुगमता से सफलीभूत हो सकती थीं। धर्म-प्रचार की भावना से प्रेरित होकर ये प्रचारक आगे चलकर आदिम निवासी तथा पहाड़ी जातियों के बच्चों की शिक्षा की ओर भी प्रवृत्त होने लगे। इस तरह, सन् १८५४ ई० के पहले पिछड़ी जातियों की शिक्षा अधिकतर धर्म-प्रचारकों के स्कूलों में ही होती थी। कुछ देशी स्कूल भी उनकी शिक्षा की ओर आकृष्ट होने लगे थे। सरकारी स्कूलों में इनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी।

हम देख चुके हैं कि सन् १८५४ के संदेशपत्र ने उच्च-वर्गीय शिक्षा-पद्धति की घोर निन्दा की और यह आदेश दिया कि सरकारी शिक्षा-पद्धति में जन-सामान्य की शिक्षा की व्यवस्था की जाय। जन-सामान्य में पिछड़ी जातियाँ भी सम्मिलित थीं और सरकारी शिक्षा-विभागों को इनकी शिक्षा की ओर प्रयत्नशील होना पड़ा। फलतः सन् १९०२ ई० तक सरकारी शिक्षा-विभागों के द्वारा हरिजनों, आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा की ओर कुछ उल्लेखनीय कार्य हुए।

हरिजनों की सामाजिक स्थिति कुछ ऐसी थी, जिसके कारण सरकारी शिक्षा विभागों को, इनकी शिक्षा के आयोजन में, प्रारम्भ में, बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। हरिजन बच्चों को सामान्य स्कूलों (General schools) में दाखिल होने देने के लिए उच्च वर्ग के हिन्दू एकदम तैयार न थे। स्वयं हरिजनों में अपनी शिक्षा के लिए इतनी उत्कंठा न थी कि वे उच्च वर्ग के इस विरोध के बावजूद भी सरकारी प्रोत्साहन से लाभ उठाते। हरिजनों के लिए अलग स्कूल खोलने में भी काफी दिक्कत थी। ऐसे स्कूलों के शिक्षक बनने के लिए उच्च वर्ग का कोई भी व्यक्ति तैयार न होता था। साथ ही हरिजन जाति में ऐसे पढ़े-लिखे व्यक्ति न थे जो कि हरिजन-स्कूलों के शिक्षक नियुक्त होते। भारत सरकार भी हरिजनों के लिए अलग स्कूल खोलने के पक्ष में न थी। इस नीति के प्रयोग से हरिजनों तथा उच्च जातियों का सामाजिक विभेद घटने की अपेक्षा बढ़ जाता। फलतः यही निश्चय किया गया कि सभी सरकारी स्कूल हरिजनों के लिए भी, समान रूप से, खोल दिए जाएं, अर्थात् सामान्य सरकारी स्कूलों में ही हरिजन छात्र भी, अन्य वर्णों के

छात्रों के साथ, शिक्षा ग्रहण करें। सरकार की इस नीति का, उच्च जातियों की ओर से, विरोध होना स्वाभाविक था। किंतु सरकार अपने निश्चय से न डिगी। कम्पनी की संचालक-समिति ने भी सन् १८५७ ई० में इसी नीति को जारी रखने का आदेश दिया। सरकारी शिक्षा संस्थाएं सभी वर्गों के लिए हैं, और इस नीति से सरकार हटना नहीं चाहती—ऐसा था संचालक-समिति का भारत सरकार को आदेश। तब से सभी सरकारी स्कूल हरिजनों के लिए भी उसी रूप में खुले हुए हैं, जिस रूप में वे अन्य वर्गों के लिए खुले हुए हैं। किंतु हरिजनों को सरकार के इस निश्चय से लाभ न हुआ। उच्च जातियों का विरोध पूर्ववत् बना रहा। कहीं-कहीं तो हिंसात्मक व्यवहार भी हरिजनों के विरूद्ध किया गया। कैरा जिले के पाँच स्कूल, तनातनी के कारण, कई वर्षों तक बन्द कर दिये गए। एक गाँव में हरिजनों की झोपड़ियां तथा फसलें जला दी गईं, जिसके फलस्वरूप सरकार को विशेष पुलिस का प्रबन्ध करना पड़ा। इस तरह के दृष्टान्तों से सरकार अपने पूर्व निश्चय पर अडिग न रह सकी। हरिजनों के लिए अलग स्कूल खोलने के सिवा उनकी शिक्षा का कोई दूसरा मार्ग न दीख पड़ता था। फलतः इनके लिए कुछ इस प्रकार के विशिष्ट स्कूल खोले गए। किंतु अनेक कठिनाइयों के कारण इन विशिष्ट स्कूलों की संख्या बहुत सीमित रही।

सन् १८८१—८२ ई०में, भारतीय शिक्षा आयोग को केवल २० ही ऐसे विशिष्ट स्कूल मिले, जिनमें १६ बम्बई प्रान्त में थे, तथा ४ मध्य प्रान्त में। इन स्कूलों के हरिजन छात्रों की संख्याएं क्रमशः ५६४ और १११ थीं। भारतीय शिक्षा आयोग ने हरिजनों की शिक्षा के प्रश्न पर गंभीर विवेचन किया। आयोग की सम्मति में यह पूर्णतः उचित और न्याय-संगत था कि सभी सरकारी स्कूलों के द्वार हरिजन छात्रों के लिए समान रूप से खुले रहें। किंतु इसके साथ ही आयोग हरिजनों की वास्तविक सामाजिक स्थिति से विमुख न रह सकी। सदियों की सामाजिक परम्परा के अनुसार हरिजन, उच्च जातियों की दृष्टि में, अछूत थे और इन जातियों की भावनाओं को, एक बार ही, मटियामेट नहीं किया जा सकता था। अतः आयोग ने यह सिफारिश की कि सरकारी स्कूलों में हरिजनों को पढ़ने का हक पूर्ववत् प्राप्त रहे, किंतु इस हक के व्यावहारिक प्रयोग में अध्यापक तथा शिक्षा विभाग के अफसर

सतर्कता से काम लें, ताकि उच्च जातियों का विरोध यथासंभव कम हो तथा इस विरोध को कालक्रम में स्वाभाविक रूप से मिटाने का मौका मिले। † आयोग ने यह भी सिफारिश की कि जिन स्थानों में हरिजन बच्चों की संख्या अलग स्कूल स्थापित करने के लिए पर्याप्त हो अथवा जिन स्थानों के सामान्य स्कूलों में हरिजनों की शिक्षा सम्पादित न होती हो, उन स्थानों में हरिजन छात्रों के लिए विशिष्ट स्कूल (Special schools) प्रचुरता से खोले जायं। ‡

इन सिफारिशों के फलस्वरूप हरिजनों की शिक्षा में सन् १८८२–१९०२ की अवधि में अच्छी प्रगति हुई। सामान्य सरकारी स्कूलों में भी हरिजन छात्रों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी, यद्यपि इन छात्रों के साथ स्कूलों का व्यवहार सन्तोषजनक न था। हरिजन छात्रों के लिए विशिष्ट स्कूल खोलने की पद्धति तो पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गई और इस पद्धति के अनुसार बहुत से विशिष्ट स्कूल खोले गये। इस अवधि में कई अन्य रूपों में भी हरिजन शिक्षा को बल मिला। भारत का समाज-सुधार आन्दोलन काफी क्रियाशील हो चुका था। ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज भारतीय समाज के पुनस्संगठन के लिए सचेष्ट थे। समाज-सुधार का एक आवश्यक अंग भारतीय समाज से 'अछूतपन' को मिटा देना था। बहुत से प्रतिष्ठित भारतीय इन समाज-सुधारक आन्दोलनों में जी जान से लग गये। स्वभावतः उनकी चेष्टाओं का फल हरिजनों की सामाजिक स्थिति पर बहुत अच्छा पड़ा। समाज की दृष्टि में हरिजनों की स्थिति क्रमशः सुधरने लगी। इधर हरिजन भाई भी अपने अधिकारों तथा सुविधाओं की ओर जागरूक होने लगे थे। शहरों में उनकी आर्थिक स्थिति देहातों की अपेक्षा अच्छी थी। ये शहरी हरिजन अब

† But even in the case of Government or board schools, the principle affirmed by us must be applied with caution. It is not desirable for masters or Inspectors to endeavour to force on a social change which, with judicious treatment, will gradually be accepted by society.

—Indian Education commission Report. pp. 516-7.

‡ We therefore recommend that the establishment of special schools or classes for children of low castes be liberally encouraged in places where there are sufficient number of such pupils to form separate schools or classes, and where the schools, already maintained from public funds do not sufficiently provide for their education.—Ibid pp. 516-17.

अपने बच्चों की शिक्षा से सर्वथा उदासीन न थे। हरिजनों के सौभाग्य से, कई प्रान्तीय सरकारों ने उनकी शिक्षा के लिए बड़ी तत्परता दिखलायी, जिसके कारण इन प्रान्तों में हरिजन शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। मद्रास की सरकार ने सन् १८६३ ई० में एक प्रस्ताव के द्वारा हरिजन शिक्षा के संबंध में कई नियम प्रचालित किये। ये नियम हरिजन शिक्षा के इतिहास में 'मैगना कार्टा' (Magna charta) का महत्व रखते हैं। † इनकी प्रमुख बातें ये थीं—

१—सभी सरकारी प्रशिक्षण विद्यालयों में पंचम वर्ण (हरिजनों) के छात्रों की मासिक वृत्ति (stipend) अन्य छात्रों से २ रु० अधिक हो।

२—गैरसरकारी प्रशिक्षण विद्यालयों में जो पंचम वर्ण के छात्र दाखिल हों, उनके लिए सरकारी वृत्तियों की रकम बढ़ा दी जाय।

३—लोकल बोर्ड तथा नगरपालिकाएं पंचम वर्ण के स्कूल के बड़े गावों तथा शहरों में विशिष्ट स्कूल खोलें।

४—सरकारी बंजर जमीन पंचम वर्ण के स्कूलों के लिए मुफ्त दी जाय।

५—पंचम वर्ण के लोगों की शिक्षा के लिए रात्रि स्कूल अधिक उपयुक्त हैं; इसलिए ये स्कूल प्रोत्साहित तथा विकसित किए जायं।

६—जिन स्कूलों की सहायता परीक्षाफल पर निर्भर करती हो, उन स्कूलों में पंचम वर्ण के छात्रों के लिए सामान्य छात्रों से ५० प्रतिशत अधिक सहायता दी जाय।

इन नियमों के अतिरिक्त, केवल हरिजन छात्रों के लिए कुछ विशेष सरकारी छात्रवृत्तियाँ निर्धारित कर दी गईं। ये छात्रवृत्तियाँ सफल हरिजन छात्रों को ही दी जा सकती थीं। मद्रास में हरिजन शिक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण विद्यालय भी खोला गया।

उपर्युक्त नियमों के परिणाम स्वरूप मद्रास प्रान्त में पंचम वर्ण की शिक्षा की बड़ी उन्नति हुई। सन् १६०१-२ ई० में मद्रास प्रान्त में ३,००० स्कूल केवल पंचम वर्ण के लोगों के लिए खुले हुए थे। कुल मिलाकर ४४,१५० पंचम लड़के तथा ८,३२८ लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। स्कूली अवस्था के समस्त बच्चों में सैकड़े १५.७ लड़के तथा २.६ लड़कियाँ स्कूलों में दाखिल थीं। इस तरह प्रान्त

† Nurullah & Naik—Page 425.

भी न हुई थी। इस तरह भारतीय शिक्षा आयोग की सम्मति में, आदिवासियों की शिक्षा की अब तक की सरकारी चेष्टाएं लगभग निष्फल ही के बराबर थीं। † इन निवासियों के शिक्षा के लिए विशेष प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता थी, जिनकी सिफारिश भी आयोग ने की।

आदिवासियों के वासस्थान, रहन-सहन, रीति-नीति आदि बातों को ध्यान में रख कर आयोग ने उनकी शिक्षा के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किये।

१—आदिवासियों की शिक्षा के लिए जो भी गैरसरकारी संस्थाएं प्रस्तुत हों, उन्हें सरकार पूर्णतः प्रोत्साहित करे।

२—किंतु, सरकारी चेष्टाएं सभी स्थानों में गैरसरकारी प्रयत्नों की प्रतीक्षा में न रहें।

३—सभ्य समाज के निकटस्थ आदिवासी-क्षेत्रों में भी सरकारी प्रयत्न व्यवहृत किये जायं। स्थानीय सामान्य स्कूलों में आदिवासी छात्रों को आकर्षित करने की पूरी चेष्टा की जाय। इन छात्रों से किसी तरह का शुल्क न लिया जाय। आदिवासी प्रान्तों के भीतरी क्षेत्रों में क्रमशः प्रवेश किया जाय। किंतु, जो गैर सरकारी संस्थाएं इन भीतरी इलाकों में सीधे प्रवेश करना चाहती हों, उन्हें ऐसा करने के लिए पूरी सहूलियत दी जाय।

४—आदिवासी जाति के ही कुछ शिक्षक शिक्षण-कार्य के लिए तैयार किये जायं। इन शिक्षकों को सामान्य 'नारमल स्कूलों' में अल्प-कालिक प्रशिक्षण (short-course training) दी जाय। इनके अध्ययन के विषय भी हलके हों।

५—यदि किसी आदिवासी जाति की बोलचाल की भाषा लिखित रूप ग्रहण कर चुकी हो, तो उस भाषा को पूर्ण प्रश्रय दिया जाय। आदिवासियों की शिक्षा उनकी मातृभाषा के माध्यम से ही दी जाय। सभ्य पड़ोसियों की भाषा भी, द्वितीय भाषा के रूप में, आदिवासियों को, ऊपरी वर्गों में, सिखलायी जाय। दूसरे लोगों की भाषा आदिवासियों की शिक्षा का माध्यम न बनायी जाय, जब तक कि उनकी मातृभाषा इस कार्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त न हो। †

† It is clear therefore that efforts of govt. have hitherto failed to give education to the aboriginal races of India.

The Indian Education Commission.— p. 509.

आयोग की उपर्युक्त सिफारिशों के अनुसार आदिवासी तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा के लिए कुछ प्रयत्न सरकार की ओर से हुए। आदिवासी क्षेत्रों के समीपस्थ सामान्य स्कूलों में आदिवासी बच्चों को आकृष्ट करने की चेष्टाएं हुईं। शुल्क की माफी, पाठ्य-पुस्तकें को खरीदने के लिए आर्थिक सहायता, विशेष छात्रवृत्तियां आदि कई तरह की सुविधाएं इन बच्चों को दी गईं। आदिवासी जाति के शिक्षकों के प्रशिक्षण की भी सरल व्यवस्था कई स्थानों में की गई। सघन आदिवासी क्षेत्रों में उनके लिए विशिष्ट स्कूल (special schools) भी खोले गये। धर्म-प्रचारक तथा अन्य गैरसरकारी संस्थाओं को आदिवासियों के बीच शिक्षा प्रसार करने के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दी गई। किंतु इन चेष्टाओं के समक्ष मी सन् १६०२ ई० तक आदिवासी शिक्षा की प्रगति बहुत कम हुई। जो कुछ भी कार्य इस अवधि (१८८२-१६०२) में हो सका, उसका श्रेय अधिकतर धर्म-प्रचारकों को ही प्राप्त था। सरकारी चेष्टाओं की अपेक्षा उनकी चेष्टाएं ही अधिक सफल रहीं। भारत सरकार की पंचवर्षीय शिक्षा रिपोर्ट (१८६७-१६०२)। में दिये गये आंकड़ों के अनुसार सन् १६०२ में अशिक्षित तथा शिक्षित आदिवासियों का अनुपात यह था।

	पुरुष		
बम्बई प्रान्त	१०,०००	में	१०५
बरार	,,	,,	१८
बंगाल तथा आसाम	,,	,,	८६
मद्रास	,,	,,	४७
मध्यप्रान्त	,,	,,	४०
	स्त्री		
बंगाल	,,	,,	४
आसाम	,,	,,	१३
मध्यप्रान्त	,,	,,	लगभग २

छठा अध्याय

आधुनिक शिक्षा का चतुर्थ चरण

१९०२–१९२१

सामान्य परिचय

सन् १६०२ ई० में आधुनिक भारतीय शिक्षा ने अपने विकास के चतुर्थ चरण में प्रवेश किया। इसी वर्ष भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (Indian Universities Commission) की नियुक्ति हुई, जिसने भारतीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण सिफारिशें कीं। इनका विवरण हम आगे यथास्थान प्रस्तुत करेंगे। सन् १६२१ ई० में भारतीय शिक्षा की बागडोर भारतीय मन्त्रियों के हाथ सौंपी गयी। भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस घटना का विशिष्ट स्थान है। इस घटना ने भारतीय शिक्षा की गतिविधि को कई तरह से प्रभावित किया। अस्तु, सन् १६०२–२१ की अवधि दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को स्पर्श करती है। साथ ही इस अवधि की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिनके कारण यह भारतीय शिक्षा के इतिहास में अपना स्वतंत्र स्थान रखती है। वे विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

क—सन् १६०२ के पहले, शिक्षा के क्षेत्र में, सरकारी चेष्टाएं अपेक्षाकृत न्यून थीं। शिक्षा के क्षेत्र से राजकीय निर्याण के सिद्धांत के प्रतिपादन से सरकार, शिक्षा संस्थाओं से अलग रहने लगी थी। लॉर्ड कर्जन ने इस नीति के परित्याग की सिफारिश की, जिसके फलस्वरूप सरकार स्कूलों के प्रबन्ध तथा निरीक्षण में सक्रिय भाग लेने लगी। सरकार का यह कर्त्तव्य हो गया कि वह हर प्रकार के कुछ स्कूलों का प्रबन्ध स्वयं करे; ताकि ये स्कूल गैरसरकारी स्कूलों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर सकें। सरकार का यह भी उत्तरदायित्व समझा जाने लगा कि वह गैरसरकारी स्कूलों का निरीक्षण, पहले की अपेक्षा, अधिक क्रियात्मक रूप से करे और स्कूलों को उनकी मर्जी पर चलने न दे। इस तरह, सन् १६०२–२१ की अवधि में न केवल सरकारी स्कूलों की वृद्धि हुई, बल्कि सरकारी नियंत्रण और निरीक्षण भी अधिक व्यापक और प्रभावोत्पादक बनाये गये।

सरकार के इस रूख-परिवर्तन के कई कारण थे, जो कि इंग्लैंड तथा भारत की तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रादूभूत थे। सन् १९०२ ई० के बाद से, बाल्फोर कानून (Balfour Act) के अनुसार, इंगलैंड की सरकार वहां की प्राथमिक शिक्षा पर अधिक नियंत्रण रखने लगी। इस समय इंग्लैंड में, शिक्षा के सुधार के लिये, सरकार विशेष सचेष्ट होने लगी थी। गृह-सरकार की इन चेष्टाओं के अनुकरण पर भारत सरकार के ऊच्च पदाधिकारी भी, भारतीय शिक्षा के सुधार के निमित्त, अधिक क्रियाशील होने लगे। एक ओर इन विदेशी परिस्थितिओं ने सरकारी अफसरों को भारतीय शिक्षा पर कड़ी निगरानी रखने की प्रेरणा दी, तो दूसरी ओर भारत की तत्कालीन परिस्थितियों ने इस प्रेरणा को संबलित किया। अंग्रेज अधिकारियों की यह आशा थी कि अंग्रेजी-शिक्षा में शिक्षित भारतीय अंग्रेजी हुकूमत को सहर्ष तथा कृतज्ञता पूर्वक ग्रहण करेंगे। इसके प्रतिकूल, शिक्षित भारतीय सामान्यतः अंग्रेजी शासन का आलोचक बनता दीख पड़ रहा था। स्वभावतः यह बात अंग्रेज अधिकारियों को खटक रही थी और वे यह समझने लगे थे कि भारतीय शिक्षा की पद्धति, जो कि अंग्रेज सरकार के द्वारा, प्रचालित की गई थी, पूर्णतः दोषपूर्ण थी।† इसके द्वारा असंतुलित, अनुशासन-विहीन असंतुष्ट तथा राजद्रोही व्यक्तित्व उत्पन्न किया जा रहा था। इस स्थिति का प्रधान उत्तरदायित्व उन गैरसरकारी अंग्रेजी स्कूलों पर था, जो कि भारतीयों के द्वारा संचालित थे। अतः यह अत्यावश्यक था कि सरकार इन स्कूलों पर अपना नियंत्रण कड़ा करे और इन के छात्रों को अनुशासित बनावे। दूसरी ओर भारतीय नेता शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत न थे। वे तो यह चाहते थे कि भारतीय शिक्षा का संचालन भारतीयों के हाथ सौंपा जाय। यदि यह सम्भव न था, तो सरकारी नियंत्रण और हस्तक्षेप, जहां तक सम्भव हो, कम रहे। ‡ इस तरह शिक्षा के प्रबन्ध तथा

† There exists a powerful school of opinion which does not hide its conviction that the experiment (i. e. of English education in India) was a mistake, and that its result has been disaster.

Lord Curzon, quoted in Nurullah & Naik P.—439

‡ If one had to be ruled over by an alien, a king log, they felt, was to be certainly preferred to a king stork.

Nurullah & Naik—P. 440

नियंत्रण के प्रश्न पर सरकार तथा भारतीय नेताओं में जबर्दस्त मतभेद उत्पन्न हो गया। शिक्षा के तथाकथित सुधार के हेतु, सरकार शिक्षा-संस्थाओं तथा शिक्षा नीति पर अपना प्रभुत्व बढ़ाना चाहती थी। इनके विरुद्ध भारतीय नेता इस बात की मांग पेश कर रहे थे कि शिक्षा का प्रबन्ध भारतीयों को हस्तान्तरित कर दिया जाय। हम आगे देखेंगे कि इस संघर्ष की इति सन् १६२१ ई० में हुई, जब कि भारतीय शिक्षा की बागडोर भारतीय मंत्रियों को सुपुर्द कर दी गयी।

ख—सन् १८५४–१६०२ की अवधि में सरकारी नीति प्रधानतः शिक्षा संस्थाओं के विस्तार की ओर प्रेरित थी। किन्तु सन् १६०२–१६२१ की अवधि में, स्कूलों की संख्या-वृद्धि की अपेक्षा इनके अध्यापन के स्तर को ऊँचा करना सरकारी नीति का लक्ष्य हुआ। इस दिशा में भी लार्ड कर्जन ने नेतृत्व किया। उनके विचार में भारतीय शिक्षा का नियंत्रण भली भाँति न हो रहा था, जिसके फलस्वरूप न इसमें सबंद्धता थी, न इसके पीछे स्पष्ट आदेश थे। † नियंत्रण के अभाव में भारतीय शिक्षा शिथिल हो गयी थी, इसका मानदण्ड गिर गया था तथा इसमें कोई तत्त्व ऐसा न था, जो नव-जीवन की प्रेरणा देता। ऐसी स्थिति में लार्ड कर्जन के विचार में, इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि स्कूलों के विस्तार की गति तेज की जाय और इनके अध्ययन के स्तर को ऊँचा उठाया जाय। जिस पद्धति का मानदण्ड नीचे गिर गया हो, उस पद्धति का पतन, कर्जन की दृष्टि में, अवश्यंभावी था। इसलिये सरकार का यह कर्तव्य था कि वह स्कूलों के आदर्श को

‡ For years education in India had been muddling along with no one to look after it at headquarters or to observe its symptoms............

There was a deploarble lack of co-ordination, there was a vagueness as to fundamental principles, slackness had crept in, standards had depreciated and what was wanting was the impulse and movemeut of a new life.........

moreover, there were some faults that were equally patent everywhere... .. ..Everywhere it was words that were being studied, not ideas. The grain was being spilled and squandered, while the husks were being devoured

A system, the standards of which, are in danger of being degraded, is a system that must sooner or later decline.

It is quality, not quantity, that we should have in view

Lord Curzon, quoted in Nurullah & Naik P. 541—43

सुरक्षित रखे न कि इसकी संख्या को बढ़ावे। कर्जन के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा की गुणात्मक उन्नति (qualitative improvement) का सिद्धान्त सन् १६०२-२१ की अवधि में सरकारी नीति का शिलाधार रहा। कर्जन के उत्तराधिकारी तथा शिक्षा-विभाग के आई० इ० एस० अफसर भी इसी नीति का अनुसरण करते रहे। किन्तु भारतीय नेता इस नीति से सहमत न थे। उनके विचार में भारतियों का हित शिक्षा-संस्थाओं के विस्तार में था, न कि इनके सुधार में। वे सरकारी नीति का जोरदार विरोध करने लगे, जिसके फलस्वरूप, उपर्युक्त अवधि में, सरकार तथा भारतीय नेताओं में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। इनका विवरण हम आगे यथास्थान देंगे। इस संघर्ष में तत्कालीन विजय सरकार की हुई। किन्तु इससे भारतीय नेता क्षुब्ध हो उठे और उन्हें यह विश्वास हो गया कि भारतीय शिक्षा का हित तब तक न हो सकता था जब तक इसका प्रबन्ध भारतीय मंत्रियों के हाथ में न सौंपा जाता। उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि शिक्षा-विभाग के आई० इ० एस० पदाधिकारी रूढ़िवादी तथा सरकार के समर्थक थे। अत: इनके निष्कासन में ही भारतीय शिक्षा का हित हो सकता था।

ग— किंतु, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति की सरकारी नीति के बावजूद भी सन् १६०२–२१ की अवधि में शिक्षा-संस्थाओं का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। सन् १६०१–२ में स्वीकृत शिक्षा-संस्थाओं की संख्या १,०४,६२७ थीं। सन् १६२१–२२ में यह बढ़कर १६६,१३० हो गयी। इसी अनुपात में छात्र-संख्या की भी वृद्धि हुई। सन् १६०२ ई० में स्वीकृत संस्थाओं में कुल मिलाकर ६,३५,४०७ छात्र भरती थे। सन् १६२२ में इन छात्रों की संख्या ७३,६६,५६० थी। इसका कारण यह था कि इस अवधि में राष्ट्रीय आन्दोलन काफी शक्तिशाली हो चुका था और शिक्षा का विस्तार आन्दोलन के रचनात्मक कार्यों में प्रमुख स्थान रखता था। अत: सरकारी विरोध के समक्ष भी शिक्षा-संस्थाएं, गैरसरकारी भारतीय चेष्टा के रूप में, धड़ल्ले से खुलती गयीं। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में सरकारी प्रोत्साहन भी प्राप्त हुई। सरकार तथा जनता की आर्थिक स्थितियाँ, इस अवधि में, पहले की अपेक्षा अच्छी थी, जिसके फलस्वरूप, शिक्षा-संस्थाओं के विस्तार की आर्थिक मजबूरियाँ पहले से बहुत कम हो गयीं।

६—इस अवधि की पाँचवीं विशेषता थी भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की दृढ़ता तथा उग्रता। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) का जन्म सन् १८८५ ई० में हो चुका था। किंतु, उन्नीसवीं सदी के अंत तक, जैसा कि हम गत अध्याय में कह चुके हैं, राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप शान्ति-प्रधान तथा वैधानिक रहा। बीसवीं सदी के प्रारम्भ होते ही इस आन्दोलन का रूप उग्र तथा क्रियात्मक हो गया। लोकमान्य तिलक के पदार्पण से कांग्रेस का स्वरूप बदल गया था और अब वह अपने को वैधानिक आन्दोलन तक ही सीमित रखने में असमर्थ थी। † तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा भारत के गौरवपूर्ण अतीत से ग्रहण की और इस आन्दोलत का लक्ष्य, वैधानिक प्रगति नहीं, अपितु स्वराज्य माना। "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" इसका प्रथम उद्घोष तिलक ने ही किया। इसी समय भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने कुछ ऐसे कार्य किए, जिनने नयी राष्ट्रीयता की चिनगारी को दहकती ज्वाला में परिणत कर दिया। लार्ड कर्जन ने, राष्ट्रीय आन्दोलन के नये स्पन्दन को न परख कर, अंग्रेजी साम्राज्यवाद का बड़ा अहित किया। ‡ भ्रमवश उन्होंने यह समझा था कि कांग्रेस शिथिल पड़ गयी थी और इसकी मृत्यु केवल समय की बात थी। * वस्तुतः उन्होंने इस के लिए प्रयास भी किया। किंतु, इससे कांग्रेस की मृत्यु तो न हुई। हाँ, इसकी जड़ें

† With the next generation, however, the movement changed in spirit, Hindu nationalism, especially in Maharastra and in Bengal, was coming definitely to the fore, and with their new-found consciousness of religious greatness, their nationalism was not only more extreme, but was in spirit revivalist and not liberal.

‡ Soon, however, it found a more militant leader in Balgangadhar Tilak,............a supremely able political tactician who knew what he wanted in the realm of politics. He wanted nothing less than the freedom of India— Panikkar— A. Survey of Indian History. —p. 273.

History will describe Curzon as the viceroy who made the biggest contribution to the weakening of the British Rule in India. Nurullah & Naik— p. 448.

* The Congress is to tottering to its fall and one of my great ambitions while in India is to convert it to a peaceful demise. Lord Curzon — Report to whitehall — quoted in Panikkar. P. 275.

भारत की धरती में गहरी चिमट गयीं। बंग-विभाजन की योजना, (१९०५) जिसे लार्ड कर्जन ने प्रशासनिक सुधार की आड़ में राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करने के उद्देश्य से उद्‌भूत की थी, आन्दोलन के लिए वरदान सिद्ध हुई। ‡ स्वदेशी आन्दोलन के प्रबल प्रवाह में अंग्रेजी सत्ता की दीवारें हिलने लगीं और राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का प्रयास, कर्जन के लिए, लेने के देने जैसा हो गया। * अपने कार्यों के अतिरिक्त, कर्जन ने अपनी वाणी तथा अपने व्यवहारों से भारत के शिक्षित समुदाय को जबर्दस्त ठेस पहुँचायी। उनके व्यंग्य कुछ इतने तीखे होते थे कि इससे भारतीय हृदय व्यथित हो उठता था। इसका फल यह हुआ कि जहाँ कर्जन के उद्देश्य अच्छे भी थे, वहाँ वे, अभिव्यक्ति की कटुता के कारण, रुचिकर न सिद्ध होते थे। इसतरह अत्यन्त सुयोग्य शासक होते हुए भी, कर्जन ने न केवल भारत की नयी राष्ट्रीयता को संचलित होने में योग दिया, बल्कि उन्होंने भारत के शिक्षित मध्य वर्ग के बीच अपने प्रति अश्रद्धा का भाव उत्पन्न कर दिया। †

कर्जन के विरुद्ध भारतीयों का राजनीतिक संघर्ष, शिक्षा के क्षेत्र में भी, परिलक्षित होने लगा। शिक्षा के प्रश्नों पर भी कर्जन के साम्राज्य-वाद और भारतीयों के राष्ट्र-वाद में जोर-आजमाई चलने लगी। गोपालकृष्ण गोखले के नेतृत्व में भारतीयों ने कर्जन की शिक्षा-नीति के विरुद्ध कसकर लोहा लिया। यद्यपि इस संघर्ष में तत्कालिक सफलता कर्जन को ही मिली, किंतु भारतीय पक्ष उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया और सन् १९२१ ई० में इसकी पूर्ण विजय हुई, जबकि शिक्षा का उत्तर-दायित्व भारतीयों को हस्तान्तरित कर दिया गया।

‡ "The object of the measure was to shatter the unity and to disintegrate the feeling of solidarity which are established in the Province. It was no administrative reason that lay at the root of this scheme. It was a part and parcel of Lord Curzon's policy to enfeeble the growing powers and to destroy the political tendencies of a patriotic spirit."

Sir Henry Cotton—quoted in 'India Divided' by Dr. Rajendra Prasad.—p. 111.

* What was intended to suppress political life served as a great inspiration. The anti-partition agitation roused the country as a whole as nothing had done since 1857.

Dr. Rajendra Prasad—India Divided.—p. 111.

† It is no wonder that Curzon was not only the ablest but also the most-hated viceroy that ever came to India.

Nurullah & Naik—p, 448.

सन् १६०२-२१ की अवधि की विशेषताओं के इस सामान्य परिचय के साथ हम उन दो महान् व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय उपस्थित करते हैं, जिन्होंने भारतीय शिक्षा को अपने मूल्यवान कार्यों से आभारी किया। ये महान् व्यक्ति थे—लॉर्ड कर्जन तथा बालकृष्ण गोखले, जिनका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

लॉर्ड कर्जन—लॉर्ड कर्जन का जन्म सन् १८५६ ई० में इंग्लैंड में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा एटन (Eton) में हुई थी। कॉलेज की शिक्षा उन्होंने आक्स-फार्ड में प्राप्त की। उनका छात्र-जीवन उज्ज्वल था। अध्ययन की समाप्ति के पश्चात उन्होंने विश्व के लगभग सभी प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया। इसी भ्रमण के सिल-सिले में उन्हें भारत तथा एशिया की समस्याओं से परिचय प्राप्त हुआ। भारत के महत्त्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति का परिज्ञान भी उन्हें इसी भ्रमण में प्राप्त हुआ। उन्होंने स्पष्टत: देखा कि अंग्रेजी साम्राज्य का उत्कर्ष भारत के कारण ही था। भारत का राजनीतिक प्रभुत्व एशिया के समस्त देशों पर आच्छादित था।

लॉर्ड कर्जन की यह अडिग धारणा थी कि ब्रिटेन की सभ्यता और संस्कृति बड़ी उच्चकोटी की थी और इस सभ्यता के प्रसार में ही एशिया का कल्याण निहित था। यह प्रसार तभी सम्भव था जब कि एशिया में अंग्रेजी साम्राज्य कायम रहता। अत: लॉर्ड कर्जन अंग्रेजी साम्राज्य के न केवल संरक्षण के हिमायती थे, बल्कि वे इसका विस्तार भी चाहते थे।

लॉर्ड कर्जन की हार्दिक इच्छा थी कि वे भारत के वायसराय बनें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपनी सारी चेष्टाएँ प्रेरित कीं। अन्त में उन्हें सफलता मिली, उनके जीवन की साध पूरी हुई। सन् १८६८ ई० में भारत के गवर्नर जेनरल तथा वायसराय वे नियुक्त हुए। इस पद पर इनसे बढ़ कर विद्वान, प्रतिभा-सम्पन्न तथा सुयोग्य व्यक्ति शायद ही, अंग्रेजी राजमुकुट के प्रतिनिधि के रूप में, भारत आया हो। इनकी कर्त्तव्य-परायणता तथा अध्यवसाय भी प्रसिद्ध है। अपने सात वर्ष के कार्यकाल में इन्होंने भारतीय प्रशासन के सर्वांगीण सुधार के लिये अहर्निश प्रयत्न किया। इन्हें सफलता भी मिली।

प्रशासन के क्षेत्र में जो कार्य लार्ड कर्जन ने सात वर्ष की अवधि में किये, वे उनके बिना शायद १५–२० वर्षों में भी न हो सकते थे। †

किंतु लॉर्ड कर्जन के भाग्य में अपने परिश्रम का फल भोगना बदा न था। सन् १६०३ ई० में वे दूसरी बार भारत के वायसराय नियुक्त हुए। शीघ्र ही उन्हें भारत के सेनापति लॉर्ड किचनर से, सैनिक प्रशासन के प्रश्न पर, सैद्धांतिक मतभेद हो गया। ब्रिटेन की सरकार ने लॉर्ड किचनर का ही समर्थन किया। फलतः लॉर्ड कर्जन ने सन् १६०५ ई० में अपना पद-त्याग कर दिया।

लॉर्ड कर्जन का सब से बड़ा दुर्भाग्य वह था कि वे भारतीयों के श्रद्धा-पात्र न बन सके। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, उनका व्यक्तित्व तथा उनके कार्य कुछ इस रूप में प्रकट हुए कि भारतीयों के हृदय में उनके प्रति अश्रद्धा एवं घृणा के भाव उत्पन्न हो गये। अंग्रेजी सभ्यता में असाधारण निष्ठा होने के कारण उन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को ऐसी निगाह से देखनी शुरू की, जो किसी भी भारतीय को सह्य न हो सकती थी। भारतीय आचरण तथा चरित्र के प्रति उनके व्यंग्य कुछ इतने तीखे थे, कि उनसे भारतीय हृदय को मार्मिक चोट पहुँचती थी। राजनीतिक क्षेत्र में, कर्जन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने की जो चेष्टाएं कीं, उससे नवजात राष्ट्रीयता मृत होने की अपेक्षा बलवती उठी। इस तरह लॉर्ड कर्जन ने अपने ही हाथों से अपने यश पर कालीख पोत दी। भारत से उनकी विदाई के क्षण एक भी भारतीय नेत्र से आंसू न टपक सका। वस्तुतः एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो भारत का, अपनी धारणा के अनुसार, कल्याण चाहता था, जिसकी आकांक्षाएं इतनी महान् थीं; जिसके कई कार्य सराहनीय थे, जिसकी कर्त्तव्य-परायणता हद को छू रही थी, कृतज्ञता का एक आंसू न टपके, एक ऐसी घटना थी जो सर्वथा मर्मान्तक है। ‡

सन् १६०७ ई० में लॉर्ड कर्जन आक्स-फोर्ड विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। आगे चल कर उन्होंने ब्रिटेन के मंत्रिमंडल में कई उच्च पदों को सुशोभित किया। मार्च १६२५ ई० में उनके व्यस्त जीवन का अन्त हो गया। अपने जीवन के आखिरी

† Nurullah & Naik P.—451.

† It was really a tragic end to so great an ambition, so relentless and strenuous a performance, and so high a sense of duty.

Nurullah & Naik—451.

क्षण तक वे भारत के वायसराय के पद को विस्मृत न कर सके, "जिसके संवहन में उन्होंने अपने शरीर तथा अपनी आत्मा का जो कुछ भी मूल्यवान था, उत्सर्ग कर दिया था।"

भारतीय शिक्षा के इतिहास में कर्जन का विशिष्ट स्थान है। उनकी शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। उन्होंने आधुनिक शिक्षा के विकास-क्रम में, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति का सिद्धांत प्रतिपादित किया और इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने में अपनी जी जान लगा दी। भारत से उनके जाने के बाद भी, सरकारी नीति, उनकी नीति के अनुसार ही चलती रही। वस्तुतः १६०५-२६२१ की अवधि में भारतीय शिक्षा की सरकारी नीति, लार्ड कर्जन की नीति को ही, प्रतिबिम्बित करती रही। यह सही है कर्जन के द्वारा प्रतिपादित गुणात्मक समुन्नति का सिद्धांत, भारतीय दृष्टिकोण से, सर्वथा सही न था। फिर भी कर्जन के इस सिद्धांत ने भारतीय शिक्षा का हित, कई तरह से किया, जिसका विवरण हम आगे उपस्थित करेंगे।

गोपाल कृष्ण गोखले—कर्जन के साम्राज्यवादी व्यक्तित्व के विरोध में भारत ने एक ऐसे व्यक्तित्व को समुत्पन्न किया, जिसकी प्रतिभा तथा क्षमताएं कर्जन के विरुद्ध में मोर्चा लेने के लिए सर्वथा उपयुक्त थीं। वह व्यक्तित्व बालकृष्ण गोखले के रूप में प्रकट हुआ। गोखले का जन्म सन् १८६६ ई० में बम्बई प्रान्त के चिपलुन तालुका के एक निर्धन परिवार में हुआ था। अपनी लगन तथा अध्यवसाय से उन्होंने अपनी गरीबी पर विजय पायी और एलफिंस्टोन कॉलेज बम्बई से सन् १८८४ ई० में बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। शीघ्र ही वे "डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी" के आजीवन सदस्य बन गये और इसकी अधीनता में फरगस्सन कॉलेज, पूना के प्राध्यापक बने। अपने खर्च के लिए वे ४०) रु० मासिक वेतन मात्र लेते थे। कॉलेज से भार-मुक्त होने के बाद उन्होंने अपना समस्त जीवन सार्वजनिक कार्यों में व्यतीत किया। सन् १६०५ ई० में वे अखिल भारत राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए। उसके पूर्व ही वे केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्य मनोनीत हुए थे। उन्होंने दो बार इंग्लैंड की यात्रा भी की और वहाँ के लोगों को भारत की वास्तविक स्थिति से परिचित कराने की पूरजोर कोशिश की। सन् १६१२ ई० में वे अफ्रिका गये। महात्मा गांधी वहाँ पहले से ही भारतीय प्रवासियों की स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्नशील थे। महात्मा गांधी उनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्हें

अपना गुरू के रूप में मानने लगे। सन् १६०५ ई० में गोखले ने अपनी "सरवेन्टस ऑफ इंडिया सोसाइटी" स्थापित की। अनवरत कठिन परिश्रम से गोखले का स्वास्थ्य गिरने लगा और सन् १६४५ ई० में उनका देहावसान, कम उम्र में ही, हो गया।

गोखले ने कर्जन के विरुद्ध भारतीय जनमत को संगठित किया तथा उसकी साम्राज्यवादी नीति से कस कर लोहा लिया। शिक्षा के क्षेत्र में भी गोखले ने कर्जन के गुणात्मक सुधार के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की और शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने निरन्तर संघर्ष किया।

गुणात्मक उन्नति अथवा संख्यात्मक विस्तार ?

कर्जन तथा गोखले के सिद्धांत तथा कार्य वैयक्तिक मात्र न थे। वस्तुतः ये शिक्षा के प्रश्न पर दो विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कर्जन उस विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करते थे, जो शिक्षा की गुणात्मक उन्नति (qualitative improvement) की हिमायत करती थी। इसके विपरीत गोखले उस विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करते थे, जो कि शिक्षा का संख्यात्मक विस्तार (quantitative advance) चाहती थी।

कर्जन-पक्ष अपने विचारों की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करता था।

१—भारतीय शिक्षा आयोग की वे सिफारिशें, जो गैरसरकारी चेष्टाओं के विकास के द्वारा शिक्षा के प्रसार के निमित्त की गयीं थीं, पुरानी पड़ गयी थीं। अब इस बात की आवश्यकता नहीं थी कि शिक्षा-संस्थाओं का विस्तार किया जाय।

२—अधिकांश गैरसरकारी संस्थाओं के शिक्षण का स्तर नीचे गिर गया था। उपयुक्त शिक्षक तथा शिक्षण-सामग्री के अभाव में ये संस्थाएं शिक्षा वितरण न करती थीं, बल्कि विद्यार्थियों को परीक्षा के लिए तैयार करती थीं। अतः गैरसरकारी संस्थाओं के प्रति सरकारी नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी। यह नीति गैरसरकारी स्कूलों के नियंत्रण तथा सुधार की नीति होनी चाहिए थी, न कि तटस्थता की।

२—भारतीय शिक्षा आयोग की यह सिफारिश कि राज्य को शिक्षा के क्षेत्र से हट जाना चाहिए अत्यन्त हानिकर थी। अतः राजकीय निर्याण की नीति, सरकारी तौर पर, त्याग दी जाय। सरकार का यह

कर्तव्य हो कि वह कुछ सरकारी स्कूल, आदर्श के रूप में, अवश्य चलावे।

३—शिक्षा-विभाग के उच्च पदों के लिए भारतीयों की अपेक्षा अंग्रेज अधिक उपयुक्त थे। अत: इन पदों पर अंग्रेज पदाधिकारियों की ही नियुक्ति, पूर्ववत्, जारी रहे।

४—शिक्षा-संस्थाओं से राजनीति सर्वथा निष्कासित कर दी जाय।

५—अंग्रेजी के अध्ययन का मानदण्ड और ऊँचा किया जाय।

गोखले-पक्ष के विचार निम्नलिखित तर्कों पर आधारित थे।

१—भारत में शिक्षितों की संख्या इतनी कम थी कि यहाँ के लिए शिक्षा की गुणात्मक उन्नति की अपेक्षा संख्यात्मक विस्तार अधिक आवश्यक था।

२—स्कूलों के नियंत्रण की व्यवस्था, शिक्षा के सुधार के लिए नहीं, अपितु भारतीय छात्रों की राष्ट्रीय भावना को कुचलने के उद्देश्य से की जा रही थी।

३—देश की शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह जरूरी था कि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया जाय तथा माध्यमिक और उच्च शिक्षा को अधिक विस्तृत किया जाय।

४—शिक्षा विभागों के लिए उपयुक्त भारतीय उपलब्ध थे, अत: शिक्षा का भारतीय-करण शीघ्र हो।

५—अंग्रेजी की अपेक्षा आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाय।

६—शिक्षा का लक्ष्य देश-प्रेम सिखाना हो, न कि विदेशी सत्ता के प्रति राजभक्ति।

इन तर्कों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि दोनों पक्षों का सैद्धांतिक मतभेद काफी गहरा था और फलत: शिक्षा की प्रगति के लिए अत्यन्त घातक था। दुर्भाग्यवश, यह मतभेद सन् १९०२–२१ की अवधि में न केवल बना रहा, बल्कि दिनों-दिन उग्रतर होता गया। इसका फल यह हुआ कि सरकार तथा भारतीय नेता विपरीत दिशाओं में कदम बढ़ाते रहे। स्पष्टत: ऐसी स्थिति में शिक्षा की उन्नति सम्भव न थी। इस तरह, उपरोक्त अवधि की शिक्षा-सम्बन्धी अधिकांश चेष्टाएं निष्फल सिद्ध हुईं। यदि लार्ड कर्जन अपनी शिक्षा-सम्बन्धी नीति के निर्धारण में भारतीय जनमत का विचार किये होते, तो आधुनिक शिक्षा का इतिहास कुछ दूसरा ही रूप लेता। किंतु यह न हो सका। मतभेद

का अन्तिम परिणाम, जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह हुआ कि सरकार को शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीयों को सौंपना पड़ा ।

सिमला शिक्षा सम्मेलन-(१९०१)

भारतीय प्रशासन के पुनर्गठन के कार्य में लार्ड कर्जन का ध्यान सर्व-प्रथम भारतीय शिक्षा की ओर गया। † इस उद्देश्य से उन्होंने भारत के सभी प्रान्तों के लोक-शिक्षा निर्देशकों का एक सम्मेलन सिमला में सन् १९०१ ई० में बुलाया। शिक्षा के विषय में अपने ढंग का यह सम्नेलन पहला था, जिसमें सभी प्रान्तों के सर्वोच्च शिक्षा अधिकारी शामिल थे। कुछ अन्य लोग भी, खास तौर पर, बुलाये गये थे। सम्मेलन की बैठक १५ दिनों तक होती रही। बहुत विचार-विमर्श के पश्चात, सम्मेलन में १५० प्रस्ताव पास हुये। कर्जन के शिक्षा सम्बन्धी सुधार, अधिकतर, इन्हीं प्रस्तावों पर आधारित थे। अभाग्यवश इस सम्मेलन में कर्जन ने एक भी भारतीय को आमंत्रित न किया। सम्मेलन की कार्यवाही भी प्रकाशित न की गयी। स्वभावतः, भारतीय सम्मेलन को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। उनकी धारणा हो गयी कि सम्मेलन भारतीय चेष्टाओं के विरुद्ध कोई कुचक्र रच रहा था। ‡ ऐसी परिस्थिति में सम्मेलन को भारतीय नेताओं का सहयोग अथवा सहानुभूति न प्राप्त हो सकी। फिर भी, सिमला सम्सेलन ने भारतीय शिक्षा के हर प्रमुख पहलू के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय किए। इन्हीं निर्णयों के आधार पर कर्जन ने शिक्षा-सुधार की अपनी अधिकांश योजनाएं प्रचालित कीं। इनका विवरण हम नीचे प्रस्तुत करते हैं।

विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा

भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन में कर्जन ने विश्वविद्यालय को सबसे अधिक महत्त्व दिया। भारतीय विश्वविद्यालयों के संगठन तथा कार्य

† When I came to India, Educational reform loomed before me as one of those objects which...... ......appeared to deserve a promiment place in my programme of administrative reconstruction.

Lord Curzon in India—II–P. 65·

‡ "A Star chamber conclave that was engaged in some dark and sinister conspiracy"

—Lord Curzon in India—vol II. p. 67.

से उन्हें घोर असंतोष था। ये विश्वविद्यालय केवल परीक्षक-संस्थाएं थे, जो विद्यार्थियों के सांस्कृतिक उत्थान के लिए किसी प्रकार का योग न देती थीं। विश्वविद्यालय और छात्रों का सम्बन्ध-सूत्र कागज पर छपे प्रश्नों तथा प्रमाण पत्रों के अतिरिक्त अन्य कुछ न था। † कर्जन की दृष्टि में, विश्वविद्यालय को "एक ऐसा स्थान होना चाहिए था; जहाँ से न केवल ज्ञान विकीर्ण हो, बल्कि जहाँ के मानवीय कारखाने की अनुभव-रूपी अग्निशाला में सत्य-से-संबलित चरित्र का निर्माण हो।"* इस तरह, भारतीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में कर्जन के प्रस्तावित सुधार श्लाघनीय थे। इस दिशा में ठोस कदम उठाने के लिए कर्जन ने विश्वविद्यालयों की स्थिति की पूर्ण जाँच आवश्यक समझी। इसी उद्देश्य से उन्होंने, सन् १९०२ ई० में, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया। आयोग को भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थिति की जांच के अतिरिक्त उनके सुधार के लिए परामर्श भी उपस्थित करने थे। आयोग, ने अपनी नियुक्ति के एक वर्ष के भीतर ही, अपनी रिपोर्ट प्रेषित कर दी।

भारतीय विश्वविद्यालय कानून १९०४

इसी रिपोर्ट के आधार पर कर्जन ने सन् १९०४ ई० में विश्व-विद्यालय के सम्बन्ध में एक कानून पास किया, जो कि भारतीय विश्व-विद्यालय कानून (Indian universities Act 1904) कहा जाता है। इस कानून की मुख्य बातें ये थीं :—

† I dare say that to many of this audience the University means nothing more than the final stage in a long and irksome series of examinations in which they have been engaged ever since they were young boys.

In hundreds of cases the connection of the student with the University, as distinct from the college where he has studied, is nothing beyond the sheets of paper on which are printed the questions which he is called upon to answer, and the slip of parchment on which he receives the diploma that records his success.

* It would be a place for the dissemination of knowledge and encouragement of learning; and it would further be a human smithy where character was forged in the furnace of experience, and beaten out on the anvil of truth.

Curzon's convocation address at Calcutta University 1904.

Lord Curzon in India p. 59-63.

१—विश्वविद्यालय का कार्य केवल परीक्षा लेने तक सीमित न रहे, बल्कि इसमें छात्रों के शिक्षण की व्यवस्था भी शामिल हो। विश्वविद्यालय को अधिकार है कि वह शिक्षण-कार्य के लिए प्राध्यापक नियुक्त करे तथा उच्च ज्ञान के प्रोत्साहन के लिए, जो भी उचित हो, करे।

२—विश्वविद्यालय के सदस्यों (fellows) की संख्या कम से कम ५० और अधिक से अधिक १०० हो। सदस्यों की नियुक्ति ५ वर्ष के लिए हो, न कि जीवन भर के लिए।

स्मरण रखना चाहिए कि सन् १८५७ ई० के विश्वविद्यालय संगठन कानून के अनुसार सिनेट के सदस्यों की अधिकतम संख्या निर्धारित न की गयी थी और इन सदस्यों के कार्य की अवधि आजीवन रखी गयी थी। फलतः सिनेट बोझिल तथा निष्क्रिय हो गया था। सन् १९०४ के कानून ने इन दोषों का निराकरण किया।

३—सिनेट के निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी जाय। कलकत्ता, बम्बई, तथा मद्रास विश्वविद्यालयों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या २० रहनी चाहिए थी, नये विश्वविद्यालयों में १५ रहनी चाहिए थी। हमने पहले देखा है कि सन् १८५७ के कानून में विश्व-विद्यालयों के सिनेट में निर्वाचित सदस्यों की व्यवस्था न की गयी थी। ये सभी सदस्य या तो मनोनीत या पदेन हुआ करते थे।

४—विश्वविद्यालयों की कार्यकारिणी शक्ति 'सिन्डिकेट' में निहित रहे। सिन्डिकेट के अध्यक्ष विश्वविद्यालय के कुलपित हों। सिन्डिकेट में विश्वविद्यालय के शिक्षकों का समुचित प्रधिनित्व रहे।

५—सन् १८५७ के कानून के अनुसार विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार केवल सिनेट को दिया गया था। सर-कार को इन नियमों को सम्पूर्ण रूप से स्वीकृत करने या रद्द करने का अधिकार था। सन् १९०४ के कानून के अनुसार सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह सिनेट के द्वारा बनाये हुए नियमों को, आवश्यकतानुसार, संशोधित या परिवर्द्धित कर सकती थी। सरकार को यह भी अधिकार दिया गया कि यदि निर्धारित तिथि तक सिनेट कानून न बनावे, तो वह स्वयं कानून बना सकती थी।

६—सन् १८५७ के कानून में किसी विश्वविद्यालय का क्षेत्र कहाँ तक होगा—इसके सम्बन्ध में कोई नियम न बनाया गया था। इससे विश्वविद्यालयों के क्षेत्रीय अधिकार के सम्बन्ध में कई तरह की गड़बड़ी

हो जाती थीं। कभी-कभी तो एक ही कॉलेज दो विश्वविद्यालयों से संबद्ध हो जाता था। सन् १६०४ के कानून के द्वारा गवर्नर-जेनरल को अधिकार दिया गया कि वह "हर विश्वविद्यालय की क्षेत्रीय सीमा निश्चित कर दे तथा यह भी निश्चित कर दे कि हर विश्वविद्यालय के क्षेत्र में कौन-कौन कॉलेज रहेंगे।" *

कानून के प्रति भारतीय प्रतिक्रिया

विश्वविद्यालय कानून १६०४ के प्रति भारतीयों का रूख अच्छा न रहा। तत्कालीन परिस्थितियों में, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं, सरकार और भारतीय नेता एक दूसरे को अविश्वास तथा संदेह की दृष्टि से देखते थे। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालयों की सुधार-योजना भी अपने असली रूप में ग्रहण न की जा सकी। भारतीय यह समझने लगे कि सुधार के नाम पर सरकार विश्वविद्यालयों पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती है और कालेजों के निर्माण में रुकावटें डालना चाहती है। विश्वविद्यालय कानून १६०४ के विरुद्ध कई तरह के आक्षेप लगाये जाने लगे। भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षण की व्यवस्था की बात ऐसी थी, जिससे किसी का विरोध न था। किंतु, अर्थाभाव के कारण कानून का यह आदेश कागज के पन्नों तक ही सीमित रह जाता। लोगों की यह आशंका बेबुनियाद न थी। १६०४ के कानून में, सिनेट के चुनाव में, सदस्यों के निर्वाचन का प्रबन्ध भी किया गया था। किंतु निर्वाचित सदस्यों की संख्या अत्यन्त सीमित थी। यह भी जबर्दस्त आक्षेप का विषय था। साथ ही, विश्वविद्यालय के सिनेट के सदस्यों की अधिकतम संख्या निश्चित कर दी गयी थी, जो कि उचित थी। किंतु भारतीयों को यह भय था कि नव-गठित सिनेट में यूरोपीय सदस्यों का बहुमत हो जाता। १६०४ के कानून ने विश्वविद्यालयों से संबद्ध कालेजों के लिए कड़ी शर्तें निर्धारित कीं। स्पष्टतः ये शर्तें ऐसी थी, जिनसे कालेजों के निर्माण की गति शिथिल पड़ जाती, जो भारतीय नहीं चाहते थे। विरोध का सब से बड़ा विषय था

* The Governor-General in Council may, by general or special order, define the territorial limits within which, and specify the villages in respect of which, any powers conferred by or under the Act of Incorporation or this act shall be exercised.

Act of 1904. — Section 27.

विश्वविद्यालय के आन्तरिक प्रबन्ध में गवर्नर-जेनरल का आधिपत्य। हमने देखा है कि १६०४ के कानून के अनुसार सरकार को अधिकांश सदस्यों को मनोनीत करने, कालेजों के संबद्ध करने की स्वीकृति देने या न देने, तथा विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में नियम बनाने के अधिकार दिये गये। इन अधिकारों के प्रयोग से विश्वविद्यालयों पर सरकारी आधिपत्य पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाता। यह भी आशंका थी कि विश्वविद्यालय, स्वशासित संस्थाएं न रह कर, राजकीय विभाग बन जाते। यह शंका निराधार न थी।

विश्वविद्यालय कानून १९०४--मूल्यांकन

जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, विश्वविद्यालय कानून १६०४ को भारतीयों की सहानुभूति प्राप्त न हो सकी। उनकी दृष्टि में यह कानून विश्वविद्यालयों को उन्नत नहीं, अपितु इन पर सरकारी आधिपत्य को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से लागू किया गया था। † दूसरी ओर सरकारी पक्ष के लोग इस बात का दावा कर रहे थे कि विश्वविद्यालय कानून उच्च शिक्षा की सारी व्याधियों के लिए रामवाण था। किंतु, इतिहास के विद्यार्थी की दृष्टि में, दोनों ही पक्षों की धारणाएं गलत थीं। विश्वविद्यालय कानून ने उच्च शिक्षा के लिए न विष बोया, न अमृत बरसाया। इसमें गुण और दोष दोनों थे। किंतु दोष की अपेक्षा, गुण की मात्रा अधिक थी। कानून का प्रधान उद्देश्य विश्व-विद्यालय के प्रशासन को ठोस तथा प्रभावोत्पादक बनाना था। इस उद्देश्य की सिद्धि में उसे काफी सफलता मिली। विश्वविद्यालयों के नव-गठित सिनेट, पहले के सिनेटों की अपेक्षा, अधिक संश्लिष्ट, ठोस तथा क्रियात्मक थे। सिनेट के सदस्य सरकार के पिट्ठू तथा प्रतिक्रिया-वादी होंगे—यह भी आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि नव-गठित सिनेट ने विश्वविद्यालय के प्रशासन को समुन्नत

† It was thought that we were on the eve of a mighty reform which would change the whole face of things in regard to higher education in India.

...........It was, however, not long before the new-born hope that had thus gladdened our hearts, was chilled to death, and we found that instead of the measures, we were looking for, we were to have only a perpetuation of the narrow, bigoted and inexpansive rule of experts.

Gokhale's schools, quoted in Nurullah & Naik—P. 468.

बना दिया था। विश्वविद्यालय कानून का दूसरा उद्देश्य संबद्ध कालेजों के स्तर कोउठाना था। इस उद्देश्य की सिद्धि में भी कानून, बहुलांश में, सफल हुआ। संबद्धीकरण की कड़ी शर्तों के कारण नये कालेज, जैसे तैसे, प्रस्फुटित न होने पाये। निरीक्षण तथा नियंत्रण की व्यवस्था से पुराने कालेजों को उच्च-शिक्षा के निर्धारित मानदण्ड तक पहुंचने की प्रेरणा मिली। जो असमर्थ थे, वे लुप्त हो गए। किंतु यह कहना ठीक नहीं कि कालेजों की उन्नति का एकमात्र श्रेय विश्वविद्यालय कानून को है। सन् १९०४ के बाद इन कालेजों को कई तरह की आर्थिक सुविधाएं प्राप्त हुईं, जो कि पहले न थीं। आर्थिक सहूलियतों के कारण उन्हें अपनी समस्याओं के समाधान का सुयोग मिला। फिर भी, विश्वविद्यालय कानून ने कालेजों के गुणात्मक उत्थान की न केवल प्रेरणा दी, बल्कि इसे दृढ़ तथा प्रगतिशील बनाने में भी अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया। † कानून के विरुद्ध यह आशंका प्रकट की गयी कि यह उच्च शिक्षा के विस्तार में बाधा उपस्थित करेगा और भारतीय चेष्टाओं को कुण्ठित कर देगा। यह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। यह सही है कि सन् १९०४–१२ की अवधि में, कठोर नियंत्रण के कारण, कालेजों की संख्या कम हो गयी। किंतु छात्रों की संख्या कम न हुई, अपितु उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। सन् १९१२ के पश्चात् कालेजों की संख्या में भी वृद्धि शुरू हो गयी। ये कालेज अधिकतर भारतीयों के द्वारा ही संचालित होने लगे।

कानून का एक परिणाम यह भी हुआ कि विश्वविद्यालयों को सरकार की ओर से नियमित वार्षिक अनुदान मिलने लगा। सन् १९०४ के पहले केवल पंजाब विश्वविद्यालय को ५० हजार रुपये अनुदान के रूप में प्रति वर्ष मिला करते थे। सन् १९०५ ई० में सरकार ने २५ लाख रुपये विवशविद्यालयों के लिए स्वीकृत किए। इसी वर्ष यह घोषणा की गयी कि सरकार ५० लाख रुपये प्रतिवर्ष ५ विश्वविद्यालयों को ५ वर्ष के लिए देगी। आगे चलकर यह अनुदान स्थायी आवर्त्तक अनुदान के रूप में परिवर्तित हो गया। ५ लाख रुपये में १ लाख ३५ हजार विश्वविद्यालय को दिए गए, शेष ३ लाख ६५ हजार कालेजों की समुन्नति के लिए। विश्वविद्यालयों को सरकारी अनुदान देने का सिलसिला

† All the same, the solitary effect of the Act in intiating, maintaining or accelerating this upward trend in efficiency can not be overlooked or under-estimated.

Nurullah & Naik— p. 472.

यहीं से प्रारम्भ हुआ, जो कि आगे चलकर दृढ़ तथा सबल हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अनुदान की पद्धति ने उच्च शिक्षा की उन्नति में बड़ा योग दिया। †

फिर भी, विश्वविद्यालय कानून १६०४, विश्वविद्यालयों की समस्त व्याधियों के लिए, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, रामबाण सिद्ध न हो सका। इसने विश्वविद्यालयों के संगठन तथा प्रशासन में महत्त्वपूर्ण सुधार किये। संबद्ध कालेजों की स्थिति में भी काफी उन्नति हुई। सरकारी प्रभुत्व विश्वविद्यालयों पर पूर्ण रूप से प्रतिष्ठितापित हो गया। किंतु, शैक्षणिक क्षेत्र में कानून के द्वारा कोई भी ठोस कार्य न हुआ। उच्च शिक्षा की शैक्षणिक प्रणाली लगभग वही रही जो कि पहले थी। कानून ने उच्च शिक्षा की पद्धति में आमूल परिवर्त्तन न किये, बल्कि प्रचलित पद्धति को ही सुव्यवस्थित तथा सुदृढ़ किया। इससे प्रचलित पद्धति के दोष न केवल कायम रह गये, अपितु वे दृढ़ भी हो गये। विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में साहित्यिक विषयों का एकाधिकार पूर्ववत् कायम रहा। इन विषयों की ओर भारतीय छात्र पहले से अधिक वेग के साथ झुकने लगे। वस्तुतः सन् १६०४ के कानून के द्वारा कालेजों तथा विश्वविद्यालयों का समन्वय स्थापित न हो सका और न विश्वविद्यालय शिक्षा का सुघर रूप ही निखर सका। हाई स्कूल, जो कि विश्वविद्यालय के लिए छात्र प्रस्तुत करते थे, जैसे के तैसे रह गये। उनके संगठन तथा उनके शिक्षकों के प्रशिक्षण की समस्याएं, ज्यों की त्यों, बनी रह गयीं। ऐसी स्थिति में लार्ड कर्जन के अध्यवसाय, लगन तथा विश्वास, जिनके बल पर उन्होंने भारतीयों के घोर विरोध के सम्मुख उक्त कानून पास किया था, उचित रूप से

† This was but the beginning of a movement which has continued ever since and needless to say, the system of Government grants to universities which was started by Lord Curzon in 1904-5 has led ultimately to considerable improvement in higher education.

Nurullah & Naik—p.473.

पुरस्कृत न हो सके । † किंतु, कर्जन को विश्वविद्यालयों के सुधार के उस आन्दोलन को चलाने का श्रेय अवश्य प्राप्त है, जो कि कठिनता-पूर्वक धीरे-धीरे, फिर भी दृढ़ता के साथ, अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ता गया । भारतीय विश्वविद्यालयों में जो नव-चेतना आज परिलक्षित है, उसका प्रथम स्पन्दन सन् १९०४ में लॉर्ड कर्जन के द्वारा प्राप्त हुआ ।‡

कालेजों के सुधार—विश्वविद्यालय-सुधार के अंग के रूप में कालेजों के सुधार की ओर भी कर्जन ने ध्यान दिया । विश्वविद्यालय के द्वारा निर्धारित नयी शर्त्तों की पूर्त्ति के लिये कालेजों को कई दिशाओं में अपनी उन्नति करनी पड़ी और छात्रावास पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि के प्रबन्ध उन्हें करने पड़े । इन कार्यों के लिए उन्हें आर्थिक सहायता की बड़ी आवश्यकता थी । लार्ड कर्जन ने, इस उद्देश्य से, साढ़े तेरह लाख रुपये दिये, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं । यह अनुदान सभी प्रान्तों में, जनसंख्या तथा गैरसरकारी कालेजों के छात्रों की संख्या के आधार पर, वितरित किया गया । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अनुदान से कालेजों की उन्नति में बड़ी सहायता मिली । विज्ञान की शिक्षा तथा छात्रावास का प्रबन्ध इस अनुदान की प्रमुख कृत्तियाँ थीं ।

माध्यमिक शिक्षा–

कर्जन की दृष्टि में माध्यमिक शिक्षा की समस्याएं भी लगभग वे ही थीं, जो कि उच्च शिक्षा की थीं । हमने देखा है कि सन् १८८२-१९०२ की अवधि में हाई स्कूलों का तीव्र विस्तार हुआ था । किन्तु इनमें कई तरह

† The "an effective synthesis between college and university was still undiscovered when the reforms of 1904 had been worked out to their conclusion, that the foundation of a sound University organisation had not yet been laid" and that the problems of high school training and organisation were unresolved—such conclusions constitute a sufficiently depressing epitaph, surely, upon the tombstone of so much aspiring and strenuously prosecuted endeavour

Ronaldshay—Life of Lord Curzon—vol. II. 194.

‡ But Curzon will still have the credit of having been the pioneer to start a new movement in university reform which slowly and laboriously but nevertheless steadily, has ever been progressing to its destined goal.

Nurullah & Naik P 475

को त्रुटियां थीं, जिनके कारण, उपयोगिता के विचार से, ये सफल संस्थाओं के रूप में परिलक्षित न हो रही थीं। अत: इन स्कूलों में भी लगभग वे ही सुधार अपेक्षित थे, जो कि कालेजों के लिये कर्जन के द्वारा चालू किये गये थे। सन् १९०४ ई० के प्रस्ताव के द्वारा कर्जन ने माध्यमिक शिक्षा के सुधार की योजना प्रस्तुत की, जिसका मूलमंत्र था—माध्यमिक स्कूलों पर नियंत्रण और इन स्कूलों की गुणात्मक उन्नति। स्कूलों का नियंत्रण निम्नलिखित रीतियों से हुआ।

१ – स्कूलों को विभागीय स्वीकृति—हमने देखा है कि सन् १८८२ के भारतीय शिक्षा आयोग ने गैरसरकारी स्कूलों के लिए ग्रान्ट-इन-एड की शर्तों को निर्धारित करने की सिफारिश की थी। जो स्कूल सरकारी ग्रान्ट-इन-एड प्राप्त न कर रहे थे, उन स्कूलों के प्रबन्धकों को यह छूट थी कि वे अपना स्कूल, जैसे भी चाहें, चलावें। इन सिफारिशों के अनुसार प्रान्तीय शिक्षा विभाग ने ग्रान्ट-इन-एड के विस्तृत नियम बनाये और सहायता-प्राप्त स्कूलों को अपने नियंत्रण में लाया। किन्तु जो स्कूल सहायता प्राप्त न कर रहे थे उनके लिए किसी प्रकार का नियंत्रण सरकार की ओर से न था। इससे असहायता-प्राप्त गैरसरकारी स्कूल, जैसे तैसे, अपने ढंग से चल रहे थे। स्वभावत: इन स्कूलों में कई तरह की त्रुटियाँ घुस पड़ी थीं, जो, शिक्षा की उपयोगिता की दृष्टि से, घातक थीं। अत: कर्जन ने असहायता-प्राप्त गैरसरकारी स्कूलों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति त्यागने की ठान ली और यह निश्चय किया कि सभी गैरसरकारी स्कूल, चाहे सहायता-प्राप्त हों या सहायता-प्राप्त नहीं हों, सरकारी नियंत्रण के अधीन रहें।† इस उद्देश्य से सन् १९०४ ई० के प्रस्ताव में सरकार ने कुछ सामान्य शर्तें निर्धारित कीं, जिन्हें सभी स्कूलों को मानना अनिवार्य था। जो स्कूल इन शर्तों को मानते, वे स्वीकृत स्कूल (recognised schools) समझे जाते।

† Whether those schools are managed by public authority or by private persons and whether they received aid from public funds, or not, the Government is bound, in the interests of the community, to see that the education provided in them is sound.

Government Resolution of 1904

स्वीकृत स्कूल ही सरकार के द्वारा दी गयी सुविधाओं को प्राप्त कर सकते थे, अन्य नहीं।* स्वीकृति के लिए मुख्य शर्तें ये थीं :—

(१) माध्यमिक स्कूल जनता की वास्तविक मांग की पूर्ति करता हो।

(२) इसकी आर्थिक स्थिति ठोस हो।

(३) इसकी प्रबन्ध-समिति; उचित रूप से, संगठित हो।

(४) इसके पाठ्य-विषय वर्गानुकूल हों।

(५) स्कूल में छात्रों की शिक्षा, स्वास्थ्य, मनबहलाव, तथा अनुशासन की समुचित व्यवस्था हो

(६) शिक्षकों की संख्या तथा उनकी योग्यता पर्याप्त हो तथा उनका आचरण अच्छा हो।

(७) स्कूल में शुल्क की दर ऐसी न हो कि स्थानीय दूसरे स्कूल को किसी भी रूप में हानि पहुँचावे।

इन शर्तों को भलिभाँति देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि ये लगभग वे ही थे, जो कि कालेजों के नियंत्रण के लिए विश्वविद्यालय कानून १६०४ ई० के द्वारा निर्धारित किये गये थे। इन्हीं शर्तों के अनुसार सन् १६०४ के पश्चात् गैरसरकारी स्कूलों पर सरकारी नियंत्रण का कार्य प्रारम्भ हो गया। ये सभी शर्तें प्रान्तीय शिक्षा विभागों के द्वारा अपनी अपनी नियमावलियों में शामिल कर ली गयीं। इस तरह सन् १६०४ के पश्चात, गैरसरकारी स्कूलों को स्वीकृति देने की प्रथा चल पड़ी।

२—विश्वविद्यालयों के द्वारा स्वीकृति—जो स्कूल अपने छात्रों को विश्वविद्यालय की प्रवेशक-परीक्षा में सम्मिलित करना चाहते थे, उन्हें विश्वविद्यालय के द्वारा निर्धारित कई शर्तें माननी पड़ती थीं। यह प्रथा १६०४ के पहले भी प्रचलित थी। किंतु उस समय विश्वविद्यालयों का संगठन कुछ ऐसा ढीला था कि माध्यमिक स्कूलों पर वे उचित नियंत्रण न रख सकते थे। यहां तक कि, अस्वीकृत स्कूलों के छात्र भी विश्वविद्यालयों की प्रवेशक-परीक्षा में प्रविष्ट हो जाते थे। सन् १६०४ के

* Such are the conditions upon which alone schools should be eligible to receive grants-in-aid or to send up pupils to complete for or receive pupils in enjoyment of Government scholarships; and shcools complying with them will be ranked as recognised schools.

Government Resolution of 1904.

विश्वविद्यालय कानून के अन्तर्गत सभी विश्वद्यिालयों ने माध्यमिक स्कूलों की स्वीकृति के लिए अपने-अपने नियम बनाये। साथ ही यह निश्चय कर दिया गया कि अस्वीकृत स्कूलों के छात्र प्रवेशक-परीक्षा में बैठ नहीं सकते थे। स्कूलों की स्वीकृति के सम्बन्ध में शिक्षा विभाग तथा विश्वविद्यालय में बहुधा मतभेद हो जाया करता था। इस मत-भेद की गुंजाइश न हो—इसके लिए भी नियम बनाये गए। इस तरह सन् १६०४ के पश्चात् सरकार तथा विश्वविद्यालय—दोनों ही माध्यमिक स्कूलों के नियंत्रण के लिए पूर्णतः तैयार हो गए।

३—व्यावहारिक तथा आर्थिक सहूलियतें—माध्यमिक स्कूलों की स्वीकृति की उपर्युक्त शर्त्तें तबतक पूरी नहीं हो सकती थीं, जबतक इन शर्त्तों के पालन के लिए समुचित प्रेरणा सरकार की ओर से न दी जाती। विश्व-विद्यालयों की स्वीकृति की एक जबर्दस्त प्रेरणा पहले ही से प्रस्तुत थी। स्वीकृति-प्राप्त स्कूलों के छात्र ही प्रवेशक-परीक्षा में बैठ सकते थे। अतः अपने छात्रों को प्रवेशक-परीक्षा में शामिल करने के लिए माध्यमिक स्कूलों को स्वीकृति लेना अत्यावश्यक था। सरकार की ओर से भी इस तरह की प्रेरणा अपेक्षित थी, ताकि माध्यमिक स्कूल सरकारी स्वीकृति लेने के लिए, व्यावहारिक लाभों के विचार से, वाध्य हों। अतः यह निश्चय किया गया कि स्वीकृत स्कूल निम्नलिखित सरकारी सुविधाओं को प्राप्त कर सकेंगे।

क—वे सरकार से, ग्रान्ट-इन-एड के रूप में, आर्थिक सहायता प्राप्त करेंगे।

ख—वे सरकार के द्वारा निर्धारित विभिन्न परीक्षाओं में अपने छात्रों को भेज सकेंगे।

ग—सरकारी छात्रवृत्ति-प्राप्त छात्रों को वे भरती कर सकेंगे।

इसके साथ ही सरकार ने गैरसरकारी स्कूलों के ग्रान्ट-इन-एड की रकम भी पहले से बढ़ा दी। गैरसरकारी स्कूल स्वीकृति की शर्त्तें पालन करें—इस उद्देश्य से निरीक्षकों की संख्या बढ़ायी गयी।

४—अस्वीकृत स्कूलों के छात्रों के प्रति प्रतिबन्ध—सरकार तथा विश्वविद्या-लयों के द्वारा निर्धारित स्वीकृति की शर्तें केवल उन्हीं स्कूलों को मान्य हो सकती थीं, जो या तो सरकारी सहायता-प्राप्त करना चाहते थे या विश्व-विद्यालय की प्रवेशक-परीक्षा में अपने छात्रों को सम्मिलित कराना चाहते

थे। किंतु बहुत से ऐसे स्कूल भी उत्पन्न हो गये थे, जो लड़कों को प्रवेशक-वर्ग की शिक्षा न देते थे। किंतु इसके नीचे के वर्गों तक अध्यापन करते थे। ये स्कूल आगे चल कर अपने छात्रों को स्वीकृत स्कूलों में भेज देते थे, जहाँ से वे प्रवेशक-परीक्षा में बैठ जाते थे। इन स्कूलों को विश्वविद्यालय की स्वीकृति की कोई आवश्यकता न थी। सरकार की आर्थिक सहायता की इच्छा भी ये न रखते थे। अन्य स्रोतों से इनका काम चल जाता था। इस तरह, ऐसे स्कूलों पर स्वीकृति की शर्तें कारगर न हो सकती थी। किंतु इन स्कूलों को स्वतंत्र छोड़ देना भी शिक्षा के हित के विचार से उचित न था। अत: स्कूलों को अपने वश में करने के विचार से सरकार ने यह नियम जारी किया कि अस्वीकृत स्कूलों के छात्र स्वीकृत स्कूलों में भरती नहीं किये जायं। इस नियम ने गैरसरकारी स्कूलों के छात्रों के लिए प्रवेशक-परीक्षा का द्वार एकदम बन्द कर दिया। स्वभावत: कोई भी छात्र, जो माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करना चाहता था, इन स्कूलों में दाखिल न हो सकता था। अत: इस नियम के प्रचालन से सरकार ने अस्वीकृत स्कूलों के नियंत्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त की। अब ऐसे अस्वीकृत स्कूलों के टिकने की सम्भावन नहीं रह गयी। स्वीकृति की प्राप्ति न केवल व्यावहारिक लाभ के लिए आवश्यक हो गयी, बल्कि स्कूल का अस्तित्व ही इस पर निर्भर हो गया। †

उपर्युक्त चार नियमों के द्वारा सरकार ने सभी प्रकार के माध्यमिक स्कूलों को अपने नियंत्रण में लाया। सरकारी नियंत्रण के पूर्ण प्रतिष्ठापन से माध्यमिक स्कूलों की स्थिति में सुधार अवश्य हुआ। किंतु इस नियंत्रण की कठोरता के कुछ दुष्परिणाम भी, कालान्तर में, प्रकट हुए। माध्यमिक स्कूलों की एकरूपता तथा यांत्रिकता इस कठोर सरकारी नियंत्रण का एक प्रतिफल था। माध्यमिक स्कूलों में वह जागरूकता, गतिशीलता तथा विविधता न आ सकी जो कि माध्यमिक शिक्षा के उत्कर्ष के लिए अपेक्षित थी।

† Under the new system, recognition ceased to be a mere advantage; if become a condition of existence and enabled the Department to bring almost all the secondary schools under its effective control and supervision.

Nurullah & Naik—p. 475.

स्कूलों की गुणात्मक उन्नति :

इसके लिए कर्जन ने निम्नलिखित आदेश जारी किये :—

१—हर जिले में एक सरकारी स्कूल, आदर्श के रूप में, प्रतिष्ठित किया जाय। इसके लिये प्रान्तीय सरकारों को केन्द्र के द्वारा पर्याप्त अनुदान दिया जाय।

२—गैरसरकारी स्कूलों के अनुदान की रकम बढ़ायी जाय, ताकि वे निर्धारित मानदण्ड तक पहुँचने में समर्थ हो सकें।

३—माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय और, इस उद्देश्य से, प्रशिक्षण संस्थाओं की वृद्धि की जाय। * प्रशिक्षण विद्यालयों का प्रशिक्षण भी अधिक उपयोगी बनाया जाय। प्रशिक्षण कालेजों में अच्छे पुस्तकालयों तथा अच्छे संग्रहालयों का आयोजन हो। ट्रेनिंग कालेज तथा स्कूलों में सम्बन्ध स्थापित किया जाय, ताकि कालेज छोड़ने पर, प्रशिक्षित शिक्षक, अपनी कला का उपयोग स्कूलों में कर सकें।

४—मिडल कक्षाओं तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। इन्हीं कक्षाओं में छात्रों को अंग्रेजी का इतना ज्ञान हो जाय कि वे इसके माध्यम से उच्च कक्षाओं में शिक्षा ग्रहण कर सकें।

५—निरीक्षकों की संख्या तथा उनकी सुविधाएं बढ़ायी जायं, ताकि स्कूलों का निरीक्षण अधिक प्रभावोत्पादक हो।

६—स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र (एस० एल० सी०) परीक्षा के पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाय, ताकि इसमें व्यावहारिक तथा उपयोगी विषयों का समावेश हो।

माध्यमिक शिक्षा को कर्जन की देन—माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति की उपर्युक्त चेष्टाएं भी आलोचना के विषय बनीं। कर्जन ने शिक्षा के क्षेत्र से राजकीय निर्याण की नीति, जिस पर भारतीय शिक्षा आयोग ने बल दिया था, त्याग दी और हर जिले में सरकारी आदर्श स्कूल के प्रतिष्ठापन का आदेश दिया। भारतीयों ने आदर्श

* If the teaching in secondary schools is to be raised to a higher level, if the pupils are to be cured of their tendency to rely upon learning notes and text-books by heart, if, in a word, European knowledge is to be diffused by the methods proper to it, then it is most necessary that the teachers should themselves be trained in the art of teaching.

Government Resolution—1904

स्कूलों के प्रतिष्ठापन का विरोध किया। इन स्कूलों पर सार्वजनिक कोष से अत्यधिक रुपये खर्च किये जाते। इन रुपयों से कई गैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता मिल सकती थी। इस तरह सरकार कुछ आदर्श स्कूलों के निर्माण के लिए अनेक गैरसरकारी स्कूलों को सरकारी सहायता प्राप्त करने से वंचित कर देती। साथ ही, भारतीय दृष्टि में, सरकारी आदर्श स्कूलों का कोई प्रयोजन ही न था। किसी स्कूल का आदर्श होना या न होना बहुत कुछ उसकी आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता था। गैरसरकारी स्कूल आदर्श की कमी के कारण पिछड़े न थे, बल्कि वे इसलिए पिछड़े थे के उनके पास रुपये की कमी थी। अतः उन्हें उन्नत बनाने के लिये आदर्श सरकारी स्कूलों का खोलना जरूरी न था, बल्कि उन्हें आर्थिक सहायता देना। सरकार के लिए यह उचित था कि वह सरकारी स्कूलों को बन्द कर दे और इन स्कूलों पर जो रुपये खर्च किये जाते थे, उन्हें गैरसरकारी स्कूलों के बीच वितरित कर दे। किन्तु, सरकार उस समय भारतीय दृष्टिकोण को समझने के लिए प्रस्तुत न थी। अतः सरकारी स्कूलों के विस्तार की नीति क्रियाशील रही। हम आगे देखेंगे कि इस नीति में सन् १६२१ के बाद कुछ परिवर्त्तन न हुआ।

कर्जन ने, आदर्श स्कूलों के अतिरिक्त, माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए शिक्षा के विषय तथा माध्यम के सम्बन्ध में जो निर्देश दिये वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। व्यावसायिक शिक्षा का आयोजन जिसकी सिफारिश भारतीय शिक्षा आयोग न की थी, कर्जन के द्वारा भी दोहराया गया। किंतु इससे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्देश कर्जन ने शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में दिया। सन् १६०२ ई० तक उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी, माध्यम के रूप में, पूर्णतः प्रतिष्ठित थी। आधुनिक मिडल वर्गों में भी इसका प्रभुत्व था, यद्यपि इसकी चर्चा की जा रही थी कि इन वर्गों से अंग्रेजी माध्यम बहिष्कृत होना चाहिए था। किंतु इसपर निर्णय नहीं किया जा सका था। यह भी निश्चय नहीं हो सका था कि किस कक्षा में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा प्रारम्भ की जाय। कर्जन ने अन्तिम दो प्रश्नों पर अपना निश्चित विचार प्रकट किया, जो कि, जमाने के विचार से, प्रगतिशील कहे जा सकते हैं† उसने यह आदेश दिया कि

† On the last two issues, Curzon gave a definite and, from the point of view of that period, a progressive ruling
Nurullah & Naik—p. 484.

क—सामान्यत: किसी बच्चे की अंग्रेजी की शिक्षा तबतक प्रारम्भ न की जाय, जबतक कि वह प्राथमिक शिक्षा में कुछ प्रगति न कर चुका हो तथा अपनी मातृभाषा में सशक्त न हो गया हो। †

ख—अंग्रेजी माध्यम का उपयोग तबतक न किया जाय जबतक इसके लिए छात्र पूर्णत: तैयार न हो जाय। अंग्रेजी माध्यम के उपयोग के पहले यह आवश्यक है कि छात्र अंग्रेजी भाषा का इतना ज्ञान प्राप्त कर ले कि वह, इसके माध्यम से, समझने में समर्थ हो जाय। मोटा-मोटी तौर पर अंग्रेजी माध्यम का प्रयोग कम से कम १३ वर्ष की अवस्था से शुरू होना चाहिए। ‡

ग—अंग्रेजी माध्यम के प्रयोग के बाद भी, कोई भी छात्र अपनी मातृभाषा का अध्ययन न छोड़े। * यह अध्ययन माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा के अन्त तक जारी रहे। यदि ऐसा नहीं होगा तो देशी भाषाएं केवल बोलचाल की भाषाएं रह जायंगी और इनके द्वारा यूरोपीय ज्ञान का प्रचार जन-सामान्य में नहीं होगा, जिसका निर्देश सन् १८५४ के संदेश-पत्र में दिया गया था।

† As a general rule a child should not be allowed to learn English as a language until he has made some progressin the primary stage of instruction and has received a thorough grounding in his mother-tongue.

‡ It is equally important that when the teaching of English has begun, it should not be prematurely employed as the medium of instruction in other subjects.

The line of division between the use of English as a medium of instruction should, broadly speaking, be drawn at a minimum age of 13.

* No scholar in a secondary school should even then, be allowed to abandon the study of his vernacular, which should be kept up until the end of the school course. If the educated classes neglect the cultivation of their own languages, these will assuredly sink to the level of mere colloquial dialects possessing no literatrature worthy of the name, and no progress will be possible in giving effect to the principle, affirmed in the Dispatch of 1854, that European knowledge should gradually be brought by means of Indian vernaculars, within the reach of all classes of people.

Government Resolution—1904,

कर्जन के ये निर्णय, माध्यम के प्रश्न पर, भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के एक कदम आगे अवश्य हैं। प्रान्तीय सरकारों ने इन आदेशों को कार्यान्वित किया, जिसके फलस्वरूप, माध्यम के क्षेत्र में, मातृभाषा के प्रतिष्ठापन की ओर प्रगति हुई।

प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कर्जन के विचार माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा से भिन्न थे। जैसा कि हमने देखा है माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में कर्जन की नीति गुणात्मक उन्नति की थी। किंतु प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी नीति गुणात्मक उन्नति के साथ-साथ संख्यात्मक वृद्धि की भी थी। कर्जन के अनुसार, अंग्रेजी शासन-काल में जन-सामान्य की शिक्षा सब से अधिक उपेक्षित होती आयी थीं। *

मेकाले के द्वारा प्रतिष्ठापित शिक्षा-पद्धति से, देश की प्राथमिक शिक्षा को, जो कि मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए थी, बड़ा धक्का पहुँचा था। किंतु यह उचित न था। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता स्पष्ट थी। इसके द्वारा ही जन-सामान्य के मानसिक अंधकार को दूर किया जा सकता था। "भारतीय जनता जितना ही अधिक शिक्षित होगी, उतना ही अधिक वह सुखी होगी और उसी अनुपात में वह, राजनीतिक दृष्टि से, उपयोगी सिद्ध होगी।" † प्राथमिक शिक्षा की दुरावस्था का प्रधान कारण, कर्जन के विचार में, आर्थिक प्रोत्साहन की कमी थी। अबतक सरकार के द्वारा इस शिक्षा की मद में कम रुपये खर्चा किए गए थे। ‡ सन् १९०१–२ ई० में

* I am one of those who think that Government has not fulfilled its duty in this respect. Ever since the cold breath of Macaulay's rhetoric passed over the field of Indian languages and text-books, the elementary education of the people in their own languages has shrivelled and pined. This, I think, has been a mistake.

Curzon's speech at Simla conference:—1901.

† In proportion as we teach the masses, so we shall make their lot happier, and in proportion as thay are happier, so they will become more useful members of the body politic.

Curzon's epeech at Simla Conference 1901.

‡ On a general view of the question the Government of India can not avoid the conclusion that Primary Education has hitherto received insufficient attention and inadequate share of the public funds.

Government Resolution on Educational Policy.—1904.

प्रान्तीय तथा स्थानीय कोष से कुल मिलाकर ६३,०२,६०१ रुपये प्राथमिक शिक्षा में व्यय हो रहे थे। स्पष्टतः यह रकम प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त न थी। प्राथमिक शिक्षा की पहली मांग, कर्जन के विचार में, पर्याप्त आर्थिक सहायता थी।

संख्यात्मक वृद्धि के कार्य—अतः कर्जन ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए अनावर्त्तक तथा आवर्त्तक अनुदान के रूप में काफी रुपये शीघ्र स्वीकृत किए। अनावर्त्तक अनुदान का उद्देश्य प्राथमिक स्कूलों को १६वीं सदी के अन्त में होने वाले प्लेग तथा अकाल के प्रभाव से मुक्त करना था। आवर्त्तक अनुदान का उद्देश्य लोकल बोर्ड तथा नगर-पालिकाओं को, जिनके जिम्मे प्राथमिक स्कूलों का प्रबन्ध था, अधिक आर्थिक सहायता देना था। इस अनुदान से इन्हें सरकारी कोष से शिक्षा-सम्बन्धी खर्च के आधे रुपये मिलने लगे, जो कि पहले केवल एक-तिहाई थे। खानगी प्राथमिक स्कूलों को भी वे अब अधिक अनुदान दे सकती थे। अनुदान की रकम की वृद्धि का फल प्राथमिक शिक्षा पर अत्यन्त अनुकूल पड़ा और दस वर्ष में ही प्राथमिक स्कूलों की संख्या काफी बढ़ गयी। सन् १८८१–८२ में प्राथमिक स्कूलों की संख्या ८२,६१६ थी। २० वर्ष के पश्चात् सन् १६०२ ई० में यह संख्या ६३,६०४ थी। किंतु सन् १६१०–११ ई० में यह संख्या १,१८,२६२ हो गयी। इस तरह प्राथमिक स्कूलों का विस्तार, सन् १६०२ तथा १६१२ के बीच, सन् १८८२–१६०२ की अवधि के विस्तार का लगभग दूना था। कर्जन का प्रोत्साहन पाकर प्राथमिक शिक्षा की वृद्धि अत्यन्त तीव्र हुई। संख्या-वृद्धि के साथ-साथ छात्रों की संख्या में भी वैसी ही वृद्धि हुई। सन् १८८१–८२ में प्राथमिक स्कूलों की छात्र-संख्या २०,६१,५४१ थी, १६०१–२ में ३०,७६,६७१ और १६११–१२ में ४८,०६,७३६।

गुणात्मक उन्नति के कार्य—किंतु लॉर्ड कर्जन को केवल प्राथमिक शिक्षा का विस्तार अभीष्ट न था। उन्हें प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति भी करनी थी। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित आदेश जारी किए।

क—प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय तथा इसके लिए प्रशिक्षण स्कूलों की संख्या बढ़ायी जाय। प्रशिक्षण की अवधि, सामान्यतः दो वर्ष की होनी चाहिए थी। प्रशिक्षण स्कूलों के पाठ्य-विषयों में "प्रारम्भिक कृषि-शास्त्र" का अध्ययन भी शामिल

किया जाय। यह इसलिए आवश्यक था कि प्राथमिक स्कूल के शिक्षक अपने स्कूलों में छात्रों को कृषि से सम्बन्धित सामान्य बातें बता सकें। प्रशिक्षण के क्षेत्र में कर्जन की यह व्यवस्था विशिष्ट स्थान रखती है। पाठ्य-क्रम में कृषि-शास्त्र के सन्निवेश से कर्जन ने भारत की प्राथमिक शिक्षा को व्यावहारिक तथा वातावरण-से-संबद्ध बनाने की चेष्टा की।

ख—प्राथमिक स्कूलों की गुणात्मक उन्नति के लिये कर्जन ने पाठ्य-क्रम का सुधार जरूरी माना। हमने देखा है कि भारतीय शिक्षा आयोग ने प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम को सरल करने की सिफारिश की थी। कर्जन के विचार में यह ठीक न था। प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम को सरल करने के बदले वृहत करने की जरूरत थी। अतः उन्होंने पाठ्य-क्रम को 'तीन आर' (three Rs.) तक सीमित न रखा। इस पाठ्य-क्रम में कृषि भी शामिल किया गया। इसके अलावे, कर्जन ने आबजेक्ट पाठ (object lesson) तथा किंडरगार्टेन प्रणाली के व्यवहार की सिफारिश भी की। इन प्रणालियों के उपयोग से "भारतीय मस्तिष्क के कुछ नैसर्गिक दोष मिट जायंगे, स्मृति के प्रति अत्यधिक आस्था हट जायगी और अनुभव के आधार पर तर्क करने की शक्ति जागृत होगी"।* शारीरिक शिक्षा को भी कर्जन ने प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करना आवश्यक माना। कर्जन ने यह भी आदेश दिया कि देहाती क्षेत्र के प्राथमिक स्कूलों का पाठ्य-क्रम शहरी क्षेत्र के स्कूलों से भिन्न रहे।‡ देहाती क्षेत्र का पाठ्य-क्रम देहाती वातावरण से संश्लिष्ट रहे। उसी तरह शहरी क्षेत्र के स्कूलों का पाठ्य-क्रम शहरी वातावरण से संश्लिष्ट रहे।

पाठ्य-क्रम के सुधार के सम्बन्ध में कर्जन के ये विचार श्लाघनीय हैं। वातावरण-संश्लिष्ट पाठ्य-क्रम की आवश्यकता आज हम पूर्णतः महसूस कर रहे हैं। इस दृष्टि से कर्जन के आदेश, पाठ्य-क्रम के सुधार की

* As calculated to correct some of the inherent defects of Indian intellect, to discourage exclusive reliance on the memory and to develop a capacity for reasoning from observed facts--Curzon.

‡ The instruction of the masses in such subjects as will best fit them for their position in life involves some differentiation in the course of rural schools, specially in connection with the attempts which are being made to connect primary teaching with familiar objects.

Quinquennial Review —1902—7

समस्या में, विशिष्ट स्थान रखती हैं। दुर्भाग्यवश, कर्जन के आदेश सही रूप से समझे न जा सके, जिसका फल यह हुआ कि कृषि की शिक्षा अतिरिक्त विषय के रूप में दी जाने लगी अथवा प्राथमिक स्कूलों का पाठ्य-क्रम बहुत सरल कर दिया गया। किंतु कर्जन के विचार इससे भिन्न थे। वे पाठ्य-क्रम के विषय को स्थानीय वातावरण से समन्वित करना चाहते थे, जिससे प्राथमिक स्कूलों की शिक्षा सार्थक क्रियात्मक, प्रत्यक्ष एवं उपयोगी होती।

ग—गुणात्मक उन्नति के लिए तीसरा कार्य, जिसके लिए लार्ड कर्जन ने आदेश दिया, ग्रान्ट-इन-एड की स्वीकृति की प्रथा में परिवर्तन था। अबतक ग्रान्ट-इन-एड का एक प्रमुख आधार परीक्षा-फल था। इस प्रथा के अनुसार किसी स्कूल के ग्रान्ट-इन-एड की रकम उस स्कूल से परीक्षोत्तीर्ण छात्रों की संख्या पर निर्भर करती थी। कर्जन ने इस प्रथा के परित्याग का आदेश दिया और एक ऐसी रीति को व्यवहृत करने की सिफारिश की, जिसके द्वारा ग्रान्ट-इन-एड की स्वीकृति का आधार वैज्ञानिक तथा आधुनिक ढंग का होता। कर्जन के आदेश के अनुसार प्रान्तीय सरकरों ने ग्रान्ट-इन-एड के नये नियम निर्धारित किये, जिनके अनुसार ग्रान्ट-इन-एड की स्वीकृति में स्कूल के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाने लगा। इसका फल अच्छा निकला और स्कूलों के ग्रान्ट-इन-एड की पद्धति अधिक सुदृढ़ तथा उपयोगी बन गयी। *

कर्जन के शिक्षा-सम्बन्धी अन्य सुधार

उच्च, माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा के सुधार के अतिरिक्त, कर्जन ने शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी सुधार के प्रयत्न किए, जिनमें प्रमुख ये थे :—

कला की शिक्षा—कला की शिक्षा के लिए जो संस्थाएं पहले कायम हुई थीं, उनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। कर्जन के समय में भारत में ४ कला स्कूल थे, जो मद्रास, बम्बई, कलकत्ता तथा लाहोर में स्थित थे। किन्तु इनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में लोगों का मतैक्य नहीं था। कुछ लोगों के विचार में उन स्कूलों से कला की शिक्षा

* Quinquennial Review of the progress of Education in India 1902-7. P.—416.

को कोई लाभ न पहुंच रहा था और इसलिए उन्हें बन्द कर देना ही अच्छा था। कुछ लोगों के विचार में इन स्कूलों को कायम रखने की जरूरत थी, किंतु इनके पाठ्य-क्रम में सुधार होना चाहिए था। इस तरह कर्जन के भारत पहुंचने के समय कला की शिक्षा एक संक्रान्ति-काल से गुजर रही थी और इसकी स्थिति खतरे में पड़ गयी थी। कर्जन ने कला की शिक्षा की समस्या का पूर्ण अध्ययन किया और इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित आदेश दिए।

क—कला की शिक्षा जारी रहे और इसके लिए संस्थापित विशिष्ट संस्थाएं कायम रहे।

ख—कला की शिक्षा का उद्देश्य भारतीय कला तथा भारतीय कला-उद्योग का प्रोत्साहन होना चाहिए। इसकी शिक्षा व्यावसायिक दृष्टिकोण से न होनी चाहिए। †

ग—कला की शिक्षा के लिए वे ही विषय स्कूलों में चुने जायं, जिन्हें छात्र, स्कूल छोड़ने पर, अपनी जीविका का साधन बना सकें।

घ—कला-स्कूलों में औधोगिक कला की शिक्षा स्थानीय साधनों से सम्बन्धित रहे।

च—कला-स्कूल कारखाने के रूप में परिवर्तित न किए जायं। शिक्षा विभाग के अधिकारी इन स्कूलों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध अधिक न स्थापित करें।

छ—कला की शिक्षा उन्हीं विशेषज्ञों के द्वारा दी जाय, जो कि भारतीय कालेजों तथा कला-स्कूलों में प्रशिक्षित हों।

ज—अधिक विषयों की एक साथ ही शिक्षा देने की अपेक्षा कुछ चुने हुए विषयों की विशेषीकृत शिक्षा दी जाय।

झ—सामान्यतः कला स्कूलों में शुल्क लिया जाय। किंतु प्रतिभावान छात्रों को आर्थिक सहायता दी जाय। जब छात्रों के

† The Government of India are of opinion that true function of Indian Schools of Art is the encouragement of Indian Art and Art industries; and that in so far as they fail to promote these arts or industries, or provide a training that is disassociated from their future practice, or are utilised as commercial ventures, they are conducted on erroneous principles.

Government Resolution—1904.

उत्पादन, व्यावसायिक दृष्टि से, अच्छे हो जायं, तो छात्रों को इनके लिए पारिश्रमिक दिया जाय।

कर्जन के इन आदेशों के अनुसार भारत में कला की शिक्षा एक निश्चत उद्देश्य तथा कार्यक्रम के साथ संचालित होने लगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि कर्जन ने कला की शिक्षा को संक्रान्तिकाल से उबार कर एक सुनिश्चित पथ पर आरूढ़ किया। यद्यपि कला की शिक्षा में कई त्रुटियाँ अब भी रह गयीं, किन्तु यह जीवित तथा दृढ़ हो गयी।

कृषि की शिक्षा—कर्जन के पहले भारत में कृषि की शिक्षा नाम-मात्र को दी जाती थी। कृषि की शिक्षा के लिए कुछ कालेज अवश्य स्थापित हो चुके थे, किंतु इनके कार्य, सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक—दोनों ही पक्षों में, बहुत ही सीमित थे। इन कालेजों से न कृषि-शास्त्र के सैद्धान्तिक विशेषज्ञ ही उत्पन्न हो रहे थे, न कुशल किसान हो। कर्जन के लिए कृषि-शिक्षा की यह स्थिति असह्य थी। उसने कृषि-शिक्षा के सम्बन्ध में एक नयी तथा सबल नीति निर्धारित की और भारत की कृषि-शिक्षा को सुव्यवस्थित, सुदृढ़, उपयोगी तथा व्यापक बनाने की चेष्टा की। इसके लिए कर्जन ने निम्नलिखित दिशाओं में कदम उठाया :—

क—प्रान्तों में कृषि विभाग का संगठन किया गया।

ख—भारत में ही कृषि की उच्चतम शिक्षा के आयोजन के उद्देश्य से पूसा (विहार) में केन्द्रीय कृषि-गवेषणाशाला (Central Research Institute) स्थापित की गयी।

ग—यह तय किया गया कि हर प्रान्त में एक कृषि कालेज स्थापित हो, जिसमें सुयोग्य शिक्षक नियुक्त हों और जिसमें अपेक्षित साधन दिये जायं।

घ—जन-सामान्य में कृषि-विज्ञान के प्रचार के लिए मिडल तथा उच्च स्कूलों में कृषि अध्ययन का एक विषय बनाया जाय। कृषकों के प्रशिक्षण के लिए कृषि कक्षाएं खोली जायं।

टेकनिकल शिक्षा—गत अध्याय में हमने देखा है कि भारत में टेकनिकल शिक्षा का आयोजन, प्रारम्भ में, सरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से ही हुआ था। भारतीय उद्योग को विकसित तथा समृद्ध करने के उद्देश्य से टेकनिकल शिक्षा अब तक आयोजित न हुई

थी। कर्जन ने औद्योगिक शिक्षा की यह कमी महसूस की और उसने निश्चय किया कि टेकनिकल शिक्षा का प्रधान उद्देश्य भारतीय उद्योगों का विकास होना चाहिए। * इसके लिए यह आवश्यक था कि टेकनिकल शिक्षा, सरल तथा व्यावहारिक रूप में, सामान्य स्कूलों में आयोजित की जाय। टेकनिकल शिक्षा के विकास के लिए यह आवश्यक था कि सरकार कुछ ऐसे लोगों को तैयार करे जो भारत के औद्योगिक विकास का नेतृत्व कर सकें। † इसके लिए कर्जन ने यह आदेश दिया कि सरकार कुछ चुने हुए सुयोग्य भारतीयों को यूरोप तथा अमेरिका में टेकनिकल शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्तियाँ दे।

नैतिक शिक्षा—नैतिक शिक्षा के प्रश्न पर भी कर्जन ने बहुत ही ठोस आदेश दिया। सार्वजनिक स्कूल सर्वथा असाम्प्रदायिक रहें—यह विचार कम्पनी-सरकार का बराबर से था। भारतीय शिक्षा आयोग ने यह परामर्श दिया था कि कालेजों में नैतिक शिक्षा-सम्बन्धी कोई प्रथम-पुस्तक निर्धारित की जाय। किंतु कर्जन की दृष्टि में यह परामर्श लाभदायक न सिद्ध होता। नैतिक शिक्षा की पाठ्य-पुस्तक के निर्धारण का फल यही होता कि छात्र इसे, अन्य पुस्तकों की तरह, रट जाते और नैतिक बातों का उन्हें कुछ भी ज्ञान न होता। ‡ अतः कर्जन ने यह आदेश दिया कि नैतिक शिक्षा, विषय के रूप में, स्कूलों में न दी जाय, और सार्वजनिक स्कूल सर्वथा असाम्प्रदायिक रहें। नैतिक बातों की जानकारी तथा नैतिक आदतों के निर्माण स्कूल के संगठन, उसके जीवन तथा कार्यों से हों। स्कूल के सुयोग्य शिक्षक, स्कूल का

* The first call for fresh effort is now towards the development of Indian industries, and especially those in which native capital may be invested. Technical instruction directed to this object must rest on the basis of a preliminary general education of a simple and practical kind, ... and should as a rule be imparted in schools of the ordinary type.

† As a step towards providing men qualified to take a leading part in the improvement of Indian industries, the Government of India have determined to give assistance in the form of scholarships to selected students to enable them to pursue a course of technical education under supervision in Europe or America.

‡ If pupils can cram Euclid, there is nothing to prevent them from cramming ethics.

Lord Curzon in India, vol II—P. 54.

अनुशासन, सुप्रबन्धित छात्रावास, चरित्र को समुन्नत करने वाले जीवनियों-से-सम्बलित उत्तम पाठ्य-पुस्तकें, शिक्षकों तथा छात्रों का साहचर्य्य—इन उपकरणों से छात्रों का नैतिक उत्थान अनायास ही व्यावहारिक रूप में होगा। †

आश्चर्य की बात यह है कि कर्जन के नैतिक-शिक्षा सम्बन्धी विचार, गैरसरकारी स्कूलों के लिए, सरकारी स्कूलों के विचार से सर्वथा भिन्न थे। ये सहायता-प्राप्त गैरसरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा के आयोजन के पक्ष में थे। सम्भवतः यह भिन्नता धर्म-प्रचारक स्कूलों को सहूलियत देने के उद्देश्य से उद्भूत थी।

पुरातत्त्व विभाग—भारत के प्रचीन ऐतिहासिक-स्मारकों के संरक्षण के लिए कर्जन ने पुरातत्त्व विभाग (Department of Archaeology) स्थापित किया। उनकी प्रेरणा से सन् १६०४ ई० में प्राचीन स्मारक संरक्षण कानून भी पास हुआ। भारतीय स्मारकों के प्रति कर्जन की आस्था तथा इनके संरक्षण के उनके कार्य प्रशंसा-पात्र हैं। पुरातत्त्व विभाग ने ऐतिहासिक स्मारकों की खोज में महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किए, जिसके फलस्वरूप भारत का गौरवपूर्ण अतीत, हमारे, समक्ष अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हो सका। "ऐतिहासिक स्मारक संरक्षण" कानून से उन अनगणित स्मारकों को सुरक्षित रखने में बड़ी सहायता पहुँची, जो कि कालक्रम में प्राकृतिक तथा मानवीय आघातों के शिकार होते जा रहे थे।

केन्द्रीय शिक्षा-विभाग का निर्माण—हमने देखा है कि ऊड के संदेश-पत्र ने केवल प्रान्तों में शिक्षा विभागों के निर्माण का आदेश दिया था। अतः ये विभाग विभिन्न प्रान्तों में ही कायम हुये। केन्द्र में समस्त देश की शिक्षा-संबंधी बातों की देखभाल के लिए राजकीय विभाग न था,

† In Government institutions the instruction is, and must continue to be exclusively secular. In such cases the remedy for the evil tendencies above is to be sought, not so much in any formal methods af teaching conducted by means of moral text-books or primers of personal ethics, as in the influence of carefully selected and trained teachers, the maintainance of a high standard of discipline, the institution of well-managed hostels, the proper selection of text-books such as biographies which teach by example, and above all the association of teachers and pupils in the common interests of their daily life.

Resolution on Educational Policy—1904.

न इस कार्य के लिये कोई अधिकारी ही नियुक्त था। कर्जन को एक ऐसे पदाधिकारी का अभाव जबर्दस्त रूप से खटक रहा था जो कि केन्द्रीय सरकार को शिक्षा, सम्बन्धी बातों में उचित परामर्श देता। ‡ इस अभाव की पूर्ति के लिये कर्जन ने भारत के प्रधान शिक्षा-संचालक (Director-general of education) के पद की सृष्टि की। शीघ्र ही इस पद पर एच० डबल्यू ओरेंज (H. W. Orange) नियुक्त किये गये। इस तरह कर्जन ने, प्रधान शिक्षा-संचालक के पद की सृष्टि से, केन्द्रीय शिक्षा विभाग के संगठन का बीजारोपण किया, जो कि आज पूर्ण वृक्ष के रूप में विकसित है। भारतीय शिक्षा के आयोजन तथा प्रशासन में केन्द्रीय शिक्षा-विभाग का निर्माण भी लार्ड कर्जन की शिक्षा-सम्बन्धी विशिष्ट देन है।

भारतीय शिक्षा को लार्ड कर्जन की देन—एक समीक्षा

लार्ड कर्जन के जीवन, कार्य तथा व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय हम दे चुके हैं। हमने देखा है कि कर्जन की प्रतिभा, क्षमताएं, कर्त्तव्य-निष्ठा तथा अध्यवसाय असाधारण थे। किंतु उनमें संवेदनात्मक अनुभूति का अभाव था, जिससे वे भारतीयों के हृदय को परख न सके। * फलतः उनके सभी प्रशासनिक सुधार तथा जन-कल्याण की योजनाएं भारतीयों की सहानुभूति अथवा सहयोग न प्राप्त कर सकीं। अंग्रेजी साम्राज्यवाद तथा अंग्रेजी सभ्यता में अत्यधिक आस्था होने के कारण,

‡ But I do want some one at head-quarters who will prevent the Government of India from going wrong, and who will help us to secure that community of principle and of aim without which we go drifting about like a deserted hulk on chopper sea.

Lord Curzon in India vol. II p.—55

The credit of creating the first nucleus of such a Department goes to Curzon.

Nurullah & Naik—P.—496.

* His wonderful intellectual gifts, his brilliant powers of expression, his phenomenal energy, his boundless enthusiasm for work—these will ever be a theme of unstinted praise. But the gods are jealous, and amidst such lavish endowments, they withheld from him a sympathetic imagination, without which no man can understand an alien people, and it is a truth that at the end of his administration Lord Curzon did not understand the people of India.

Gokhale's speech at Benares Congress 1905.

का अत्यन्त श्लाघनीय कार्य किया। कर्जन ने ही केन्द्रीय शिक्षा-विभाग का बीजारोपण किया और केन्द्रीय सरकार के ऊपर शिक्षा का आर्थिक उत्तरदायित्व आरोपित किया। कर्जन ने आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की प्रेरणा भी दी। वस्तुत: कर्जन ने भारतीय शिक्षा के किसी भी अंग को अपने स्पर्श से अछूता न छोड़ा, और जिस अंग को उन्होंने स्पर्श किया, उसे समुन्नत किए बिना वे न रहे। † आज जबकि अंग्रेजी हुकूमत और भारतीय राष्ट्रीयता का संघर्ष सदा के लिए अन्त हो गया है और जब कि स्वतंत्र भारत अपने जीवन के प्रथम चरण में विश्व-बंधुत्व के सृजन में लग्नशील है, हमारे लिए लार्ड कर्जन की उन त्रुटियों पर दृष्टि डालनी उचित नहीं, जिन्हें उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य के संरक्षण के लिए की थी। आज हम उनके उन कार्यों को देखेंगे, जिन्हें उन्होंने भारतीयों के हित के विचार से किए थे। और इस दृष्टि से, "सभी भारतीय कर्जन के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमारे प्राचीन स्मारकों के संरक्षण तथा हमारी शिक्षा के आदर्शों को उठाने के लिए बहुत कुछ किया। लार्ड कर्जन की उपलब्धियां उन्हें भारतीय स्मृति में सर्वदा जीवित रखेंगी और भारतीय सन्तान उनकी आत्मा के प्रति अपनी शुभकामनाएं सतत अर्पित करती रहेंगी।" ‡

लार्ड कर्जन के बाद

सन् १९०५ ई०, लॉर्ड कर्जन के संघर्षमय प्रशासन का अन्त हुआ। कर्जन के शासन काल की दुःखद स्मृतियाँ उनके इंग्लैंड वापस लौटने पर भी कायम रहीं। परवर्त्ती शासकों ने भारतीय हृदय को स्निग्ध करने के उद्देश्य से कर्जन की नीति त्याग दी। वंग-विभाजन

† In short, it may be said of Curzon that he touched almost every aspect of Indian education and touched nothing that he did not reform.

Nurullah & Naik—p. 497.

‡ Now that the ashes of the numerous strifes are cold, all Indians are grateful to the wise statesmanship of the great Viceroy who did so much to preserve our ancient monuments and raise our educational standards. By those achievements he still lives, and generations of Indians will bless him for them."

Dr. Amarnath Jha—quoted in Nurullah & Naik—p. 497.

* Lord Curzon left the legacy of a very bitter controversy.........

—Dr. Rajendra Prasad India Divided P. 111.

रद्द कर दिया गया। शिक्षित भारतीयों के विचारों का समदार होने लगा, भारतीय नेताओं को विधायिका सभा में स्थान मिलने लगा। † सन् १६०६ ई० में मोरले-मिन्टो सुधार प्रकट हुआ, जिससे विधायक कार्यों में भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार प्राप्त हुए। इस तरह कर्जन के राजनीतिक कार्य उसके उत्तराधिकारियों के द्वारा उलट दिये गये।

किंतु, शिक्षा के क्षेत्र में, सरकार की नीति वही रही, जिसे कर्जन ने प्रतिपादित की थी। सन् १६०५ के बाद भी शिक्षा-संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण की सख्ती तथा इनकी गुणात्मक उन्नति सरकारी शिक्षा-नीति के प्रमुख शिलाधार रहीं। फलतः कर्जन के द्वारा प्रारम्भित शिक्षा-सम्बन्धी सभी योजनाएं तथा क्रियाएं उनके जाने के बाद न केवल जारी रहीं, बल्कि ये अधिक उत्साह तथा लगन के साथ व्यवहृत होने लगीं। यह स्थिति सन् १६२१ ई० तक कायम रही, जब कि भारतीय शिक्षा की बागडोर भारतीय मन्त्रियों के हाथ आयी। अतः सन् १६०५-१६२१ की अवधि, भारतीय शिक्षा के इतिहास के लिए, वस्तुतः कर्जन की अवधि ही है। इस अवधि में भी, पूर्ववत्, सरकारी नीति के विरुद्ध भारतीयों का संघर्ष जारी रहा, सरकार की शिक्षा-सम्बन्धी नीतियों तथा कार्यों के विपक्ष में आवाज बुलन्द होती रही। किंतु इस अवधि में भारतीय विरोध उस हद को न छू सका, जिसे उसने कर्जन के शासन काल में स्पर्श किया था। भारतीय विरोध का सब से सशक्त रूप गोखले के 'अनिवार्य शिक्षा' बिल के प्रश्न पर अभिव्यक्त हुआ। किंतु यह विरोध भी उतना सशक्त न था, जितना कि कर्जन के प्रस्तावित विश्वविद्यालय बिल के विरुद्ध यह सशक्त था। इस स्थिति के कई कारण थे, जिनका विश्लेषण यहाँ आवश्यक नहीं। जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, कर्जन के उत्तराधिकारियों ने उदारवादी राजनीतिक दृष्टिकोण को व्यवहृत करना ही अच्छा समझा। स्वभावतः इस परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रभाव भारतीय हृदय पर शीतल पड़ा और उनके विरोध की उग्रता अपेक्षाकृत कम हो गयी। फिर भी सरकारी नीति के विरुद्ध वे बराबर आवाज उठाते रहे और सरकार को

† "You can not go on Governing in the same spirit; you have got to deal with the Congress party and Congress principles, whatever you may think of them, Morleyrs letter to Lord Minto, dated the 5th June 1906—quoted in India Divided, by Dr. Rajendra Prasad.—P. 111—112.

अपने शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों में भारतीयों का सहयोग न प्राप्त हो सका। इसी पृष्ठभूमि में हम सन् १९०५-२१ की अवधि का भारतीय शिक्षा का इतिहास वर्णित करते हैं।

विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा

सन् १९०४ के *विश्वविद्यालय कानून* ने विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा के सुधार की दिशा में कई ठोस कार्य किये। किंतु ये पर्याप्त न थे। यह शीघ्र ही महसूस किये जाने लगा कि सरकार को विश्वविद्यालयों की समुन्नति के लिए अधिक क्रियाशील होना चाहिए था। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के सुधार की प्रेरणा इंग्लैंड से भी प्राप्त हुई। सन् १९०० के लगभग विश्वविद्यालयों के पुनर्गठन की ओर इंग्लैंड के लोग सचेष्ट होने लगे थे। विशेषज्ञों की सम्मति में विश्वविद्यालयों का संघीय स्वरूप, उच्च शिक्षा के हित के विचार से, उपयुक्त न था। अतः इनके पुनर्गठन की सिफारिश की गयी और सन् १९१३ ई० में ब्रिटेन के अधिकांश विश्वविद्यालय ऐकीय, शैक्षणिक तथा आवासिक संस्थाओं में परिवर्तित हो गये। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में इंग्लैंड की यह नवचेतना भारतीय शिक्षा को प्रभावित किये बिना न रही। फलतः सन् १९१३ ई० में सरकार ने शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया, जिसने भारतीय विश्वविद्यालयों के इतिहास में युगान्तर उपस्थित किया। प्रस्ताव की मुख्य बातें ये थीं।

क—हर प्रान्त में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।

ख—विश्वविद्यालयों में शिक्षण की व्यवस्था की जाय।

ग—छोटे शहरों के कालेजों को इस तरह विकसित किया जाय कि वे कालान्तर में शैक्षणिक विश्वविद्यालयों में परिवर्तित हो जायं।

घ—जिन प्रान्तों में स्कूलों की स्वीकृति का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों को हैं, उन प्रान्तों में यह उत्तदायित्व सरकार के द्वारा वहन किया जाय, ताकि विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा की समुन्नति तथा कालेजों के *नियंत्रण* की ओर अधिक ध्यान दे सकें।

ङ—विश्वविद्यालय यथासम्भव आवासिक बनाये यायं।

च—विश्वविद्यालयों में सुसमृद्ध पुस्तकालय आयोजित किये जायं।

प्रस्ताव में यह आशा प्रकट की गयी कि उपर्युक्त प्रसाधनों से भारत में उच्च शिक्षा को सम्बल प्राप्त होगा तथा विश्वविद्यालयों के स्नातक जीवन के संघर्षों से अधिक सफलता के साथ लोहा ले सकेंगे। †

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग १९१७

किंतु सन् १९१३ के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के पहले यह आवश्यक समझा गया कि विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त की जाय। इस दिशा में कार्य शुरू होने वाला था कि प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और सरकार का ध्यान युद्ध-जनित समस्याओं की ओर आकृष्ट हो गया। फिर भी, विश्वविद्यालयों की समस्या दृष्टि से ओझल न हुई और अवकाश मिलते ही सरकार ने इसके सम्बन्ध में विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करने की ओर, कदम उठाया। फलतः सन् १९१७ ई० में ही कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया गया, जिसके अध्यक्ष थे डाक्टर (बाद में सर) माइकेल सैडलर (M. E. Sadler)। अध्यक्ष के नाम पर यह आयोग बहुधा "सैडलर आयोग" कहा जाता है। आयोग का कार्य, जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही सीधे सम्बन्धित था। किंतु आयोग को यह अनुमति थी कि वह अन्य विश्वविद्यालयों का निरीक्षण कर सकता था, ताकि विश्वविद्यालय की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। आयोग ने पूर्ण जाँच-पड़ताल के बाद सन् १९१९ ई० के मार्च में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यद्यपि आयोग की सिफारिशें कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही मुख्यतः सम्बन्धित थीं, इन सिफारिशों का लगाव भारत के सभी विश्वविद्यालयों से था। सभी भारतीय विश्वविद्यालयों की समस्याएं लगभग एक सी थीं और इसलिए आयोग की सिफारिशें इन विश्वविद्यालयों में, समान रूप से, व्यवहृत की जा सकती थीं। अतः "सैडलर आयोग" की सिफारिशों का अन्तर्प्रान्तीय महत्त्व है। वस्तुतः इसने भारतीय विश्वविद्यलयों के रूप, गठन तथा कार्य में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन उपस्थित किया।

† The Government of India hope that by these developments a great impetus will be given to higher studies throughout India and that Indian students of the future will be better equipped for the battle of life than the students of the present generation.

Government Resolution an Education Policy. 1913.

आयोग ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि "जबतक विश्वविद्यालयों की आधारशिला माध्यमिक शिक्षा में ही आमूल परिवर्त्तन और सुधार नहीं हो जाते तबतक सामान्यत: सभी विश्वविद्यालयों और विशेषत: कलकत्ता विश्वविद्यालय की व्यवस्था का सन्तोष-जनक संगठन नहीं हो सकता।" † आयोग की दृष्टि में माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित दोष थे।

१—शिक्षा का स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का था।

२—शिक्षण के साधनों की अत्यन्त कमी थी।

३—सार्वजनिक परीक्षाओं के प्रभुत्व के कारण माध्यमिक शिक्षा संकुचित तथा एकांगी हो गयी थी।

४—माध्यमिक विद्यालयों के निर्देश तथा निरीक्षण पर्याप्त न थे।

५—विषयों के महत्त्वपूर्ण अंश, जो कि माध्यमिक विद्यालयों के उपयुक्त थे, कालेज की 'इन्टरमिडियट' कक्षाओं में पढ़ाये जा रहे थे।

इन त्रुटियों के कारण माध्यमिक शिक्षा न अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही थी, न उच्च शिक्षा के लिए छात्रों को, उचित रीति से तैयार कर रही थी।

इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए निम्नलिखित सिफारिशें पेश कीं।

१—माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय की शिक्षाओं की विभाजन-रखा मैट्रिकुलेशन परीक्षा नहीं, अपितु इन्टरमिडिएट परीक्षा हो।

२—सरकार नये प्रकार के विद्यालय स्थापित करे, जो इन्टरमिडिएट कालेज कहे जायं। ये कालेज या तो स्वतंत्र रूप से चलाये जायं या चुने हुए हाई स्कूलों से संलग्न कर दिए जायं।

३—विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए इन्टरमिडिएट परीक्षा पास रहना अनिवार्य हो।

४—कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध कालेजों की संख्या अत्यधिक है, इसलिए :—

क—ढाके में एक शैक्षणिक विश्वविद्यालय शीघ्र कायम किया जाय।

---

† भारत में सार्वजनिक शिक्षा का इतिहास—पण्डित सीताराम चतुर्वेदी—पृष्ठ—२४८–८५

ख—कलकत्ता नगर के सभी शैक्षणिक साधन एकत्र किए जायं, ताकि, इनके सहयोग तथा समन्वय से, नगर में शैक्षणिक विश्वविद्यालय का प्रतिष्ठापन हो सके।

ग—देहाती क्षेत्रों के कालेजों का विकास इस ढंग से किया जाय कि शैक्षणिक साधन कुछ चुने हुए स्थानों में केन्द्रित किए जा सकें, जिनके द्वारा देहाती क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों का निर्माण किया जा सके।

विश्वविद्यालय के कार्य के सम्बन्ध में आयोग ने ये सिफारिशें कीं :—

क—विश्वविद्यालयों के कार्य को नियंत्रित करने वाले नियम लचीले किए जायं।

ख—अधिक योग्य छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विश्वविद्यालयों में 'आनर्स' कक्षा की व्यवस्था की जाय।

ग—स्नातक का पाठ्य-क्रम (Degree course) तीन वर्ष का हो।

घ—विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा रीडर, विशिष्ट समिति के द्वारा नियुक्त किए जायं। इस समिति में विश्वविद्यालय के बाहर के विशेषज्ञ भी रहें।

च—चूँकि शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय मुसलमान पिछड़े हुए हैं, इसलिए मुसलिम छात्रों को हर तरह का वैध प्रोत्साहन दिया जाय तथा उनके हितों की रक्षा की जाय।

छ—छात्रों के स्वास्थ्य तथा शारीरिक भलाई के विचार से, हर विश्वविद्यालय में, एक शारीरिक शिक्षा संचालक (Director of Physical Training) नियुक्त किया जाय। छात्रों के हितों की रक्षा के लिए हर विश्वविद्यालय में एक बोर्ड स्थायी रूप से स्थापित किया जाय। इस बोर्ड में चिकित्सक-प्रतिनिधि भी रहें। छात्रावासों के निरीक्षण के लिए, खास तौर से, प्रबन्ध किया जाय।

भारतीय शिक्षा के अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी आयोग ने अपनी सिफारिशें उपस्थित कीं, जिनमें प्रमुख ये थीं :—

१—स्त्री शिक्षा

क—कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्त्री शिक्षा के लिए एक विशिष्ट बोर्ड कायम किया जाय। बोर्ड को यह अधिकार दिया जाय कि वह स्त्रियों के उपयुक्त खास तरह का पाठ्य-क्रम तैयार

करे, और स्त्री शिक्षा के कालेजों में शिक्षण के लिए सहयोग प्रणाली का आयोजन करे। स्त्रियों के प्रशिक्षण तथा उनके लिए चिकित्सा-शिक्षा के आयोजन में भी बोर्ड सहयोग प्रणाली की व्यवस्था करे।

ख—उन छात्राओं के लिए "परदा स्कूलों" की व्यवस्था की जाय, जिनके अभिभावक अपनी कन्याओं को १५-१६ वर्ष की अवस्था तक शिक्षा दिलाने के लिए प्रस्तुत हों।

२—शिक्षकों का प्रशिक्षण :—

क—प्रशिक्षित शिक्षकों का उत्पादन बढ़ाया जाय।

ख—ढाका तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग (Department of Education) खोले जायं।

ग—इन्टरमिडिएट तथा बी० ए० परीक्षाओं के लिए शिक्षा अध्ययन का एक विषय रहे।

३—टेकनिकल शिक्षा :—

क—व्यावहारिक विज्ञान तथा टेकनिकल शिक्षा विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित की जाय।

ख—इन विषयों की शिक्षा विधिवत् प्रदान की जाय तथा इनमें विश्वविद्यालय की ओर से डिप्लोमा तथा डिग्रियाँ प्रदत्त की जायं।

४—व्यावसायिक शिक्षा :—

व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं के अभाव के कारण अधिकांश भारतीय छात्र साहित्यिक अध्ययन की ओर ही प्रवृत्त रहते हैं। व्यावसायिक शिक्षा की उपेक्षा इस लिए भी है कि विश्वविद्यालयों के अधिकांश विद्यार्थी भारतीय समाज के उच्च वर्गों में ही समुत्पन्न हुए रहते हैं, जिन्हें व्यावसायिक तथा औद्योगकि कार्यों के प्रति स्वाभाविक उदासीनता रहती है। किंतु इस स्थिति का निराकरण अत्यावश्क है, अन्यथा भारतीय शिक्षा एकांगी रह जायगी। † इसके लिए निम्नलिखित कार्य अपेक्षित हैं।

१—विश्वविद्यालयों के द्वारा व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा का आयोजन किया जाय।

† But it must be amended, and any scheme of educational reform which does not place in the fore-front the need for such an amendment must fall short of the country's need.

Report—vol. V—p. 345.

२—विश्वविद्यालयों की चेष्टाएं देश की व्यावसायिक तथा औद्योगिक मार्गों की पूर्त्ति नहीं कर सकतीं। अतः इन्टरमिडिएट कालेजों में ही बहुमुखी पाठ्य-क्रम का आयोजन किया जाय, जिसकी आधार-भित्ति व्यावसायिक शिक्षा हो। † इस प्रकार की शिक्षा सामान्य ढंग की होनी चाहिए, जो विशेषीकृत औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा की पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत करे।

विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा की प्रगति (सन् १९०५–१९२१)

नये विश्वविद्यालय—हमने पहले देखा है कि सन् १८६७ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। उसके बाद सन् १९१६ ई० तक भारतीय विश्वविद्यालयों की संख्या ज्यों-की-त्यों रही। किंतु सन् १८६७–१९१६ की अवधि में कालेजों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई। सन् १९१७ ई० में भारत में १८५ कालेज थे, जो कि कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, पंजाब तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध थे। इन विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या ६१,२०० थी। स्पष्टतः ५ विश्वविद्यालयों के लिए इतने कालेजों को संभालना अत्यन्त कठिन कार्य था। ऐसी स्थिति में सरकार तथा भारतीय जनता दोनों ही नये विश्वविद्यालयों के निर्माण की ओर स्वभावतः आकृष्ट हुए। सन् १९१३ के सरकारी प्रस्ताव में नये विश्वविद्यालयों की आवश्यकता पूर्णतः महसूस की गयी। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने भी इस पर बल दिया। अस्तु, सन् १९१६ ई० के बाद भारत में नये विश्वविद्यालयों का निर्माण-कार्य द्रुत गति से अग्रसर होने लगा और ५ वर्ष की अवधि में ही भारतीय विश्व-विद्यालयों की संख्या ५ से बढ़ कर १२ हो गयी। सन् १९१६–१९२१ की अवधि में जो नये विश्वविद्यालय, भारत में, स्थापित हुए उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

मैसूर विश्वविद्यालय—सन् १९१६ ई० में मैसूर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसका क्षेत्रीय अधिकार मैसूर राज्य तक ही सीमित रक्खा गया।

†And from this point of view the system of intermediate colleges with their varied courses each with some vocationial bias though still general in character, must be of very great value.
Report vol. V. P.—345.

पटना विश्वविद्यालय—सन् १६१७ ई० में तत्कालीन बिहार और उड़ीसा प्रान्त के लिए पटना विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यह विश्वविद्यालय पुराने विश्वविद्यालयों से कई रूपों में भिन्न था। इस विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में सरकार के अधिकार अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा कम कर दिये गये। किसी कालेज को संबद्ध करने या न करने का स्वतंत्र अधिकार सरकार को न रहा। सरकार उन्हीं मामलों में अपना अन्तिम निर्णय दे सकती थी, जो कि सिन्डिकेट तथा सिनेट की सहमति से इसके समक्ष पेश की जाती। मनोनीत सदस्यों की संख्या पटना विश्वविद्यालय के लिए अधिकतम २५ हो सकती थी और निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम से कम ५०। इस तरह विश्वविद्यालय में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत दृढ़ हो गया। सिन्डिकेट के सदस्यों में ४ पदेन (ex-officio) रहते थे और १४ सिनेट के द्वारा निर्वाचित होने चाहिए थे। निर्वाचित सदस्यों में ७ सदस्यों को विश्वविद्यालय अथवा कालेजों के शिक्षकों के प्रतिनिधि होने चाहिए थे। सिन्डिकेट में मनोनीत सदस्यों की व्यवस्था न की गयी। इस तरह सिन्डिकेट का रूप प्रधानतः व्यावसायिक हो गया। †

बनारस विश्वविद्यालय—१ ली अक्तूबर सन् १६१५ ई० को हिन्दू विश्वविद्यालय कानून केन्द्रीय धारा सभा में पास हुआ और ४ फरवरी सन् १६१६ को इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास भारत की प्रचीन नगरी काशी में हुआ। आधार-शिला के नीचे ताम्रपत्र पर संस्कृत में विश्वविद्यालय के निमार्ण का संक्षिप्त इतिहास अंकित है। ‡ सन्

† Quinquennial Review (1912--17). vol I—P. 69.

‡ "सनातन-धर्म को काल के वेग से पीड़ित तथा सम्पूर्ण भूमण्डल के प्राणियों को दुखस्थ और व्याकुल देखकर, कलियुग के पाँच सहस्त्र वर्ष बीतने पर, भारत-भूमि के काशी-क्षेत्र में, जाह्नवी के पवित्र तट पर, इस सनातन-धर्म के बीज का पुनः नवीन रूप से आरोपण करने के लिए, जगदीश्वर की शुभ पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य प्रजा को सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानों को एकमत करके विश्वभावन, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा ने विश्वनाथ की नगरी में विश्वविद्यालय के संस्थापन की व्यवस्था की। श्री विक्रम सम्वत् १६७२ की माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के दिन शुभ मुहूर्त्त में श्री काशी नगरी में सम्राट् के प्रतिनिधि (वायसराय) द्वारा जिस विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया गया वह सूर्य-चन्द्र की स्थिति तक सुशोभित रहे।"

पण्डित सीताराम चतुर्वेदी—भारत में सार्वजनिक शिक्षा का इतिहास—पृष्ठ १८१—८२

"१९१७ ई० में विश्वविद्यालय क्रियाशील हो गया और सन् १८१८ ई० में इसकी पहली परीक्षा हुई। सन् १९२१ ई० में बनारस विश्वविद्यालय अपने मूल स्थान कमच्छा से उठकर नगवा के नये क्षेत्र में आया।" अपनी स्थापना के बाद से विश्वविद्यालय उत्तरोत्तर संपन्न तथा समृद्धिशील होता जा रहा है।

बनारस विश्वविद्यालय के स्रष्टा महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय थे, जिनकी कल्पना, साधना और तपस्या ने विश्वविद्यालय को अवतीर्ण किया। वस्तुतः बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का उद्भव "भारतीय शिक्षा के इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा असाधारण घटना है, जिसमें एक व्यक्ति ने अपनी तपस्या और साधना से संसार के श्रेष्ठतम विद्या-केन्द्रों में से यह महान् केन्द्र स्थापित किया।" †

अलीगढ़ विश्वविद्यालय—अलीगढ़ विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९२० ई० में हुई। वस्तुतः यह 'मुहम्मदन ऐंग्लो-ओरिऐंटल कालेज', जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, से विकसित हुआ। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की भाँति, अलीगढ़ विश्वविद्यालय भी, यथार्थ में, एक महान् व्यक्ति की कृति है। सर सैयद अहमद, जिनका परिचय हम पहले दे चुके हैं, की शिक्षा-सम्बन्धी आकांक्षाओं तथा चेष्टाओं की अभिव्यक्ति अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हुई।

ढाका विश्वविद्यालय—कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के परामर्शों के अनुसार सन् १९२० ई० में ढाका में सावास (Residetial) विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। यह विश्वविद्यालय शैक्षणिक के रूप में संगठित हुआ।

लखनऊ विश्वविद्यालय—सन् १९२० ई० में इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसका संगठन तथा इसके कार्य कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के द्वारा पराभर्शित आदर्शों पर ही आश्रित किए गए।

ओसमानिया विश्वविद्यालय—हैदराबाद राज्य में यह विश्वविद्यालय सन् १९१८ ई० में वहाँ के शासक निजाम के द्वारा कायम किया गया। भारतीय विश्वविद्यालयों में इस विश्वविद्यालय का विशिष्ट स्थान है। विश्वविद्यालय के शिक्षण का माध्यम उर्दू रक्खा गया था। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय भाषा का व्यवहार, सर्वप्रथम यहीं हुआ।

---

† पण्डित सीताराम चतुर्वेदी—भारत में सार्वजनिक शिक्षा का इतिहास—पृष्ठ १८३

इन नये विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त, सन् १६२१ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय का पुनस्संगठन किया गया। ढाका विश्वविद्यालय की तरह यह विश्वविद्यालय सावास तथा शैक्षणिक बनाया गया। किंतु, इसके जिम्मे कालेजों को संबद्ध करने के कार्य भी बने रहे।

विश्वविद्यालयों को सरकारी देन

हम कह चुके हैं कि लार्ड कर्जन ने, सरकार की ओर से, विश्वविद्यालयों को नियमित अनुदान देने की प्रथा चलायी। कर्जन के बाद भी सरकारी अनुदान का सिलसिला न केवल कायम रहा, बल्कि अनुदान की रकम में काफी वृद्धि हुई। सन् १६२१–२२ ई० में सरकार की ओर से कुल मिलाकर २०,५४,००० रुपये अनुदान के रूप में भारतीय विश्वविद्यालयों को मिलते थे, जब कि विश्वविद्यालयों का कुल खर्च ७४,१३,००० रुपये था। हम कह चुके हैं कि सन् १६०१ में अनुदान की रकम केवल २६,३८० थी, जो कि सिर्फ पंजाब विश्वविद्यालय को प्राप्त थी।

विश्वविद्यालयों में शिक्षण की व्यवस्था—सन् १६२१ ई० में भारतीय विश्वविद्यालयों की संख्या, जैसा कि हम देख चुके हैं, १२ थी। इन में ५ विश्वविद्यालय शैक्षणिक थे, एक के द्वारा शिक्षण तथा संबद्धीकरण दोनों ही कार्य होते थे। शेष ६ विश्वविद्यालयों का कार्य कालेजों को संबद्ध करना मात्र था। किंतु इन विश्वविद्यालयों के द्वारा भी शिक्षण का कार्य, निम्नलिखित रूपों में हुआ।

क—देश तथा विदेश के सुप्रसिद्ध विद्वानों के भाषण का आयोजन।

ख—खास-खास विषयों के लिए विश्वविद्यालय के द्वारा शिक्षण का प्रबन्ध।

ग—विश्वविद्यालय के प्रबन्ध में आनर्स अथवा स्नातकोत्तर (post graduate) शिक्षण की व्यवस्था।

यद्यपि इन रूपों में विश्वविद्यालयों के द्वारा उच्च ज्ञान के प्रसार का ठोस कार्य न हो सका, फिर भी उपर्युक्त रीतियों से विश्वविद्यालयों ने उच्च शिक्षा के प्रसार की नयी प्रेरणा अवश्य दी। इस प्रेरणा से संबद्ध कालेजों के शिक्षण का स्तर ऊपर उठा।

कालेजों का विस्तार—हमने देखा है कि विश्वविद्यालय कानून १६०४ ने कालेजों के संबद्धीकरण की शर्त्तें काफी कड़ी कर दीं, जिसके फल-

स्वरूप कुछ दिनों के लिए कालेजों के विस्तार की गति अवरुद्ध हो गयी। कुछ पुराने, किंतु अस्वस्थ, कालेज बन्द भी हो गये। पर यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। सन् १९११ ई० के पश्चात् कालेजों की संख्या बढ़नी शुरू हुई। सन् १९२१ ई० में यह संख्या २०७ हो गयी। किन्तु कालेजों की संख्या की वृद्धि की अपेक्षा, कालेजों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई। सन् १९०१–२ ई० में अंग्रेजी भारत के १३८ कालेजों में कुल मिला कर १७,००० छात्र दाखिल थे। सन् १९२१–२२ ई० में कुल कालेजों में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या ५४,४७३ थी। इस तरह छात्र-संख्या के विचार से, सन् १९०५–१९२१ की अवधि में उच्च शिक्षा की प्रगति तिगुणी से भी अधिक हुई। किंतु इस प्रगति की तह में उच्च शिक्षा की वास्तविक मांग न थी। अधिकांश विद्यार्थी कालेजों में इसलिए दाखिल हो रहे थे कि उनके समक्ष विश्वविद्यालय की शिक्षा के अतिरिक्त अन्य मार्ग न था। व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था न माध्यमिक स्कूलों में थी, न स्वतंत्र विद्यालयों में। अतः प्रवेशक-परीक्षाओं में समुत्तीर्ण होने वाले छात्रों के लिए कालेजों में भरती होने के अतिरिक्त अन्य मार्ग न था। इस तरह, कालेजों की छात्र-संख्या को अनियंत्रित वृद्धि उच्च शिक्षा की व्याधि द्योतित करती थी, न कि इसका सुस्वास्थ्य। †

शिक्षण की व्यवस्था—जहाँ तक शिक्षण का सम्बन्ध था, कालेजों ने, उपर्युक्त अवधि में, आशातीत उन्नति की। जैसा कि हम देख चुके हैं, विश्वविद्यालय कानून १९०४ ने कालेजों के शैक्षणिक स्तर ऊँचा करने की प्रेरणा दी। साथ ही, सन् १९०५ के पश्चात् कालेजों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ। कालेजों की आय, सभी स्रोतों से, पहले की अपेक्षा काफी अधिक हो गयी। हमने देखा है कि सरकार ने कालेजों के लिए ३,६५,००० रुपये आवर्त्तक अनुदान के रूप में विश्वविद्यालयों को स्वीकृत किये थे। सन् १९०७–१२ की अवधि में केन्द्रीय सरकार ने कालेजों की समुन्नति के लिए २४५००० रुपये का आवर्त्तक अनुदान पुनः स्वीकृत किया। सन् १९१२–१७ की अवधि

† This aimless increase in the number of students in colleges of general education was, therefore, more a sign of disease than of robust growth

Nurullah & Naik—P. 242.

में २८४००० रुपये का आवर्त्तक अनुदान स्वीकृत हुआ। इनके अतिरिक्त सरकार की ओर से अनावर्त्तक अनुदान, विशेष कर छात्रावासों के निर्माण के लिए, भी दिया गया। सन् १९२१–२२ ई० में सरकार की ओर से कालेज की शिक्षा के प्रश्रय के लिए, कुल मिलाकर, ४९२६००० रुपये खर्च हो रहे थे, जिनमें १५२८००० रुपये गैरसरकारी कालेजों को ग्रान्ट-इन-एड के रूप में मिला करते थे।

सन् १९०५–१९२१ की अवधि में कालेजों के शिक्षण का स्तर तो, जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, उठा; किंतु इनकी शिक्षा शिखर-बोझिल और नितान्त: साहित्यिक हो गयी। यह इस योग्य न रह गयी कि देश का व्यावसायिक तथा औद्योगिक संस्कार कर सकती। उच्च शिक्षा के अधिकांश विद्यार्थी साहित्यिक विषयों के अध्ययन में ही प्रवृत्त होने लगे। बंगाल के २६००० कालेजीय छात्रों में २२,००० केवल साहित्यिक विषयों का अध्ययन कर रहे थे, जो कि उन्हें प्रशासक, किरानी, शिक्षक अथवा वकील बना सकता था। † समस्त भारत में ऐसे छात्रों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। इस तरह, सन् १९२१ ई० में भारत की उच्च शिक्षा एकांगी तथा दोषपूर्ण थी और देश के अभ्युत्थान में असमर्थ थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उच्च शिक्षा के एकांगिक विकास का प्रधान उत्तरदायित्व ऊड के संदेश-पत्र को था, जिसने उच्च शिक्षा के प्रसार की सरकारी नीति का लक्ष्य

क—पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का विस्तार

ख—सरकार के लिए सुयोग्य कर्मचारियों का गढ़न

ग—भारतीयों को अंग्रेजी कारखानों के उत्पादनों का ग्राहक तथा कच्चे मालों का प्रेषक बनाना

निर्धारित किया था। ‡

माध्यमिक शिक्षा (१९०५–१९२१)

हमने देखा है कि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी कर्जन ने गुणात्मक उन्नति पर बल दिया था। कर्जन की इस नीति के अनुसार सरकारी नीति, १९०५–२१ की अवधि में, माध्यमिक स्कूलों के विस्तार के विरुद्ध रही। फिर भी, इन स्कूलों की वृद्धि रोकी न जा सकी और

† Calcutta University Commission.—Report. vol. I—p. 21.

‡ Nurullah & Naik—p. 517.

सन् १९२१ के अन्त तक माध्यमिक स्कूलों की संख्या पहले से काफी अधिक हो गयी। सन् १९०५ ई० में माध्यमिक स्कूलों तथा उनके छात्रों की संख्याएं क्रमशः ५१२४ तथा ५,९०,१२९ थीं। सन् १९२१-२२ में ये संख्याएँ क्रमशः ७,५३० तथा ११,०६,८०३ हो गयीं।

माध्यमिक स्कूलों का यह विस्तार अधिकतर गैरसरकारी भारतीय चेष्टाओं के द्वारा हुआ। इस अध्याय के सामान्य परिचय में हमने देखा है कि भारतीय नेताओं की दृष्टि में देश का पुनर्जागरण शिक्षा के प्रसार से ही सम्भव था। अतः सरकार के विरोध के समक्ष भी, भारतीय स्कूलों के निर्माण में कटिबद्ध हो गये।

सन् १९०५-२१ की अवधि में माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी चेष्टाएं आदर्श स्कूलों के निर्माण की ओर अधिकतर केन्द्रित रहीं। इसके बारे में हम, आवश्यक विवरण, पहले इस अध्याय के सामान्य परिचय में उपस्थित कर चुके हैं।

माध्यमिक स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा—हमने देखा है कि सन् १८८२ के भारतीय शिक्षा आयोग ने, सर्वप्रथम, माध्यमिक शिक्षा को स्वतः पूर्ण तथा व्यावहारिक बनाने की सिफारिश की थी। इस सिफारिश के अनुसार कई प्रान्तों के माध्यमिक स्कूलों में प्रवेशक-परीक्षा (matriculation examination) के साथ-साथ स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र परीक्षा (school leaving certificate) की व्यवस्था भी की गयी। कर्जन ने भी माध्यमिक स्कूलों में साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त व्यावसायिक विषयों की शिक्षा के आयोजन का आदेश दिया। अतः १९०५-२१ की अवधि में व्यावसायिक शिक्षा के प्रबन्ध की ओर, माध्यमिक स्कूलों में, कुछ कार्य हुआ और बहुत से छात्र प्रवेशक-परीक्षा के बदले स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र की परीक्षा में शामिल होने लगे। सन् १९१०-११ में सभी अंग्रेजी प्रान्तों में, १०,१६१ छात्रों ने स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र परीक्षा दी थी, प्रवेशक-परीक्षा में सम्मिलित होने वाले छात्रों की संख्या, १६९६२ थी।† स्पष्टतः स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र परीक्षा काफी लोक-प्रिय हो गयी थी। किंतु, इससे यह न समझा जाना चाहिए कि माध्यमिक वर्गों के छात्र, यथार्थतः, व्यावसायिक शिक्षा की ओर, उसी अनुपात में प्रवृत्त थे।

† Government Resolution on Educational Policy. 1913. Para—24.

वस्तुत:, स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र परीक्षा में सम्मिलित होने वाले अधिकांश छात्र ऐसे थे, जो इस परीक्षा के सरल नियमों तथा इसकी कठोरता से बचना चाहते थे। प्रचलित नियमों के अनुसार स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र की परीक्षा में बैठने वाले छात्रों को फेल होने का भय न था। साथ ही इस प्रमाण-पत्र के बल पर छात्र विश्वविद्यालय में भी प्रवेश पा सकते थे तथा सरकारी नौकरियों के लिए भी उम्मीद्-वार हो सकते थे। अत:, यह परीक्षा प्रवेशक-परीक्षा के सभी लाभों से विभूषित थी। दूसरी ओर इसके पाठ्य-क्रम, प्रवेशक-परीक्षा के पाठ्य-क्रम की अपेक्षा सरल थे। ऐसी स्थिति में स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र प्रवेशक-परीक्षा प्रमाण-पत्र का प्रतिनिधित्व करने लगा, न कि व्यावसायिक शिक्षा का आयोजन। विश्वविद्यालयों का द्वार माध्यमिक स्कूल के छात्रों के लिए और भी चौड़ा हो गया। अत: माध्यमिक स्कूलों के द्वारा देश में व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार न हो सका, जिसकी सिफारिश भारतीय शिक्षा आयोग तथा कर्जन ने की थी। इस तरह सन् १९२१ ई० में भी ऊड के संदेश-पत्र की यह आकांक्षा, कि भारतीयों को ऐसी शिक्षा दी जाय जो उनके हर स्थितियों के अनुकूल हो, फलीभूत न हो सकी।* नयी व्यवस्था से केवल यह लाभ हुआ कि माध्यमिक स्कूलों का पाठ्य-क्रम कुछ समृद्ध हुआ तथा परीक्षा की पद्धति में कुछ सुधार हुआ।

अंग्रेजी का अत्यधिक महत्व—हमने देखा है कि सन् १९०२ ई० तक माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा का प्रधान ध्येय अंग्रेजी भाषा पर प्रभुत्व कराना हो गया। अंग्रेजी का यह महत्त्व, उसके बाद भी, माध्यमिक स्कूलों में कायम रहा और शिक्षण की सारी चेष्टाएं इस ओर ही केन्द्रित की जाने लगीं कि अंग्रेजी का अध्ययन किस भाँति प्रभावोत्पादक हो। इसके लिए प्रशिक्षित तथा सुयोग्य शिक्षक अंग्रेजी पढ़ाने के लिए नियुक्त होने लगे, नयी-नयी शिक्षण रीतियाँ व्यवहृत की जाने लगीं, पाठ्य-पुस्तकों में सुधार किया गया तथा अन्य उपाय किये गये। किंतु फिर भी माध्यमिक स्कूल अपने लक्ष्य की प्राप्ति में असफल रहे,

* The new scheme, therefore, was hardly a measure of advance in carrying out the Direction of the Despatch of 1854 which had desired the imparting of such instruction as would make its possessers "more useful members of society in every walk of life."

Nurullah & Naik—P. 522.

अधिकांश छात्रों को अंग्रेजी पर प्रभुत्व न हो सका। वस्तुतः, माध्यमिक स्कूल एक ऐसे कार्य की ओर संलग्न थे, जो कि असम्भव था। एक विदेशी भाषा पर, अपेक्षाकृत कम अवस्था में, प्रभुत्व पा लेना औसत विद्यार्थी के लिए स्वभावतः दुष्कर था। अतः अंग्रेजी की ओर अत्यधिक बल देने से लाभ तो कुछ न निकला। हाँ, इससे कई बड़ी हानियाँ अवश्य हुईं। छात्रों की अधिकांश शक्तियों का अपव्यय हुआ और कई उपयोगी विषयों की शिक्षा अधूरी रह गयी। साथ ही छात्र उपलब्धि की भावना के अर्जन से सर्वथा बंचित रह गये। *

शिक्षा का माध्यम—हम कह चुके हैं कि कर्जन ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर अपना निश्चित आदेश दिया था। इस आदेश के अनुसार माध्यमिक स्कूलों की मिडूल कक्षाओं तक आधुनिक भारतीय भाषाएं सामान्यतः शिक्षा के माध्यम बनीं। किंतु, इनके आगे, माध्यम के रूप में अंग्रेजी का ही व्यवहार होता रहा।

शिक्षकों के प्रशिक्षण—लार्ड कर्जन के आदेशानुसार सरकार प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की ओर अधिक सचेष्ट होने लगी थी। फलतः सन् १९१२ ई० तक देश में १५ प्रशिक्षण संस्थाएं कायम हो गयी थीं। सन् १९१३ के शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव-पत्र में शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता दोहरायी गयी। अतः १९१३ के बाद प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना और भी दृढ़ता से होने लगी। सन् १९२१-२२ में देश में १३ ट्रेनिंग कालेज थे, जिनमें माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों को अंग्रेजी पढ़ाने की कला बतलायी जाती थी।

सन् १९०५-२१ की माध्यमिक शिक्षा की प्रगति के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस अवधि में न केवल माध्यमिक शिक्षा का विस्तार हुआ, वल्कि इसकी गुणात्मक उन्नति भी हुई। किंतु माध्यमिक शिक्षा की मूल समस्याएं इस अवधि में भी हल न की जा सकीं। माध्यमिक कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहा। इन कक्षाओं में व्यावसायिक शिक्षा की उचित व्यवस्था भी न की जा सकी।

* It took up a good deal of their time, it hindered the proper study of liberal subjects in the curriculum; and for all the efforts that he made to master the alien language, he was left with a very inadequate sense of achievement.

Nurullah & Naik—P. 523.

प्राथमिक शिक्षा

यह कहा जा चुका है कि कर्जन ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा की उन्नति के साथ-साथ शिक्षा के विस्तार की नीति व्यवहृत की थी। फलतः १६०५–१२ की अवधि में प्राथमिक शिक्षा का काफी विस्तार हुआ। किंतु इसके बाद सरकारी नीति प्राथमिक स्कूलों की गुणात्मक उन्नति की ओर ही केन्द्रित होने लगी। फलतः प्राथमिक स्कूलों के विस्तार की गति रुक गई। यह स्थिति भारतीय नेताओं को कष्टकर सिद्ध हुई। जैसा कि हम पहले सामान्य परिचय में कह चुके हैं, भारतीय प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के पक्ष में थे। सन् १६०६ ई० में बड़ोदा नरेश ने अपने राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। इस घटना ने अंग्रेजी भारत में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए एक नयी प्रेरणा दी। भारतीयों ने, गोपालकृष्ण गोखले (जिनका परिचय हम उपस्थित कर चुके हैं) के नेतृत्व में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की मांग, सरकार के सामने, पेश करनी शुरू कर दी। सन् १६१०–१३ की अवधि में गोखले ने इस दिशा में अथक प्रयास किये। १६ मार्च १६१० ई० को उन्होंने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उद्देश्य से अपना प्रथम प्रस्ताव केन्द्रीय विधायिका में उपस्थित किया। सरकार ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह इस प्रश्न पर उचित विचार करेगी। फलतः यह प्रस्ताव वापस लौटा लिया गया।

१६ मार्च सन् १६११ ई० को गोखले ने केन्द्रीय विधायिका में एक विधेयक (bill) उपस्थित किया, जिसका आशय था "देश में प्राथमिक शिक्षा को क्रमशः अनिवार्य बनाना"।† विधेयक के सम्बन्ध में दो दिनों तक गरमागरम बहस हुई। विधायिका में सरकारी पक्ष का बहुमत था। कुछ गैरसरकारी सदस्य भी, कई कारणों से, विधेयक के विरुद्ध थे। अतः गोखले का विधेयक पास न हो सका। किंतु इससे गोखले को निराशा न हुई। वस्तुतः उन्होंने यह समझ लिया था कि उनकी हार निश्चित थी। किंतु वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। कर्मनिष्ठ व्यक्तियों के लिए असफलता अकर्मण्यता से कहीं श्रेयस्कर है।‡

† The object of this bill is to provide for the gradual introduction of the principle of compulsion into the elementary education system of the country.

‡ Where the call of duty is clear, it is better even to labour and fall than not to labour at all.

—Ghokhale's speeches. p. 660.

किंतु गोखले के प्रयास सर्वथा निष्फल न हुए। सरकार को प्राथमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देना पड़ा। सन् १९१२–१७ के बीच प्राथमिक शिक्षा का जो विस्तार हुआ, वह गोखले के प्रयत्नों का ही प्रतिफल था। सन् १९११–१२ में भारत में सम्राट का शुभागमन हुआ। उनके राज्याभिषेक के अवसर पर, सरकार ने ५० लाख रुपये का आवर्त्तक वार्षिक अनुदान, जन-शिक्षा के प्रसार के लिए, स्वीकृत किया। जनवरी १९१२ ई० में सम्राट् ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित किये गये मानपत्र के उत्तर में घोषित किया—

यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि समस्त भारत में स्कूलों तथा कालेजों का जाल बिछ जाय, जिनके द्वारा राजभक्त, बहादुर और उपयोगी नागरिक समुत्पन्न हों, जो उद्योग, कृषि तथा अन्य व्यवसायों में कुशलता-पूर्वक लग सकें। और मेरी यह भी इच्छा है कि ज्ञान के प्रसार से हमारी भारतीय प्रजा के विचार समुन्नत हों, उनके आराम के साधन बढ़ें तथा उनका स्वास्थ्य अच्छा हो, जिससे उनका गृह चमत्कृत हो उठे और उनके श्रम लाभप्रद हो सकें। *

सन् १८१३ का प्रस्ताव

स्पष्टतः, भारत सरकार को अब प्राथमिक शिक्षा की ओर अधिक क्रियाशील होना पड़ा। सन् १९१३ ई० (२८ फरवरी) को सरकार ने अपनी शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें भारतीय शिक्षा के सभी प्रमुख पहलुओं के बारे में नयी दिशा का संकेत किया गया। प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव ने यह आदेश दिया कि :— ‡

(१) निम्न प्राथमिक (Lower Primary) स्कूलों का पूरा विस्तार किया जाय। इनके पाठ्य-विषयों में 'तीन आरों' के अतिरिक्त

* It is my wish that there may be spread over the land a net-work of schools and colleges, from which will go forth loyal and manly and useful citizens, able to hold their own in industries and agriculture and all the vocations in life. And it is my wish, too, that the homes of my Indian subjects may be brightned and their labour sweatened by the spread of knowledge with all that follows in its train, a higher level of thought, of comfort and of health.

His Majesty king Goerge VI—Quoted in History of Elementary Education in India—J. M. Sen—P. 196.

‡ Government Resolution on Educational Policy 1913—P. 11

चित्रांकन, ग्राम का नक्शा, प्रकृति पाठ तथा शारीरिक व्यायाम भी शामिल रहे।

(२) केन्द्रस्थ ग्रामों में उच्च प्राथमिक (Upper Primary) स्कूल स्थापित किये जायं। जहाँ आवश्यक हो, वहाँ निम्न प्राथमिक स्कूल उच्च प्राथमिक स्कूलों में परिवर्तित कर दिये जायं।

(३) सामान्यतः, प्राथमिक शिक्षा का विस्तार बोर्ड स्कूलों के द्वारा हो। जहाँ यह सम्भव न हो, वहाँ स्वीकृत स्कूल ग्रान्ट-इन-एड पद्धति पर चलाये जायं। मकतब तथा पाठशालाओं को, जो वर्नाक्यूलर की शिक्षा देते हों, सहायता दी जाय। स्वतंत्र गैरसरकारी चेष्टाओं के द्वारा स्थापित स्कूलों (Venture schools) को प्रोत्साहन न दिया जाय, जब तक कि उनके प्रबन्ध की व्यवस्था अच्छी न हो, उनका निरीक्षण न हो तथा उन्हें सरकारी स्वीकृति न मिल जाय।

(४) शहरी तथा ग्रामीण स्कूलों के पाठ्य-क्रम, जहाँ तक सम्भव हो, स्थानीय परिस्थितियों तथा वातावरण से सम्बन्धित हों।

(५) सामान्यतः, प्राथमिक स्कूलों के शिक्षक उन्हीं वर्गों के लोगों में से नियुक्त किये जायं, जिन वर्गों के छात्र हों।

(६) प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को मिड्ल वर्नाक्यूलर परीक्षा पास हुआ रहना चाहिए।

(७) उन्हें एक वर्ष का प्रशिक्षण पाया हुआ रहना चाहिए।

(८) जो शिक्षक केवल अ० प्र० पास हों, उनके लिए दो वर्ष का प्रशिक्षण अपेक्षित है।

(९) प्रशिक्षण विद्यालयों के साथ "प्रैक्टिसिंग स्कूल" संलग्न रहें।

(१०) प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए भी अल्पकालिक प्रशिक्षण बड़ी छुट्टियों में आयोजित किया जाय, ताकि शिक्षक ग्रामीण वातावरण में अपने विषय-सम्बन्धी तथा कला-सम्बन्धी ज्ञान भूल न जायं।

(११) प्रशिक्षित शिक्षकों का वेतन कम से कम १२) रु० प्रति मास हो। उनकी सेवाएं श्रेणीगत (graded) बनायी जायं। उनके लिए पेन्शन या प्रौभिडेन्ट फंड की व्यवस्था की जाय।

(१२) प्राथमिक शिक्षा को जारी रखने वाले मिड्ल वर्नाक्यूलर अथवा वर्नाक्यूलर माध्यमिक स्कूल समुन्नत तथा विस्तृत किये जायं।

(१२) प्राथमिक स्कूल स्वास्थ्य-प्रद, स्थानयुक्त, किन्तु कम खर्चीले मकानों में आवासित किये जायं।

सन् १६१३ के प्रस्ताव के उपर्युक्त आदेशों को भली-भाँति देखने से यह स्पष्ट है कि सरकार प्राथमिक स्कूलों के विस्तार की अपेक्षा इनकी गुणात्मक उन्नति की ओर ही अधिक झुकी हुई थी। उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में तो गुणात्मक उन्नति का सिद्धांत पूर्णतः प्रतिष्ठापित हो गया था। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकारी नीति गुणात्मक उन्नति के पक्ष में हो गयी, यद्यपि प्रस्ताव में यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि "भारत सरकार की यह आकांक्षा और आशा है कि निकट भविष्य में सार्वजनिक प्राथमिक स्कूलों की संख्या १००००० से बढ़कर १६१००० हो जायगी और इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या ४२५०००० से बढ़कर दो गुणी हो जायगी।" * किंतु बाद की घटनाओं ने प्रस्ताव की इन आकांक्षाओं तथा आशाओं को फलीभूत न किया।

प्रस्ताव के अनुसार सन् १६१७ के अन्त तक तत्कालीन बम्बई, संयुक्त प्रान्त पंजाब, मध्य प्रान्त, आसाम तथा पश्चिमोत्तर प्रान्तों में अधिकांश प्राथमिक स्कूल बोर्ड स्कूलों में परिवर्तित कर दिये गये। अन्य अंग्रेजी प्रान्तों में सहायता-प्राप्त स्कूल इतने अधिक थे कि इनको बोर्ड के प्रबन्ध में शीघ्र लाया न जा सका। सन् १६१७ में, औसत रूप से, ८·३ वर्गमील पर एक प्राथमिक स्कूल स्थापित था। सन् १६१२ ई० में एक स्कूल की क्षेत्रीय सीमा १०·२ मील थी। इस वर्ष प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों का प्रतिशत अनुपात ४·५ था, जबकि १६१२ में यह अनुपात केवल ४ था। इस तरह, हम देखते हैं कि १६१३ के प्रस्ताव के ४ वर्षों के बाद भी, स्कूली अवस्था के बालकों की एक-तिहाई से कम ही बालक प्राथमिक स्कूलों में भरती थे। ‡

* It is the desire and hope of the Government of India to see in the not distant future some 91,000 primary public schools added to 100000 which already exist for boys and to double the 4½ millions of the pupils who now receive instruction in them.

Government Resolution on Educational policy. 1913.—para 12.

‡ Hence it may be said that even four years after the promulgation of the Educational Policy of 1913 less than a third of the total number of boys of school—going age were receiving instruction in primary schools.

—J. M. Sen—History of Elementary Education in India--p.201.

प्रान्तों में अनिवार्य शिक्षा की चेष्टाएं

अगस्त १९१७ ई० में इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट में तत्कालीन भारत सचिव ने, सम्राट् की ओर से, यह घोषणा की कि "इंग्लैंड की सरकार, की नीति, जिससे भारत सरकार पूर्णत: सहमत है, यह है कि शासन के हर क्षेत्र में भारतवासियों का सहयोग उत्तरोत्तर बढ़ाया जाय और स्व-शासन की संस्थाओं को क्रमश: विस्तृत किया जाय, ताकि अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत, भारत में उत्तरदायी शासन विकसित हो सके"। † इस घोषणा का प्रभाव भारत सरकार की शिक्षा-नीति पर अनुकूल पड़ा। प्रान्तीय सरकारों ने यह महसूस किया कि जबतक निरक्षरता का शीघ्र निवारण न किया जायगा, तब तक भारत की जनता स्वशासित देश के नागरिक के उत्तरदायित्व को भली-भाँति वहन न कर सकेगी। *

अत: अगस्त १९१७ की घोषणा के बाद सभी अंग्रेजी प्रान्तों की विधायिका सभाओं के सरकारी तथा गैरसरकारी सदस्य, निरक्षरता को दूर करने के लिए, उचित नियमों के निर्माण की ओर प्रयत्नशील होने लगे। अस्तु, सभी प्रान्तों में ऐसे कानून बनाये गये, जिनके द्वारा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को अपने क्षेत्र में अनिवार्य शिक्षा को प्रचालित करने का अधिकार मिला। ये नियम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रूप में, प्रकट हुये।

बम्बई का पटेल कानून (१९१८)

बम्बई प्रान्त में विठल भाई पटेल ने, प्रान्त के नगरपालिका क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा को जारी करने के उद्देश्य से प्रान्तीय धारा सभा में एक विधेयक उपस्थित किया। यह विधेयक पास होकर बम्बई प्राइमरी एजुकेशन ऐक्ट १९१८" के रूप में प्रकट हुआ। सामान्यत: यह पटेल ऐक्ट के नाम से विख्यात है। कानून की मुख्य धाराएं ये थीं :—

† "The policy of His Majesty's government, with which the government of India are in complete accord, is that of the increasing association of Indians in every branch of the administration and the gradual development of self-governing institutions with a view to the progressive realisation of responsible government in India as an integral part of the British Empire."

A. Berriedale Keith—
A Constitutional History of India p. 243

* J. M. Sen—History of Elementary Education in India p. 203.

क—यह कानून बम्बई को छोड़ कर अन्य सभी बाहरी क्षेत्रों में लागू था।

ख—शहर की नगरपालिका, निर्धारित शर्तों की पूर्ति के आधार पर, अपने क्षेत्र में बालक तथा बालिकाओं—दोनों ही के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना सकती थीं।

ग—अनिवार्य शिक्षा ७ से ११ वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए लागू था।

घ—नगरपालिका के क्षेत्र में रहने वाले हर व्यक्ति को अपने बच्चों को स्वीकृत स्कूल में भेजना अनिवार्य था। इस नियम का उल्लंघन करने पर उसे, अधिक से अधिक, ५ रु० का जुर्माना हो सकता था।

च—जो व्यक्ति ७ से ११ वर्ष की अवस्था के किसी बच्चे को अपनी सेवा में नियुक्त करे, उसे ३५ रु० तक जुर्माना किया जा सकता था।

छ—अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क रहे।

ज—अनिवार्य शिक्षा के खर्च के लिए नगरपालिका को नया कर लगाने अथवा पुराने कर को बढ़ाने का अधिकार रहे।

झ—सरकार के लिए यह अनिवार्य न है कि वह अनिवार्य शिक्षा के लिए नगरपालिकाओं को अनुदान दे। यदि सरकार चाहे तो इस कार्य के लिए नगरपालिका के कुल खर्च का एक भाग, जिसे वह स्वयं निश्चित करेगी, दे सकती है।

पटेल कानून की उपर्युक्त धाराओं से यह स्पष्ट है कि यह कानून अत्यन्त विनम्र था, तथा इससे अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति असम्भव थी। सरकार ने अनिवार्य शिक्षा के लिए किसी तरह के खर्च के उत्तरदायित्व से अपने को मुक्त कर लिया था। कानून की अन्य आर्थिक व्यवस्थाएं भी संतोषप्रद न थी। फिर भी पटेल कानून १६१८ का, भारत की प्राथमिक शिक्षा के इतिहास में, महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसने प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य बनाने की सार्वजनिक मांग को वैधानिक स्वीकृति दी। और इस दृष्टि से स्वर्गीय विठल भाई पटेल, भारतीय शिक्षा के इतिहास के विद्यार्थी के लिए, चिरस्मरणीय रहेंगे,

जिन्होंने, सर्वप्रथम, अनिवार्य शिक्षा के सिद्धांतों को मानने के लिए सरकार को बाध्य किया । *

अनिवार्य शिक्षा की लहर शीघ्र ही अन्य प्रान्तों में भी दौड़ गयी । सन् १८२१ ई० तक निम्नलिखित प्रान्तों में अनिवार्य शिक्षा के लिए कानून बनाये गये । स्थानाभाव के कारण इन विभिन्न कानूनों की पूरी बातें यहाँ नहीं दी जा रही है । उनके परिचय मात्र उपस्थित किए जा रहे हैं । ‡

पंजाब—सन् १६१६ ई० में प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) पास हुआ । यह कानून सिर्फ बालकों के लिए लागू था । कानून के भौगोलिक क्षेत्र शहर तथा गाँव दोनों ही थे ।

संयुक्त प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश)—सन् १६१६ ई० में संयुक्त प्रान्त प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) पास हुआ । यह कानून बालक तथा बालिकाओं दोनों के लिए लागू था । कानून का कार्य-क्षेत्र केवल नगरपालिकाओं तक सीमित रहा ।

बंगाल—बंगाल में भी इसी वर्ष प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) बना । यह कानून, प्रारम्भ में, बालकों के लिए ही लागू था । आगे चलकर सन् १६३२ ई० में कानून का संशोधन किया गया, जिसके अनुसार यह बालिकाओं के लिए भी लागू हुआ । कानून का कार्य-क्षेत्र नगरपालिकाओं तक सीमित रहा ।

बिहार तथा उड़िसा—तत्कालीन बिहार तथा उड़िसा प्रान्त में भी सन् १६१६ ई० में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उद्देश्य से प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) पास किया

* It gave a legal status to the popular demand for compulsory education and students of education will gratefully remember the name of Vithal Bhai Patel as that of a pioneer who caused Government to accept the principle of free and compulsory education for the first time.

Nurullah & Naik—p. 543.

‡ अनिवार्य शिक्षा कानूनों के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—

J. M. Sen—History of Elementary Education in India. pp. 205-307.

गया। यह कानून केवल बालकों के लिए लागू हो सकता था। कानून का क्षेत्रीय अधिकार शहरों तथा गाँवों—दोनों ही पर था †

---

† बिहार तथा उड़िसा प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) की मुख्य बातें ये थीं :—

(१) कानून का क्षेत्र सारा प्रान्त है।

(२) स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ किसी क्षेत्र में ६ से १० वर्ष के बालकों के लिए अनिवार्य शिक्षा जारी कर सकती हैं, यदि—

क—इस आशय का प्रस्ताव, नगरपालिका अथवा अन्य बोर्डों के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से, उनकी विशिष्ट बैठक में, पास किया गया हो।

ख—प्रान्तीय सरकार को इस बात का विश्वास हो जाय कि ये संस्थाएँ, अनिवार्य शिक्षा के लिए स्कूलों में उचित प्रबन्ध कर सकती हैं।

(३) अनिवार्य शिक्षा उन क्षेत्रों में निःशुल्क रहेगी, जिनमें इसके लिए विशिष्ट शिक्षा कर (Special Education cess) लगाया गया हो। जिन क्षेत्रों में ऐसा कर नहीं लगाया गया हो, उनमें अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क नहीं रहेगी।

(४) स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ, अनिवार्य शिक्षा के कार्यों के लिए, स्कूल कमिटि या कमिटियाँ, पूरे अथवा आंशिक क्षेत्र के लिए, नियुक्त करें।

(५) प्रान्तीय सरकार इस प्रकार की कमिटि अथवा कमिटियों के लिए नियम बना सकती है तथा इनके कर्त्तव्य निर्दिष्ट कर सकती है।

(६) प्रान्तीय सरकार किसी वर्ग अथवा जाति के बालकों को अनिवार्य शिक्षा के कानून से बरी कर सकती है और उनकी शिक्षा के लिए खास प्रबन्ध करने के लिए स्थानीय संस्थाओं को आदेश दे सकती है।

(७) यदि स्थानीय संस्थाओं के साधन अनिवार्य शिक्षा के लिए पर्याप्त न हों, तो वे प्रान्तीय सरकार की अनुमति से शिक्षा कर (Education cess) लगा सकती हैं। यह कर, नगरपालिका के क्षेत्र में, सामान्य कर की एक-तिहाई से तथा यूनियन बोर्ड के क्षेत्र में एक आधा से अधिक नहीं हो सकता। शिक्षा-कर की वसूली, सामान्य कर की वसूली की तरह ही, हो।

इस कानून के बावजूद भी, बिहार में, अनिवार्य शिक्षा की प्रगति अत्यन्त धीमी रही। सन् १९२२ ई० में केवल एक नगरपालिका (राँची) ने अपने क्षेत्र में अनिवार्य शिक्षा जारी की थी। सन् १९३७ ई० तक बिहार में, जैसा कि भारत सरकार की पंचवर्षीय रिपोर्ट (१९३२–३७)–पृष्ठ १४१ से प्रकट होता है, केवल एक शहर तथा एक गाँव में अनिवार्य शिक्षा जारी की गयी थी।

मध्यप्रान्त—मध्यप्रान्त में अनिवार्य शिक्षा कानून सन् १६२० ई० में पास हुआ। यह कानून बालकों तथा बालिकाओं—दोनों ही के लिए व्यवहृत हो सकता था। कानून का क्षेत्र शहर तथा देहात-दोनों था।

मद्रास—सन् १६२० ई० में ही मद्रास में प्रारम्भिक शिक्षा कानून (Elementary Education Act) पास हुआ। इस कानून के क्षेत्रीय अधिकार में शहर तथा गाँव दोनों ही थे। कानून बालक तथा बालिकाओं के लिए, समान रूप से, लागू था।

हमने देखा है कि पटेल ऐक्ट के क्षेत्रीय अधिकार के अन्तर्गत बम्बई नगर नहीं था। अतः बम्बई नगर में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उद्देश्य से, सन् १६२० ई० में, बम्बई नगर प्राथमिक शिक्षा कानून (City of Bombay Primary Education Act) पास हुआ। इस कानून के द्वारा बालकों तथा बालिकाओं के अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी।

उपर्युक्त अनिवार्य शिक्षा कानूनों ने, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में, एक नयी चेतना उत्पन्न की। सभी प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा की ओर भारतीय चेष्टा पहले से अधिक तत्पर तथा क्रियाशील हुई। यद्यपि अगले ५ वर्षों में, परिमाण के विचार से, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति न हुई, प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांतों की सरकारी स्वीकृति ही एक ऐसी बात थी, जिसके लिए भारतीय गत ४ वर्षों से संघर्ष करते आ रहे थे।* इस दृष्टि से, प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के कार्य में जिन महानुभावों ने योग दिया, उनकी चेष्टाएँ सराहनीय हैं। ‡

सन् १६२१–२२ ई० में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

कई कारणों से बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अत्यन्त कम हुई। कृषि-प्रधान देश होने के कारण शिक्षा

* Nurullah & Naik—P, 544.

‡ It can not be said that local bodies have shown any alacrity in availing themselves of the opportunity afforded them by these Acts. In Bengal, Madras, the United Provinces and the Central Provinces no local body, in Bomay five, in the Punjab two municipalities and in Bihar & Orissa, one (Ranchi) had introduced compulsory education before the 1st of April 1922. Quinquennial Review of the Progrees of Education in India 1917--12.

की मांग की कमी, बचपन ही में बहुत से बच्चों का विभिन्न कार्यों में लग जाना, जातीय-विभेद, दलित वर्गों के लोगों का बाहुल्य, स्त्रियों की सामाजिक निम्नता आदि बातें प्राथमिक शिक्षा के विकास की आन्तरिक प्रेरणा प्रस्तुत न कर रही थीं। दूसरी ओर सरकार तथा स्थानीय स्वशासन के अधिकारी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में हिचक रहे थे। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सन् १९१३ ई० के बाद प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार गुणात्मक उन्नति पर अधिक बल देने लगी थी। इन मिले-जुले कारणों से, सन् १९२१-२२ में, भारत में, प्राथमिक शिक्षा की स्थिति शोचनीय ही थी। जन-संख्या तथा प्राथमिक स्कूलों का परस्परिक अनुपात सन् १९२१ ई० में २.६ प्रतिशत था। हारटग कमिटि की रिपोर्ट के अनुसार सन् १८९२-१९२२ के बीच पुरुष साक्षरों की संख्या १.४ प्रतिशत ही बढ़ सकी थी। स्त्री साक्षरों की वृद्धि १.३ प्रतिशत हुई थी। सन् १९२१ ई० में स्त्री-पुरुष की सम्मिलित साक्षरता केवल ७.२ प्रतिशत थी। *

गुणात्मक दृष्टिकोण से भी, उक्त अवधि में, प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धियाँ अत्यन्त सीमित रहीं। शिक्षकों के प्रशिक्षण की ओर सरकार का ध्यान सर्वप्रथम भारतीय शिक्षा आयोग १८८२ ने जोर से खींचा था। तब से सरकार प्राथमिक स्कूलों के प्रशिक्षण की ओर सचेष्ट होने लगी थी और इसके लिए बहुत से ट्रेनिंग स्कूल खोले गये थे। सन् १९२१-२२ में समस्त अंग्रेजी भारत (जिसमें बर्मा भी सम्मिलित था) में कुल मिला कर ९२६ प्रशिक्षण विद्यालय पुरुषों के लिए थे, तथा १४६ स्त्रियों के लिए। इनके प्रशिक्षणार्थियों की संख्या क्रमशः २८,७७४ तथा ४,१५७ थी। इसी वर्ष बर्मा-सहित अंग्रेजी भारत में कुल मिला कर १८१,२८९ शिक्षक प्राथमिक शिक्षा में संलग्न थे, जिनमें ६७,६१३ प्रशिक्षित थे। इस तरह प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत अनुपात ३८ था।

सन् १९०१-२ ई० में प्राथमिक शिक्षकों को अत्यन्त कम वेतन प्राप्त था। औसतन यह वेतन लगभग ८ रु० प्रतिमास था। १९०१-२१ ई० की अवधि में कई प्रान्तों में शिक्षकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि हुई। बम्बई प्रान्त में यह ३२ रु० प्रतिमास हो गया था। पंजाब तथा मध्यप्रान्त में भी शिक्षकों के वेतन में वृद्धि हुई। किंतु बंगाल

* Hartog Committee Report—P. 45.

बिहार तथा मद्रास, जहाँ अधिकांश स्कूल गैरसरकारी थे, शिक्षकों के वेतन की अवस्था शोचनीय रही। कहीं-कहीं यह १६२१ ई० में भी ८ रु० प्रति माह ही थी।

प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में भी उपर्युक्त अवधि में वांछित सुधार न किया जा सका। सन् १६०२ ई० के बाद कई स्थानों में प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में बागवानी तथा प्रकृति-अध्ययन सम्मिलित किये गये। कर्जन ने शहरी तथा देहाती स्कूलों के लिए अलग पाठ्य-क्रम की सिफारिश की थी। किंतु इसका कुछ ठोस परिणाम न निकला और प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम पूर्ण तथा उपयोगी न बनाये जा सके।

प्राथमिक स्कूलों के आवास तथा सामानों के आयोजन की ओर इस अवधि में कुछ चेष्टा हुई। किंतु ये इतनी न्यून थीं कि प्राथमिक स्कूलों की लिये अपर्याप्त थीं। फलत: आवास तथा सामान के विचार से प्राथमिक स्कूलों की सामान्य स्थिति पहले से, सुधारने की अपेक्षा, बिगड़ गयी।

इस तरह, सन् १६०५–१६२२ की अवधि में, प्राथमिक स्कूलों की गुणात्मक समस्याओं में कुछ भी सुधार न हो पाया। स्कूल के आवास, उनके सामान, शिक्षण का स्तर, पाठ्य-क्रम की उपयोगिता, छात्रों की शिक्षा में गतिहीनता तथा व्यर्थता (stagnation and wastage) ये सभी लगभग पूर्ववत् कायम रहीं। अत: गुणात्मक दृष्टिकोण से देखे जाने पर भी, सन् १६०५–२१ की अवधि में, प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धियाँ सर्वथा अपर्याप्त रहीं। †

स्त्री शिक्षा (१९०५–२१)

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, सन् १६०४ में लार्ड कर्जन ने स्त्री शिक्षा के संबंध में कुछ सुझाव पेश किये। अब तक की स्त्री-शिक्षा संबंधी चेष्टाओं को नितान्त असन्तोषप्रद बतलाते हुए कर्जन ने मिस्टर कौटन के इस कथन की पुष्टि की कि स्त्री शिक्षा की दयनीय स्थिति "भारतीय

† It would, therefore, be correct to say that in qualitative matters also, the success attained so far was not at all satisfactory.

Nurullah & Naik—P. 552

शिक्षा-पद्धति का सबसे बड़ा कलंक" थी।* किंतु लार्ड कर्जन ने इस कलंक को मिटाने के लिए कोई ठोस सुझाव न उपस्थित किया। उपयुक्त शिक्षकों की नियुक्ति, आदर्श स्कूलों की स्थापना तथा पर्याप्त कोष के आयोजन के सामान्य संकेतों के अतिरिक्त उन्होंने स्त्री शिक्षा के हितों के लिए कोई सुव्यवस्थित योजना न निकाली।

सन् १९१३ ई० में सरकार की शिक्षा-संबंधी नीति पुनः एक प्रस्ताव के द्वारा निर्धारित हुई। इस प्रस्ताव में सरकार ने अपने पूर्व-प्रयत्नों का सिंहावलोकन करते हुए, भविष्य के लिए, स्त्री शिक्षा के संबंध में कुछ नयी बातें सोचीं। सरकार की सम्मति में, भारतीय स्त्री-शिक्षा की एक बड़ी समस्या यह थी कि यहाँ के निवासियों की कुछ सामाजिक मान्यताएं स्त्री-शिक्षा के बिलकुल विपरीत पड़ती थीं। इन मान्यताओं में संशोधन तथा परिवर्त्तन के बिना स्त्री-शिक्षा की आशातीत प्रगति असम्भव थी। फलतः भारत सरकार ने सभी प्रान्तीय सरकारों को इन मान्यताओं को ध्यान में रखने का परामर्श दिया तथा स्त्री-शिक्षा पद्धति को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ही संयोजित करने का आदेश दिया। इसके अतिरिक्त, प्रस्ताव ने स्त्री-शिक्षा संबंधी एक सामान्य नीति निर्धारित की, जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार व्यवहृत होनी चाहिए थी। नयी नीति की प्रमुख बातें ये थीं :—

(१) लड़कियों की शिक्षा उनके भावी सामाजिक जीवन की आधार-भूमि पर, व्यावहारिक रूप में, हों।
(२) लड़कियों की शिक्षा लड़कों की शिक्षा की अनुकृति मात्र न हो और न उनकी शिक्षा-पद्धति में परीक्षाओं की प्रधानता हो।
(३) स्वास्थ्य-सफाई तथा सामाजिक वातावरण पर विशेष ध्यान दिया जाय।
(४) लड़कियों के शिक्षण तथा शिक्षा-निरीक्षण के लिए स्त्री-शिक्षिकाओं एवं निरीक्षिकाओं की सेवाएं अधिकाधिक मात्रा में प्रयुक्त हों।
(५) निरीक्षण तथा प्रबन्ध की व्यवस्था स्थायी रक्खी जाय।
(६) यदि भारतीय स्त्रियाँ इस कार्य के लिए उपलब्ध न हों, तो भारत के विदेशी निवासियों की स्त्रियाँ इस कार्य के लिय प्रशिक्षित की जायं।

* The most conspicuous blot on the education system of India. Mr. Cotton—quoted by Lord Curzon
Lord Curzon in India--vol. II p. 53.

उच्च शिक्षा—प्रस्ताव के उपर्युक्त आदेश लार्ड कर्जन के प्रस्ताव की अपेक्षा अधिक व्यापक एवं व्यावहारिक थे। फलतः इन आदेशों का परिणाम स्त्री शिक्षा के प्रसार पर अनुकूल पड़ा और, सन् १९१३ से १९२१ तक, स्त्री शिक्षा की अच्छी प्रगति हुई। सन् १९२१-२२ में भारत के विभिन्न कला-कालेजों में १२६३ लड़कियां पढ़ रही थीं। सन् १८८२ में इन लड़कियों की संख्या केवल ६ थी तथा सन् १९०२ में केवल १७७। १२६३ लड़कियों में ३९८ हिन्दू जाति की थीं, २५ मुसलमानों की, तथा शेष अन्य जातियों की। इस तरह न केवल हिन्दू छात्राओं की संख्या में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक वृद्धि हुई, बल्कि सन् १९०२ में मुसलमान लड़कियाँ भी कालेजों में पढ़ने लगीं।

संख्या-वृद्धि के साथ-साथ कालेज की छात्राओं का विद्यालय जीवन भी, पहले की अपेक्षा, अधिक पूर्ण होने लगा। अब वे कालेज के सामान्य जीवन में लड़कों की तरह खुल कर भाग लेने लगीं। सभा-सोसाइटी, खेल-कूद, कसरत व्यायाम सभी–में वे अग्रसर होने लगीं। कालेज के पाठ्य-विषयों में भी लड़कियाँ लड़कों से किसी तरह कम न थीं। परीक्षाओं में बहुधा वे लड़कों को मात करने लगीं।

सन् १९१६ ई० में अन्ना साहेब कारवे ने "एस. एन. डी. टी. इन्डियन वीमेन्स युनिवर्सिटी" स्थापित की। विश्वविद्यालय का उद्देश्य स्त्रियों में ऐसी शिक्षा का प्रचार करना था जिससे वे "सुमाता तथा सुगृहिणी" बन सकें। इस विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति प्राच्य भाषा के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भंडारकर थे। अपने संस्थापन के कुछ ही दिन बाद विश्वविद्यालय को सर बिट्ठल दास थैकरसे के द्वारा १५ लाख रुपये दान में प्राप्त हुए, जिनसे विश्वविद्यालय की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई। तब से विश्वविद्यालय स्त्री-शिक्षा के प्रसार में काफी प्रशंसनीय कार्य करती आयी है।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक स्कूलों में भी लड़कियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १९०१-२ में उच्च स्कूलों में केवल ९,२७४ लड़कियाँ पढ़ रही थीं, और मिडूल स्कूलों में ३२,३०८। सन् २९२१-२२ में उच्च स्कूलों में पढ़नेवाली लड़कियाँ ३६,६९८ थीं तथा मिडूल स्कूलों में ९२,४६६। इस तरह उच्च स्कूलों की छात्राओं की संख्या में २७,४२४ की वृद्धि हुई और मिडूल स्कूलों की छात्राओं की संख्या में ६०,१५८ की। यद्यपि इन स्कूलों में भारतीय यूरोपी, भारतीय ईसाई,

पारसी आदि छात्राओं की ही प्रधानता इस अवधि में भी रही, किंतु फिर फी हिन्दू-मुसलिम छात्राओं की संख्या भी पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई। उच्च तथा माध्यमिक स्कूलों के कुल १२६,१६४ छात्राओं में ४१,२२१ छात्राएं हिन्दू थीं तथा ५,८६३ छात्राएं मुसलमान। सन् १६०१-२ में इन जातियों की छात्राओं की संख्या क्रमशः १३,६२३, तथा ८६५ थीं। इस तरह हिन्दू छात्राओं की संख्या १६११ की अपेक्षा लगभग तिगुणी तथा मुसलिम छात्राओं की संख्या लगभग सातगुणी हो गई।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस अवधि में स्त्री शिक्षा ने अभूतपूर्व प्रगति की। सन् १६०१-२ में कुल मिला कर ३,४८,५१० बालिकाएं प्राथमिक स्कूलों में दाखिल थीं; सन् १६२१-२२ में यह संख्या बढ़कर ११,६८,५५० हो गई।

इस अवधि में स्त्री शिक्षकाओं की संख्या भी काफी बढ़ी। सन् १६०१-२ में केवल ५१५ स्त्रियाँ प्रशिक्षण विद्यालयों में पढ़ रही थीं, सन् १६२१-२२ में इन स्कूलों में ४,३६१ छात्राएं थीं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के व्यावसायिक स्कूलों में ४,७२०८ छात्राएं थीं।

मुसलमानों की शिक्षा

सन् १६०५-१६२१ की अवधि में मुसलमानों की शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। सन् १६२१-२२ ई० में कला कालेजों में कुल मिला कर ५,३६६ मुसलिम लड़के तथा २५ लड़कियाँ पढ़ रही थीं। व्यावसायिक कालेजों में मुसलिम लड़कों तथा लड़कियों की संख्या क्रमशः १,५३८ तथा ६ थी। माध्यमिक स्कूलों में इस वर्ष २०१,८४० छात्र थे। छात्राओं की संख्या ५,८६३ थी। प्राथमिक स्कूलों की छात्र-संख्या लड़कों के लिए १२,११,६८२ तथा लड़कियों के लिए २,६१,२२५ थी। इन सामान्य स्कूलों के अतिरिक्त ४०,७६६ लड़के तथा १,३०४ लड़कियाँ विशिष्ट औद्योगिक तथा व्यावसायिक स्कूलों में पढ़ रही थीं। मुसलिम छात्र तथा छात्राओं की कुल संख्या (सभी प्रकार की स्कूलों में) १६,१८,१४० तथा ३,४८,३०२ थी। इस तरह सन् १६०२-२१ की अवधि में भारतीय मुसलमानों ने शिक्षा के लगभग सभी क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नति की, यद्यपि उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में वे अन्य लोगों से पिछड़े हुए थे। इस अवधि में भारत

की मुसलिम स्त्रियों ने भी शिक्षा के क्षेत्र में दृढ़ता के साथ कदम बढ़ाना शुरु किया और कई मंजिलें तय कीं।

अधिकांश मुसलिम छात्र सामान्य सार्वजनिक स्कूलों में ही शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। किंतु, कई कारणों से, मुसलमानों की ओर से विशिष्ट स्कूलों की मांग हो रही थी, जिनमें केवल मुसलिम छात्र ही पढ़ते। सन् १६०१–२१ की अवधि में यह मांग जोरदार हो गयी। फलस्वरूप इस अवधि में मुसलमानों के लिए बहुत से विशिष्ट स्कूल खोले गये। ये विशिष्ट स्कूल प्राचीन तथा अर्वाचीन—दोनों ही ढंग के थे। प्राचीन ढंग के स्कूलों में मकतब, मदरसा, मुल्ला तथा कोरान स्कूल थे। इनके पाठ्य-क्रम अधिकांशतः धार्मिक हुआ करते थे। किंतु इसमें नये विषयों को जोड़ने की चेष्टा की गयी थी। अर्वाचीन स्कूलों के पाठ्य-क्रम आधुनिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम से मिलते-जुलते थे, किंतु इनमें अरबी, फारसी, उर्दू तथा धर्म की शिक्षा का खास प्रबन्ध किया जाता था। † इन विशिष्ट स्कूलों के द्वारा उन मुसलमानों की शिक्षा का आयोजन हुआ, जो कि सार्वजनिक स्कूलों में, धार्मिक अथवा अन्य कारणों से, पढ़ना नहीं चाहते थे। अतः इन स्कूलों के आयोजन ने मुसलिम छात्रों की वृद्धि में बड़ा योग दिया।

किंतु राष्ट्रीय हित के विचार से, मुसलमानों की शिक्षा के लिए, विशिष्ट विद्यालयों का आयोजन अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। इन विद्यालयों ने, मुसलिम छात्रों के बीच, कच्ची अवस्था में ही साम्प्रदायिकता के वातावरण का सृजन किया। बहुत से मुसलिम छात्र अपने हिन्दू साथियों से एकदम अलग हो गये और उस राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अभ्युदय से बंचित रह गये, जो कि अन्य जातियों के छात्रों के निरन्तर साहचर्य्य तथा सद्भाव से उन्हें प्राप्त होता। कहने की आवश्यकता नहीं कि सरकार ने, मुसलमानों के लिए विशिष्ट स्कूलों को जान-

† The general result has been an increase in the number of Muhammadan pupils slightly larger, in proportion to the number of the community, than the increase among pupils of all races and creeds together.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India. 1912-17

बूझ कर, पूर्ण प्रोत्साहन दिया। † शिक्षा के इस एकान्तीकरण का राजनीतिक प्रभाव अत्यन्त दूषित पड़ा और इसने भारतीय छात्रों में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के प्रादुर्भाव में महत्त्वपूर्ण योग दिया। साम्प्रदायिकता की वेदी पर भारत, भारतीय राष्ट्रीयता तथा भारतीयों को क्या-क्या बलिदान करने पड़े—इससे इतिहास के विद्यार्थी पूर्णतः परिचित हैं। इनकी स्मृतियाँ आज भी भारतीय हृदय को क्षण भर के लिए विचलित कर देती हैं। ‡

हरिजनों की शिक्षा (१९०२–२१)

सन् १९०२ के पश्चात् सारे भारत में हरिजन शिक्षा के पक्ष में एक जोरदार आन्दोलन चल पड़ा, जो कि कई स्रोतों से निरंतर अभिसिंचित और परिपुष्ट होता गया। सन् १९२१ ई० में हरिजनों की शिक्षा एक राष्ट्रीय समस्या थी, जिसके हल के लिए भारत के लोग कटिबद्ध हो गये थे। ब्राह्म-समाज, आर्य-समाज तथा प्रार्थना समाज के नेतृत्व में "अछूतपन" का सुदृढ़ दुर्ग जड़ से हिलने लगा था। इस दुर्ग पर उग्रतर प्रहार होते गये। गोखले का भारत सेवक-समाज (servants of India society) स्थापित हो चुका था। सन् १९१४ ई० में अमृतलाल ठक्कर जैसे कर्मठ हरिजन बंधु इसके आजीवन सदस्य बन गये। सन् १९०६ ई० में विट्ठल रामजी शिन्डे ने दलित-वर्ग सुधार सभा (Depressed class Mission) संगठित किया और सन् १९१७ में महात्मा गांधी ने कांग्रेस के मंच से हरिजन सुधार का शंख फूंका, जिससे देश का कोना-कोना हरिजनों के प्रति एक नवीन भावना से अनुप्राणित हो उठा। अबतक कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था मात्र थी। देश की सामाजिक स्थितियों से वह प्रायः अलग ही रहती थी। किंतु महात्मा जी ने कांग्रेस के कार्य-क्रम में सामाजिक सुधार के कार्य भी संगुफित किए। सन् १९२२ ई० में कांग्रेस की कार्य-

† The Imperialist purposes would obviously be better served by policy of separatism which put one community against the other and hence Government carefully fostered isolation, not only in the educational, but social and political fields as well.

‡ The political sequel to such a system could only have been disastrous, and later events of history amply justified the fears of those who desired to see the young men of the two communities learning together in common schools ......

Nurullah & Naik—P. 536.

कारिणी समिति ने बारदोली में एक प्रस्ताव पास किया, जिसके अनुसार कांग्रेस के रचनात्मक कार्य निर्देशित किये गये। इन कार्यों में एक प्रमुख कार्य हरिजनों के सुधार से संबंधित था। कांग्रेस के लोगों का यह कर्तव्य था कि वे "हरिजनों के सामाजिक स्तर को क्रमश: ऊँचा करने में दत्तचित्त हों, उनकी सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक स्थितियों को समुन्नत करने की चेष्टा करें, उनके बच्चों को स्कूल में भेजने के लिए अनुरोध करें तथा उनके लिए सर्वसामान्य सुविधाओं को सुलभ बनावें।"

इन समाज-सुधारक आन्दोलनों के अतिरिक्त कुछ उदार देशी नरेशों के नाम भी हरिजन-शिक्षा के इतिहास में उल्लेखनीय हैं। बड़ोदा राज्य के महाराज श्री सयाजीराव गायकवाड़ ने अपने राज्य में हरिजन शिक्षा के लिए स्तुत्य प्रयास किया। सन् १८८३ ई० में इन्होंने हरिजनों के लिए १८ विशेष स्कूल खोलवाये। कुछ दिनों के बाद अन्य कई स्कूल हरिजनों के लिए खोले गए, जिनमें उनके रहने तथा खाने का भी प्रबन्ध था। प्रतिभासम्पन्न हरिजन छात्रों के लिए महाराज ने छात्र-वृत्तियाँ निश्चित कर दीं, जिनसे लाभ उठाकर अनेक हरिजन छात्रों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की। श्री बिट्ठल रामजी शान्डे तथा डाक्टर अम्बेदकर—हरिजनों के दो बड़े नेता वस्तुत: महाराज की उदारता के ही प्रतिफल हैं। उनके द्वारा ही इन्हें शिक्षा-दीक्षा तथा अन्य सुविधाएं प्राप्त हो सकीं। हरिजन समाज ने भी महाराजा को द्वितीय महाराष्ट्र दलित वर्ग सम्मेलन का सभापति बनाकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। दूसरे महाराज, जिन्हें हरिजन बड़े प्रिय थे, कोल्हापुर के महाराज शाहु छत्रपति थे। हरिजनों के बच्चों की शिक्षा के लिए उन्होंने अपने राज्य के सभी स्कूलों के द्वार खोल दिए। सभी स्कूलों के अध्यापकों तथा प्रबन्धकों को इस बात के लिए कड़ी हिदायत की गई कि वे हरिजन छात्रों के प्रति अन्य छात्रों के समान ही व्यवहार करें। इसके अतिरिक्त महाराज ने हरिजनों को अन्य कई सुविधाएं प्रदान कीं।

स्वयं हरिजन जाति भी अब काफी जागरूक हो चुकी थी। सौभाग्य से उन्हें दो बड़े नेता भी मिल गए, जिन्होंने हरिजनों को एक क्रियाशील समाज में संगठित किया तथा उन्हें प्रगतिशील बनने का मार्ग प्रदर्शित किया। डाक्टर बी० आर० अम्बेदकर तथा श्री एम० सी० रजा जैसे प्रतिभासम्पन्न एवं सुयोग्य नेताओं के नेतृत्व में हरिजन जाति एक नई स्फूर्ति के साथ जाग उठी। अब हरिजन ऐसे न थे जो स्कूल जाने से डरते हों अथवा उच्च वर्णों की रुकावटों को चुपचाप बर्दाश्त

करते हों। सामान्य स्कूलों को वे अपना स्कूल समझने लगे। इन स्कूलों में हरिजन छात्रों की संख्या क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। विशेष स्कूलों की आवश्यकता हरिजनों के लिए अब उतनी न रही, न वे इन स्कूलों को अच्छी दृष्टि से देखते थे। सामान्य स्कूलों में ही उनकी सामाजिक हीनता मिट सकती थी। अतः हरिजन समाज की ओर से सामान्य स्कूल ही अपनाये जाने लगे। इन स्कूलों में ही ये अपने लिए सारी सुविधायें खोजने लगे।* सरकार भी अब स्वभावतः हरिजनों के लिए अलग स्कूल खोलने की अपेक्षा सामान्य स्कूलों में ही सम्पूर्ण सुविधाओं को प्राप्य बनाने की ओरसचेष्ट हो गई। सन् १९१९–२२ में मद्रास की सरकार ने इस आशय के कई आदेश-पत्र जारी किए। १९२२–२३ में बम्बई की सरकार ने भी यह आज्ञा जारी की कि सरकारी स्कूलों में अछूत वर्ग के बच्चों को किसी तरह की असुविधा न हो। यह भी घोषित किया गया कि जो सहायता-प्राप्त स्कूल हरिजन छात्रों के साथ अन्य छात्रों से भिन्न व्यवहार करते, उनकी सहायता बन्द कर दी जा सकती थी। इस तरह सन् १९२१ ई० तक यह निश्चित हो चुका था कि हरिजनों के लिए विशिष्ट स्कूल खोलने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी। अब जरूरत इस बात की थी कि सभी सार्वजनिक स्कूलों में हरिजन छात्रभी, उच्च वर्ग की छात्रों की तरह, स्कूल की सारी सुविधाओं को प्राप्त करते हुए, शिक्षा ग्रहण करें।

उपर्युक्त स्थितियों में सन् १९०२–२१ की अवधि में भारत में हरिजन शिक्षा की अभूतपूर्व प्रगति हुई। सन् १९२१–२२ ई० में विभिन्न प्रान्तों में हरिजन छात्रों की संख्या निम्नलिखित थी। †

मद्रास	१,५७,११३
बम्बई	३६,५४३
बंगाल	९६,५५२
संयुक्त प्रान्त	३९,८७३
पंजाब	३,७३२
बिहार और उड़ीसा	१५,०९६
मध्य प्रान्त	२८,९१९
कुल	३७७८२८

* It is a most hopeful sign of the times that all provincial reports record a tendency to discard special schools.—Quinquennial Review of the Progress of Education in India—1917-22.

† Nurullah and Naik—p. 588.

इन छात्रों में अधिकांश प्राथमिक स्कूलों में ही शिक्षा पा रहे थे। किंतु कुछ छात्र माध्यमिक स्कूलों तथा कालेजों में भी दाखिल थे।

आदिवासियों तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा

सन् १६०२-२१ की अवधि में आदिवासी तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा में बहुत ही कम प्रगति हुई। इस अवधि में सरकार की ओर से आदिवासी तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा की ओर कुछ चेष्टा तो अवश्य हुई, किंतु यह नितान्त: अपर्याप्त थी। फलत: सन् १६२१ ई० में भी आदिवासी तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा का कार्य मुख्यत: धर्म-प्रचारक संस्थाओं के द्वारा ही होता रहा। कुछ धर्म-प्रचारकों के द्वारा संचालित स्कूलों को सरकार ने अपने प्रबन्ध में किया।

सन् १६०१–२१ की अवधि में (Criminal Tribes) को शिक्षित बनाने तथा उन्हें अच्छे व्यवसायों में लगाने की ओर सरकार ने ध्यान दिया। ये दोषी जातियाँ भारतीय समाज के निम्नतम स्तर पर थीं। इनका व्यवसाय चोरी करना तथा जानवरों को ले भागना था। † दोषी जाति कानून (Criminal Tribes Act.) के अधीन सरकार को दोषी जातियों को किसी निर्धारित क्षेत्र में आवासित करने का अधिकार प्राप्त था। इस कानून के अनुसार सरकार की ओर से दोषी जातियों की कई बस्तियाँ बसायी गयीं और उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। दोषी जाति में वयस्कों की शिक्षा के लिए भी चेष्टा की जाती थी। मद्रास प्रान्त में सन् १६२१ ई० में दोषी जाति के १,४४३ लोग शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, जिनमें ५३ वयस्क थे। इनके अतिरिक्त दोषी जाति के लिए प्रान्त में दो औद्योगिक स्कूल खुले हुए थे। पंजाब में दोषी जातियों के लिए ३३ स्कूल खुले हुए थे, जिनमें २० लड़कों के लिए थे, तथा १३ लड़कियों के लिए। इन स्कूलों में ७३० लड़के तथा ४३१ लड़कियाँ पढ़ रही थीं। इन स्कूलों के अतिरिक्त कई औद्योगिक स्कूल थे। इन विशिष्ट स्कूलों के अतिरिक्त सामान्य सार्वजनिक स्कूलों में भी १,८२५ दोषी जाति के छात्र शिक्षा पा रहे थे। बम्बई प्रान्त में दोषी जाति के लिए ३६ स्कूल क्रियाशील थे, जिनमें १,४५७ छात्र पढ़ रहे थे। सामान्य स्कूलों में पढ़ने वाले दोषी जाति के छात्रों की संख्या, बम्बई प्रान्त में, ४००० थी। ‡

† Quinquennial Review of the Progress of Education in India—1917-22. P. 27.

‡ Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1917-22

शिक्षा-विभाग

गत अध्याय में हम भारतीय शिक्षा सेवा (आई० ई० एस०) का उल्लेख कर चुके हैं। हमने देखा है आई० इ० एस० के सदस्यों की नियुक्ति इंग्लैंड में होती थी। भारतीय शिक्षा विभाग के सभी उच्च पदों पर आई० इ० एस० के लोग ही आसीन हो सकते थे। भारतीयों की दृष्टि में, भारतीय प्रशासन के उच्च पदों का एकाधिकार यूरोपीयनों को दे देना अनुचित, अन्यायपूर्ण तथा भारतीयों के हितों के लिए घातक था। अतः आई० सी० एस०, आई० इ० एस० आदि सभी भारतीय सेवाओं के संगठन, नियुक्ति, वेतन-क्रम आदि के विरुद्ध आवाज उठने लगी और भारतीय सेवाओं के भारतीयकरण के पक्ष में एक जबदस्त आन्दोलन सा चल पड़ा। हमने देखा है कि २० अगस्त १६१७ ई० को भारत सचिव ने यह घोषणा की कि सरकार की नीति "भारतीय प्रशासन में भारतीयों को अधिकाधिक सबंद्ध करने की थी"। अतः, सरकार ने १८८७ के सार्वजनिक सेवा आयोग की नीति, जिसके द्वारा उच्च सेवाओं पर यूरोपीयनों का एकाधिकार स्थापित हुआ था, त्याग दी। फलतः सन् १८१७ ई० के पश्चात् भारतीय शिक्षा सेवा का भारतीयकरण द्रुत गति से होने लगा।

सन् १६१६ ई० में भारतीय शिक्षा-विभाग के प्रशासन का पुनर्गठन किया गया और यह निश्चय किया कि भारतीय शिक्षा सेवा में यूरोपीय तथा भारतीय पदाधिकारियों की संख्याएं ५०: ५० के अनुपात में रहें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय शिक्षा सेवा के पदों की संख्या ३३ प्रतिशत अधिक बढ़ा दी गयी और इन बढ़े हुए पदों पर प्रान्तीय सेवा के पदाधिकारी, अपने पूर्व पदों के साथ, आरुढ़ कर दिये गये। भारतीय शिक्षा सेवा की नियुक्तियाँ, पहले की भाँति, भारत सचिव (secretary of state for India) के द्वारा होती रही। किन्तु अब ये नियुक्तियाँ इंगलैंड के लोगों तक ही सीमित न रहीं। इन परिवर्तनों का फल यह हुआ कि भारतीय शिक्षा सेवा के पदों पर भारतीय पदाधिकारियों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी और भारतीय शिक्षा के प्रशासन का भारतीयकरण दृढ़ता से अग्रसर होने लगा। सन १६२१-२२ ई० में १२० भारतीय पुरुष तथा २ स्त्रियाँ भारतीय शिक्षा सेवा के विभिन्न पदों पर आसीन थीं। सन् १६१६–१७ ई० में इनकी संख्या पुरुषों के लिए केवल ६ तथा स्त्रियों के लिए शून्य थी। †

†Quinquennial Review for the progress of education in India-1917-22.

राष्ट्रीय शिक्षा—सन् १८०५-२१ की अवधि की एक महत्त्वपूर्ण घटना राष्ट्रीय शिक्षा की भावना का विकास था। सन् १८०५ ई० के पहले भी बहुत से भारतीय यह महसूस करने लग गये थे कि अंग्रेजी शिक्षा भारत की राष्ट्रीय मांगों की पूर्ति नहीं कर रही थी और कई तरह से दोषपूर्ण थी। किंतु इस तरह के विचार अभी स्पष्ट तथा ठोस न हो पाये थे। लार्ड कर्जन की साम्राज्यवादी नीति ने, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, न केवल भारतीय राजनीति में एक हलचल उत्पन्न कर दी, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीयों को अधिक जागरूक, चिन्तनशील तथा क्रियात्मक बना दिया। बंग-विभाजन के फलस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन का अभ्युदय हुआ, जिसके आधारभूत सिद्धांत शिक्षा के क्षेत्र में भी अनुस्यूत हो गये। आर्थिक साधनों के स्वदेशीकरण आन्दोलन का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा और शिक्षा के स्वदेशीकरण अथवा राष्ट्रीय-करण की बात जोर पकड़ने लगी। वस्तुत:, सन् १८०५ के बाद भारतीय शिक्षा भारतीय राजनीति की एक पहलू बन गयी। ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय आन्दोलन उग्रतर होता गया, त्यों-त्यों भारतीय शिक्षा की राष्ट्रीयता भी दृढ़तर होती गयी। ऐनी बेसेन्ट के शब्दों में "भारतीय जीवन तथा भारत के राष्ट्रीय आचरण को निर्धन बनाने में भारतीय शिक्षा के विदेशीय स्वरूप से बढ़कर अन्य कोई प्रभाव नहीं हो सकता"।† महात्मा गांधी ने अंग्रेजी शिक्षा का विश्लेषण करते हुये कहा—

वर्त्तमान शिक्षा पद्धति, एक अन्यायपूर्ण शासन से संबद्ध होने के अतिरिक्त, तीन बड़े दोषों से परिवेष्टित है :—

क—यह विदेशी सभ्यता-संस्कृति पर आधारित है और इसमें भारतीय संस्कृति लगभग पूर्णतः निष्कासित है।

ख—इसका कार्य मानसिक जागरण तक ही सीमित है; इसमें हृदय तथा हाथ के संस्कार का सर्वथा अभाव है।

† Nothing can more swiftly emasculate national life; nothing can more surely weaken national character than allowing the education of the young to be controlled by foreign influences, to be dominated by foreign ideal—Annie Besant quoted in the Problem of National Eductian in India.—
Lala Lajpat Rai—p. 28.

ग—राष्ट्रीय शिक्षा पाश्चात्य आदर्शों को भारतीय छात्रों के समक्ष प्रस्तुत न करे, वल्कि यह भारतीय आदर्शों को उनके सामने स्पष्ट रूप से रक्खे। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के प्रसार का युग, जिसे ऊड के संदेश-पत्र ने प्रारम्भ किया था, लद गया था। अब भारतीयों को इस बात की आवश्यकता न थी कि वे 'रूप-रंग में भारतीय, किन्तु विचार में अंग्रेज' हों। भारतीय राष्ट्र की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएं थीं, जिनके अनुकूल ही भारतीय छात्रों का विकास होना चाहिए था।

घ—राष्ट्रीय शिक्षा से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का निष्कासन न हो। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि वह अन्य राष्ट्रों के भावों और विचारों से अपने को पूर्णतः अवगत रक्खें। इस दृष्टि से यूरोपीय भाषाओं, यूरोपीय साहित्य तथा यूरोप विज्ञान का तिरस्कार उचित नहीं।† राष्ट्रीय शिक्षा में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे प्रत्येक भारतीय कम से कम एक यूरोपीय भाषा जाने, यूरोपीय प्रसाधनों पर अधिकार प्राप्त करे तथा यूरोपीय यन्त्रों का उपयोग सीखे। 'यूरोप तथा संसार ने भारत से बहुत कुछ सीखा है, हमें उनसे सीखने में लज्जित न होना चाहिए और हमारी यह चेष्टा होनी चाहिए कि जो कुछ हम उनसे सीखें, उनके बदले हम उन्हें सिखावें।‡

च—राष्ट्रीय शिक्षा में अंग्रेजी का प्रभुत्व न विषय के रूप में न रहे, न माध्यम के रूप में। अंग्रेजी के विरूद्ध सब से जोरदार आवाज महात्मा गांधी ने उठायी। उनके विचार में अंग्रेजी के प्रति अत्यधिक आस्था भारतीयों के लिए अत्यन्त हानिकर थी और भारतीयों की गुलामी तथा

† In my judgement it will be folly to and madness to try to discourage the study and dissemination of European languages, European literatures and European sciences in India.

‡ Europe and the world have learnt a good deal from us, we have no reason to be ashamed of learning from them, with the fullest intention of adding to their knowledge and teaching them in our turn

Lala Lajpat Rai, quoted in Nurullah & Naik p 563

पतन का द्योतक थी। अतः राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में मातृभाषाओं का स्थान सर्वोपरि होना चाहिए।

छ—राष्ट्रीय शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा का यथेष्ट स्थान होना चाहिए। यह भारत के आर्थिक उत्थान के लिए आवश्यक था। किंतु व्यावसायिक शिक्षा का रूप क्या हो—इस सम्बन्ध में नेताओं तथा शिक्षा-शास्त्रियों का एकमत न था। इस प्रश्न पर महात्मा गांधी ने सन् १९२१ ई० में जो विचार व्यक्त किए, वे आगे चलकर बुनियादी शिक्षा के रूप में विकसित हुए। उन्होंने भारतीय बच्चों के लिए एक ऐसी शिक्षा की सिफारिश की, जो प्रारम्भ से ही बच्चे को स्वाश्रयिता की ओर उन्मुख करता। कताई तथा इसके पूर्व की क्रियाओं की शिक्षा से, गांधी जी के विचार में, तीन बड़े लाभ थे। इससे शिक्षा स्वाश्रयी होती, बच्चों का शारीरिक तथा मानसिक प्रशिक्षण होता और विदेशी सूत तथा कपड़े का पूर्ण बहिष्कार संभव होता। साथ ही इस तरह की शिक्षा से बच्चे आत्म-निर्भर तथा स्वतंत्र होते। †

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय शिक्षा की जो रूप रेखा दी, वह सबसे सरल तथा व्यावहारिक थी। किंतु अब प्रश्न यह था कि राष्ट्रीय शिक्षा को किस भाँति आयोजित किया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा के

The canker has so eaten into the society that in many cases the only meaning of education is a knowledge of English. All these are for me signs of slavery and degradation.

Mahatma Gandhi

† There is something radically wrong, specially for a nation so poor as ours, when parents have to support so many grown up children without the children making any immediate return. I can see nothing wrong in the children, from the very threshold of their education, paying for it in work. The simplest handicraft suitable for all, required for the whole of India, is undoubtedly spinning along with the previous processes. If we introduce this in our educational institutions, we should fulfil three purposes—make education self-supporting train the bodies of the childern as well as their minds and pave the way for a complete boycott of forcign yarn and cloth. Moreover, the children thus equipped will become self-reliant and independent.

Mahatma Gandhi—Young India.—June 1921.

उन्नायकों के समक्ष, इस प्रश्न के समाधान में, बड़ी-बड़ी समस्याएं उठ खड़ी हुईं। फिर भी उन्होंने हिम्मत न हारी और राष्ट्रीय शिक्षा के निर्माण की ओर लग्नशील हो गये।

राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति के इतिहास में दो महत्वपूर्ण युग उपस्थित हुए। इस शिक्षा को पहली प्रेरणा बंग-विभाजन ने दी। स्वदेशी आन्दोलन में बहुत से विद्यार्थी भी भाग लेने लगे थे। उन्हें इस कार्य से रोकने के लिए, सरकार ने आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले छात्रों को स्कूल से निष्कासित (Rusticate) कर दिया। इन छात्रों की शिक्षा की व्यवस्था नेताओं का उत्तरदायित्व हो गया। अतः सर गुरुदास बनर्जी ने, राष्ट्रीय शिक्षा के संगठन तथा प्रोत्साहन के लिए, एक समिति कायम की, जो "सोसाइटी फौर दी प्रोमोसन आफ नेशनल एजुकेशन, बंगाल" कही जाती थी। सन् १६०६ में कलकत्ता कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास हुआ कि समस्त देश में राष्ट्रीय शिक्षा का संगठन किया जाय, जो कि देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा जो राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति की ओर भारत को उन्मुख कर सके"। उपर्युक्त सोसाइटी के अधीन बंगाल में कई उच्च स्कूल कायम किये गये। किंतु राष्ट्रीय शिक्षा के विस्तार का यह आन्दोलन शीघ्र ही शिथिल पड़ गया। बंग-विभाजम के रद्द हो जाने के कारण आन्दोलन की मूल प्रेरणा जाती रही। सन् १६२० ई० में राष्ट्रीय शिक्षा के भग्नावशेषों के अतिरिक्त अन्य कुछ न रह गये थे।†

राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति का दूसरा युग सन् १६२० ई० में प्रारम्भ हुआ। महात्मा गांधी ने, राष्ट्रीय आन्दोलन के अंग के रूप में, सरकारी स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार का संदेश दिया। उनकी प्रेरणा से नागपुर कांग्रेस (१६२० ई०) में इस आशय का प्रस्ताव पास हुआ कि सभी प्रकार के सरकारी स्कूलों तथा कालेजों से छात्र हटा लिये जायं और इनकी शिक्षा के लिए विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूल तथा कालेज कायम किए जायं।‡ फलतः भारतीय छात्रों ने सरकारी स्कूलों तथा

† The nationalists schools, started by the Council, have, most of them been disintegrated by the force of circumstances, and at the present moment the movement is nothing but a dilapidated and discarded landmark in the educational progress of the country.

Lala Lajpat Rai—Nurullah & Naik p. 576.

‡ Dr. Pattabhi Sitaramayya: History of the Indian National Congress,— vol. I p. 293.

कालेजों को छोड़ना शुरू किया और शीघ्र ही इनकी संख्या काफी हो गयी। इस दिशा में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों ने नेतृत्व किया। विश्वविद्यालय से अलग होकर उन्होंने इसके राष्ट्रीयकरण की मांग पेश की। किंतु यह सम्भव न था। शीघ्र ही, मौलाना मुहम्मद अली के नेतृत्व में अलीगढ़ में, एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का निर्माण किया गया, जो कि "जामिआ मिलिआ इसलामिआ" (National Muslim University) के नाम से विख्यात हुआ।

अलीगढ़ के अनुकरण पर समस्त भारत में राष्ट्रीय शिक्षा के विकास का कार्य तीव्रगति से प्रारम्भ हो गया। ४ महीने के भीतर ही, देश में अलीगढ़ राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ और बहुत से राष्ट्रीय स्कूल स्थापित हुए। † भारत सरकार की शिक्षा की प्रगति की पंच-वर्षीय रिपोर्ट (१६१७–२२) के अनुसार सन् १६२१–२२ ई० में राष्ट्रीय स्कूलों तथा कॉलेजों और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या निम्नांकित थी। ‡

प्रान्त	राष्ट्रीय विद्यालयों की संख्या	राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या
मद्रास	६२	५,०७२
बम्बई	१८६	१७,१००
बंगाल	१६०	१४,१८६
संयुक्त प्रान्त	१३७	८४७६
पंजाब	६६	८,०४६
बिहार और उड़ीसा	४४२	१७,३३०
मध्य प्रान्त	८६	६,३३८
आसाम	३८	१,६०८
पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त	४	१२०

राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति अधिक दिनों तक दृढ़ न रह सकी। असहयोग आन्दोलन का जोर कम होते ही राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार

† Dr. Pattabhi Sitaramayya, History of the Indian National Congress vol. I p. 211.

‡ Quinquennial Review of the progress of Education in India. 1917-22.

भी रुक-सा गया। सन् १६२२ ई० के अन्त में यह पूर्णतः शिथिल पड़ गया। किन्तु राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन मृत न हुआ और सन् १६२२ के बाद भी इसका प्रभाव, कई रूपों में, कायम रहा। इसने कई राष्ट्रीय नेताओं को आविर्भूत किया। वस्तुतः आज के बहुत से प्रान्तीय तथा जिला नेता उस छात्र-समुदाय से समुत्पन्न हैं, जिसने, १६२० ई० के असहयोग आन्दोलन में, स्कूल-कालेजों को छोड़ दिया था। † राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन ने भारत के विद्यार्थी समाज में देश-प्रेम की एक लहर दौड़ा दी। यहाँ तक की सरकार को भी यह विश्वास हो गया कि सरकारी शिक्षा पद्धति दोषपूर्ण थी और इसमें सुधार की आवश्यकता थी। ‡

भारतीय शिक्षा के प्रबन्ध का हस्तान्तरण

हमने देखा है कि भारतीय शिक्षा को भारतीय प्रबन्ध में हस्तान्तरित कर देने की मांग, किसी न किसी रूप में, बीसवीं सदी के शुरु से ही प्रारम्भ हो गयी थी। लॉर्ड कर्जन के समय में यह पूर्णत स्पष्ट हो गय था कि भारतीयों के हित के लिए उनके हाथों में शिक्षा का हस्तान्तरित अत्यन्त आवश्यक था। यह मांग भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन से संबलित होता रहा। अतः १६१६ के "गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट" के अनुसार भारत के शासन में जो सुधार हुये, उनसे भारतीय शिक्षा वंचित न रह सकी। उक्त कानून के अनुसार सभी अंगरेजी प्रान्तों में शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीय मंत्रियों को सुपूर्द किया गया, जिसका पूर्ण परिचय हम अगले अध्याय में देंगे।

† not a few of the provincial and district leaders of today are from among.........students who had non-co-operated in 1920.

Dr. Pattabhi Sitaramayya—P.211.

‡ In short.........the crisis has left behind the conviction that our ednoational aims need re-statement.........

the national school movement can at least claim that it lent strength to the advocates of educational reform.

Quinquennial Review of the Progress af Education in India. 1917--22.

सातवाँ अध्याय

आधुनिक शिक्षा का पंचम चरण

(सन् १९२१–१९४७ ई०)

सामान्य परिचय

भारत के वैधानिक इतिहास में सन् १९२१–४७ ई० की अवधि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी अवधि में देश के शासन-सूत्र के हस्तान्तरण का वह कार्य प्रारम्भ हुआ, जिसकी परिणति भारत की पूर्ण स्वाधीनता में हुई। अंग्रेजी पार्लियामेन्ट ने इस दिशा में तीन कानून (Acts) पास किये, जिनके द्वारा भारत में उत्तरदायी शासन का विकास हुआ। वे तीन कानून थे :—

क—गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया ऐक्ट १९१९

ख—गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया ऐक्ट १९३५

ग—इन्डियन इन्डिपेंडेंस ऐक्ट १९४७

प्रथम कानून ने प्रान्तीय शासन के एक क्षेत्र में उत्तरदायी शासन स्थापित किया। द्वितीय कानून ने प्रान्तीय शासन में पूर्ण स्वशासन प्रतिष्ठित किया। तृतीय कानून के द्वारा भारत को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हुई। इन कानूनों तथा इनसे उत्पन्न परिस्थितियों, जिनसे उपर्युक्त अवधि में भारतीय शिक्षा प्रभावित हुई, का संक्षिप्त परिचय उपस्थित किया जाता है।

उत्तरदायी शासन का पहला चरण—प्रान्तों में द्वैध शासन

सन् १९१९ ई० के गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया ऐक्ट (Government of India Act 1919) के अनुसार प्रान्तों में द्वैध शासन (Diarchy) स्थापित हुआ। इस शासन प्रणाली के अनुसार प्रान्तीय सरकार के कार्य दो विभागों में बाँटे गये — संरक्षित (Reserved) तथा हस्तान्तरित (Transferred)। संरक्षित विभाग में, पुलिस, जेल, राजस्व, न्याय आदि विषय थे, जो कि प्रान्त की शान्ति, व्यवस्था तथा आर्थिक

बातों से सम्बन्ध रखते थे।* हस्तान्तरित विभाग में स्थानीय स्वशासन, चिकित्सा, जन-स्वास्थ्य तथा सफाई, तीर्थ-स्थान, शिक्षा (यूरोपीयनों तथा ऐंग्लो- इन्डियनों की शिक्षा तथा कुछ निर्दिष्ट शिक्षा-संस्थाओं को छोड़ कर), कृषि आदि.... विषय थे। ‡

निम्नलिखित शिक्षा-संस्थाएं तथा व्यवस्थाएं केन्द्रीय सरकार के अधीन रखी गयीं।

क—बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा ऐसे ही अखिल भारतीय स्वरूप के विश्वविद्यालय जो कि भविष्य में स्थापित होते।

ख—देशी नरेशों के लिए स्थापित कालेज तथा सम्राट् की सेना के सदस्यों के लिए अयोजित शिक्षा-संस्थाएं।

निम्नलिखित विशिष्ट संस्थाएं प्रान्तीय सरकार के संरक्षित विभाग में रहीं।

ऐंग्लो-इन्डियन तथा यूरोपीय जातियों की शिक्षा-संस्थाएं

निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार केवल केन्द्रीय विधायिका को दिया गया। इसका प्रधान उद्देश्य यह था कि केन्द्रीय सरकार कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित कर सके।

क—नये विश्वविद्यालयों के संस्थापन, संगठन तथा कार्य

ख—किसी विश्वविद्यालय की क्षेत्रीय सीमा का निर्धारण (जिस प्रान्त में वह विश्वविद्यालय स्थित हो, उसके बाहर)

ग—५ वर्षों तक के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याएं तथा बंगाल में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन।

संरक्षित विषयों का शासन प्रान्त के गवर्नर को, अपनी कार्यकारिणी समिति (Executive Council) की सहायता से, करना था। हस्तान्तरित विषयों का शासन उसे भारतीय मंत्री या मंत्रियों की सहायता

* To the official side of the govt. of the provinces were ascribed matters frequently if inaccurately described as law and order.

‡ The transferred subjects were declared to be local self government, medical administration and sanitation and vital statistics; pilgrimages within British India, education other than European and Anglo-Indian education and such specified institution.

A. Berriedale Keith

A Constitutional History of India p. 253.

से करना था, जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता। इन मंत्रियों को प्रान्त की विधायिका सभा का सदस्य रहना चाहिये था। यदि नियुक्ति के समय वे विधायिका सभा के सदस्य न थे, तो उनके लिए ६ महीने के भीतर ही इसका सदस्य अवश्य हो जाना था। सामान्यतः गवर्नर को इन्हीं मंत्रियों के परामर्श से हस्तान्तरित विषयों का शासन करना था, किंतु, यदि वह उचित समझता तो इनके परामर्शों के विपरीत भी निर्णय दे सकता था। *

इस तरह सन् १९१९ के गवर्नमेंट ऑफ इंडिआ ऐक्ट के द्वारा प्रान्तीय शासन में द्वैध अथवा दोहरी प्रणाली व्यवहृत की गई और इसी प्रणाली के अधीन भारतीय मंत्रियों के जिम्मे भारतीय शिक्षा का प्रबन्ध, पहली बार, आया। उक्त कानून के कई दोष थे, जिनके कारण हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में भी भारतीय मन्त्रियों के अधिकार तथा कार्य सीमित हो गये। इन दोषों का विवेचन यहाँ सम्भव नहीं। शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से, कानून ने केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच जो आर्थिक व्यवस्था की उसपर एक दृष्टिपात आवश्यक है, क्योंकि, जैस कि हम आगे देखेंगे, भारतीय मंत्रियों के शिक्षा सम्बन्धी-कार्यों में, कानून की आर्थिक व्यवस्था के कारण बड़ी कठिनइयाँ उत्पन्न हुई।

सन् १९१९ ई० के पहले भारत के आर्थिक स्रोत तीन भागों में बँटे थे —केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती। १९१९ ई० के कानून ने तृतीय स्रोत का अन्त कर दिया और इस की समस्त आय को केन्द्रीय तथा प्रान्तीय स्रोतों में बाँट दिया। प्रान्तीय स्रोतों में प्रमुख थे भूमिकर, आबकारी, टिकट और सिंचाई कर। आय-कर, जो कि १९१९ के पहले प्रान्तीय सरकारों के अधीन भी था, अब केवल केन्द्रीय स्रोत हो गया। आय-कर के प्रान्तीय अधिकार से निकल जाने के कारण प्रान्तों को, विषेशतः औद्योगिग केन्द्र वाले प्रान्तों को, भारी आथिक क्षति हुई। नयी आर्थिक व्यवस्था में यह भी तय किया गया कि प्रान्तीय सरकार अपनी आय का कुछ भाग प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार को दें।

* The Governor was to be guided by the advice of his Ministers unless he saw sufficient cause to dissent from their opinion, in which case he might require action to be taken otherwise than in accordance with that advice.

A. B. Keith—A Constitutional History of India—P. 249.

इसके बाद जो रुपये प्रान्तीय सरकारों को बच जाते, वे ही रुपये प्रान्तीय शासन के कार्य पर खर्च होते। स्पष्टतः प्रान्तीय आय क्षीण पड़ गयी। प्रान्त के भीतर शासन के दो विभागों के बीच जो आर्थिक व्यवस्था की गयी वह हस्तान्तरित विषयों के हितों के विपरीत थी। प्रान्त का अर्थ विभाग, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, गवर्नर और कार्यकारिणी समिति के अधीन रहा। अतः प्रान्तीय कोष की कुंजी संरक्षित विभाग के अधीन ही रही। इससे प्रान्तीय कोष पर हस्तान्तरित विषयों का अधिकार वास्तविक रूप में कम हो गया। इससे भारतीय मन्त्रियों को अपनी शिक्षा-सम्बन्धी तथा अन्य जनहित के कार्यों में काफी कठिनाई उठानी पड़ी।

गत अध्याय में हमने देखा है कि सन् १९०२–२१८ की अवधि में केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को, शिक्षा के विस्तार तथा उन्नति के लिए, काफी रुपये अनुदान के रूप में स्वीकृत किये। सन् १९१९ ई० के बाद केन्द्रीय सरकार की ओर से प्रान्तीय सरकारों को जो भी अनुदान दिये जा रहे थे, वे बन्द कर दिये गये। इस तरह, प्रान्तों के शिक्षा-कोष को दो तरफ से आघात पहुँचा। केन्द्रीय अनुदान बन्द हो गया। साथ ही प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार को ही अपने कोष से रुपये देने पड़े। ऐसी स्थिति में शिक्षा-प्रसार के लिए भारतीय मंत्रियों को पर्याप्त रुपये उपलब्ध न थे। हम आगे देखेंगे कि अर्थाभाव के कारण शिक्षा की नयी योजनाएं, जिन्हें प्रान्त के शिक्षा मंत्रियों ने चालू की थीं, कुछ ही दिनों के बाद शिथिल पड़ गयीं। फलतः भारतीय मंत्रियों के प्रबन्ध के अधीन भी भारतीय शिक्षा की इतनी प्रगति न हो सकी, जितनी अपेक्षित थी।

भारतीय शिक्षा-मंत्रियों की दूसरी कठिनाई द्वैध-शासन की उस व्यवस्था से हुई, जिसके अनुसार भारतीय शिक्षा सेवा (आई. इ. एस.) के पदाधिकारियों पर इन मंत्रियों का अधिकार अत्यन्त सीमित हो गया। हमने देखा है कि सन् १९२१ ई० तक भारतीय शिक्षा के प्रशासन के सभी उच्च पदों पर आई. इ. एस. के लोग ही प्रतिष्ठित थे। इन लोगों की सेवाएं भारत-सचिव के अधीन थीं, तथा इन्हें कई तरह की सुविधाएं प्राप्त थीं। इन आई. इ. एस. पदाधिकारियों को यह भय था कि उनके हितों की सुरक्षा भारतीय मन्त्रियों के अधीन न हो सकेगी और इसलिए वे इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि उनके स्वत्वों, अधिकारों

तथा सुविधाओं पर किसी तरह का कुठाराघात न हो। दूसरी ओर भारतीय मन्त्रियों की यह आशंका थी कि आई. इ. एस. के पदाधिकारी उनके अनुशासन तथा निर्देश को सहर्ष स्वीकार न करेंगे और उनकी शिक्षा-योजनाओं को कार्यान्वित करने में अपना पूर्ण सहयोग न देंगे। यह भी आशंका की जा रही थी कि भारत-सचिव के अधीन होने के कारण आई. इ. एस. के पदाधिकारी अधिकतर अंग्रेज होते रहेंगे और शिक्षा विभाग का भारतीयकरण न हो सकेगा, जोकि आवश्यक था। † दोनों पक्षों की आशंकाएं निर्मूल न थीं। फलतः उच्च सेवाओं के प्रबन्ध तथा नियंत्रण आदि के सम्बन्ध में काफी संघर्ष चला। अन्त में सन् १६२४ ई० में ली आयोग (Lee Commission) ने इस प्रश्न का निपटारा किया। आयोग के प्रमुख निर्णय ये थे :—

क—हस्तान्तरित विषयों से सम्बन्धित सेवाओं के लिए, भविष्य में, कोई भी पदाधिकारी भारत-सचिव के द्वारा नियुक्त न किया जाय। ये पदाधिकारी अब से प्रान्तीय सरकारों के द्वारा ही नियुक्त हों।

ख— आई. इ. एस. के जो वर्त्तमान पदाधिकारी हैं, उनके हितों की सुरक्षा की जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि—

१—आई. इ. एस. के लोगों के लिए जो-जो पद पहले से निर्दिष्ट हैं, उन पदों पर प्रान्तीय स्तर का कोई भी पदाधिकारी तबतक नियुक्त न किया जाय, जबतक आई. इ. एस. का कोई भी दूसरा सदस्य उपलब्ध न रहे।

२—भारत-सचिव के अतिरिक्त, अन्य के द्वारा कोई भी आई. इ. एस. का सदस्य बर्खास्त नहीं किया जाय।

३—आई. इ. एस. के सदस्यों को यह अधिकार हो कि वे, अनुशासन-सम्बन्धी मामलों में, प्रान्तीय सरकार के विरुद्ध, भारत-सचिव को अपील कर सकें।

४—प्रान्त के गवर्नर की सहमति के बिना किसी भी आई. इ. एस. के पदाधिकारी का न वेतन कम न किया जाय और न उसके विरुद्ध किसी तरह का आक्षेप (censure) अंकित किया जाय।

५—आई. इ. एस. के सदस्यों के वेतन, पेन्शन तथा उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्य होने वाले रुपये भारतीय विधायिका के कार्य-क्षेत्र के बाहर रहें।

† P. S. S. Aiyer. Indian constitutional problems—p. 70.

६—आई.इ. एस. के जो सदस्य, सेवा की पूर्ण अवधि के पहले ही, अवकाश ग्रहण करना चाहें, उन्हें इसकी अनुमति दी जाय और पेन्शन की स्वीकृति के लिए ऐसे सदस्यों का मामला सहानुभूति-पूर्वक देखा जाय।

ली आयोग की इन सिफारिशों ने, सैद्धांतिक तौर पर, दोनों पक्षों की समस्याओं को हल करने की चेष्टा की। किंतु व्यावहारिक दृष्टि से, इन समस्याओं का निराकरण न हो सका। भारतीयों की ओर से यह शिकायत होने लगी की आई. इ. एस. के पदाधिकारी भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन से न सहानुभूति रखते थे, न शिक्षा के कार्य में पूरी दिलचस्पी ही ले रहे थे। ली आयोग के द्वारा इन अधिकारियों की सेवाएं तथा सुविधाएं इतनी सुरक्षित बना दी गयीं थी, कि भारतीय मन्त्रियों को इन्हें अपने अनुशासन में रखना असम्भव सा था। दूसरी तरफ, आई. इ. एस. के सदस्यों का कहना था कि भारतीय मन्त्रियों के ओर से शिक्षा विभाग के सम्यक् संचालन में कठिनाइयाँ उपस्थित की जा रहीं थी, शिक्षा की नीति स्थिर न थी तथा रोजमर्रे के कामों में काफी दस्तन्दाजी की जा रही थी। इस संघर्ष तथा मतभेद के सम्बन्ध में निश्चिततापूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। इतना अवश्य है कि शिक्षा-मन्त्रियों तथा शिक्षा-विभाग के उच्च पदाधिकारियों में सहयोग स्थापित न हो सका, जिसका प्रभाव भारतीय शिक्षा पर अच्छा न पड़ा। † सौभग्यवश यह स्थिति बहुत दिनों तक कायम न रही। सन् १६३७ ई० तक आई. इ. एस. के सभी यूरोपीय सदस्य भारतीय शिक्षा सेवा से अलग हो गये।

सन् १६२१–३७ को अवधि में भारतीय शिक्षा की प्रगति के मार्ग में तीसरी कठिनाई यह थी कि इस अवधि में केन्द्रीय सरकार ने अपने को शिक्षा-सम्बन्धी बातों से बिलकुल अलग कर लिया। यद्यपि सन् १८७० ई० से ही शिक्षा प्रान्तीय शासन का विषय समझी जाती आ रही थी, केन्द्रीय सरकार शिक्षा के मामलों में बराबर दिलचस्पी लेती आयी थी। सन् १६०२ के पश्चात् तो, जैसा कि हम गत अध्याय में देख चुके हैं, केन्द्रीय सरकार शिक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त

† But on the whole, it may be inferred that the experiment did not succeed well and the necessity of harmony between the ministers and the executive came to be greatly felt.

Nurullah & Naik—p. 279.

जागरुक तथा क्रियाशील हो गयी थी। केन्द्रीय सरकार की अभिरुचि, उसकी क्रियाशीलता तथा उसके आर्थिक अनुदान भारतीय शिक्षा की प्रगति के लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध हो रहे थे; और इस बात की आवश्यकता थी कि वे बराबर जारी रहते। किंतु, ऐसा न हो सका। सन् १६१६ के कानून के अनुसार शिक्षा, जो कि पहले से प्रान्तीय विषय थी, हस्तान्तरित विषय बन गयी। वैधानिक दृष्टि से, केन्द्रीय सरकार को हस्तान्तरित विषयों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रहा। केन्द्रीय सरकार ने इस कानूनी व्यवस्था का अक्षरशः पालन करना शुरु कर दिया और भारतीय शिक्षा से सर्वथा तटस्थ हो गयी। यहाँ तक कि उसने विभिन्न प्रान्तों की शिक्षा-प्रणालियों तथा शिक्षा-व्यवस्थाओं के संयोजन तथा समन्वय के कार्य की ओर से भी अपना मुंह मोड़ लिया। भारतीय शिक्षा से केन्द्रीय सरकार का यह बिल-गाव शिक्षा की प्रगति के लिए अत्यन्त अशुभ था। हार्टग कमिटि जिसका पूर्ण परिचय हम आगे देंगे, ने इस स्थिति पर खेद प्रकट किया और यह सिफारिश की कि शिक्षा जैसे राष्ट्रीय विषय से भारतीय सरकार का तटस्थ हो जाना उचित न था। केन्द्रीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी बातों की पूर्ण जानकारी रहनी चाहिए और इसे विभिन्न प्रान्तों के अनुभवों को संयोजित तथा समन्वित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार का यह फर्ज था कि वह प्राथमिक-शिक्षा के शत-प्रतिशत प्रसार का उत्तरदायित्व ग्रहण करे और जो प्रान्त प्राथमिक शिक्षा के पूर्ण प्रसार में, आर्थिक दृष्टि से, असमर्थ हों उन्हें आर्थिक सहायता दें। यदि इस कार्य में किसी तरह की वैधानिक कठिनाई केन्द्रीय सरकार के सामने थी, तो वह दूर हो जानी चाहिए थी। *

* We are of opinion that the divorce of the Government of India from education has been unfortunate and, holding as we do, that education is essentially a national service, we are of opinion that steps should be taken to consider anew the relation of the central Government with this subject... ...

We can not accept the view that it should be entirely relieved of all responsibility for the attainment of universal primary education. It may be.... . ...

...that some of the provinces, inspite of all efforts, will be unable to provide the funds necessary for that purpose, and the Government of India, should, therefore, be constitutionally enabled to make good such financial defeciencies, in the interests of India as a whole.

Hartog Committee Report. P. 346.

इन सिफारिशों के अनुसार, केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति (Central Advisory Board of Education) को सन् १६३५ ई० पुनर्जीवित किया। यह बोर्ड सन् १६२० ई० में स्थापित हुआ था, किंतु तीन वर्ष के पश्चात् ही विघटित हो गया था। इस तरह, सन् १६३५ के बाद से केन्द्रीय सरकार शिक्षा की ओर पुनः क्रियाशील होने लगी। किंतु, तब तो द्वैध शासन-प्रणाली के दिन समाप्त होने लगे थे। भारत के वैधानिक इतिहास में शीघ्र ही एक नया युग उपस्थित हुआ, जिसका परिचय हम अभी देंगे। अस्तु, सन् १६२१–३७ के बीच, भारतयी शिक्षा को केन्द्रीय सरकार का प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका।

उपरोक्त तीन बड़ी कठिनाइयाँ तो द्वैध-शासन प्रणाली की अनोखी व्यवस्थाओं से उद्भूत थीं। सन् १६२१–३७ के बीच भारतीय शिक्षा की प्रगति में अन्य परिस्थितियों ने भी कई तरह की असुविधाएं उत्पन्न कीं। इन परिस्थितियों में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सन् १६३० में प्रारम्भ होनेवाली विश्वव्यापी मन्दी (world economic depression) प्रमुख थीं। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् १६१६ ई० के सुधार को अस्वीकार कर दिया था। अतः यह सुधार राष्ट्रीय आन्दोलन को शान्त न कर सका, बल्कि इसे और भी तीव्र कर दिया। इसी समय महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में पदार्पण किया। उनके व्यक्तित्व ने राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप, नीति तथा कार्य—तीनों में महान् परिवर्तन किये। कांग्रेस अब एक मध्य-वर्गीय संस्था न रही, न इसके कार्य-क्रम में साम्राज्यवाद के साथ समझौते की गुंजाईश रही। कांग्रेस ने, पहली बार, भारतीय जनता की ओर से आवाज बुलन्द की और अपनी मांग की पूर्ति के लिए, समझौते के बदले, देशी-व्यापी असहयोग की नीति निर्धारित की। अमृतसर गोली-कांड के पश्चात् महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीयता अंग्रेजी सत्ता से निरन्तर संघर्ष के लिए कटिबद्ध हो गयी। इस संघर्ष की इति सन् १६४७ के १५ अगस्त को हुई, जबकि अंग्रेजों ने भारत की हुकूमत

भारतीयों को सौंप दी।* अस्तु, सन् १६२१ के पश्चात् भारतीय नेताओं का ध्यान राष्ट्रीय आन्दोलन में ही अधिकतर केन्द्रित रहने लगा और भारतीय शिक्षा को इनके प्रोत्साहन से वंचित रह जाना पड़ा। भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों की चेष्टाओं के पीछे देश की जनता का सहयोग अत्यन्त सीमित रहा। आर्थिक क्षेत्र में सन् १६३० ई० में जो विश्वव्यापी मन्दी प्रारम्भ हुई, वह कई वर्षों तक कायम रही। इसके फलस्वरूप सरकारी आय के स्रोत सूखने लगे और सरकारी कोष खाली पड़ने लगा। जो रुपये उपलब्ध थे, वे शासन और व्यवस्था के कार्य में ही व्यय किये जाने लगे। रचनात्मक कार्यों के खर्चे में कटौती शुरू हुई। फलतः देश के सभी रचनात्मक कार्यों को आर्थिक विपन्नता का शिकार होना पड़ा। शिक्षा भी इससे बच न सकी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सन् १६२१–३७ की अवधि में प्रान्त के भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों के समक्ष कई समस्याएं तथा कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, जिनके कारण इनके हाथों से भारतीय शिक्षा की वह प्रगति न हुई, जो अन्यथा हुई रहती। फिर भी, इस अवधि में, भारतीय शिक्षा के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई, जो कि निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट है। †

* The Congress that emerged from that period was under the revolutionary leadership of Mahatma Gandhi. No longer a middle class movement, it set itself to organise the masses, and the revolutionary cry of no compromise with imperialism and the programme of nation-wide non-co-operations, gave to the Congress for the first time its claim to speak effectively for the people of India.

‡ With Gandhi's final assumption of leadership after the Amritsar tragedy, India enters a period of determined struggle witn the British power in India.

Panikkar—A Survey of Indian History pp. 275-276.

† Nurullah & Naik—619.

शिक्षा संस्थाएं	इनकी संख्या		इनके छात्रों की संख्या	
	१६२१-२२	—१६३६-३७	१६२१-२२	—१६३६-३७
विश्वविद्यालय	१०	१५	अप्राप्य	६,६६७
कला कालेज	१६५	२७१	५४,४१८	८६,२७३
व्यावसायिक कालेज	६४	७५	१३,६६२	२०,६४५
माध्यमिक स्कूल	७,५३०	१३,०५६	११,०६,८०३	२२,८७,८७२
प्राथमिक स्कूल	१,५५,०१७	१,६२,२४४	६१,०६,७५२	१,०२,२४,२८८
विशिष्टि स्कूल	३,४४४	५,६४७	१,२०,६२५	२ ५६,२६६
कुल स्वीकृत संस्थाएं	१,६६,१३०	२,११,३०८	७३,६६,५६०	१,२८,८८,०४४
अस्वीकृत संस्थाएं	१६,३३२	१६,६४७	४,२२,१६५	१,२८,८८,०४४
कुल जमा	१,८२,४५२	२,२७,६५५	७८,१८,७२५	१,३३,८६,५७४

हार्टग कमिटि

सन् १६२१–३० की अवधि के सामान्य परिचय को समाप्त करने के पहले "हर्टग कमिटि रिपोर्ट" का एक संक्षिप्त अध्ययन आवश्यक है। यह रिपोर्ट भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। सन् १८२१–३७ की शिक्षा की प्रगति के उपरोक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि इस अवधि में भारतीय शिक्षा की प्रगति, अनेक कठिनाइयों के समक्ष भी, बहुत अधिक हुई। स्वभावतः शिक्षा-संस्थाओं के तीव्र विस्तार के कारण भारतीय शिक्षा पद्धति में कई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं, जिनका विश्लेषण तथा आवश्यकतानुसार निराकरण आवश्यक हो गया। अतः "शिक्षा-व्यवस्था के पुनर्गठन के प्रश्न की ओर सरकार का ध्यान सन् १६२८ ई० में फिर से आकर्षित हुआ उसी वर्ष भारतीय विधान आयोग (Indian statutory Commission) ने एक सहायक समिति (Auxilliary Committee), जिसे इसके अध्यक्ष के नाम (Sir Philp Hartog) पर हार्टग समिति भी कहते हैं, नियुक्त की। समिति का कार्य "भारतीय शिक्षा के संगठन और राजनीति एवं विधान से उनका संबंध तथा उन्नति के मार्ग निर्धारित करने तक" सीमित था। *

* शम्भु नाथ झा—भारतीय शिक्षा की प्रगति—पृष्ठ—८३

समिति की रिपोर्ट दूसरे ही वर्ष प्रेषित हो गयी। यह रिपोर्ट, जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, सन् १९२१–३७ की अवधि की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिक्षा-रिपोर्ट है। रिपोर्ट की सिफारिशों का पूर्ण विवरण आगे यथास्थान प्रस्तुत किया जायगा। यहाँ उसके कुछ सामान्य विचारों का उल्लेख किया जाता है।

रिपोर्ट में बताया गया "कि भारतीय वर्गों में सर्वत्र शिक्षा-संबंधी चेतना के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। क्या नेता वर्ग, क्या जन-साधारण, क्या दलित-वर्ग, क्या मुसलिम-वर्ग, क्या महिला-वर्ग, सभी शिक्षा के प्रति जागरुक है। विद्यार्थियों की संख्यात्मक वृद्धि इस बात की साक्षी है।

किन्तु साथ ही शिक्षा-व्यवस्था के समस्त अंगों में व्यर्थता और प्रभावहीनता ही दृष्टिगोचर होती है। प्रारंभिक शिक्षा में तो यह व्यर्थता बहुत अधिक मात्रा में है।" †

अतः कमिटि ने अपना यह मत प्रकट किया कि भारतीय शिक्षा से सभी क्षेत्रों में पुनर्गठन, संयोजन तथा समुन्नति की आवश्यकता थी। यह भी आवश्यक था कि सरकार तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्धारण फिर से हो। ‡

इस तरह कमिटि ने भारतीय शिक्षा की प्रगति में संख्यात्मक विस्तार की अपेक्षा गुणात्मक उन्नति पर ही अधिक बल दिया। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, अधिकांश भारतीय इस विचार से सहमत न थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा की उन्नति की अपेक्षा शिक्षा का विस्तार ही अधिक महत्त्व रखता था। अतः हार्टग कमिटि की रिपोर्ट ने भारत की शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में पुराने संघर्ष को फिर से ताजा कर दिया।

† Throughout the whole educational system there is waste and ineffectiveness. In the primary system ....
...the waste is appalling. Hartog Committe Report—P. 345.

‡ At almost every point that organisation needs reconsideration and strengthening and the relations of the bodies responsible for the organisation of education need readjustment.
Hartog Committee Report—P. 346.

उत्तरदायी शासन का दूसरा चरण—प्रान्तों में स्वशासन

सन् १९३५ ई० में भारत के वैधानिक इतिहास का दूसरा पर्व प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट ने भारत में उत्तरदायी शासन के विकास की ओर एक लम्बा डेग भरा। कानून के अनुसार केन्द्र के लिए संघीय तथा प्रान्तों के लिए स्वशासन (autonomy) की व्यवस्था की गयी। प्रान्त की द्वैध शासन प्रणाली, जिसे गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट १९१९, ने प्रतिष्ठत की थी, उठा दी गयी और भारत के सभी अंग्रेजी प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन के प्रतिष्ठापन का आयोजन किया गया। कई कारणों से, जिनका विवेचन यहाँ संभव नहीं, संघीय शासन की योजना भारतीय नेताओं को मान्य न हुई। अतः कानून के द्वारा प्रस्तावित संघ-शासन प्रतिष्ठापित न हो सका। किंतु, प्रान्तीय व्यवस्था को भारतीय नेताओं ने मान लिया और इसके अनुसार ६ अंग्रेजी प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया। शेष प्रान्तों में भी अन्य मंत्रिमंडलों को जनता का बहुमत प्राप्त हुआ। इस तरह, पहली बार भारतीय शिक्षा की बागडोर पूर्ण रूप से भारतीयों के हाथ में आयी। इन्हें परिस्थितियाँ भी अनुकूल मिली। प्रान्तीय कोष पर इनका अब पूर्ण अधिकार था। सन् १९३० की मन्दी की अवधि समाप्त हो गयी थी और देश की सामान्य आर्थिक स्थिति पहले से कहीं अच्छी थी। शिक्षा-विभाग से आई० इ० एस० के लोग लगभग अलग हो गये थे। यूरोपीय पदाधिकारियों की संख्या नगण्य थी। इस तरह सन् १९३७ ई० में वे सभी समस्याएं, जिनके कारण, द्वैध शासन के अधीन, भारतीय शिक्षा को कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं, स्वतः हल हो गयीं थीं। अतः यह आशा की जा रही थी कि प्रान्तीय स्वशासन के अन्तर्गत भारतीय शिक्षा का पुनर्निर्माण अत्यन्त व्यापक तथा शीघ्र होगा।

किंतु ऐसा न हो सका। प्रान्तों में स्वशासन स्थापित होने के दो ही वर्ष बाद सितम्बर १९३९ ई० में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। युद्ध में मित्र राष्ट्रों के पक्ष में भारत, भारतीय नेताओं की सहमति के बिना ही, शामिल कर लिया गया। कांग्रेस ने इसका विरोध किया और अंग्रेज सरकार से युद्ध के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण चाहा। इसी प्रश्न पर कांग्रेस तथा अंग्रेज सरकार में मतभेद हुआ, जिसके फल-

स्वरूप सन् १६४७ ई० में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने प्रान्तीय शासन से अपने पदत्याग दे दिये। सरकार ने ६३वीं धारा के अनुसार कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के स्थान पर अन्तरिम शासन (interim Govt.) की व्यवस्था की। सन् १६४०-४५ तक प्रान्तीय शासन इस अन्तरिम अथवा संरक्षक सरकार के अधीन रहा। इन सरकारों का ध्यान युद्ध की ओर ही केन्द्रित रहा। स्वभावत: प्रान्त के सभी रचनात्मक कार्य उपेक्षित हो गये। शिक्षा की दशा भी वही हुई। सन् १६४६ ई० में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने पुन: पदग्रहण किया। तब से ये मंत्रिमंडल अपने पद पर कायम रहे। किंतु १५ अगस्त १६४७ ई० को भारत स्वतंत्र हो गया और भारत के इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

इस तरह, प्रान्तीय स्वशासन की अवधि (सन् १६३७-४७) में प्रान्तों में कांग्रेसी सरकार केवल ५ वर्षों तक क्रियाशील रही। साथ ही इस अवधि में देश का राजनीतिक वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध रहा। वस्तुत: सन् १६३७-४७ में जितनी राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न हुईं, उतनी पहले कभी न हुई थीं। इस अवधि में कांग्रेस को अंग्रेजी हुकूमत के अतिरिक्ति मुसलिम लीग से भी निरन्तर लोहा लेना पड़ा। सन् १६४२ ई० का "भारत छोड़ो" आन्दोलन अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीयता का अन्तिम मोर्चा था। राष्ट्र की सारी शक्तियां इसके सुदृढ़ और सफल बनाने में केन्द्रीभूत हो गयीं। ऐसी स्थिति में शिक्षा के पुनर्गठन तथा विस्तार की ओर भारतीय नेताओं का ध्यान अपेक्षित रूप में, आकृष्ट न हो सका। अत: प्रान्तीय स्वशासन के युग में भी भारतीय शिक्षा उतनी प्रगति न कर सकी, जितनी प्रगति की आशा थी।

सन् १६२१-४७ की अवधि के इस सामान्य परिचय के साथ हम भारतीय शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में, इस अवधि में, जो प्रगति हुई, उसका संक्षिप्त परिचय नीचे उपस्थित करते हैं।

क—द्वैध शासन के अधीन शिक्षा की प्रगति—१६२१-३७

उच्च शिक्षा

सन् १६२१-३७ के बीच विश्वविद्यालय तथा कालेज की शिक्षा में काफी प्रगति हुई। इस अवधि में ५ नये विश्वविद्यालय स्थापित हुए। वे थे—दिल्ली विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, आंध्र विश्वविद्यालय, राजा सर अन्नामलाई

चेट्टियर विश्वविद्यालय, चिदम्बरम (मद्रास)। अन्तिम विश्वविद्यालय शैक्षणिक तथा अधिकांशतः आवासिक था। इन नये विश्वविद्यालयों की स्थापना के अतिरिक्त, उच्च शिक्षा की समुन्नति तथा अनुसंधान के आयोजन के लिए बम्बई, मद्रास तथा पटना विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन किया गया। इसी अवधि में इलाहाबाद विश्वविद्यालय पूर्णतः शैक्षणिक विश्वविद्यालय हो गया तथा कलकत्ता एवं पंजाब विश्वविद्यालयों में शिक्षण की व्यवस्था विस्तृत की गयी।

विश्वविद्यालयों के विस्तार के साथ-साथ सन् १९२१-३७ की अवधि में देश के कालेजों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। इन कालेजों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षण विभागों की सम्मिलित संख्या, सन् १९३६-३७ में, ४४६ थी। हम पहले देख चुके हैं कि सन् १९२१-२२ में यह संख्या केवल २०७ थी। कालेजों की वृद्धि के अनुपात में उनके छात्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई। सन् १९२१-२२ ई० में इन छात्रों की संख्या ६६,२५८ थी। सन् १९३६-३७ में यह संख्या १,२६,२२८ हो गयी।

सन् १९२१-३७ की अवधि में विश्वविद्यालयों के द्वारा अनुसंधान के कार्य में आशातीत प्रगति हुई। इस उद्देश्य से विश्वविद्यालयों ने सुसमृद्ध पुस्तकालय आयोजित किये, अनुसंधान विभाग कायम किए, अनुसंधान करने वाले छात्रों के लिए उपाधियाँ (Research Degrees) निर्धारित कीं तथा छात्रवृत्तियाँ एवं अन्य प्रोत्साहन व्यवहृत किए। इनका फल यह हुआ कि विश्वविद्यालय की शिक्षा का वृत्त विस्तृत तथा समुन्नत होने लगा। सैनिक शिक्षा के आयोजन के लिए विश्वविद्यालयों में युनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर (University Training Corp) का संगठन किया गया। यह संगठन छात्रों के बीच बहुत ही लोक-प्रिय सिद्ध हुआ। कई विश्वविद्यालयों ने तो सैनिक शिक्षा, विज्ञान के रूप में, विधिवत शुरू कर दी। छात्रों की शारीरिक उन्नति तथा उनके स्वास्थ्य की ओर भी इस अवधि में ठोस कार्य हुए। छात्रों के स्वास्थ्य की नियमित जांच के लिए चिकित्सक नियुक्त किए गए। अनिवार्य शारीरिक शिक्षा भी कई स्थानों में जारी की गयी। छात्रावासों की सफाई तथा उनके सुप्रबन्ध की ओर भी विश्वविद्यालयों ने ध्यान दिया। यद्यपि स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में उक्त अवधि में विशेष उपलब्धि न हुई, इसकी ओर निश्चित कदम अवश्य उठाया गया।

हमे स्मरण होगा कि कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने ऐसे विद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की थी, जिनमें कालेजों की इन्टरमिडिएट कक्षाओं की पढ़ायी, माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा के पूरक के रूप में, होती। इस सिफारिश को कार्यन्वित करने के लिए सन् १६२१-३७ में ठोस कार्य हुए। सन् १६२१ ई० के बाद जो विश्वविद्यालय कायम हुए, उनमें 'इन्टरमिडिएट' कक्षाएं या तो विश्वविद्यालय की शिक्षा से निष्कासित कर दी गयीं या इसके लिए विश्वविद्यालयों को अधिकार दिया गया। ढाका विश्वविद्यालय ने इन्टरमिडिएट कक्षाओं के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर न लिया। इनके प्रबन्ध के लिए बंगाल सरकार के अधीन एक बोर्ड स्थापित किया गया। इलाहाबाद, लखनऊ तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों ने भी इन्टरमिडिएट कक्षाओं के लिए इसी तरह की व्यवस्था की। दिल्ली तथा मद्रास विश्वविद्यालयों के अधिनियमों में व्यवस्था की गयी कि भविष्य में, जब वे चाहें तथा जब परिस्थिति अनुकूल हो, इन्टरमिडिएट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध से हटा सकते थे।

किन्तु इंटरमिडिएट कालेजों की उपयोगिता के सम्बन्ध में शीघ्र ही मतभेद उपस्थित हो गया। यह कहा जाने लगा कि इनकी शिक्षा निम्न कोटि की थी। साथ ही, इन कालेजों के आयोजन से कालेजों तथा विश्वविद्यालय—दोनों ही को भारी आर्थिक क्षति उठानी पड़ रही थी। कालेजों को इंटरमिडिएट कक्षाओं के छात्रों से, शुल्क के रूप में, पर्याप्त आय होती थी और विश्वविद्यालयों को परीक्षा-शुल्क के रूप में अच्छी रकम प्राप्त होती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने यह सिफारिश की थी कि सरकार विश्वविद्यालयों की आर्थिक क्षति की पूर्ति के लिए अतिरिक्त अनुदान दे। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण, सरकार इस स्थिति में न थी कि वह आयोग की इस सिफारिश का कायान्वित करे। फलतः जिन विश्वविद्यालयों ने माध्यमिक कक्षाओं को कालेजों से अलग कर दिया था, उन्हें बड़ी आर्थिक क्षति उठानी पड़ रही थी। इस तरह, शैक्षणिक तथा आर्थिक—दोनों ही दृष्टिकोणों से माध्यमिक कक्षाओं का विश्वविद्यालय से निष्कासन युक्तिसंगत न था। अतः सन् १६२६ ई० के पश्चात् अधिकांश लोगों का विचार कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के परामर्श के विरुद्ध हो गया। इस वर्ष के बाद जो भी विश्वविद्यालय कायम हुए अथवा पुनर्गठित किये गये, उनमें माध्यमिक कक्षाएं

(intermediate classes) भी विश्वविद्यालय शिक्षा के अंग रहीं। आंध्र विश्वविद्यालय कानून १६२८, बम्बई विश्वविद्यालय कानून १६२८, अन्नमलाई विश्वविद्यालय कानून १६२६ तथा पटना विश्व-विद्यालय कानून १६३२–सभी कानूनों ने विश्वविद्यालयों को माध्यमिक कक्षाओं को अपने प्रबन्ध में रखने का आदेश दिया। दिल्ली विश्व विद्यालय, कानून के हिदायतों के विरुद्ध, इन कक्षाओं को अपने अधीन रखती गयी। मद्रास में भी यही स्थिति रही। संयुक्त प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) में हाई स्कूलों तथा इंटरमिडिएट कालेजों के लिए एक बोर्ड (Boad of High schools and Intermediate Education) स्थापित हो चुका था। किंतु फिर भी आगरा विश्व-विद्यालय कानून (१६२७) ने विश्वविद्यालय को माध्यमिक कक्षाओं की परीक्षा का अधिकार दे दिया। स्पष्टत: देश के शिक्षा-व्यवस्थापक तथा शिक्षा शास्त्री इन कालेजों से इन्टरमिडिएट कक्षाओं के अलग करने के प्रस्ताव के विरुद्ध हो गये थे। जिन विश्वविद्यालयों ने कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने की चेष्टा पूर्ण अथवा आंशिक रूप में की, वहां भी स्नातक कक्षाओं (Degree Course) की अवधि तीन वर्ष की न की गयी, जो आवश्यक थी। वस्तुत: सैडलर आयोग के द्वारा परामर्शित उच्च शिक्षा का पुनस्संगठन कहीं भी, पूर्ण रूप में, व्यवहृत न हुआ। †

हार्टग कमिटि ने उक्त प्रश्न का विवेचन तो किया किन्तु इसके सम्बन्ध में अपना निश्चित सुझाव न दिया। केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति ने यह परामर्श उपस्थित किया कि इन्टरमिडिएट कक्षा दो भागों में बाँटी जाय—सीनीयर और जुनियर। सिनियर कक्षा कालेज से संलग्न रहे, जुनियर कक्षा माध्यमिक स्कूलों से संलग्न कर दी जाय। किन्तु इस दिशा में कुछ कार्य न हुआ।

सन् १६२१–३७ ई० की अवधि में भारतीय विश्वविद्यालयों के कार्यों को संयोजित करने की दिशा में ठोस कार्य हुआ। इसकी सिफारिश कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने, ज़ोरदार शब्दों में की थी। उसके बाद भी समय समय पर इसकी आवश्यकता पर प्रकाश पड़ता रहा। फलस्वरूप सन् १६२४ ई० में अखिल भारतीय विश्वविद्यालय सम्मेलन, पहली बार, सिमला में बुलाया गया।

† Nurullah & Naik—pp. 391—92

यहीं एक अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड स्थापित हुआ, जिसके सदस्य सभी विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि हुए। तब से इस बोर्ड की बैठक बराबर होती रही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस बोर्ड ने विश्वविद्यालय शिक्षा को संयोजित, सुसंगठित तथा समुन्नत बनाने के कार्य में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

हार्टग कमिटि और विश्वविद्यालय शिक्षा

हार्टग कमिटि ने विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रसार तथा इसकी नवीन प्रगतियों की सराहना की, किंतु इसने उन त्रुटियों का भी निर्देश किया, जो विश्वविद्यालय-शिक्षा को दूषित कर रही थीं। कमिटि की सम्मति में, विश्वविद्यालयों से, उचित संख्या में तथा उचित योग्यता के, सामाजिक नेता उत्पन्न न हो रहे थे। विश्वविद्यालयों का शैक्षणिक स्तर नीचा हो गया था। इनमें आनर्स को शिक्षा की उचित व्यवस्था न थी, विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय समृद्ध न थे तथा इनके छात्रों में सामुदायिक जीवन का अभाव था। अत: कमिटि ने यह परामर्श दिया कि :—

क—यद्यपि शैक्षणिक विश्वविद्यालय, कई रूपों में, संबद्धीय विश्वविद्यालयों से अच्छे हैं, भारत की आवश्यकताएं केवल इस प्रकार के विश्वविद्यालयों से पूरी न हो सकतीं हैं। अत: संबद्धीय विश्वविद्यालयों का रहना, काफी आगे तक के लिए, आवश्यक है। † संबद्धीय विश्वविद्यालयों को उच्च शिक्षा के सुधार के निमित्त, कालेजों में अपनी ओर से शिक्षकों को भेजना चाहिए। ये शिक्षक कालेजों के शिक्षा को सम्बलित करेंगे। विश्वविद्यालय का यह एक प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह कालेजों के लिए एक सुसंपन्न केन्द्रीय पुस्तकालय तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं स्थापित करे। ‡

† It is clear, however, that the requirements of India cannot be met solely by unitary universities and that the affiliating universities are likely to remain for many years to come.

Hartog Committee Report.—p. 122.

‡ The University would thus aim at supplementing and not suplanting the staff of the colleges. It should be an essential function of the university to provide and maintain science laboratories and a central library on an adequate scale which would enable the teachers to keep themselves up-to-date.

Hartog Committee Report—p. 126.

ख—विश्वविद्यालय शिक्षा तथा इसके नीचे की शिक्षा के हितों के लिए यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय का कार्य समुन्नत किया जाय और उच्च शिक्षा उन्हीं छात्रों को दी जाय जो इसके उपयुक्त हों, ताकि विश्वविद्यालय अधिक लाभप्रद तथा कम नैराश्य-प्रद हो।

ग—आनर्स कक्षा "पास कोर्स" कक्षा से सर्वथा अलग रहे तथा इसका अध्यापन कम केन्द्रो में किया जाय। इस केन्द्र में विश्वविद्यालय तथा कालेज के शिक्षक, सम्मिलित रूप में, उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति करें। †

घ—विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को पूर्ण रूप से समृद्ध किया जाय, ताकि इनके द्वारा उच्च अध्यापन तथा अनुसंधान संभव हो सके। देश के धनी-मानी महानुभावों को विश्व-विद्यालयों के पुस्तकालयों की संपन्न बनाने के लिए दान देना चाहिए। सम्भवतः उनके लिए इससे बढ़कर परोपकार का अन्य कार्य नहीं।

च—स्नातकों की बेकारी की समस्या हल करने के लिए यह आवश्यक है कि।

१— सभी सरकारी नौकरियों के लिए विश्वविद्यालयों की उपधियां अनिवार्य न रहें। किरानीगीरी आदि सरकारी नौकरियों के लिए, आवश्यकतानुसार, विशिष्ट विभागीय परीक्षाएं आयोजित हों।

२—टेकनिकल शिक्षा की व्यवस्था विस्तृत की जाय। किंतु यह भलीभांति समझ लिया जाय कि केवल टेकनिल शिक्षा के विस्तार से

† In the interests of the university education itself and still more in the interests of the lower educational institutions,.........the time has come when all efforts should be concentrated on improving university work, on confining the university to its proper function of giving good advanced education to students who are fit to receive it, and in fact to making the university a more fruitful and less disappointing agency in the life of the Community.

Hartog Committee Report. p. 137.

बेकारी की समस्या हल न होगी, जब तक कि टेकनिकल शिक्षा प्राप्त किये हुए व्यक्तियों की खपत के लिए उपयुक्त उद्योग न प्रस्तुत हों।†

२—विश्वविद्यालयों में रोजगार-प्रवन्धक कार्यालय (Employment Bureau) संगठित किया जाय।

छ—विश्वविद्यालयों का उत्तरदायित्व केवल उनके छात्रों तक सीमित नहीं है। यह उत्तरदायित्व देश के सभी लोगों को सन्निविष्ट करता है। जन-सामान्य को जागरूक, भिज्ञ तथा समुन्नत बनाने के उद्देश्य से. विश्वविद्यालयों का कार्य-क्षेत्र, उसकी चाहारदिवारी से बाहर विस्तृत किया जाय। विश्वविद्यालयों में प्रसार केन्द्र (extension centres) स्थापित हों। प्रसार शिक्षा विश्वविद्यालय के कार्य का एक अविच्छिन्न अंग रहे।‡

माध्यमिक शिक्षा

सन् १९२१–३७ की अवधि में, उच्च शिक्षा की भांति, माध्यमिक शिक्षा का यथेष्ट विस्तार हुआ। सन् १९२१–२२ में स्वीकृत माध्यमिक स्कूलों की संख्या ७५३० थी। सन् १९३६–३७ में यह संख्या १३,०५६ हो गयी। इसी तरह, माध्यमिक स्कूलों की छात्र-संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १९२१–२२ ई० में यह संख्या ११,०६,८०३ थी। सन् १९३६–३७ में यह संख्या २२८७,४७२ हो गयी। इस तरह, माध्यमिक स्कूलों की संख्या, उपर्युक्त अवधि में, दूनी के लगभग हो गयी और इनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या दूनी से कुछ अधिक ही हो गयी। माध्यमिक शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार के कई कारण थे। उनमें प्रमुख ये थे :—

† We fully sympathise with the desire to develop such technicai training though we feel bound to point out that the training of technical experts only creates more un-employed, unless there are industries to absorb them.

Hartog Committee Report p.—155.

‡ The universities have responsibilities not only to their students but also to the country at-large. Here and there, a few courses of lectures have been given to the general public, but not on a large scale, nor with any great success. Much more might be done in this way to educate the general public.

Hartog Committee Report. p. 144.

क—इस अवधि में, देश की जनता में, शिक्षा के प्रति एक अभूतपूर्व जागरूकता उत्पन्न हो गयी, जिसके फलस्वरूप समाज के पिछड़े लोग भी अपने बच्चों की माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रयत्नशील हो गये।

ख—इस अवधि में शहरों तथा देहातों में अनेकानेक माध्यमिक स्कूल आविर्भूत हुए। स्कूलों के निर्माण को प्रेरणा कई तरह से प्राप्त हुई। कुछ लोगों ने, अपने क्षेत्र के बच्चों की सुविधा के लिए, उसी क्षेत्र में स्कूल खोला, कुछ ने दूसरे क्षेत्र के लोगों का अनुकरण किया, कुछ व्यक्तियों तथा सामाजिक संस्थाओं ने, शिक्षा प्रसार के जनोपकारी कार्य के लिए, स्कूलों का निर्माण किया। कहीं स्कूल के कार्यकर्ताओं में फूट हो गयी, जिससे एक दल ने, दूसरे दल से असंतुष्ट होकर, अलग स्कूल खोल दिया। कई स्कूल ऐसे शिक्षित नवयुवकों के द्वारा कामय किए गए, जो बेकार थे तथा जिनके समक्ष रोजगारी का प्रश्न जटिल हो गया था। स्कूल खोलकर ऐसे व्यक्ति उसमें स्वयं शिक्षक बन गये और अपनी आर्थिक समस्याओं को हल करने में समर्थ हुए।

स्कूलों के विस्तार का एक शुभ फल यह निकला कि देहाती क्षेत्रों के बालकों के लिए माध्यमिक शिक्षा आसानी से प्राप्य हो गयी। शहर-स्थित स्कूलों में सामान्य स्थिति के लोग अपने बच्चों को, खर्च की अधिकता के कारण, भेज नहीं सकते थे। ऐसे लोगों के लिए देहात के माध्यमिक स्कूल वरदान के रूप में प्रकट हुए।

स्कूलों के विस्तार के साथ-साथ सन् १९२१–३७ की अवधि में, माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा में कई ऐसे परिवर्तन हुए, जो भारतीय छात्रों के लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध हुए। शिक्षा के माध्यम के क्षेत्र में, भारतीय भाषाओं का उपयोग इस अवधि में बहुलता से होने लगा। यद्यपि, सन् १९३७ ई० तक माध्यमिक स्कूलों में शिक्षण का माध्यम पूर्णरूप से मातृभाषाएं न हुईं, किन्तु इस दिशा में प्रगति काफी हुई। सन् १९३७ ई० में माध्यमिक स्कूलों के माध्यम का प्रश्न हल हो गया था। माध्यम के रूप में भारतीय भाषाएं पूर्णत: प्रतिष्ठित हो गयी थीं। अंग्रेजी लगभग पद-च्युत हो चुकी थी।

सन् १९२१–३७ की अवधि में शिक्षकों के वेतन की वृद्धि तथा उनकी सेवा की स्थितियों को उन्नत बनाने की दिशा में प्रगति हुई। अधिकांश गैरसरकारी स्कूलों के शिक्षकों के वेतन अत्यन्त कम थे,

उनकी सेवाओं की शर्त्तें भी निर्दिष्ट न थीं, स्कूल के प्रबन्धकों के विरुद्ध उन्हें कोई अधिकार प्राप्त न था। उपर्युक्त अवधि में भारत के विभिन्न प्रान्तों में ग्रान्ट-इन-एड के नये नियम बनाये गये तथा पुराने नियमों को संशोधित किया गया। इनके अनुसार शिक्षकों के वेतन तथा उनकी सेवा की शर्त्तें निर्धारित कर दी गयीं। हर सहायता-प्राप्त स्कूलों के लिए इन नियमों के पालन अनिवार्य थे। † प्रान्तीय सरकारों ने शिक्षकों की वेतन-वृद्धि आदि के लिए विशिष्ट अनुदान भी स्वीकृत किये।

हार्टग कमिटि और माध्यमिक शिक्षा

कमिटि की दृष्टि में माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित प्रमुख दोष थे :—

क—माध्यमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम विश्वविद्यालय की प्रवेशक-परीक्षा की आवश्यकताओं से पूर्णत: प्रभावित थे। प्रवेशक-परीक्षा का महत्त्व इसलिए था कि इसके द्वारा सरकारी नौकरियाँ तत्क्षण मिल सकती थीं। साथ ही इसके द्वारा विश्वविद्यालय का द्वार भी छात्रों के लिए खुल जाता था, जो उच्च सरकारी नौकरियों का मार्ग प्रशस्त करता था। प्रवेशक परीक्षा के प्रभुत्व के कारण माध्यमिक स्कूलों का शिक्षण में एक निर्जीव एकरूपता आ गयी थी, जिससे माध्यमिक शिक्षा सर्वथा एकांगी तथा साहित्यिक हो गयी थी।

ख—प्रवेशक-परीक्षा में असफल होने वाले छात्रों की संख्या अत्यधिक थी। ऐसे छात्रों के समय, प्रयत्न तथा रुपये-पैसे व्यर्थ जाते थे।

प्रवेशक-परीक्षा में असफलता के दो मुख्य कारण थे :—

क—छात्रों की भरती के समय उनकी योग्यता की पूरी जाँच नहीं

---

† बिहार-उड़ीसा के ग्रान्ट-इन-एड नियमों का संशोधन किया गया, जिसके अनुसार शिक्षकों के वेतन तथा उनकी सहूलियतों में सुधार हुआ। सन् १९२५–२६ ई० में इसका संशोधन पुन: किया गया। सहायता-प्राप्त स्कूलों में 'प्रोभिडेन्ट फंड' की व्यवस्था भी की गयी। सन् १९२७ के पश्चात् सहायता-प्राप्त गैरसरकारी स्कूलों को यह अधिकार मिला कि वे, 'मैनेजिंग कमिटि' के द्वारा बर्खास्त किए जाने पर, "इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स" के पास अपील कर सकते थे।

होती थी, जिससे अनुपयुक्त और असमर्थ छात्र माध्यमिक स्कूलों में दाखिल होकर उच्च शिक्षा के प्रवेश-द्वार तक पहुँच जाते थे। †

ख—छात्रों की वर्गोन्नति अत्यन्त ढिलाई से की जाती थी, जिससे कमजोर छात्र ऊँचे वर्गों में प्रति वर्ष चढ़ते जाते थे।

इन दोषों के निराकरण के लिए कमिटि ने यह परामर्श दिया कि—

क—जो बालक ग्रामीण व्यवसायों में लग सकें उनके लिए मिडल वर्नाक्यूलर स्कूल जारी रखे जायं। इन स्कूलों के पाठ्य-क्रम में विविधता लायी जाय।

ख—मिडल कक्षाओं में ही पाठ्य-क्रम का विभाजन हो जाय, ताकि वह छात्रों को औद्योगिक तथा व्यावसायिक कार्यों की ओर मोड़ सके। यहीं, उद्योग तथा व्यवसाय-सम्बन्धी विशेषीकृत शिक्षा (Specialised study) की पृष्ठभूमि भी छात्रों के लिए तैयार हो जाय।

कमिटि ने यह मत प्रकट किया कि मिडल वर्नाक्यूलर स्कूलों के इस प्रकार के पुनस्संगठन से न केवल इन स्कूलों की अपनी समस्याएं सुलझ जायंगी, बल्कि इसके द्वारा देहाती क्षेत्रों के पुनर्निर्माण तथा उत्थान का कार्य सुगम हो जायगा। *

माध्यमिक स्कूलों के शिक्षण के स्तर को उठाने के लिए, कमिटि के विचार में, यह आवश्यक था कि शिक्षकों के वेतन तथा सेवा-सम्बन्धी सुविधाओं में उन्नति की जाय। कमिटि ने इस दिशा में, जो प्रयास

† The reason for the uniformity of the course in the middle English and high schools is not far to seek, it is the influence of the matriculation and all that this means to the Indian boy, both as an immediate qualification for service, and as a gate to university course and the possession of a Degree as a higher qualification for service,

Hartog Committee Report. P. 109.

* We hold that, even now, if the middle vernacular course were remodelled and adapted to rural requirements, and if the opportunities of rural work and service now open to those who complete that course were more widely realised, then not only the gravity of the problems confronting anglo-vernacular education would be diminished, but rural reconstruction and improvement would be materially assisted.

Hartog Committee Report. p. 109.

हुए थे, उनकी सराहना की। किंतु कमिटि के विचार में वे पर्याप्त न थे। अत: उसने यह सिफारिश की कि "शिक्षकों की सेवा की स्थितियों में काफी परिवर्तन किया जाय, जिसके विना माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा का गुणात्मक मानदण्ड ऊँचा नहीं उठ सकता।" †

प्राथमिक शिक्षा

सन् १९२१–३७ की अवधि में, भारत में, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रगति हुई। भारतीय शिक्षा-मंत्रियों ने देश की निरक्षरता को दूर करने की पूरजोर चेष्टा की और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की ओर उन्होंने पर्याप्त ध्यान दिया। गत अध्याय में हमने विभिन्न प्रान्तों के अनिवार्य शिक्षा कानूनों का उल्लेख किया है। सन् १९२१–३७ की अवधि में भी कई प्रान्तों में अनिवार्य शिक्षा कानून पास किये गये। वे ये थे:—

बम्बई—सन् १९२३ ई० में बम्बई प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) पास हुआ, जिसके अनुसार बम्बई नगर को छोड़कर, प्रान्त के सभी क्षेत्रों में, बालक तथा बालिकाओं—दोनों को ही लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य बना दी गयी।

आसाम—सन् १९२६ ई० में प्राथमिक शिक्षा कानून (Primary Education Act) पास किया गया। यह कानून प्रान्त के शहरी तथा देहाती—दोनों क्षेत्रों में लागू हो सकता था। अनिवार्य शिक्षा बालक तथा बालिकाओं दोनों के लिए लागू होनी थी।

संयुक्त प्रान्त—सन् १९२६ ई० में ही जिला बोर्ड प्राथमिक शिक्षा कानून (District Board Primary Education Act) पास हुआ, जिसका क्षेत्र केवल देहातों तक सीमित रहा। यह कानून देहाती इलाकों के बालक और बालिकाओं—दोनों ही के लिए व्यवहृत हो सकता था।

बंगाल—प्रान्त के देहाती क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के तीव्र विस्तार के लिए तथा देहाती स्कूलों के सुप्रबन्ध के लिए सन् १९३० ई० में बंगाल प्राथमिक शिक्षा कानून पास किया गया। यह आशा की गयी कि

† In spite of what has been done in recent years the conditions of service of the teacher must be greatly altered before the quality of secondary education can become satisfactory.

Hartog Committee Report. p. 118.

इस कानून के द्वारा प्राथमिक शिक्षा सभी बालकों को प्राप्य हो जायगी और १० वर्षों के भीतर ही यह शिक्षा सभी बच्चों के लिए अनिवार्य हो जायगी। यह कानून कलकत्ता नगर तथा अन्य नगरपालिका क्षेत्रों को छोड़कर सारे प्रान्त के लिए लागू था। कानून ने ६-११ वर्ष के बच्चे-बच्चियों की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की। कानून ने "प्राथमिक शिक्षा कर" लगाने का अधिकार भी जिला बोर्डों को दिया। †

इन चेष्टाओं के फलस्वरूप, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, सन् १६२१-३७ की अवधि में प्राथमिक शिक्षा की बड़ी प्रगति हुई। सन् १६२१-२२ ई० में कुल प्राथमिक स्कूलों की संख्या १५५,०१७ थी। सन् १६२६-२७ ई० में यह संख्या बढ़कर १८४,८२६ हो गयी। इसी अनुपात में प्राथमिक स्कूलों के छात्रों में भी वृद्धि हुई। सन् १६२१-२२ ई० में इन स्कूलों में ४,६४,६६, छात्र भरती थे, सन् १६२६-२७ ई० में इन क्षेत्रों की संख्या ८,०१७,६२३ हो गयी।

हार्टंग कमिटि तथा प्राथमिक शिक्षा

अपनी रिपोर्ट में कमिटी ने भारत को प्राथमिक शिक्षा की उन कठिनाइयों का उल्लेख किया, जो प्राथमिक स्कूलों के विस्तार के मार्ग में रोड़े उपस्थित कर रही थीं। प्रमुख कठिनाइयाँ, कमिटि के विचार में, ये थीं :—

क—भारत की अधिकांश जनता का ग्रामवासी होना

ख—जनता की गरीबी, निरक्षरता तथा रूढ़िवादिता

ग—जन-संख्या के घनत्व की कमी, बस्तियों का छिटफुट रूप में बसे रहना, यातायात के साधनों का अभाव तथा प्राकृतिक कठिनाइयाँ,

घ—ऐसे क्षेत्रों का बाहुल्य जिनके निवासी नितान्तः पिछड़े थे

च—जाति, धर्म, तथा भाषा-जनित विभिन्नताएं

† The Act is intended to make better provision for the progressive extension and for the management and control of Primary education in rural areas in Bengal, so as to make it available to all children and with a view to make it compulsory within ten years.

Preamble to the Act of 1930—J.M. Sen—History of Elementary Education in India—P.222

इन कठिनाइयों के बावजूद भी भारत की प्राथमिक शिक्षा ने जो उन्नति की थी, उसकी ओर भी कमिटि ने ध्यान दिया। किन्तु कमिटि की दृष्टि में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार का दूसरा पहलू भी था, जो कि शुभ न था। प्राथमिक शिक्षा में व्यर्थता (wastage) की मात्रा इतनी अधिक थी कि शिक्षा के विस्तार से वास्तविक लाभ न हो रहा था। इस व्यर्थता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे।

क—प्राथमिक शिक्षा में गतिहीनता तथा निष्फलता

ख—प्राथमिक शिक्षा-प्राप्त किये हुए छात्रों का पुनः निरक्षर हो जाना

ग—वयस्क शिक्षा के साधनों का अभाव

घ—प्राथमिक स्कूलों के अनियमित तथा अवैज्ञानिक वितरण

च—एक-शिक्षक स्कूलों का बाहुल्य

छ—बहुत से प्राथमिक स्कूलों का नाम मात्र का अस्तित्व

ज—पाठ्य-क्रम की अनुपयुक्तता

झ—शिक्षण की प्रभावहीनता

ट—निरीक्षकों की अपर्याप्तता

प्राथमिक शिक्षा के सुधार के लिए, कमिटी के विचार में, स्कूलों का निर्वाध तथा तीव्र विस्तार अत्यन्त हानिकर था और इस बात की आवश्यकता थी कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में संयोजन तथा समुन्नति की ओर ही ध्यान केन्द्रित किया जाय। प्राथमिक स्कूलों को सुसंगठित तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कमिटि ने निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत कीं।

क—प्राथमिक स्कूलों के छिट-फुट विस्तार की अपेक्षा उनको संश्लिष्ट करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाय।

ख—प्राथमिक स्कूलों की शिक्षा कम से कम ४ वर्ष की हो।

ग—प्राथमिक स्कूलों की शिक्षा का सामान्य स्तर ऊँचा किया जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षकों के प्रशिक्षण को उन्नत किया जाय, उनके लिए समय-समय पर अल्पकालिक प्रशिक्षण आयोजित किया जाय। यह भी आवश्यक है कि शिक्षकों का पद इतना आकर्षक बनाया जाय कि इसकी ओर सुयोग्य व्यक्ति आकृष्ट हो सकें।

घ—प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाय।

च—स्कूल लगने का समय तथा स्कूलों की छुटियाँ स्थानीय परि-स्थितियों के अनुकूल रहें।

छ—प्राथमिक स्कूलों की सब से निचली कक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय और इस बात की चेष्टा की जाय कि इन स्कूलों से गतिहीनता तथा व्यर्थता निष्कासित हो जाय।

ज—प्राथमिक स्कूल ग्राम-उत्थान के केन्द्र बनें।

झ—प्राथमिक शिक्षा का सारा अधिकार स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नहीं दिया जाय। प्राथमिक शिक्षा के हित के लिए यह आवश्यक है कि सरकार प्राथमिक स्कूलों के निरीक्षण तथा प्रशासन के वांछित अधिकार स्वयं ग्रहण करे।

ट—सरकारी निरीक्षकों की संख्या काफी बढ़ायी जाय।

ठ—अनिवार्य शिक्षा को लागू करने में जल्दबाजी न की जाय। पहले इसके लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की जाय।

हार्टग कमिटि की उपर्युक्त सिफारिशों से यह स्पष्ट है कि कमिटि ने, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी, संगठन, संयोजन तथा गुणात्मक उन्नति पर ही जोर दिया। कमिटि की ये सिफारिशें सरकारी अधिकारियों को रुचिकर सिद्ध हुईं। हमने देखा है कि वे अधिकारी, बराबर से, शिक्षा के प्रसार की अपेक्षा शिक्षा के उत्कर्ष पर बल देते आये थे। दूसरी ओर, भारतीयों की दृष्टि में, हार्टग कमिटि की सिफारिशें युक्तिसंगत न दीख पड़ी। उनका कहना था कि प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति अब तक अत्यन्त धीमी थी। सन् १८८१–१९३१ की अवधि में भारत में साक्षरता की वृद्धि ३·५ से ८·५ हुई थी। अतः ऐसे देश में जहाँ ९२ प्रतिशत जनता अशिक्षित हो, प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति शिथिल की जाय—यह उचित न था। शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के विपक्ष में भारतीय न थे। किंतु उनकी यह धारणा थी कि, इस उन्नति के बहाने, शिक्षा के विस्तार को स्थगित करना ठीक न था। गुणात्मक उन्नति के कार्य पीछे भी प्रारम्भ किये जा सकते थे। देश की पहली आवश्यकता स्कूलों के विस्तार की थी। हार्टग कमिटि ने प्राथमिक स्कूलों में गतिहीनता तथा व्यर्थता के बारे में जो बातें कहीं, वे, भारतीयों की दृष्टि में, अतिशयोक्ति-पूर्ण थीं। गतिहीनता तथा व्यर्थता स्कूलों में अवश्य थीं, किंतु उतनी नहीं, जितनी कि कमिटि ने घोषित की थी।

इस तरह हार्टग कमिटि की रिपोर्ट ने प्राथमिक शिक्षा संबंध में पुराने विवाद को फिर से, और सशक्त रूप में, उ यह नीति संख्यात्मक विस्तार की होनी चाहिए थी अथवा उन्नति की ?

हार्टग कमिटि की रिपोर्ट का तात्कालिक फल यह हुआ कि प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति शिथिल पड़ गयी। शीघ्र ही विश्वव्यापी मन्दी, जिसका उल्लेख हम इस अध्याय के सामान्य परिचय में कर चुके हैं, समस्त देश में आच्छादित हो गई। इसने प्राथमिक शिक्षाके विस्तार की गति धीमी कर दी। फलस्वरूप, सन् १९२७–३७ की अवधि में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अत्यन्त कम हुई। सन् १९२६–२७ में प्राथमिक स्कूलों की संख्या १८४८२९ थी। सन् १९३६-३७ ई० में यह संख्या केवल १९२,२४४ हुई। इसी अनुपात में प्राथमिक स्कूलों की छात्र-संख्या में भी नगण्य वृद्धि हुई। सन् १९३१–३२ ई० में प्राथमिक स्कूलों में ९,१६२,४५० छात्र दाखिल थे। सन् १९३६-३७ में यह संख्या १०,२२४,२८३ हुई। अनिवार्य शिक्षा की स्थिति भी सन् १९३६-३७ ई० में शोचनीय थी। समस्त भारत में केवल १६७ शहरों तथा १३,०७२ गाँवों में अनिवार्य शिक्षा लागू थी। बिहार में, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस वर्ष १ शहर तथा १ ग्राम में अनिवार्य शिक्षा कानून व्यवहृत हो रहा था।

स्त्री शिक्षा

सन् १९२१–३७ की अवधि में स्त्री शिक्षा की असाधारण प्रगति हुई। यह निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट है।

कन्या विद्यालयों की संख्या

वर्ष	कला-कालेज	हाई स्कूल	मिड्ल स्कूल	प्राथमिक स्कूल	विशिष्ट स्कूल	कुल
१९२१–२२	१२	१२०	५४८	२२,५७९	२५८	२३,५१७
१९३६–३७	३१	२९७	९९८	३२,२७३	४०४	३३,९८९
वृद्धि —	१९	१७०	४५०	९६९४	१४६	१०,४७२

छात्राओं की संख्या

वर्ष	कला कालेज	हाई स्कूल	मिडल स्कूल	प्राथमिक स्कूल	विशिष्ट स्कूल	कुल
१६२१-२२	६३८	२५,१३०	८५,०७६	१,१६५,८६२	११,१८४	१३१८२२३
१६३६-३७	६०३६	११४४८१	२१६६६४	२,६०७,०८६	२३,०२७	२६६८८२१
वृद्धि —	५१०१	८६३५१	१३१८८६	१४११६४	११,८४३	१६४०४६८

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि १६२२–३० के बीच सभी प्रकार के कन्या स्कूलों में पर्याप्त वृद्धि हुई। यह वृद्धि प्राथमिक स्कूलों की अपेक्षा माध्यमिक तथा उच्च स्कूलों एवं कालेजों में अधिक हुई। कालेजों तथा हाई स्कूलों की संख्या लगभग ढाई-गुनी हो गई तथा माध्यमिक स्कूलों की लगभग दूनी। प्राथमिक स्कूलों की वृद्धि का अनुपात अपेक्षाकृत कम रहा, अर्थात् इनकी संख्या डेढ़गुणी से भी कम रही। छात्राओं की संख्या में तो कालेज तथा उच्च स्कूलों में अत्यधिक वृद्धि हुई। सन् १६२१–२२ में केवल ६३८ लड़कियाँ सामान्य कालेजों में थीं। सन् १६३० में वे ६०३७ हो गईं अर्थात् पहले से लगभग ७ गुणी हो गयीं। उच्च स्कूलों में भी वृद्धि का अनुपात लगभग यही रहा, माध्यमिक स्कूलों में लगभग तीन-गुणा तथा प्राथमिक स्कूलों में केवल दो-गुणा। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों की उच्च शिक्षा की ओर लोग विशेष रूप से आकृष्ट होने लगे थे। इसके कई कारण थे, जिनका संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

सन् १६२१–३७ के बीच भारत के स्त्री-समाज में एक विशेष प्रकार की जागृति प्रारम्भ हुई, जिसके परिणामस्वरूप उनकी वैयक्तिक तथा सामाजिक स्थितियाँ कई रूपों में सुधरने लगीं।

क—सामाजिक क्षेत्र में बाल विवाह की प्रथा, विशेषतः उच्च जातियों से, क्रमशः मिटने लगी। लोग बाल विवाह के दुष्परिणामों से परिचित होने लगे थे। शिक्षित परिवारों में तो बाल-विवाह लुप्तप्राय होने लगा था। यद्यपि सरकार भारत की इस सामाजिक कुप्रथा की ओर उदासीन ही रही, फिर भी देश के कुछ विचारक नेता इसके लिए प्रयत्नशील रहे, जिसके फलस्वरूप सन् १६२६ में

रजामन्दी की अवस्था १४ कर दी गई। सन् १६२६ में श्री हरविलास सारदा का सारदा कानून (Sarda Act) पास हुआ, जिसके अनुसार १४ वर्ष से कम अवस्था वाली लड़कियों का विवाह गैरकानूनी एवं अवैध ठहराया गया।

ख—राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों को मत-प्रदान का अधिकार स्थानीय शासन के संबंध में पहले ही प्राप्त हो चुका था। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्यूनिसिपल बोर्ड आदि के चुनाव में न केवल वे वोट दे सकती थीं, बल्कि इन बोर्डों के सदस्य के लिए उम्मीद्वार भी हो सकती थीं। भारतीय जनमत स्त्रियों की इन राजनीतिक हकों का विरोधी न था, फलतः उन्हें ये राजनीतिक अधिकार इंग्लैंड आदि अन्य देशों की अपेक्षा सुगमता से प्राप्त हो गये। स्वभावतः इन राजनीतिक अधिकारों के व्यावहारिक प्रयोग के लिए उनकी शिक्षा अपेक्षित थी।

ग—उच्च शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप कुछ ऐसी महिलाएं तैयार हो गईं, जो स्त्रियों की सामाजिक उन्नति के लिए उन्हें, विभिन्न रूपों में, प्रेरणा देने लगीं। इन विदुषी महिलाओं ने स्त्री-समाज को संगठित करना आरम्भ किया, ताकि इस संगठन के द्वारा स्त्री-समाज की नाना कुरीतियों तथा असुविधाओं को दूर करने का एक जोरदार आन्दोलन प्रचालित हो जाय। सन् १६२६ ई० में अखिल भारतीय महिला सभा संगठित की गई तथा इसी सभा के तत्त्वाधान में सन् १६२७ ई० में अखिल भारतीय महिला शिक्षा सम्मेलन आमंत्रित हुआ। स्त्री समाज के इस आन्तरिक जागरण से उनकी सामाजिक स्थितियों के सुधार की एक बहुत बड़ी शक्ति उत्पन्न हो गयी।

घ—महात्मा गांधी के राजनीतिक आन्दोलन तथा उनकी समाज-सुधार चेष्टाओं से भारतीय स्त्रियों का बड़ा उपकार हुआ। राजनीतिक क्रान्ति की देशव्यापी बाढ़ में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियां भी निमग्न हो गईं। जब-जब मौका आया तब-तब स्त्रियों ने पुरुषों के साथ राजनीतिक आन्दोलनों में प्रशंसनीय भाग लिया। सन् १६२१ तथा १६३१ के असहयोग आन्दोलन में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी लाठियाँ खाईं, वे भी पुरुषों के साथ जेल गईं तथा अन्य कठिनाइयाँ उन्होंने भी बर्दास्त कीं। इन अवसरों ने उनमें आत्म-विश्वास एवं आत्म-मर्य्यादा की भावना को परिपुष्ट किया। साथ ही, महात्मा गांधी ने स्त्रियों के सामाजिक उत्थान के लिए अभूतपूर्व कार्य किये। स्त्री-समाज की

समस्त कुरीतियों तथा सामाजिक अत्याचारों के उन्मूलन में महात्मा गांधी की चेष्टाएं सतत् प्रवृत्त रहीं। उनकी रचनात्मक योजनाओं में बहुत ऐसे कार्य थे, जिनका सीधा संबंध स्त्री-समाज के समुत्थान से था। इनके आश्रम में पुरुषों के समकक्ष ही स्त्रियों को भी स्थान प्राप्त था।

इन मिले-जुले कारणों के फलस्वरूप सन् १६२१–३७ के बीच स्त्री शिक्षा की बड़ी प्रगति हुई। यह प्रगति, दूसरी ओर भी, परिलक्षित हुई। सन् १६२१ के पहले भारतीय जनमत सह-शिक्षा के पक्ष में बिलकुल न था। बच्चों के प्राथमिक स्कूलों में भी लोग अपनी बच्चियों को भेजना अनुचित समझते थे। किंतु सन् १६२१ के बाद उनके इस दृष्टिकोण में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। राजनीतिक क्षेत्र में साथ-साथ काम करने वाले स्त्री-पुरुष अपने बच्चे-बच्चियों को एक ही स्कूल में पढ़ने में किसी तरह की अड़चन न देखने लगे। फलतः सन् १६३७ ई० में सह-शिक्षा का अनुपात सैकड़े ४३·४ था। प्रायः सभी प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सह-शिक्षा पद्धति ही व्यवहृत होने लगी। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए यही पद्धति सबसे उपयुक्त थी। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के द्वारा नियुक्त स्त्री-शिक्षा समिति ने भी प्रथामिक स्कूलों में सह-शिक्षा के लिए ही सिफारिश की। जिन देहाती बस्तियों की आबादी घनी हो, वहाँ, बालिकाओं के लिए, अलग स्कूल स्थापित किये जा सकते थे।

हार्टग कमिटि और स्त्री शिक्षा

सन् १६२१–३७ के उपर्युक्त असाधारण प्रगति के बावजूद भी स्त्री-शिक्षा का अनुपात केवल ३ प्रतिशत था। स्पष्टतः यह स्थिति सन्तोष-प्रद न थी और इसकी आवश्यकता पूर्ववत् बनी हुई थी कि स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए कुछ नयी रीतियां निर्धारित हों। सन् १६२७ ई० में हार्टग (Hartog) कमिटि ने स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए निम्नलिखित सुझाव पेश किये।

१—स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए उपयुक्त योजना तथा कार्य-क्रम तैयार करने के हेतु एक-एक सुयोग्य महिला-अफसर प्रान्तीय राजधानियों में नियुक्त की जांय।

२—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्यूनिसिपल बोर्ड, लोकल बोर्ड आदि सभी स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं तथा स्कूल-कमिटियों में स्त्री-सदस्य रहें।

३—कन्या स्कूलों के निरीक्षिकाओं की संख्या में वृद्धि की जाय।

४—प्राथमिक शिक्षा के लिए अलग स्कूलों की अपेक्षा मिश्रित स्कूलों को ही प्रश्रय दिया जाय।

५—लड़कियों के लिए अनिवार्य शिक्षा की प्रगति धीरे-धीरे होनी चाहिये।

६—उच्च स्कूलों में लड़कियों के लिए अतिरिक्त विषय रखे जांय। उच्च स्कूलों की शिक्षा के पश्चात् लड़कियों के लिए विशेष प्रकार की औद्योगिक शिक्षा दी जाय। विश्वविद्यालय लड़कियों के लिए गृह-विज्ञान स्वास्थ्य-सफाई, संगीत आदि की शिक्षा आयोजित करे। किसी भी हालत में, लड़कियों की उच्च शिक्षा के पाठ्य-विषय लड़कों के लिए निर्धारित विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं के द्वारा सर्वथा प्रभावित न हों।

७—प्राथमिक स्कूलों में स्त्री-शिक्षिकाओं की कमी के प्रमुख कारण हैं — प्रशिक्षण की सुविधाओं का अभाव, शहरी शिक्षित स्त्रियों की देहातों से अरुचि तथा उनके वेतन की न्यूनता। अत: इन कारणों को दूर करने की चेष्टा की जाय। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियों के प्रशिक्षण की खास व्यवस्था की जाय।

८—अब तक लड़कियों की शिक्षा लड़कों की शिक्षा से बहुत पिछड़ी रही है। अब समय आ गया है कि इस कमी की पूर्ति की जाय और इसके लिये यह उचित है कि लड़कियों की शिक्षा को सभी योजनाओं में पर्याप्त स्थान दिया जाय।

अपनी सिफारिशों का समाहार करते हुये कमिटि ने यह विचार प्रकट किया कि—

शिक्षा की प्राप्ति का अधिकार पुरुष तथा स्त्री-दोनों ही को है। इनमें से कोई भी प्रगति के पथ पर अकेला नहीं बढ़ सकता। यदि वह ऐसा करेगा, तो इससे न केवल सामाजिक तथा राष्ट्रीय हितों को आघात पहुचेगा, वल्कि उसे स्वयं भी क्षति होगी। अब वह समय आ गया है कि स्त्री तथा पुरुष दोनों की शिक्षाओं को संतुलित किया जाय......... ।

कमिटि ने यह निश्चित विचार प्रकट किया कि भारतीय शिक्षा के समग्र विकास के लिए यह आवश्यक था कि शिक्षा-प्रसार की हर योजनाओं में कन्याओं की शिक्षा को प्रथम स्थान दिया जाता। †

मुसलमानों की शिक्षा

सन् १९२१–३७ की अवधि में मुसलिम शिक्षा की यथेष्ट प्रगति हुई। इस प्रगति के फलस्वरुप सन् १९३७ ई० में, शिक्षा के क्षेत्र में, भारतीय मुसलमान अन्य लोगों से नीचे न रहे, बल्कि उनकी सामानुपातिक प्रतिशत संख्या अन्य लोगों की संख्याओं से अधिक हो गयी। मुसलमानों की जन-संख्या समस्त जन-संख्या की २४·७ प्रतिशत पुरुषों के लिए, तथा २४·१ प्रतिशत स्त्रियों के लिए थी। किन्तु मुसलिम छात्रों की संख्या समस्त छात्र संख्या की २६·१ प्रतिशत तथा छात्राओं की संख्या २५·६ प्रतिशत थी। स्पष्टतः भारतीय मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में अन्य लोगों से, सामूहिक रूप में, आगे थे। हाँ उच्च हिन्दुओं से अभी भी वे पिछड़े हुए थे। मुसलिम शिक्षा की इस अभूतपूर्व प्रगति के कई कारण थे। पहला कारण यह था कि सन् १८७१–७२ ई० से ही सरकार के द्वारा इसे विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा था। दूसरा कारण यह था कि कुछ मुसलिम नेता इस कार्य के लिए विशेष सचेष्ट था। तीसरा कारण यह था कि बीसवीं सदी में भारतीय मुसलमानों में भी जागृति की लहर दौड़ गयी थी।

हार्टग कमिटि और मुसलिम शिक्षा

हार्टग कमिटि ने मुसलिम शिक्षा की समस्याओं का, खास तौर से, अध्ययन किया और इसके सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें कीं। इनमें सब से महत्त्वपूर्ण सिफारिश मुसलिम शिक्षा के विशिष्ट विद्यालयों के सम्बन्ध में थी। कमिटि के विचार में विशिष्ट तथा अलग संस्थाओं से मुसलिम शिक्षा के प्रसार में सहायता अवश्य मिली थी; किंतु ये संस्थाएं मुसलिम शिक्षा के स्तर को अन्य लोगों की शिक्षा के

† Education is not the privelege of one sex, but equally the right of both and neither one sex nor the other can advance by itself without a strain on the social and national system and injury to itself..............

We are definitely of opinion that, in the interest of the advance of Indian education as a whole, priority should now be given to the claims of girls' education in every scheme of extension.

Hartog Committee Report.—P. 183.

जहाँ हरिजनों की आबादी अधिक थी अथवा जहाँ के सामान्य स्कूल, किसी भी हालत में, हरिजनों को अंगीकृत करने के लिए प्रस्तुत न थे। सन् १६२६ में हार्टग कमिटि (Hartog Committee) ने भी इस नीति की पुष्टि की। कमिटि की सम्मति में विशिष्ट स्कूल हरिजन तथा उच्च हिन्दू के विभेद को निरर्थक कायम रखते थे तथा इनके विस्तार से प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने में अनावश्यक खर्चे की वृद्धि होती। † इस नीति को कार्यान्वित करने की ओर सरकार पूरी कोशिश करती रही, जिसके फलस्वरूप सन् १६३७ ई० में लगभग सभी प्रान्तों में अधिकांश हरिजन छात्र सामान्य स्कूलों में ही पढ़ते थे। बम्बई प्रान्त में विशेष स्कूलों में पढ़ने वाले हरिजन छात्रों की संख्या केवल २० प्रतिशत थी। संयुक्त प्रान्त में सामान्य स्कूलों में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या पहले से ५३ प्रतिशत बढ़ गई। मध्य प्रान्त में हरिजन छात्रों के लिए "विशेष स्कूल की आवश्यकता बिलकुल नहीं रह गई" थी। पंजाब में लगभग सभी अलग स्कूल (segregate school) बन्द कर दिये गये। किंतु बिहार तथा उड़ीसा में इन स्कूलों की आवश्यता अब भी थी। सन् १६३३ ई० में बिहार को प्राथमिक शिक्षा कमिटि (Primary Education Committee of Bihar) ने हरिजनों के लिए सामान्य-स्कूलों में ही पूरी सुविधाएं देने की सिफारिश की। साथ ही कमिटि ने यह भी सिफारिश की कि उन क्षेत्रों में जिन में हरिजन आबादी घनी हो विशिष्ट स्कूल, अस्थायी रूप में, खोले जायं। उड़ीसा में ५०५ विशिष्ट स्कूल हरिजनों के लिए खुले हुये थे, जिनमें १० हरिजन बालिकाओं के लिए थे।

सन् १६२१-३७ के बीच हरिजन-शिक्षा में दूसरी तरह की प्रगति भी हुई। हार्टग कमिटि ने हरिजन बच्चों के प्रति सामान्य व्यवहार के अतिरिक्त यह भी सिफारिश की कि सामान्य स्कूलों में एक निश्चित संख्या में हरिजन जाति के सुयोग्य तथा प्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त किये जायं। महात्मा गांधी की अनवरत हरिजन-उत्थान चेष्टाओं ने भी कमिटि के इस सुझाव को कार्यान्वित होने का अवसर

† The Hartog Committee definitely recommended that the politcy of separate schools was wrong because (i) it tends unnecessarily to emphasize the differences between the Harijan and the caste Hindus and (ii) because it largely and unnecessarily increases the cost of compulsory education.

Nurullah & Naik—P. 79

मिला। हरिजन तथा उच्च हिन्दू के बीच की खाई दिन-दिन भरने लगी। एक ही स्कूल में अब न केवल उच्च हिन्दू तथा हरिजन छात्र पढ़ते देखे जाते थे, बल्कि एक ही स्कूल में उच्च हिन्दू तथा हरिजन शिक्षक भी अध्यापन करते पाये जाने लगे।

हरिजनों की सामान्य सामाजिक स्थिति में अभूतपूर्व उन्नति सन् १६३० ई० के पश्चात् दृष्टिगोचर हुई। महात्मा गांधी जी ने हरिजन-सुधार आन्दोलन को कांग्रेस के कार्य-क्रम में प्रमुख स्थान सन् १६२१ में ही दे दिया था। उनके विचार में हरिजन-उत्थान के बिना, स्वराज्य का कोई महत्त्व ही नहीं था। † तब से वे बराबर इसी चेष्टा में रहे कि हिन्दू समाज में हरिजन भाइयों को समान अधिकार प्राप्त हों। सन् १६३२ ई० में महात्मा जी का ऐतिहासिक उपवास हिन्दुओं की रूढ़िवादिता पर अन्तिम प्रहार था। उपवास के केवल सात दिनों में महात्मा जी ने हिन्दू जाति के शताब्दियों के कलुष को धो डाला। २५ सितम्बर १६३२ को बम्बई में स्वर्गीय पंडित मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व में भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं की एक बैठक हुई, जिसमें यह घोषित किया गया कि—

"आज से हिन्दू समाज का कोई भी व्यक्ति अछूत नहीं समझा जायगा, और जो व्यक्ति आज तक अछूत समझे जाते आये हैं उन्हें अन्य हिन्दुओं की तरह, कुएं, स्कूल, सड़कें आदि सभी सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग के पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे।"

सर्व-सम्मति से यह भी निश्चित हुआ कि सभी हिन्दू नेताओं का यह कर्त्तव्य होगा कि वे हरिजनों की समस्त सामाजिक असुविधाओं को जायज तथा अहिंसक उपायों के द्वारा यथाशीघ्र मिटा देने का प्रयत्न करें। ‡

इन प्रस्तावों के कार्यान्वित करने की चेष्टाएं सारे देश में प्रारम्भ हो गईं। हरिजन सुधार आन्दोलन को सतत जाग्रत रखने के उद्देश्य से महात्मा गांधी ने अपनी पत्रिका का नाम सन् १६३३ ई० में 'हरिजन' रक्खा। उसी वर्ष मई महीने में उन्होंने २१ दिन का सुप्रसिद्ध उपवास

‡ Untouchability can not be given a secondary place in the programme. Without the removal of that taint, swaraj is a meaningless term.—Mahatma Gandhi.

† The History of the Indian National Congress—Pattabhi Sitaramaya—p. 536.

भी प्रारम्भ किया, जिसका उद्देश्य हरिजनों के हितों के प्रति लोगों को और भी अधिक जागरूक बनाना था।

आदिवासियों की शिक्षा

सन् १६१६ ई० के पश्चात् आदिवासियों की शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान पहले की अपेक्षा विशेष आकृष्ट हुआ। भारतीय मन्त्रियों की दृष्टि से आदिवासियों की शिक्षा का प्रश्न स्वभावतः ओझल न हो सका। किंतु कई कठिनाइयों के कारण आदिवासी शिक्षा में सरकारी चेष्टायें उतनी सफल न हो सकीं, जितनी कि वे अन्य क्षेत्रों में हुई थीं। फिर भी बिहार तथा बम्बई प्रान्तों में सरकारी प्रयत्नों को कुछ सफलता अवश्य मिली। सन् १६२१-२२ में बिहार और उड़िसा में ५०,३०० आदिवासी बच्चे तथा ८,००० बच्चियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। कुछ आदिवासी छात्र विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिये प्रस्तुत थे। संथालों की शिक्षा के लिये बिहार और उड़िसा सरकार की एक विशेष योजना संचालित थी। संथाल शिक्षा के आयोजन तथा निरीक्षण के लिये दो स्कूल इन्सपेक्टर तथा १३ सब-इन्सपेक्टर नियुक्त थे। संथाल जाति के शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिये ३ सरकारी "गुरु ट्रेनिंग स्कूल" अलग किये हुए थे। पाँच मिशन ट्रेनिंग स्कूलों को भी सरकार इस कार्य के लिए आर्थिक सहायता देती थी। संथाल जाति के छात्रों के लिये विशेष प्रकार की छात्रवृत्तियाँ भी सरकार ने मंजूर की थी। सभी सरकारी स्कूलों में इन छात्रों का प्रवेश-शुल्क अन्य छात्रों से कम लिया जाता था।

बम्बई प्रान्त में भील तथा कोली आदि जातियों की शिक्षा में अच्छी प्रगति हुई। कलिपरज जाति में शिक्षा प्रसार के लिए विशेष प्रकार की रीतियाँ व्यवहृत की गईं। इन जातियों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए एक केन्द्रीय स्कूल खोला गया। इस स्कूल के द्वारा ७० शिक्षक तैयार किये गये, जो अपने जाति के विशिष्ट स्कूलों में काम कर रहे थे। इस स्कूल के कई छात्र अहमदाबाद ट्रेनिंग कॉलेज की प्रवेश-परीक्षा में प्रथम आये।

आसाम में आदिवासियों की शिक्षा विशेषतः धर्म-प्रचारकों के हाथों में ही रही। सन् १६२२ ई० में ४७६ स्कूल इन संस्थाओं के द्वारा संचालित थे, जिनमें १३,७७२ आदिवासी छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। गारो की पहाड़ी में १५५ स्कूल धर्म-प्रचारकों के द्वारा चलाये जा रहे थे।

बाद में इनमें १०१ स्कूल सरकारी प्रबन्ध के अन्तर्गत कर लिए गए। बंगाल में भी सरकार के द्वारा कुछ स्कूल आदिवासियों के लिए खोले गये। मिदनापुर तथा बाकुड़ा के संथालों के लिये दो शिक्षा-बोर्ड सरकार के द्वारा संगठित किये गये।

सन् १६२१ से १६३६ तक हरिजनों की शिक्षा में बड़ी प्रगति हुई–यह हम देख चुके हैं। किन्तु इस अवधि में भी आदिवासियों की सांस्कृतिक स्थिति में विशेष सुधार न किया जा सका। सरकारी स्कूलों की संख्या पहले से अवश्य कुछ बढ़ी, किन्तु यह वृद्धि संतोषजनक न थी। उनकी शिक्षा की ओर न सरकार ही पूर्णतः सचेष्ट हुई और न कोई भारतीय जन-संस्था ही। फलतः इनकी शिक्षा पूर्ववत् विशेषतः धर्म-प्रचारक स्कूलों के द्वारा सम्पादित होती रही। सन् १६३६ के पश्चात् आदिवासी शिक्षा की ओर कॉंग्रेसी सरकार विशेष प्रगति-शील होने लगी। लगभग सभी प्रान्तों में हरिजनों की शिक्षा के साथ-साथ आदिवासियों की शिक्षा भी सरकारी योजना में उचित स्थान पाने लगी। योजना के प्रमुख अंगों में आदिवासियों के लिए विशेष स्कूल खोलना, उनके लिए विशेष छात्रवृत्तियाँ देना, आदिवासी शिक्षकों के लिए खास व्यवस्था करना प्रमुख थे। इधर आदिवासियों में भी शिक्षित व्यक्ति तैयार हो चुके हैं, जो अपने जाति के लोगों को संगठित तथा समुन्नत बनाने के लिए सचेष्ट हैं। किन्तु अब भी, शिक्षा के क्षेत्र में, आदिवासियों की स्थिति सबसे अधिक गिरी हुई है।

व्यावसायिक शिक्षा

सन् १६२१–३७ की अवधि में व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी प्रगति हुई। लोक-प्रिय व्यवसाय, पहले की तरह, वकालत, चिकित्सा तथा इन्जिनियरिंग रहे।

सन् १६३७ ई० में १४ लॉ कालेज थे तथा ६ विश्वविद्यालयों के द्वारा संचालित कानून विभाग थे। इनके अतिरिक्त ६ सामान्य कालेजों में कानून पढ़ाने की व्यवस्था थी।

चिकित्सा—सन् १६३७ ई० में मेडिकल कालेजों की संख्या ११ थी, जिनमें ४,६३६ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। सन् १६०१–२ में यह संख्या कालेजों के लिए ४ तथा इनके छात्रों के लिए १,४६६ थी। इसी तरह, मेडिकल स्कूलों में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १६०२ ई० में इन स्कूलों की संख्या २२, थी जिनमें २७२७ छात्र भरती थे। सन् १६३६–३७ ई० में इन स्कूलों की संख्या ३० तथा छात्रों की संख्या

६,६६६ हो गयी। इस तरह मेडिकल स्कूलों में छात्रों की संख्या स्कूलों की संख्या से अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी। इस अवधि में स्थापित होने वाले चिकित्सा-विद्यालयों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं—

क—लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज, दिल्ली—यह संस्था सन् १६१६ ई० में स्थापित हुई। स्त्रियों की चिकित्सा-शिक्षा के लिए समस्त भारत में यही एक विशिष्टि संस्था है।

ख—स्कूल आफ ट्रोपिकल मेडिसिन कलकत्ता—यह सन् १६२२ ई० में स्थापित हुआ। अपने ढंग का यह विद्यालय समस्त भारत में अकेला है।

ग—अखिल भारतीय "इन्सटिच्यूट आफ हाइजिन ऐन्ड पब्लिक हेल्थ", कलकत्ता—यह संस्था सन् १६३२ ई० में स्थापित हुई। इसके प्रधान उद्देश्य दो हैं—जन-स्वास्थ्य में स्नातकोत्तर शिक्षा का आयोजन करना तथा रोगों के निवारणार्थ साधनों का अनुसंधान करना।

सन् १६३३ ई० में भारत सरकार ने मेडिकल कौंसिल ऐक्ट (Medical Council Act) पास किया, जिस के अनुसार भारत के लिए एक मेडिकल कौंसिल (Medical Council of India) अथवा चिकित्सा-परिषद् कायम की गयी। इस कौंसिल के प्रधान कार्य दो रखे गये—

क—भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए चिकित्सा के अध्यापन के शिक्षा-क्रम की स्वीकृति देना

ख—भारत विश्वविद्यालयों की चिकित्सा सम्बन्धी उपाधियों को विदेशों में स्वीकृति दिलवाना।

मेडिकल कौंसिल ने भारत की चिकित्सा–शिक्षा के स्तर को उन्नत बनाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

इन्जिनियरिंग—व्यावसायिक शिक्षाओं में लोकप्रियता के विचार से इन्जिनियरिंग शिक्षा का तीसरा स्थान था। अतः सन् १६०२–३७ की अवधि में इन्जिनियरिंग शिक्षा की भी यथेष्ट प्रगति हुई। सन् १६०२ ई० में इन्जिनियरिंग कालेजों की संख्या केवल ४ थी। सन् १६३६–३७ ई० में इन कालेजों की संख्या ८ हो गयी। इसी प्रकार कालेजों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या ८६५ से बढ़कर २,१६६ हो गयी। इन्जिनियरिंग स्कूलों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई।

पशु-चिकित्सा—पशु-चिकित्सा के क्षेत्र में भी सन् १९०२–३७ की अवधि में अच्छी प्रगति हुई, यद्यपि यह शिक्षा अभी तक केवल सरकारी आवश्यकताओं की ही पूर्ति करती रही। पशु-शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के विचार से इस शिक्षा के सभी स्कूल बन्द कर दिये गये और इनके बदले कालेजों के निर्माण तथा समुन्नत करने की ओर ध्यान दिया गया। फलतः पशु-चिकित्सा के ५ कालेज खोले गये। पटना वेटेनरी कालेज की स्थापना सन् १९३० ई० में हुई। पशु-विज्ञान में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के लिए मुक्तेसर (उत्तर प्रदेश) में सन् १९१७–२२ की अवधि में "इम्पिरियल वेटेनरी रिसर्च इन्सटिच्यूट" स्थापित हुआ।

वन-विज्ञान—सरकारी जंगल विभाग के कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के उद्देश्य से वन-विज्ञान की शिक्षा ने भी इस अवधि में प्रगति की। वन-विज्ञान के निम्नलिखित तीन विद्यालय सन १९३६–३७ में क्रियाशील थे।

१—फौरेस्ट रिसर्च इन्सटिच्यूट, देहरादून

२—इन्डियन फौरेस्ट रेंजर्स कालेज, देहरादून

३—फौरेस्ट कालेज, कोयम्बटूर।

पहले विद्यालय में वन-विज्ञान की विशेषीकृत उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान का आयोजन था।

कृषि की शिक्षा—लार्ड कर्जन ने कृषि-शिक्षा के विकास की जो प्रेरणा दी, उसका उल्लेख हम कर चुके हैं। सन् १९०१ ई० में ही समस्त भारत की कृषि को प्रोत्साहन के लिए एक इन्सपेक्टर जेनरल नियुक्त हुआ (Inspector General of Agriculture in India). सन् १९०५ ई० में सरकार के द्वारा घोषित किया गया कि वह ५० लाख रुपये कृषि शिक्षा के लिए प्रति वर्ष खर्च करेगी। फलस्वरूप कृषि-शिक्षा के विकास का कार्य दृढ़ता से प्रारम्भ हुआ। पूसा के सेन्ट्रल इन्सटिच्यूट की स्थापना की बात हम कह चुके हैं। सन् १९३४ ई० में यह इन्सटिच्यूट पूसा से दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया। सन् १९२३ ई० में बंगलोर में एक केन्द्रीय इन्सटिच्यूट 'ऐनिमल हसबैन्डरी ऐंड डेयरिंग' स्थापित हुआ। लार्ड कर्जन के समय में भारत सरकार ने हर प्रान्त में एक कृषि कालेज की स्थापना

का आदेश दिया था। † किन्तु इस आदेश का पूर्ण पालन न हुआ और सन् १९३७ ई० तक केवल ६ ही कृषि कालेज स्थापित हो पाये।

हमने देखा है कि भारत की कृषि शिक्षा भली-भांति आयोजित न थी, जिसके फलस्वरूप कृषि कालेजों से न विशेषज्ञ वैज्ञानिक उत्पन्न हो रहे थे, न कुशल कृषक ही। इस सम्बन्ध में पूसा तथा सिमला के कृषि-सम्मेलनों (सन् १९१६–१७) में विचार विमर्श हुआ और यह तय हुआ कि—

क—कृषि कालेजों के पाठ्य-क्रम हर प्रान्त में स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाये जायं।

ख—कृषि-कालेज विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया जाय या नहीं—इसका निर्णय प्रान्तीय सरकार पर ही छोड़ दिया जाय।

ग—कृषि-शिक्षा के मिड्ल तथा हाई स्कूलों की संख्या बढ़ायी जाय। इनके द्वारा न केवल कृषि-विज्ञान का सामान्य प्रसार होगा, बल्कि कृषि कालेजों के लिए उपयुक्त छात्र मिलेंगे।

कृषि शिक्षा की प्रगति में रायल आयोग (Royal Commission) का नाम उल्लेखनीय है। इसने मिड्ल तथा हाई स्कूलों में कृषि शिक्षा के सुधार के लिए महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग की राय में हाई स्कूलों में कृषि की शिक्षा केवल सैद्धांतिक न होनी चाहिए थी। साथ ही यह शिक्षा शहरी स्कूलों में न दी जानी चाहिए थी, जिनके अधिकांश छात्र शहर के बासिन्दे होते थे। देहाती क्षेत्र के स्कूलों में कृषि की सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही शिक्षा, कुछ उच्च दर्जे, की दी जानी चाहिए थी। आयोग ने कृषि-शिक्षा प्रदान करने वाले मिड्ल स्कूलों (Agricultural Middle Schools) की स्थापना की जोरदार सिफारिश की। इस सिलसिले में आयोग ने पंजाब में प्रचलित मिड्ल स्कूलों के पाठ्य-क्रम को अन्य स्थानों में व्यवहृत करने का परामर्श दिया। इन स्कूलों में कृषि की शिक्षा के आयोजन से बालकों की शिक्षा उनके वातावरण से संश्लिष्ट हो जाती

† We propose to establish in each province an Agricultural College and Research Station, adequately equipped with laboratories and class-rooms, to which will be attached a farm of suitable size.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India vol. I—p. 176.

थी। † कृषि की शिक्षा का उद्देश्य "मानसिक अनुशासन तथा प्रशिक्षण के साथ-साथ स्कूल के सामान्य विषयों को सम्बलित करना था।" इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए हर स्कूल में लगभग ३ एकड़ जमीन संलग्न रहता था, जिसमें कृषि की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। जहाँ भूमि उपलब्ध न थी, वह व्यावहारिक कार्य के लिए आधे एकड़ की फुलवारी अपेक्षित रहती थी। आयोग के विचार में, तत्कालीन परिस्थिति में, पंजाब के मिडूल स्कूलों की कृषि शिक्षा ही देश के लिए उपयुक्त थी। अतः इसका व्यापक व्यवहार होना चाहिए था।

टेकनिकल शिक्षा—सन् १९०४ ई० के प्रस्ताव ने टेकनिकल शिक्षा के लिए जो आदेश दिये, उनका विवरण हम दे चुके हैं। वस्तुतः इस प्रस्ताव ने ही टेकनिकल शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया। किंतु उस समय देश में ऐसी संस्थाएं विद्यमान न थीं, जिनमें टेकनिकल शिक्षा उपलब्ध होती। अतः सरकार ने भारतीय विद्यार्थियों की टेकनिकल शिक्षा की व्यवस्था इंग्लैंड में की। इसके लिए सरकार की ओर से उपयुक्त विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ मिला करती थीं। ऐसी १० छात्रवृत्तियाँ प्रति वर्ष स्वीकृत होती थीं। ये छात्रवृत्तियाँ सामान्यतः दो वर्ष के लिए लागू रहती थीं, किन्तु यह अवधि बढ़ायी भी जा सकती थी। किंतु टेकनिकल शिक्षा की यह व्यवस्था लाभप्रद न सिद्ध हो रही थी और यह स्पष्ट होने लगा था कि इस पद्धति में टेकनिकल शिक्षा की दिशा में वांछित प्रगति न हो सकती थी। सन् १९१७ ई० में मौरिसन कमिटि (Morsion Committee) ने छात्रवृत्तियों की स्वीकृति, उनकी संख्या, इनके लागू रहने की अवधि आदि के सम्बन्ध में कई परामर्श दिये। इन परामर्शों के अनुसार छात्रवृत्ति की स्वीकृति की प्रथा में कई संशोधन हुए। किंतु इनसे भी खास लाभ होता नहीं दीख पड़ा। इसी बीच सन् १९२१ ई० में द्वैध शासन के अन्तर्गत शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीयों के जिम्मे आया। इनके समक्ष यह मांग पेश की जाने लगी कि सरकार टेकनिकल शिक्षा के आयोजन को अपने कार्यक्रम में प्रथम स्थान दे, ताकि देश के उद्योग विकसित हो सकें। यह भी कहा जाने लगा कि

† The aim is to enrich the middle school course in rural areas by the inclusion of agricultural training and thus to bring it more in keeping with the environment of the pupils.

Hartog Committee Report.—p. 65.

छात्रवृत्तियों की प्रथा से देश की टेकनिकल शिक्षा की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती और भारत में ही टेकनिकल स्कूलों का आयोजन होना चाहिए था। इसी समय इंग्लैंड में पढ़ने वाले भारतीय छात्रों की शिक्षा की स्थिति के प्रश्न पर जाँच करने तथा परामर्श देने के लिए एक कमिटि नियुक्त हुई, जिसके अध्यक्ष लार्ड लिटन थे। कमिटि ने इंग्लैंड में शिक्षा ग्रहण करने वाले भारतीय विद्यार्थियों की परिस्थितियों तथा कठिनाइयों की पूर्ण जाँच की और इनके सम्बन्ध में उचित सुझाव प्रस्तुत किये। इन सुझावों में सबसे प्रमुख सुझाव यह था कि भारत में ही सभी प्रकार की शिक्षाओं का आयोजन होना चाहिए, ताकि भारतीय विद्यार्थियों को शिक्षा-ग्रहण के लिए इंग्लैंड जाने की आवश्यकता ही न पड़े। † इस तरह, लिटन कमिटि की रिपोर्ट ने जनता की इस मांग को—कि टेकनिकल शिक्षा का आयोजन भारत में ही किया जाय—पुष्ट किया। ऐसी स्थिति में सरकार देश में टेकनिकल शिक्षा के आयोजन की ओर से विमुख न रह सकी। फलतः सन् १६२१–३७ की अवधि में भारत में टेकनिकल शिक्षा की कई संस्थाएं कायम हुईं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख थीं :

क—बोस रिसर्च इन्सटिच्यूट, कलकत्ता—यह संस्था भारत के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र बोस के द्वारा कायम की गयी। यहाँ बनस्पति विज्ञान, कृषि, रसायन, प्राणी विज्ञान तथा सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक भौतिकि आदि विषयों की विशेषीकृत उच्च शिक्षा दी जाती है तथा अनुसंधान कार्य होते हैं।

ख—हारकोर्ट बटलर टेकनोलौजिकल इंसटिच्यूट, कानपुर—इस इंसटिच्यूट का संस्थापन सन् १६२१ ई० में हुआ। विद्यालय का उद्देश्य ऐसे लोगों को उत्पन्न करना था, जो कुछ चुने हुए उद्योगों के संचालन तथा निरीक्षण कर सकें तथा संयुक्त-प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के औद्योगिक विकास में योग दे सकें।

ग—इम्पिरियल ऐग्रिकल्चरल इंसटिच्यूट, दिल्ली—इस संस्था के बारे में हम पहले भी कह चुके हैं। इंसटिच्यूट न केवल कृषि

† We believe, therefore, that the only permanent solution of the problem is the development of education in India in all its branches as early as possible.

Lytton Committee Report—P. 84.

की उच्च शिक्षा प्रदान करती है; बल्कि कृषि के सम्बन्ध में अनुसंधान भी इसका मुख्य कार्य है। इसका कार्य-क्षेत्र समस्त भारत है। इंसटिच्यूट के तत्त्वाधान में देश में कई कृषि अनुसंधान केन्द्र खुले हुए हैं।

इन्डियन स्कूल आफ माइन्स, धनबाद—बिहार में इसकी स्थापना सन् १६२६ में हुई। यहाँ खाद (mines) तथा भूगर्भ सम्बन्धी सभी बातों की शिक्षा दी जाती है। संस्था में शिक्षित युवक सुयोग्य "माइनिंग इंजिनियर" होते हैं।

विक्टोरिया जुबिली टेकनिकल स्कूल, बम्बई—यहाँ कई तरह की औद्योगिक शिक्षा दी जाती है, जिनमें वस्त्रोत्पादन, प्रायोगिक रसायन, बिजली इंजिनियरिंग पमुख हैं।

टेकनिकल शिक्षा की अन्य संस्थाओं में आर. सी. टेकनिकल इन्सटिच्यूट—अहमदाबाद, जमशेदपुर टेकनिकल इंसटिच्यूट—तातानगर, गवर्नमेंट स्कूल आफ टेकनेलौजी—मद्रास, कलकत्ता टेकनिकल इसटिच्यूट तथा टेकनिकल इंसटिच्यूट—राँची के नाम लिये जा सकते हैं।

सन् १६३६–३७ ई० में कुल औद्योगिक, टेकनिकल तथा कारीगरी संस्थाओं की संख्या ५३५ थी, जिनमें ३० ५०६ छात्र शिक्षा तथा प्रशिक्षण ग्रहण कर रहे थे। †

वयस्क शिक्षा

सन् १६२१–३७ की अवधि में वयस्क शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रारंभिक कार्य हुए, जिन्होंने वयस्क शिक्षा की एक सुव्यवस्थित पद्धति के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। किन्तु उस समय तक वयस्क शिक्षा का रूप वयस्क साक्षरता ही था।

वयस्क साक्षरता की कुछ चेस्टाएं सन् १६२१ के काफी पहले प्रारम्भ हो चुकी थीं। किंन्तु इन चेष्टाओं की आधारभूत-प्रेरणा वयस्कों का निरक्षरता—निवारण न थी। इन चेष्टाओं का उद्देश्य निम्न श्रेणी के लोगों के बड़ों तथा बच्चों को साक्षर बनाना था। ये फैक्टरी अथवा अन्य स्थानों में कार्य करने जाते थे। इन बड़ों तथा बच्चों के लिए कई स्थानों, में विशेषतः औद्योगिक केन्द्रों में, रात्रि स्कूल कायम किये गये। अतः ये रात्रि-स्कूल अंशकालिक स्कूल थे, जिनमें बड़े तथा बच्चे-दोनों ही पढ़ सकते थे। ये स्कूल निरक्षरता निवारण के व्यापक दृष्टिकोण से प्रादुर्भूत न थे, बल्कि इनका उद्देश्य

† Nurullah & Naik—p. 702.

स्थान विशेष के लोगों को साक्षरता का अवसर प्रदान करना था, जो अपने व्यवसाय के कारण दिन में ग्रहण शिक्षा करने में असमर्थ थे। अत: इन स्कूलों के प्रयत्न बच्चों की शिक्षा की ओर केन्द्रित रहते थे, जो फैक्टरियों अथवा अन्य कारखानों में काम किया करते थे। बड़ों की शिक्षा प्रासंगिक थी। †

बम्बई तथा मध्य प्रान्त में ये रात्रि-स्कूल सुव्यवस्थित ढंग से संचालित थे। सन् १८८१–८२ ई० बम्बई में १३४ रात्रि-स्कूल क्रियाशील थे, जिनमें ३,६१६ छात्र भरती थे। ये स्कूल स्वतंत्र रूप से स्थापित थे। इनके अतिरिक्त २२३ रात्रि-कक्षाएं (night classes) स्थानीय दिवा-स्कूलों से संलग्न थीं। इन स्कूलों का पाठ्य-क्रम पढ़ना तथा लिखना की मामूली बातों से ही सम्बन्धित रहता था। संख्याओं का भी कुछ ज्ञान दिया जाता था। ये रात्रि स्कूल काफी लोक-प्रिय हो रहे थे। और इस बात की आवश्यकता थी की इन स्कूलों का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में भी किया जाय। अत: सन् १८८२ ई० के भारतीय शिक्षा आयोग ने यह सिफारिश की कि रात्रि पाठशालाएं, जहाँ भी सम्भव हो, स्थापित किये जायं। ‡ रात्रि-स्कूलों को सर्वोपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक था कि स्कूल का समय तथा स्कूल की अवधि स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल निर्धारित की जायं।

किन्तु भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने का ओर कम चेस्टाएं हुईं। * सन् १६०१–०२ ई० में केवल

† These schools were, at best, an attempt to provide primarily for the part-time education of children who were compelled to seek employment on economic grounds, and, incidentally of such adults as may choose to attend them.
Nurullah & Naik—p. 742.

‡ We therefore, recommend that night schools be encouraged wherever practicable. Accordingly, we recommend that as much elasticity as possible be permitted, as regards both the hours of the day and the season of the year, during which the attendance at schools is required, especially in agricultural villages and backward districts.

* The reports state that they have but little success, unless......they are managed by enthusiastic committees or are under the immediate supervision of inspecting officers.
Quinquennial Review of the Progress of Education in India. 1912-16—Para 292.

मद्रास, बम्बई तथा बंगाल में रात्रि-पाठशालें कायम थीं। इन प्रान्तों में भी रात्रि पाठशाला की प्रथा पतनोन्मुख हो रही थी। सन् १६०२-१६१७ के बीच पतन का क्रम और भी तीव्र हो गया और इन स्कलों की सफलता एवं इनके उपयोग के प्रति वह विश्वास न रहा, जो कि भारतीय शिक्षा आयोग ने व्यक्त किया था। भारत सरकार की पंचवर्षीय रिपोर्ट (१६१७-२२) में यह विचार प्रकट किया कि इन स्कूलों से सफलता की आशा नहीं की जा सकती, जब तक कि ये उत्साही प्रबन्धकों के अधीन न दिये जायं या सरकारी निरीक्षकों के द्वारा सीधे शीघ्र निरीक्षित न हों।

ऐसी ही स्थिति में भारत में उत्तरदायी शासन का पहला चरण प्रारम्भ हुआ। गवर्नमेन्ट आफ इंडिया कानून १६१६ ने, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं, भारत में एक नयी चेतना उत्पन्न की। कानून के अधीन मतदान का क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया था और इस बात की आवश्यकता थी कि जनता इस नव-प्राप्त अधिकार का उपयोग सोच-विचार कर करे। किंतु यह तभी सम्भव था जब कि भारत की जनता साक्षर होती। अतः कानून का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि सरकार तथा जनता—दोनों ही का ध्यान वयस्क शिक्षा के प्रसार की ओर, जोर से, आकृष्ट हुआ। †

भारतीय शिक्षा-मंत्रियों के अधीन वयस्क शिक्षा का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ, जब कि इस दिशा में अभूतपूर्व प्रगति हुई। सन् १६२१-२७ के बीच भारत के विभिन्न प्रान्तों में रात्रि-स्कूल तथा रात्रि कक्षाएं स्थापित हुईं। सन् १६२७ ई० में समस्त भारत में रात्रि-शिक्षा की ११,१५८ संस्थाएं पुरुषों के लिए तथा ४७ संस्थाएं स्त्रियों के लिए खुली हुई थीं। इनमें क्रमशः २८६,००१ पुरुष तथा १,३५१ स्त्रियाँ साक्षरता ग्रहण कर रही थीं। किन्तु वयस्क शिक्षा की प्रगति का जोर अधिक दिनों तक कायम न रहा। १६२७ ई० में ही विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के चिन्ह प्रकट होने लगे थे, जिसके बारे में हम पहले भी कह चुके हैं। मन्दी के परिणाम-स्वरूप सरकार की आर्थिक

† The question of adult education began to engage public attention towards the close of the period under review, interest in it being stimulated by discussion on the franchise.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1917-22—Para 230.

स्थिति पतली हो गयी और वह शिक्षा की नवीन योजनाओं की ओर से विमुख होने लगी। स्वभावतः वयस्क शिक्षा की प्रगति पर इसका परिणाम प्रतिकूल पड़ा और सन् १९२७–३७ की अवधि में वयस्क-शिक्षा की संस्थाओं तथा इनके छात्र-छात्राओं की संख्या में काफी कमी हो गयी। सन् १९३६–३७ ई० में समस्त भारत में केवल २,०१६ संस्थाएं, पुरुषों के लिए तथा ११ स्त्रियो के लिए क्रियाशील थीं। इनमें ६२,६९१ पुरुष तथा ९४६ स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही थीं सन् १९२७ ई० के आँकड़ों से इनकी तुलना करने पर यह स्पष्ट होगा की सन् १९३७ ई० में वयस्क शिक्षा की संस्थाओं तथा उनके छात्रों की संख्याएं सन् १९२७ ई० की संख्याओं की १/५ के लगभग थीं।

वयस्क शिक्षा के इस विवरण से यह स्पष्ट है कि सन् १९३७ ई० तक वयस्कों की शिक्षा की चेष्टाएं, परिमाण की दृष्टि से, अत्यन्त सीमित थीं। फिर भी, इन प्रारंभिक-चेष्टाओं में ही वे सभी उपकरण विद्यमान थें, जिनसे सन् १९३७ के पश्चात् के वयस्क-शिक्षा आन्दोलन का रूप विकसित हुआ। इन चेष्टाओं ने ही सर्व प्रथम वयस्क शिक्षा की ओर न केवल जनता का ध्यान आकृष्ट किया, बल्कि इसे जीवित रखा। इन चेष्टाओं ने ही फैक्टरी के मालिकों पर मजदूरों की शिक्षा का उत्तरदायित्व आरोपित किया। इन चेष्टाओं ने ही वयस्क-शिक्षा-प्रसार के लिए विद्यार्थियों की सेवाओं के उपयोग की प्रथा भारत में चलायी तथा सहयोगी संस्थाओं को इस कार्य में अग्रसर कराया। † इस तरह, वयस्क शिक्षा के महत्त्व के प्रतिष्ठापन तथा इसके प्रसार की पृष्ठ-भूमि के सृजन की, दृष्टियों से, इन प्रारंम्भिक चेष्टाओं का, वयस्क शिक्षा के इतिहास में, महत्त्वपूर्ण स्थान है। ‡

† It was these early attempts, and particularly those made between 1917 and 1937, which created and maintained public interest in the problem and it was in them that the first ideas of compelling the employers to make their employees literate, mobilizing the service of the students to expand the movement............were first evolved.

‡ But its ideological significance and utility as spade-work are considerable.

Nurullah & Naik—P. 745.

राष्ट्रीय शिक्षा

महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन से राष्ट्रीय शिक्षा को जो प्रेरणा मिली, उसका विवरण हम गत अध्याय में दे चुके हैं। हमने देखा है कि इस प्रेरणा से देश में अनेक राष्ट्रीय शिक्षा की संस्थाएं उत्पन्न हो गयी थीं। किन्तु सन् १६२२ ई० के पश्चात् असहयोग आन्दोलन धीमा पड़ गया, कुछ दिनों के लिए यह स्थगित भी हो गया। फलतः राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन भी क्षीण पड़ गया और, संख्यात्मक विस्तार के विचार से, राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति रुक गई। बहुत से राष्ट्रीय विद्यालय मृत हो गये। यह भी आवश्यक हो गया कि राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में उसके उन्नायकों की नीति में परिवर्तन किया जाय। स्वतंत्रता-संग्राम की अवधि बढ़ती जा रही थी और यह निश्चित न था कि कब तक भारत को स्वराज्य मिलता। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या के संबंध में स्थायी और दीर्घ-कालीन नीति के निर्धारण की आवश्यकता थी। छिट-फुट प्रयत्न से इस दिशा में ठोस कार्य न होने वाला था। † अतः इन छिट-फुट प्रयत्नों के बदले कुछ संगठित विद्यालयों के संस्थापन की अपेक्षा थी जो कि राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों तथा मान्यताओं की प्रयोगशाला का कार्य करते। अतः सन् १६२२ ई० के पश्चात राष्ट्रीय नेताओं तथा राष्ट्रीय विचार के शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान ऐसी ही सुसंगठित विद्यालयों के निर्माण की ओर गया और देश में कई ऐसे राष्ट्रीय विद्यालय कायम हुए। इनमें प्रमुख ये थे :—

जामिआ मिलिआ इसलामिआ—जामिआ मिलिआ की स्थापना की बात हम गत अध्याय में कह चुके हैं। सन् १६२५ ई० में यह अलीगढ़ से दिल्ली स्थानान्तरित हो गयी। जामिआ, मिलिआ तब से, बराबर समुन्नत होती आयी है। इसके द्वारा निम्नलिखित संस्थाएं संचालित हैं :—

१—एक आवासिक कालेज – जिसमें कला तथा सामाजिक विज्ञान की उच्च शिक्षा दी जाती है। मदरसा से पास किए हुए

† Any attempt to provide for national education by private agencies and private funds is futile, and to attempt it is to attempt the impossible.

Lala Lajpat Rai—The Problem of National Education in India —p. 109.

स्नातकों को यहाँ आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा सामाजिक विज्ञान की शिक्षा, खास तौर से, दी जाती है।

२—एक आवासिक हाई स्कूल—जिसमें आधुनिक ढंग से शिक्षण होता है। स्कूलों के कई प्रबन्ध में लड़के सक्रिय भाग लेते हैं।

३—प्राथमिक तथा वयस्क शिक्षा केन्द्र

४—सामान्य उपयोग के रासायनिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए स्थापित केमिकल उद्योगशाला

५—उर्दू अकादमी—इसने स्वस्थ उर्दू साहित्य के निर्माण में बड़ा योग दिया है।

६—मकतबा जामिआ—उर्दू में शिक्षा सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के उपयोगी प्रकाशन इस संस्था के द्वारा हुए हैं। जामिआ मिलिआ से 'जामिआ' नामक एक मासिक पत्रिका उर्दू में निकाली जाती है, जिसमें समाज-विज्ञान तथा साहित्य की बातें अधिक रहती हैं।

जामिआ के खर्च, इस अवधि में, विशेषत: चन्दों तथा अनुदानों से चलते रहे। सरकारी सहायता के लिए जामिआ ने कभी प्रार्थना न की। यह "अपने कार्य-कर्ताओं के साहस तथा त्याग एवं जनसामान्य की सहानुभूति तथा सहयोग" पर ही आश्रित रही। इसके समर्थक 'हमदर्दे जामिआ' थे, जो कि नियमित रूप से जामिआ को चन्दे भेजा करते थे।

विश्वभारती—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्वभारती की स्थापना ६ मई १९२२ को की। विश्वभारती के तीन उद्देश्य निर्धारित किए गये।

क—प्राच्य सभ्यताओं को एक दूसरे के समीप लाना

ख—पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृति को एक रूप में ग्रहण करना

ग—पूरब तथा पश्चिम में सहयोग स्थापित करना और विश्व-शांति का मार्ग प्रशस्त करना।

विश्वविद्यालय नितान्त: आवासिक संस्था है। इसमें सह-शिक्षा का आयोजन किया गया है। ऐशिया तथा यूरोप के विद्यार्थी भी यहाँ शिक्षा ग्रहण करते हैं। विश्वविद्यालय के अन्तर्गत निम्नलिखित संस्थाएं संचालित हैं।

विद्या भवन—इसमें भारत की प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाएं, भारतीय दर्शन आदि में अनुसंधान का प्रबन्ध है।

चीन भवन—चीनी तथा भारतीय विद्यार्थियों को एक दूसरे की सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन का अवसर देना—इसके प्रमुख उद्देश्य हैं। इसमें चीनी भाषा में लिखित एक लाख पुस्तकें हैं।

शिक्षा भवन—उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्धी कालेज हैं।

कला भवन—ललित कलाओं की शिक्षा यहाँ प्रदान की जाती है। कला भवन के शिक्षकों तथा छात्रों ने कला के सुन्दरतम नमूने उपस्थित किये हैं।

संगीत भवन—संगीत तथा नाट्य की शिक्षा दी जाती है।

शिल्प भवन—गृह-उद्योगों के विकास तथा प्रोत्साहन इस संस्था के ध्येय हैं।

श्री निकेतन—ग्रामों के पुनर्निमाण की ओर सचेष्ट है।।

इन राष्ट्रीय विद्यालयों के अतिरिक्त कई ऐसे राष्ट्रीय विद्यालय कायम हुए, जो कि हिन्दू तथा मुसलिम शिक्षा पद्धति के सिद्धांतों एवं व्यवहारों पर आधारित हैं। निम्नलिखित तीन संस्थाएं इस प्रकार के विद्यालयों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं:—

१—गुरुकुल विश्वविद्यालय, (कांगड़ी)— इसकी स्थापना सन् १७०२ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वाधान में हुई। सन् १९२४ ई० में यह गुरुकुल कांगड़ी स्थानान्तरित हुआ, जहाँ यह आज भी स्थित है। कांगड़ी के वन-प्रान्तीय प्रशान्त वातावरण में विश्वविद्यालय भारत के प्राचीन ऋषिकुलों के आदर्शों के पुनरुत्थान में लग्नशील है। विद्यालय का शिक्षा-क्रम १४ वर्ष का होता है, जिसके उपरान्त छात्रों को स्नातक की उपाधि मिलती है। दो-वर्ष के अतिरिक्त अध्ययन के पश्चात् उन्हें 'वाचस्पति' की उपाधि दी जाती है। विश्वविद्यालय में सामान्यतः ६ से ८ वर्ष के बच्चों को स्वीकृत किया जाता है। प्राचीन आदर्शों के अनुसार विश्वविद्यालय एक आवासिक संस्था है, जहाँ ब्रह्मचर्य के द्वारा चरित्र-बल के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

गुरुकुल पद्धति पर स्त्रियों के लिए भी देहरादून में एक विश्वविद्यालय सन् १९२३ ई० में स्थापित हुआ।

२—दारुल-उलूम देवबन्द — इस मुसलिम विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १८६४ ई० में हुई थी। इसलाम के आदर्शों के अनुसार यहाँ की शिक्षा संचालित होती है। यहाँ अरबी, फारसी, कुरान शरीफ, यूनानी चिकित्सा की उच्च शिक्षा दी जाती है। विश्वविद्यालय आवासिक है।

दारुल-उलूम नदवतुल उलेमा (लखनऊ)—यह भी मुसलिम शिक्षा-संस्था है। किंतु इसके पाठ्य-क्रम में प्राचीन विषयों के साथ आधुनिक विषयों का भी समावेश है। यह भी आवासिक विद्यालय है।

शिक्षा विभाग

सन् १९२१–३७ की अवधि में भारतीय शिक्षा विभागों के संगठन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। हमने देखा है कि आई० इ० एस० की नियुक्तियाँ सन् १९२४ ई० में ही बन्द हो गयी थीं। किंतु जो पदाधिकारी उस समय विद्यमान थे, उनकी नौकरियाँ बहुत दिनों बाद तक कायम रहीं। आई० इ० एस० के स्थान पर प्रान्तीय शिक्षा विभागों में अ श्रेणी (class I) की सेवा के निर्माण की बात सन् १९२४ ई० में तय हुई थी। किंतु इसे कार्यान्वित करने में विलम्ब हुआ। इस तरह, एक ओर तो आई० इ० एस० के पदाधिकारी दिनों दिन घटते जा रहे थे, दूसरी ओर इनके स्थान पर सुयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की कोई व्यवस्था न हो रहीं थी। हार्टग कमिटि ने इस स्थिति के प्रति घोर असंतोष प्रकट किया और यह सिफारिश की कि अ० श्रेणी की "प्रान्तीय शिक्षा सेवा" अविलम्ब आयोजित की जाय। कमिटि की सिफारिशों के अनुसार मद्रास तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त के सिवा अन्य सभी प्रान्तों में अ० शिक्षा सेवा कायम हुई।

शिक्षा संस्थाओं के विस्तार के कारण लोक-शिक्षा-निर्देशक का कार्य सन् १९२१–३७ की अवधि में काफी बढ़ गया था। अतः उसकी सहायता के लिए कई प्रान्तों में उप-लोकशिक्षा-निर्देशक (Deputy Director of Public Instruction) के अलावा सहायक लोकशिक्षा निर्देशक (Asst. Director of Public Instruction) के पद कायम किये गये। किंतु निरीक्षकों की संख्या अभी तक अत्यन्त सीमित थी। हार्टग कमिटि ने निरीक्षकों की संख्या बढ़ाने की जोरदार सिफारिश की। कमिटि ने वैसे लोगों के विचारों का खंडन किया,

जो निरीक्षकों को अनावश्यक शोभा मात्र मानते थे। कमिटि की दृष्टि में, स्कूलों का निरीक्षण उतना ही आवश्यक था, जितना रेल-मार्ग का निरीक्षण आवश्यक था। रेल-मार्ग का निरीक्षण न होने से खतरे की जो सम्भावनाएँ थीं, वे संभावनाएँ स्कूलों के निरीक्षण न होने से भी थीं। केवल खतरों का रूप दूसरा था। साथ ही निरीक्षकों की आवश्यकता इस लिए भी थी कि उनकी सहायता से शिक्षा की नीति तथा शिक्षा की योजनाओं के निर्धारण में अत्यधिक सहूलियत होती थी। † इस तरह शिक्षा के संगठन, शिक्षा के संचालन तथा रोजमर्रे के कामों के सम्यक् निर्वाह—सभी के लिए निरीक्षकों की संख्या-वृद्धि आवश्यक थी। ‡

सन् १६२१-३७ की अवधि में लोक-शिक्षा-निर्देशक तथा शिक्षा सचिव (Education secretary) के पदों में क्या सम्बन्ध हो—इस प्रश्न पर मतभेद उपस्थित हो गया। लोक-शिक्षा-निर्देशकों की दृष्टि में, शिक्षा-सचिव का कार्य उन्हीं के द्वारा सम्पादित होना चाहिये था, अर्थात् लोक-शिक्षा-निर्देशक और शिक्षा-सचिव का पद एक हो जाना चाहिए था। शिक्षा सचिव का पद अलग रहने से लाभ तो कुछ न था, बल्कि कार्य-सम्पादन में दोहरा समय लगता था तथा अन्य कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती थीं। दोनों का पद एक हो जाने से किसी कार्य के सम्पादन की अवधि आधी हो जाती, दो कार्यालयों के बदले एक कार्यालय हो जाता और अन्य प्रकार की सहूलियतें

† If the system of public education in India is to be made efficient the inspecting staff in the Provinces must be enlarged & strengthened.

We regard it as no more unnecessary than the regular inspection of a rail-road, without which the inevitable flaws constantly occuring in the permanent way would lead to accidents and loss of life.

Hartog Committee Report—P. 306.

‡ It is not only for making of plans and policy for the future but for the efficiency of the daily work in the schools that a good inspectorate is essential.

Hartog Committee Report—P. 205--6.

होतीं। † हार्टग कमिटि ने उक्त प्रश्न पर जाँच-पड़ताल की और यह सिफारिश की कि "शिक्षा सचिव का कार्य लोक शिक्षा निर्देशक को ही करना चाहिए। ‡ अलग शिक्षा सचिव होने से लोक शिक्षा निर्देशक को किसी प्रकार की सहायता न मिलती थी, वरन् कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती थीं। शिक्षा सचिव को, अधिकतर, किसी प्रकार का शिक्षा सम्बन्धी अनुभव न होता था और वे उचित परामर्श देने में असमर्थ रहते थे। अत: शिक्षा के हित की दृष्टि से भी, लोक-शिक्षा-निर्देशक को ही शिक्षा सचिव होना चाहिए था"।

शिक्षा के प्रशासन के सम्बन्ध में दूसरा मतभेद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों के प्रश्न पर उठ खड़ा हुआ। सन् १६१६ के पश्चात् स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के अधिकार, प्राथमिक शिक्षा पर, अत्यन्त बढ़ गये थे। कुछ लोगों के विचार में यह उचित न था और इस बात की आवश्यकता थी कि सरकार स्थानीय संस्थाओं के अधिकार सीमित कर दे। हार्टग कमिटि ने भी यही विचार व्यक्त किया। कमिटि की दृष्टि में सरकार को प्राथमिक शिक्षा के सारे अधिकार स्थानीय संस्थाओं को न सौंपने चाहिए थे। बल्कि, प्राथमिक शिक्षा के निरीक्षण, निर्देश आदि का अधिकार उसे अपने हाथों में रखना चाहिए था। यद्यपि प्राथमिक स्कूलों के निरीक्षक सरकारी अधिकारी होते थे, वे स्थानीय स्वशासन

† "At the moment things were being done twice over. After being carefully considered by the inspectors or professors a case would be discussed at great lenghts by the clerks in the Director's office, it was then sent to the secretariat by the Director, and the work of noting would be done all over again. The work would be halved if the Director become secretary, there would be one office instead of two............"

Mr. G. E. Fawcus. (later on D.P.I. Bihar.)

—evidence before The Calcutta University Commission 1917-19.

‡ So far from reinforcing educational administration the Education Secretariat, through no fault of its own, is often an obstacle to the ready and effective despatch of business.

The duties of the Director of Public Institution are excessive and he needs relief; but he is not given that relief by having placed over him an Education Secretary having no expert knowledge of educational administration.

Hartog Committee Report—pp. 325-6.

के अधीन थे और स्कूलों के उत्थान में पूर्ण योग नहीं दे पाते थे। †
दूसरी ओर स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के अधिकारी बहुधा अनुभव-हीन होते थे और वे शिक्षा का संचालन, शिक्षा विभाग के अफसरों के परामर्श के बिना ही, मनमाने ढंग से किया करते थे। ‡
अत: कमिटि की सम्मति में, यह आवश्यक था कि सरकार प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कुछ अधिकार, जो कि उसने जिला बोर्ड तथा नगरपालिका आदि को दे दिये थे, वापस कर लेती।

ख—प्रान्तीय स्वशासन के अधीन शिक्षा

इस अध्याय के सामान्य परिचय में हमने देखा है कि सन् १९२१-३७ ई० के बीच शिक्षा के क्षेत्र से केन्द्रीय सरकार अलग हो गयी थी। हम यह भी कह चुके हैं कि केन्द्रीय सरकार का शिक्षा से यह बिलगाव अत्यन्त हानिकर था। सन् १९३७-४७ ई० की अवधि में केन्द्रीय सरकार की उदासीनता समाप्त हो गयी और अब यह शिक्षा के मामलों में पहले की भांति दिलचस्पी लेने लगी। सन् १९४६ ई० में श्री जवाहर लाल नेहरु की अध्यक्षता में केन्द्र में अन्तरिम सरकार कायम हुई और केन्द्रीय शिक्षा विभाग की बागडोर भारतीय हाथों में आयी। स्वतंत्रता के पूर्व ही केन्द्रीय शिक्षा-विभाग केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रणालय में परिवर्तित हो गया। मौलाना अबुल कलाम आजाद प्रथम केन्द्रीय शिक्षा मंत्री हुए। अस्तु, सन् १९४६ के बाद केन्द्रीय सरकार देश की शिक्षा की ओर जोर से आकृष्ट हुई। शिक्षा की प्रगति की दृष्टि से, केन्द्रीय सरकार के इस रुख-परिवर्तन का फल शुभ हुआ। यद्यपि इस अवधि में इसने प्रान्तीय सरकारों को आर्थिक

† The Inspecting staff of the Education Department inspect all schools, but the chairman of the local bodies exercise considerable control over the work of the Deputy Inspectors and sub-inspectors. Our evidence shows that the main difficulty at present is the absence of any adequate power in the hands of Government even to enforce the existing statutory rules when the local bodies choose to ignore them.

‡ There is thus ample evidence to show that local bodies are very inexperienced in the difficult work of educational administration, that they are often reluctant to consult educational officers, and that in consequence, there is much that is wasteful and ineffective in the present system.

Hartog Committee Report—328-34.

अनुदान न दिये, कई रूपों में इसने शिक्षा के प्रोत्साहन की व्यवस्था की। उपर्युक्त अवधि में केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में शिक्षा के निर्देश तथा संयोजन के लिए कई विभाग तथा संस्थाएं खोली गयीं। उनमें प्रमुख ये थीं :—

केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति
(Central Advisory Board of Education)

हमने देखा है कि यह समिति सन् १९३५ ई० में पुनर्जीवित की गयी थी। सन् १९३७-४७ की अवधि में यह सुसंगठित, सशक्त तथा अत्यन्त उपयोगी संस्था बन गयी। इस संस्था के द्वारा केन्द्रीय सरकार सारे देश की शिक्षा सम्बन्धी नीति तथा कार्यों को संयोजित तथा समन्वित करती है। इस समिति के अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्री होते हैं। प्रान्तों के शिक्षा मंत्री तथा लोकशिक्षा-निर्देशक इसके सदस्य रहते हैं। इस तरह समिति समस्त देश का प्रतिनिधित्व करती हैं। गत २० वर्षों में इसने भारतीय शिक्षा के समन्वय, इसके निर्देश तथा इसकी समुन्नति की ओर महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं।

केन्द्रीय शिक्षा-सूचना कार्यालय
(Central Bureau of Education)

इसका प्रधान कार्य सारे भारत से शिक्षा सम्बन्धी आंकड़ों तथा सूचनाओं को प्राप्त करना तथा इनके आधार पर केन्द्रीय सरकार की ओर से संयोजित विवरण प्रस्तुत करना है। इसका यह भी कार्य है कि यह प्रान्तीय सरकारों तथा शिक्षा-संस्थाओं को शिक्षा के सम्बन्ध में मांगे जाने पर आवश्यक सूचना दे। कार्यालय केन्द्रीय शिक्षा मंत्रणालय की ओर से शिक्षा-सम्बन्धी पत्र-पत्रिका भी सम्पादित करती है।

विश्वविद्यालय अनुदान समिति
(University Grants Commission)

इसका संगठन सन् १९४५ ई० में हुआ। इसके सदस्य न सरकारी अधिकारी होते थे, न विश्वविद्यालयों के अधिकारी। किंतु इसमें ऐसे व्यक्ति सदस्य होते थे, जिन्हें विश्वविद्यालय के प्रशासन का अनुभव रहता है तथा जो आर्थिक समस्याओं पर अधिकार रखते हैं। इस समिति का मुख्य कार्य विश्वविद्यालयों को दिये जाने वाले सरकारी अनुदानों पर सामान्य निगरानी रखनी है, ताकि विश्वविद्यालय

अपनी आर्थिक मांगों की पूर्ति कर सकें। * नयी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्रीय सरकार के सभी अनुदान इसी केन्द्रीय अनुदान कमिटि के द्वारा प्रदत्त होते हैं। इनके अतिरिक्त अनुदान कमिटि के जिम्मे अन्य कार्य भी हैं, ताकि विश्वविद्यालयों के कार्य देश की आर्थिक-स्थितियों के अनुकूल संयोजित हों तथा विश्वविद्यालयों में प्रारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का भाव न उत्पन्न हो।

इनके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार की ओर से कई अन्य विभाग संचालित हैं, जिनमें कुछ पहले से ही कायम हैं। इनमें पुरातत्त्व-विभाग, ऐन्थ्रोपोलौजी विभाग, प्राचीन लेख संग्रह विभाग, केन्द्रीय पुस्तकालय आदि हैं। देश की पिछड़ी जातियों, आदिवासियों तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा के लिये केन्द्रीय सरकार के द्वारा विशेष विभाग संस्थापित हुये हैं।

विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा

सन् १९३७—४७ की अवधि में विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा में बड़ी प्रगति हुई। इस अवधि में ४ नये विश्वविद्यालय स्थापित हुये। वे थे—त्रावणकोर विश्वविद्यालय, (१९३७) उत्कल विश्वविद्यालय (१९४३) सौगोर विश्वविद्यालय (१९४६) तथा राजपुताना विश्वविद्यालय (१९४७)। इस तरह सन् १९१७ ई० में, देश में कुल मिलाकर १९ विश्वविद्यालय क्रियाशील थे। विश्वविद्यालयों की संख्या-वृद्धि के साथ-साथ इनके छात्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १९४७ ई० में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के अधीन शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या निम्नलिखित थी।

कलकत्ता	—४५,००८	लखनऊ	—३८९३
बम्बई	—४३,०९०	दिल्ली	—४३११
मद्रास	—२८,८८८	नागपुर	—५,७३४
इलाहाबाद	—३,५०२	आन्ध्र	—९४४५
बनारस	—५,०८३	आगरा	—९९३६

* Its main function will be to exercise a general supervision over the allocation of grants to university from public funds with the object of ensuring that universities are in a position to meet the demands which may be made upon them.

Report on Post-war Educatonal Development in India—P. 31-32.

मैसूर	—६३५०	अन्नामलाई	—१६८१
पटना	—५४७१	त्रावणकोर	—५७१५
ओसमानिया	— ४८६२	उत्कल	—३,६६२
अलीगढ़	— ४००६	सौगौर	—१८२८
		राजपुताना	—अप्राप्य

कुछ लोगों के विचार में विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा का विस्तार अपनी सीमा को पहुँच गया था और भारतीय शिक्षा पद्धति शिखर-बोझिल होने लगी थी। किंतु यथार्थ में, भारत की उच्च शिक्षा की स्थिति, सन् १६४७ ई० में भी, विश्व के प्रगतिशील देशों से बहुत पिछड़ी हुई थी। † युद्ध-पूर्व जर्मनी में ६६० की जनसंख्या पर औसतन् १ विश्वविद्यालय स्थापित था, ब्रिटेन में यह अनुपात १:८३७ था, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १:२२५, रूस में १:३००। भारत में यह अनुपात सन् १६४७ ई० में २,२०६ था। ‡ स्पटष्त: भारत की शिक्षा-पद्धति शिखर-बोझिल न थी। सच पूछा जाय तो यह आधार-दुर्बल थी। अत: इसके शिखर को छाँटने की आवश्यकता न थी, बल्कि इसे और भी समृद्ध तथा सुरभित करने की थी। जरूरत इस बात की थी कि भारतीय शिक्षा-पद्धति का आधार सुदृढ़ किया जाय, जन-शिक्षा का प्रसार किया जाय, प्राथमिक शिक्षा का विस्तार किया जाय।

सन् १६३७–४७ की अवधि में, उच्च शिक्षा की भांति, माध्यमिक शिक्षा की भी प्रगति हुई। किंतु इसकी प्रगति का अनुपात पहले की अपेक्षा कम रहा। सन् १६४६–४७ ई० में भारत में (पाकिस्तान अलग कर) कुल मिला कर ११,६०७ स्कूल थे, जिनमें १७६३ लड़कियों के लिए थे। इन स्कूलों में २३,५३८५६ लड़के तथा ३,५६,१२५ लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही थीं।

सन् १६३७–४७ ई० में माध्यमिक शिक्षा की अपेक्षाकृत न्यून प्रगति के कई कारण थे। इनमें प्रमुख यह था कि इस अवधि में प्राथमिक

† If on the other hand the total number of university students is calculated in relation to the total population it will be found that India is perhaps the most backward of all the principal nations of the world in University Education.

‡ Sargent Report.—p. 348.

शिक्षा का विस्तार यथेष्ट नहीं हुआ। प्राथमिक स्कूलों से ही माध्यमिक स्कूलों के लिए छात्र उत्पन्न होते थे। स्वभावतः प्राथमिक स्कूलों के विस्तार के अनुपात में ही माध्यमिक स्कूलों का विस्तार हो सकता था। दूसरा प्रमुख कारण यह था कि द्वितीय महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप जो महँगी प्रादुर्भूत हुई, उनका बोझ शहर में रहने वाले मध्यमवर्ग के लोगों पर सबसे अधिक पड़ा। माध्यमिक स्कूलों के अधिकांश छात्र इसी नागरी मध्यमवर्ग से ही समुत्पन्न रहते थे। आर्थिक स्थिति पतली होने के कारण इस वर्ग से उतने छात्र माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए उपलब्ध न थे, जितना कि सामान्यतः उपलब्ध रहते। दूसरी ओर, महंगी से उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों के निराकरण के लिए, स्कूलों के शुल्क बढ़ा दिये गये। पुस्तकों के मूल्य, कागज, कलम, दावात आदि सभी महंगे हो गये। फलतः स्कूल के शुल्क तथा पाठ्य-सामग्री के आयोजन में अभिभावकों को काफी दिक्कतें उठानी पड़ने लगीं। माध्यमिक शिक्षा का खर्च बढ़ जाने से समाज के वे लोग, जिनकी आर्थिक अवस्था सीमित थी और भी मुसीबत में पड़ गये। माध्यमिक स्कूलों के द्वार अब उन्हीं के लिए खुला रह गया, जो आर्थिक कठि-नाइयों के शिकार न थे। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक शिक्षा के लिए छात्रों का चुनाव उनकी योग्यता के अनुसार न रह कर उनकी आर्थिक परिस्थितियों पर आश्रित हो गया। सुयोग्य बच्चे अर्था-भाव के कारण माध्यमिक स्कूलों में पढ़ने से मजबूर हो गये और अयोग्य बच्चे आर्थिक सुविधाओं को प्राप्त रहने के कारण इन स्कूलों में आसानी से दाखिल होने लगे। इस तरह सन् १६२१-३७ की अवधि में, माध्यमिक शिक्षा, पहले से कहीं अधिक, वर्गीय हो गयी।

किंतु, उपर्युक्त अवधि में, माध्यमिक शिक्षा के माध्यम के दिशा में पर्याप्त सुधार हुआ। इन स्कूलों में मातृभाषा का प्रयोग, माध्यम के रूप में, अधिकाधिक होने लगा। सन् १६४७ ई० में, सामान्यतः, माध्यमिक स्कूलों के शिक्षण के माध्यम मातृभाषाएँ हो गयी थीं।

माध्यमिक शिक्षा में विविधता लाने की ओर भी सन् १६३७-४७ की अवधि में कुछ प्रगति हुई। प्रान्तीय सरकारों के द्वारा व्यावसा-यिक तथा टेकनिकल स्कूल खोले गये। कृषि हाई-स्कूलों की स्थापना भी हुई। महायुद्ध ने इन विशिष्ट स्कूलों की स्थापना की बलवती प्रेरणा दी।

युद्ध के कारण वैसे व्यक्तियों की आवश्यकता बहुत बहुत बढ़ गयी थी, जो विभिन्न प्रकार की टेकनिकल-शिक्षा प्राप्त किये हुए थे। इस मांग की पूर्ति के लिए नये विद्यालय स्थापित हुए। साथ ही इन स्कूलों में भरती होने की प्रेरणा भी महायुद्ध ने दी। रुपये की कमी तथा सुयोग्य शिक्षकों के अभाव के कारण व्यावसायिक तथा टेकनिकल शिक्षा की प्रगति अधिक न हुई, फिर भी १९३७–४७ की अवधि में ही इस दिशा में ठोस कदम उठाया गया।

शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था इस अवधि में सबसे अधिक हुई। सन् १९४६–४७ में विभिन्न प्रशिक्षण विद्यालयों से २११० पुरुष तथा १३०७ स्त्रियाँ प्रशिक्षित हुईं।

माध्यकिक शिक्ष की अधोमुखी प्रवृत्तियाँ

महायुद्ध के कारण कई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं, जिनका प्रभाव माध्यमिक शिक्षा पर अच्छा न पड़ा। महंगी के कारण वस्तुओं का मूल्य इतना बढ़ गया था कि एक शिक्षक के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तुएं भी दुर्लभ्य हो गयीं। शिक्षकों के वेतन में वृद्धि अवश्य की गयी। किंतु यह वृद्धि इतनी कम थी कि वस्तुओं के बढ़े हुए मूल्य का समाधान न कर सकती थी। अतः बहुत से शिक्षक अन्य लाभप्रद व्यवसायों की ओर मुड़ने लगे। युद्ध के कारण बहुत-सी ऐसी जगहें उपलब्ध हो गयी थीं, जिनमें अधिक रुपये प्राप्त थे। इस अवसर से लाभ उठाने वाले शिक्षकों की संख्या कम न थी। ऐसे शिक्षकों में बहुत से लोग प्रशिक्षित शिक्षक थे। स्कूल से इनके हट जाने से इनके स्थान पर अप्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त हुए। फलतः शिक्षण का स्तर गिरने लगा। वास्तविक शिक्षकों के अतिरिक्त संभावित शिक्षक को भी स्कूलों की नौकरी से उचाट हो गया। अतः प्रशिक्षण कालेजों में उम्मीदवारों की संख्या घटने लगी। जो इनमें प्रवेश चाहते थे, वे शिक्षण के लिए पर्याप्त योग्यता न रखते थे। सन् १९३७–४७ की अवधि में माध्यमिक स्कूलों में अनुशासन की समस्या असाधारण रूप में उत्पन्न हो गयी। युद्ध-जनित आर्थिक कठिनाइयों के कारण शिक्षकों में घोर असंतोष छा गया। साथ ही उनके आदर्श भी दृढ़ न रह सके। स्पष्टतः वे छात्रों के सम्मुख चरित्र के वे आदर्श न उपस्थित कर सकते थे, जो कि उन्हें उन्नत बनाते। फलस्वरूप छात्रों में अनुशासनहीनता सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगी। राजनीतिक हलचलों तथा आन्दोलनों से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष-दोनों रूपों में छात्रों के मानसिक संतुलन को

अव्यवस्थित होने में योग दिया। इस तरह, भारत के छात्रों, विशेषतः माध्यमिक स्कूलों के छात्रों, में उस अनुशासनहीनता का जन्म हुआ, जो आज एक विकट समस्या के रूप में, शिक्षकों, शिक्षा-शास्त्रियों तथा सरकार के सामने विद्यमान है।

प्राथमिक शिक्षा

सन् १९३७–४७ की अवधि में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति न हुई। सन् १९३६–३७ ई० में कुल मिलाकर १९२,२४४ प्राथमिक स्कूल थे, जिनमें १,०२२४२८८ छात्र दाखिल थे। सन् १९४५–४६ में इन स्कूलों की संख्या १,६७,७०० थी और छात्रों की संख्या १३०२७३१३ थी। इस तरह, प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि के बदले २४५४४ स्कूलों की कमी हो गयी। छात्रों की संख्या में २८०३०२५ की वृद्धि हुई। किंतु यह वृद्धि भी पहले से अपेक्षाकृत कम रही। इस तरह, सन् १९३७–४७ के बीच प्राथमिक शिक्षा का विस्तार नाम-मात्र का हुआ। स्कूलों की संख्या में तो वृद्धि के बदले कमी ही हुई।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अनिवार्य शिक्षा को विस्तृत बनाने की चेष्टा अवश्य की, किंतु इस क्षेत्र में भी अधिक प्रगति न हो सकी। सन् १९४७–४८ में भारत में १४६ शहरों तथा ३९९५ गाँवों में, केवल बालकों के लिए, अनिवार्य शिक्षा व्यवहृत थी। इसके अतिरिक्त १३५ शहरों तथा ६७१० गाँवों में यह शिक्षा बालक तथा बालिकाओं दोनों के लिए लागू थी। †

प्राथमिक शिक्षा की न्यून प्रगति का प्रधान कारण यह था कि सन् १९३७ तक गैरसरकारी प्रयत्न अन्तिम सीमा को स्पर्श कर रहा था और इसे पार करने की क्षमता इसमें न थी। ‡ ऐसी स्थिति में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार केवल सरकारी चेष्टाओं से ही सम्भव था, जो कि इस अवधि में, पर्याप्त मात्रा में, परिलक्षित न हो सकी।

---

† बिहार में इस वर्ष १७ शहरों में अनिवार्य शिक्षा कानून, केवल लड़कों के लिए, लागू हो रहा था।

‡ This is due to the fact that the expansion of primary education on a voluntary basis has now reached a saturation point in most areas.

Nurullah & Naik—P. 779.

अनिवार्य शिक्षा कानून, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, बहुत ही सीमित क्षेत्रों में लागू किया गया था। ऐसी स्थिति में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार स्वभावतः बहुत ही संकुचित रहा।

हार्टग कमिटि की सिफारिशों (जिनसे हम परिचित हो चुके हैं) के अनुसार सन् १६३७–४७ की अवधि में सरकार ने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं से प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कई अधिकारों को वापस लौटाने की चेष्टा की। इस दिशा में बम्बई सरकार ने नेतृत्व किया। सन् १६३८ तथा सन् १६४७ ई० में इसने दो कानून पास किए, जिनके अनुसार प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन क संस्थाओं के अधिकार काफी सीमित कर दिये।

विचाराधीन अवधि में प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के वेतन की वृद्धि की ओर कुछ चेष्टाएँ हुईं। इन शिक्षकों के वेतन की दर तो पहले सी ही कम थी। द्वितीय महायुद्ध के बाद देश में जो महंगी शुरू हुई, उससे शिक्षकों की आर्थिक स्थिति और भी शोचनीय हो गयी। शिक्षकों ने वेतन-वृद्धि की मांग शुरू कर दी और कई स्थानों में उन्होंने इसकी स्वीकृति के लिए मजदूर-संघ की नीति व्यवहृत की। सन् १६४६ ई० में बम्बई प्रान्त में ४५००० प्राथमिक शिक्षकों ने हड़ताल कर दी। हड़ताल ५४ दिनों तक चलती रही। इसके प्रभाव से समस्त देश में शिक्षकों की मांग की पुष्टि होने लगी। सरकार को क्रियाशील होना पड़ा। लगभग सभी प्रान्तों में उनका वेतन बढ़ाया गया। साथ ही महंगी भत्ता (dearness allowance) भी स्वीकृत हुआ। इस तरह सन् १६४७ ई० में प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों का वेतन सन् १६३७ से काफी बढ़ गया। किंतु यह वृद्धि वस्तुओं के मूल्य की वृद्धि के अनुपात में न थी। अतः शिक्षकों की वास्तविक आर्थिक स्थिति सन् १६४७ ई० में भी अच्छी न थी।

प्राथमिक शिक्षा के नये प्रयोग

सन् १६३७–४७ की अवधि में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कई नये सिद्धांत तथा व्यवहार आविर्भूत हुए। इनमें महात्मा गांधी की "बुनियादी शिक्षा" (Basic Education) सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसका पूर्ण परिचय हम, इसी अध्याय में, आगे प्रस्तुत करेंगे। प्राथमिक शिक्षा की अन्य उद्भावनाओं में 'विद्या मन्दिर योजना' तथा "स्व-संचालित स्कूलों की योजना" उल्लेखनीय हैं। विद्या मन्दिर योजना तत्कालीन

मध्य प्रान्त के शिक्षा मंत्री के द्वारा प्रचालित हुई। योजना का प्रधान उद्देश्य कम खर्च में प्राथमिक स्कूलों का विस्तार था। इस योजना के अन्तर्गत किसी ग्राम या ग्राम-समूह में, जहाँ स्कूली अवस्था के ४० बच्चे और बच्चियाँ उपलब्ध रहती थीं, एक विद्या मन्दिर स्थापित किया जाता था। विद्या मन्दिरों में सामान्य प्राथमिक स्कूलों की तरह पढ़ना, लिखना तथा गणित की शिक्षा तो दी जाती थी। किंतु इनमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण के उद्भव, स्कूल तथा स्थानीय वातावरण में सामंजस्य, ग्रामोत्थान, आदि बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता था, ताकि विद्या मन्दिर ऐसे शिक्षा-केन्द्र हो जायँ जहाँ से प्रकाश और ज्ञान की रश्मियाँ जन-सामान्य में सतत विकीर्ण होती रहें। हर विद्या मन्दिर में भूमि का एक टुकड़ा संलग्न रहता था, जिससे स्कूल को लगभग २०० रु० की वार्षिक आय हो सकती थी। विद्या मन्दिर की आय का मुख्य स्रोत भूमि का यही टुकड़ा था। पर्व-त्योहार के अवसरों पर गृहस्थों की ओर से इसे दान भी प्राप्य रहते थे। स्कूल की कारीगरी के उत्पादनों से भी आय हो सकती थी। अन्य स्थानीय आय भी उपलब्ध किये जा सकते थे। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह था कि विद्या-मन्दिर स्वाश्रयी संस्थाएँ हो जायं और इनके संचालन के लिए सार्वजनिक कोष से यथासम्भव कम रुपये देने पड़ें। सन् १६३६ ई० में मध्य प्रान्त में ८० विद्या मन्दिर स्थापित हुए। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के पद-त्याग के पश्चात् इनके विस्तार की गति अवरुद्ध हो गयी।

स्वसंचालित स्कूलों की योजना बम्बई प्रान्त में परिचालित हुई। इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे—

क—जन-शिक्षा के प्रसार में गैरसरकारी साधनों को अत्यधिक मात्रा में उद्भूत करना

ख—छोटे-छोटे गाँवों में, जिनमें सरकार के लिए स्कूल स्थापित करना आर्थिक दृष्टि से असंभव था, स्कूल स्थापित करना। यह योजना सन् १६३८ ई० में चालू की गयी और इसके द्वारा प्राथमिक स्कूलों का तीव्र विस्तार शुरू हुआ, और एक वर्ष के भीतर ही २४०० स्व संचालित स्कूल प्रान्तों में कायम हो गये। किंतु महायुद्ध के प्रारंभ के पश्चात् इन स्कूलों की संख्या क्रमशः घटने लगी। सन् १६४६ ई० में कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने पुनः पद-ग्रहण किया। फलस्वरूप इन

स्वसंचालित स्कूलों की संख्या बढ़ने लगी। सन् १९४८–४९ में इनकी संख्या ८७०७ थी। †

व्यावसायिक शिक्षा

सन् १९३७-४७ की अवधि में व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय बात न हुई, यद्यपि इस अवधि में व्यावसयिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई। व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र लगभग वे ही रहे, जो कि सन् १९३१–३७ की अवधि में थे।

कानून की शिक्षा—सन् १९४६–४७ ई० में १३ लॉ कालेज थे, जिनमें ५५३२ छात्र कानून की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। ये संस्थाएं विभाजन के पूर्व अखंड भारत की थीं। अतः इन संख्याओं के आधार पर सन् १९३७–४७ की प्रगति की तुलना सन् १९२१–३७ के आंकड़ों से नहीं की जा सकती। आन्ध्र तथा बम्बई विश्वविद्यालयों ने लॉ कालेजों का द्वार एन्टरमिडिएट-पास छात्रों के लिए भी खोल दिया। अन्य विश्वविद्यालयों में स्नातक ही लॉ कालेजों में पढ़ सकते थे।

चिकित्सा शिक्षा—सन् १९४६–४७ में पूर्व-विभाजन भारत में २६ मेडिकल कालेज थे, जिनमें ३ स्त्रियों के लिए थे। इन कालेजों में ६७४२ पुरुष तथा १६१४ स्त्रियाँ चिकित्सा-शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इस वर्ष मेडिकल स्कूलों की संख्या २५ थी, जिनमें ४०१० पुरुष तथा ३८५ स्त्रियाँ शिक्षा पा रही थीं।

इस अवधि में देशी पद्धति की चिकित्सा—आयुर्वेदी तथा यूनानी को सरकार द्वारा प्रश्रय मिला।

व्यापारिक शिक्षा (Commercial education)—सन् १९४६–४७ ई० में देश में १४ व्यापारिक कालेज तथा २९६ स्कूल क्रियाशील थे, इनकी संख्या क्रमशः ७७८३ तथा १४,७८४ थी।

कृषि शिक्षा—सन् १९४७ ई० में देश में १७ कृषि कालेज थे, जिनमें १,५५१ छात्र कृषि की शिक्षा पा रहे थे। जैसा कि हम देख चुके हैं, सन् १९३६–३७ में इन कालेजों की संख्या केवल ६ तथा पढ़ने वाले छात्रों की संख्या १००८ थी। स्पष्टतः कृषि की उच्च शिक्षा की इस अवधि में, अच्छी प्रगति हुई। किन्तु देश की आवश्यकता के विचार से कृषि-शिक्षा का यथेष्ट विकास न हो पाया था।

† Report of the D.P.I. Bombay (1947-49)—quoted in Nurullah & Naik—P. 777.

इन्जिनियरिंग की शिक्षा—सन् १६२७ की अवधि में इन्जिनियरिंग शिक्षा में काफी प्रगति हुई। सन् १६३६–३७ ई० में, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, ८ इन्जिनयरिंग कालेज थे। भारत के विभाजन के फलस्वरूप लाहोर तथा कराची-स्थित इन्जिनियरिंग कालेज पाकिस्तान में चले गये। किंतु इस क्षति के पश्चात् भी सन् १६४६–४७ ई० में भारत में १७ इन्जिनियरिंग कालेज थे, जिनमें २५०० छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। किंतु अभी भी इन्जिनियरिंग कालेजों की संख्या इतनी अधिक न थी कि उनके द्वारा देश की आवश्यकताओं की पूर्ति होती।

टेकनिकल शिक्षा

सन् १६३७–४७ की अवधि में टेकनिकल शिक्षा की अभूतपूर्व प्रगति हुई। इसके कई कारण थे। द्वितीय महायुद्ध में टेकनिकल शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की बड़ी आवश्यकता थी। इस जरूरत के अतिरिक्त, युद्ध के परिणाम-स्वरूप देश में कई नये उद्योग खड़े हो गये, जिनके लिए टेकनिकल शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की मांग खड़ी हो गयी। तीसरा कारण यह था कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों ने कई युद्धोत्तर योजनाएं प्रचालित कीं। इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए अधिकांशतः ऐसे व्यक्तियों की जरूरत थी, जो कि भिन्न-भिन्न तरह की टेकनिकल कुशलता पाये हुए थे। इस तरह टेकनिकल स्कूलों की प्रेरणा कई दिशाओं से प्राप्त हुई। इसके विस्तार की बात तो पहले से ही सोची जा रही थी। महायुद्ध तथा इससे उद्भूत परिस्थितियों ने टेकनिकल शिक्षा का आयोजन अनिवार्य कर दिया। फलतः देश में टेकनिकल शिक्षा की संस्थाओं का तीव्र विस्तार हुआ। सन् १६४६–४७ ई० में कुल मिलाकर ४६० टेकनिकल तथा औद्योगिक शिक्षा की संस्थाएं क्रियाशील थीं, जिनमें २६७४० छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

सन् १६४५ ई० में भारत सरकार ने एक भारतीय टेकनिकल शिक्षा समिति (All India Council of Education) स्थापित की। समिति का यह उत्तरदायित्व था कि वह टेकनिकल शिक्षा के आयोजन तथा संगठन के सम्बन्ध में भारत सरकार को उचित परामर्श दे। उसका यह भी उत्तरदायित्व था कि टेकनिकल शिक्षा की सभी संस्थाओं में समन्वय स्थापित करे, ताकि सभी संस्थाएं एक सुनिश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकें। समिति की सिफारिशों पर भारत सरकार ने टेक-

निकल शिक्षा के प्रसार के लिए एक योजना स्वीकृत की, जिसके अनुसार सरकार को १५४००००० रुपये अनावर्त्तक तथा ३०००००० रुपये आवर्त्तक के रूप में खर्च करने थे।

सन् १९४५ ई० में श्री नलिनी रंजन सरकार की अध्यक्षता में, भारत सरकार ने, उच्च टेकनिकल शिक्षा के आयोजन के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए उच्च टेकनोलौजिकल शिक्षा समिति (Higher Technological Education Committee) संगठित की। सन् १९४६ ई० में समिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किये। †

क—देश में उच्च टेकनिकल शिक्षा की ४ बड़ी संस्थाएं स्थापित की जायं।

ख—पहली संस्था कलकत्ते के सन्निकट शीघ्र स्थापित की जाय। दूसरी संस्था भी, जो कि पश्चिम में बम्बई के निकट हो, यथाशीघ्र स्थापित की जाय।

ग—तीसरी संस्था उत्तरी भारत में स्थापित हो। इसका उद्देश्य इन्जिनियरों, विशेषतः जल-विद्युत् के विशेषज्ञ इन्जिनियरों, को समुत्पन्न करना हो।

घ—इन विद्यालयों के प्राचार्य तथा विभाग-प्रधान शीघ्र ही नियुक्त किये जायं, ताकि वे भवन, सामान, तथा पाठ्य-क्रम के आयोजन के कार्य प्रारम्भ कर दें।

भारत सरकार ने समिति की सिफारिशें स्वीकृत कर लीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना, जिसका पूरा परिचय हम आगे देंगे, इस सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लक्ष्य निर्धारित किये गये और यह निश्चय किया गया कि बंगाल तथा बम्बई में उच्च टेकनोलौजिकल शिक्षा की संस्थाएं शीघ्र स्थापित की जायं।

ऐब्बोट ऊड रिपोर्ट
(Abbott Wood Report)

सन् १९३६–३७ ई० में भारत सरकार ने इंग्लैंड के दो विशेषज्ञों को, व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए, आमंत्रित किया। ये विशेषज्ञ थे श्री० ए० ऐब्बोट तथा एस० एच० ऊड। इन

† Report of the Radha Krishnan University Commission. P. 241.

विशेषज्ञों ने व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट दी, वह ऐब्बोट ऊड रिपोर्ट (Abbott and Wood Report) के नाम से प्रसिद्ध है। यह रिपोर्ट कुछ जल्दीबाजी में तैयार की गयी। विशेषज्ञों ने भारत की व्यावसायिक शिक्षा की सर्वांगीण जाँच न की। उनके दौरे पंजाब, सयुक्त प्रान्त तथा दिल्ली तक सीमित थे। अतः ऐब्बोट ऊड रिपोर्ट की सिफारिशें, व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में वैसी न थीं, जिनके आधार पर व्यावसायिक शिक्षा को सही दिशा तथा सही रीति से परिचालित किया जा सकता। कुछ ही दिनों के बाद सार्जेन्ट रिपोर्ट प्रकट हुआ, जिसने ऐब्बोट-ऊड रिपोर्ट के सुझावों पर ध्यान देते हुए, व्यावसायिक शिक्षा का एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया। इस रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद ऐब्बोट-ऊड रिपोर्ट की जो कुछ भी निजी महत्त्व था, गौण हो गया। फिर भी ऐब्बोट-ऊड रिपोर्ट कुछ दिनों तक, व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में, लोगों का ध्यान आकर्षित करती रही। रिपोर्ट की प्रमुख सिफारिशें ये थीं :—

१—व्यावसायिक शिक्षा देश की व्यासायिक भागों का अतिक्रमण न करे।

२—किसी प्रान्त की व्यावसायिक शिक्षा का रूप, प्रकार आदि उस प्रान्त के उद्योगों तथा व्यापारों के विचार से निर्धारित हों।

३—व्यावसायिक शिक्षा साहित्यिक शिक्षा से निम्न स्तर पर न रखा जाय।

४—सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षाएं एक दूसरे से विभिन्न न समझे जायं, बल्कि शिक्षा के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती चरण माने जायं।

५—चूंकि सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा के लक्ष्य भिन्न हैं, इसलिए एक ही विद्यालय में दोनों प्रकार की शिक्षाएं न दी जायं।

६—आधुनिक संगठित उद्योगों से छोटे-छोटे गृह-उद्योगों में लगे हुए कारीगरों की रक्षा के लिए उचित व्यवस्था की जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि इन कारीगरों को, परिवर्तित स्थितियों के उपयुक्त बनने के लिए, प्रशिक्षित किया जाय।

७—उद्योग तथा व्यापार के साथ शिक्षा का घनिष्ट सहयोग स्थापित करने के विचार से एक विशिष्ट संस्था स्थापित की

जाय। इसके लिए हर प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा सलाहकारिणी समिति (Advisory Council for Vocational Education) का संगठन अपेक्षित है।

८—व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाएँ दो प्रकार की हों :—

जुनियर व्यावसायिक स्कूल—इसमें आठवीं श्रेणी के बाद के लड़के भरती किये जायं। इनकी शिक्षा ३ वर्षों की हो। ये व्यावसायिक स्कूल, उच्च माध्यमिक स्कूल (Higher secondary school) की मर्यादा प्राप्त करें।

सीनियर व्यावसायिक स्कूल—इन स्कूलों में ग्यारहवीं श्रेणी के बाद के लड़के भरती किये जायं। इनकी शिक्षा दो वर्षों की हो। ये सीनियर व्यावसायिक स्कूल इन्टरमिडिएट कालेज के समकक्ष माने जायं।

९—व्यावसायिक स्कूलों की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर छात्रों को स्कूल परित्याग प्रमाण-पत्र (leaving certificate) दिया जाय। इस प्रमाण-पत्र में न केवल अन्तिम परीक्षा की उपलब्धियाँ अंकित की जायं, बल्कि यह भी अंकित की जाय कि छात्र का कार्य, शिक्षा की पूरी अवधि में, कैसा रहा।

१०—जुनियर तथा सीनियर टेकनिकल स्कूलों की स्थापना, भरसक, औद्योगिक केन्द्रों में की जाय।

११—विभिन्न व्यावसायों में लगे हुए व्यक्तियों के ज्ञान की वृद्धि के उद्देश्य से अंश-कालिक स्कूल (part-time school) स्थापित किये जायं। इनमें, यथासम्भव, दिन में ही शिक्षा दी जायं। कारखानों के मालिक अपने कर्मचारियों को सप्ताह में अढ़ाई-दिन अंश-कालिक स्कूलों में पढ़ने की अनुमति दें।

१२—भारत सरकार चुने हुए स्थानों में व्यावसायिक प्रशिक्षण कालेज (Vocational Training College) तथा टेकनिकल स्कूल स्थापित करे।

स्त्री शिक्षा

सन् १९३७–४७ की अवधि में भारतीय स्त्रियों ने शिक्षा के सभी क्षेत्रों में प्रगति की। यह प्रगति उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक रही। उच्च शिक्षा के विस्तार की एक बड़ी प्रेरणा द्वितीय महायुद्ध ने दी। महायुद्ध ने विभिन्न रोजगार उपस्थित किये, जिनमें शिक्षित स्त्री-पुरुषों की मांग बढ़ गयी। इस स्थिति से भार-

तीय स्त्रियों ने भी लाभ उठाया। सन् १६४७ ई० में अनेक भारतीय स्त्रियाँ सरकारी तथा गैरसरकारी पदों पर प्रतिष्ठित थीं। हमने देखा है कि भारतीय स्त्रियाँ, कुछ व्यवसायों को छोड़ कर, सामान्यत: नौकरी करना न पसन्द करती थीं। सन् १६३६–३७ ई० की अवधि में उनकी इस प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ। युद्ध-जनित महँगी के कारण मध्य-वर्गीय परिवारों की आर्थिक स्थिति पतली हो गयी थी। फलत: इन परिवारों की स्त्रियों को भी काम-काज करने के लिए बाध्य होना पड़ा और नौकरी चाहने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ने लगी। साथ ही अब समाज की दृष्टि में, स्त्रियों का किसी व्यवसाय में लगना, उतना निन्दनीय न समझा जा रहा था। फलत: स्त्रियों की उच्च शिक्षा, जो कि अच्छे व्यवसाय की प्राप्ति के लिए आवश्यक थी, समाज से कुछ-कुछ अनुमोदित होने लगी।

सन् १६४६–४७ ई० में विश्वविद्यालयों को छोड़कर भारत में कुल मिला कर स्त्री-शिक्षा की १६६४८ संस्थाएँ थीं, जिनमें ३२४७६४४ कन्याएँ सिक्षा ग्रहण कर रही थीं। अस्वीकृत संस्थाओं की संख्या ५३७ तथा इनमें पढ़ने वाली कन्याओं की संख्या ४६,६०४ थी।

हरिजनों की शिक्षा

सन् १६३७ में भारत के प्रमुख प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल स्थापित हुआ। इस मंत्रिमण्डल के द्वारा हरिजन शिक्षा को पूर्ण प्रश्रय मिलना स्वाभाविक था। फलत: सभी कांग्रेसी प्रान्तों में हरिजनों की उन्नति के प्रशंसनीय प्रयत्न होने लगे। हरिजनों के विरुद्ध अछूतपन के भाव को मिटा देने के उद्देश्य से, कांग्रेसी सरकार ने, प्रान्तीय आवश्यकताओं के अनुसार नये-नये कानून पास किये। शिक्षा के क्षेत्र में हरिजन छात्रों के लिए सभी सरकारी संस्थाएं न केकल पूर्ण रूप से खोल दी गईं, बल्कि इन संस्थाओं में हरिजन छात्रों को कई प्रकार की सुविधाएं दी गयीं। प्राथमिक स्कूलों में हरिजन छात्र नि:शुल्क, पहले से, पढ़ते आते थे। माध्यमिक तथा उच्च स्कूलों में इनके शुल्क की माफी की व्यवस्था कई स्थानों में की गयी। हरिजनों के लिए विशेष प्रकार की छात्रवृत्तियाँ आयोजित की गयीं। गरीब हरिजन विद्यार्थियों के लिए पुस्तक-अनुदान (Book grant), शुल्क की माफी, परीक्षा-शुल्क की माफी आदि अन्य कई सुविधायें भी उपस्थित की गयीं। मेडिकल, इन्जिनियरिंग आदि विशेष प्रकार के विद्यालयों

में उनके लिए जगहें सुरक्षित कर दी गयीं। ये जगहें अन्य जाति के छात्रों के द्वारा तभी भरी जा सकती थीं, जबकि इनके लिए हरिजन-छात्र उपलब्ध न होते। जिन विद्यालयों में हरिजन छात्रों की संख्या अधिक थी, वहाँ उनके लिए अलग छात्रावास की व्यवस्था की गयी। इसके लिए सरकार की ओर से आर्थिक सहायता भी दी जाती थी। हरिजन छात्रों के लिए कुछ विशेष प्रकार की उपयुक्त व्यावसायिक शिक्षाएं—जैसे चमड़े की कारीगरी आदि आयोजित की गयीं।

प्रान्तीय कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों की इन चेष्टाओं के अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार की ओर से भी हरिजन-शिक्षा के लिए कई प्रकार के प्रोत्साहन दिये गये। सन् १९४२ ई० में हरिजनों के सुयोग्य नेता डाक्टर अम्बदेकर भारत सरकार के कानून सदस्य (Law Member) नियुक्त हुए। इनकी प्रेरणा से केन्द्रीय सरकार ने पिछड़ी जातियों के छात्रों को छात्रवृत्ति देना स्वीकार किया। इसके अनुसार सन् १९४४-४५ ई० में सरकार ने ३ लाख रुपये मंजूर किये। इन रुपयों से उन हरिजन छात्रों की छात्रवृतियाँ दी जाने लगी, जो प्रवेशक-परीक्षा पास करने के पश्चात् वैज्ञानिक तथा टेकनिकल शिक्षा प्राप्त करना चहते थे। इस तरह की छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध आदिवासी, पहाड़ी जाति तथा अन्य पिछड़ी जाति के छात्रों के लिए भी हुआ।

बुनियादी शिक्षा

भारतीय शिक्षा के इतिहास में बुनियादी शिक्षा का आविर्भाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इस घटना ने, भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में, न केवल नये आदर्शों, नयी मान्यताओं तथा नये व्यवहारों की सृष्टि की, बल्कि इनके द्वारा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के उद्भव की परिकल्पना की, जिसकी आधार-भित्ति सत्य और अहिंसा थी और जिसका लक्ष्य था वर्ग-विहीन, शोषण-रहित, प्रेम-परिपूरित सहयोगी मानव समुदाय का सृजन—सर्वोदय समाज का अवतरण। दूसरी ओर, इस घटना ने भारतीय शिक्षा के प्रचलित आदर्शों, मान्यताओं एवं व्यवहारों को एक ऐसी झकझोर दी, जिससे उनकी सुप्त-चेतना स्पन्दित हो उठी। बुनियादी शिक्षा ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत की आधुनिक शिक्षा-पद्धति भारतीय समाज की नयी मांगों के बहुत पीछे पड़ गयी थी और इस बात की आवश्यकता थी कि वह, अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए, नयी दिशा में

तीव्र कदम बढ़ावे। इस तरह, बुनियादी शिक्षा ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष—दोनों ही रूपों में भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नये युग का समारम्भ किया। वस्तुतः, व्यापकता की दृष्टि से, बुनियादी शिक्षा की प्रेरणाएं इसकी निजी संभावनाओं से अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुईं। भारत के शिक्षा-गगन में बुनियादी शालाओं के प्रदीप चाहे जितने भी थोड़े टँगे हों, किंतु उनका आलोक हमें नयी दिशा का संकेत अवश्य दे रहा है।

बुनियादी शिक्षा के प्रथम दर्शन

बुनियादी शिक्षा के प्रथम दर्शन सन् १९३७ के "हरिजन" के उन अंको में मिले, जिनमें महात्मा गांधी ने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचारों को अभिव्यक्त किया था। ये ही विचार बुनियादी शिक्षा की सुव्यवस्थित पद्धति के शिलाधार बने। बुनियादी शिक्षा का उद्भव, प्रारम्भ में, जन-शिक्षा की समस्या के समाधान के रूप में ही हुआ। हम देख चुके हैं कि सन् १९३७ ई० में भारत के ७ प्रमुख प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल संगठित हो चुका था। जनता की आशा, शिक्षा प्रसार के लिए, उत्तरदायी सरकार पर टंगी हुई थी। स्वभावतः कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के जनोपकारी कार्यों में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार प्रथम स्थान रखता था। वस्तुतः कांग्रेस स्वयं इसके लिए प्रण-बद्ध सी थी। दूसरी ओर, प्रान्तों को आर्थिक स्थिति शिक्षा-प्रसार के मार्ग में दुर्दम्य पहाड़ की भांति अडिग खड़ी थी। इसी समय महात्मा गांधी ने कांग्रेसी प्रान्तों में मद्य-निषेध (prohibition) का निर्देश दिया। इसका परिणाम प्रान्तीय सरकारों की आय पर प्रतिकूल पड़ता। आबकारी-कर की आय प्रान्तीय स्रोतों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी। कहीं-कहीं तो शिक्षा का खर्च इस स्रोत से ही उपलब्ध होता था। फलतः प्रान्तीय सरकारों का आर्थिक भविष्य धुंधला दृष्टि-गोचर हो रहा था। विकट परिस्थिति थी। प्राथमिक शिक्षा का विस्तार आवश्यक था, इसके लिए रुपये की आवश्यकता थी, रुपये की उपलब्धि का कोई सुलभ उपाय न था। मद्य-निषेध आवश्यक था, मद्य-निषेध से सरकारी कोष क्षीण हो जाता, इसके भरने के लिए अन्य कर लगाये न जा सकते थे। मंत्रिमण्डलों के सामने दो ही मार्ग थे। या तो शिक्षा-प्रसार की गति अवरूद्ध रखी जाय, या मद्य-पान को जारी रखा जाय। किंतु दोनों ही मार्ग बर्जित थे। ऐसी ही परिस्थिति में महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा की उद्घोषना की। बुनियादी शिक्षा

के द्वारा प्राथमिक शिक्षा स्वाश्रयी बनायी जा सकती थी और इसके प्रसार में सरकार को अधिक खर्च करने की आवश्यकता न थी। प्राथमिक शालाओं में उपयोगी कारीगरी के समावेश से न केवल शिक्षा स्वाश्रयी हो जाती, बल्कि छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी संभव हो जाता। *

किंतु यह समझना भ्रम होगा कि गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा का आविर्भाव मद्य-निषेध की आर्थिक समस्याओं के हल के रूप में ही किया। वस्तुतः स्वाश्रयी शिक्षा कीं रूपरेखा उनके मस्तिष्क में बहुत पहले प्रस्फुटित हो चुकी थी। सन् १६०२ ई० में ही, उन्होंने अफ्रिका (जोहान्सवर्ग) के 'टालस्टाय फार्म' में स्वाश्रयी शिक्षा की संभावनाएँ देखी थीं। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के प्रयोग भी महात्मा गांधी ने यहीं किये थे। धार्मिक शिक्षा, सह-शिक्षा आदि की कठिनाइयों को परखने की चेष्टा भी महात्मा जी ने टालस्टाय फार्म में की थी। अस्तु, महात्मा गांधी के शिक्षा-सम्बन्धी प्रयोग सुदूर अफ्रिका में बहुत पहले प्रारम्भ हो चुके थे। इन्ही प्रारम्भिक प्रयोगों में उस शिक्षा-पद्धति के बीज निहित थे, जो आगे चल कर बुनियादी शिक्षा के रूप में वृक्षित तथा पुष्पित हुए। †

हम देख चुके हैं कि सन् १६२१ ई० में ही गांधीजी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के विरुद्ध घोर असंतोष प्रकट किया था और एक ऐसी शिक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत की थी, जिसमें छात्र, शुरु से ही, स्कूल का खर्च उद्योग के द्वारा चला सकते थे। ‡

अस्तु, ऐतिहासिक दृष्टि से, यह कहना सही न होगा कि बुनियादी शिक्षा का अवतरण सन् १६३७ में मद्य-निषेध से उत्पन्न आर्थिक

* Vocations should serve a double purpose—to enable the pupils to pay for his tuition through the products of his labour and at the same time to develop the whole man or woman in him or her, through the vocation learnt at school.

† The work before us was to make the farm a busy hive of industry, thus to save money and in the end to make the families self-supporting...............

We, therefore, determined to learn to make sandals..........
Thus several young men learned how to manufacture sandals, and we commenced selling them to friends.

Mahatma Gandhi—Dr. Kalidas Nag. Tolstoy and Gandhi.
—p. 101.

‡ देखिये प्रस्तुत पुस्तक पृष्ठ—२५६

निर्माण का कार्य है। स्वावलम्बी शिक्षा की कल्पना का उल्लेख जिस सावधानी से वे कर रहे हैं, उससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। पर मेरे लिए तो वही सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है। मुझे अफसोस तो इस बात का हो रहा है कि परिस्थिति-वश वह चीज मुझे आज जितनी देरी से साफ-साफ नजर आयी है, जिसे कि मैं गत चालीस वर्षों से कांच के बीच से अस्पष्ट-सा देखा रहा हूँ।

सन् १९२० ई० में मैंने वर्तमान शिक्षा पद्धति की काफी कड़े शब्दों में निन्दा की थी। और आज चाहे कितने ही थोड़े अंशों में क्यों न हो, देश के सात प्रांतों में उन मंत्रियों द्वारा उस पर असर डालने का मुझे मौका मिला है, जिन्होंने मेरे साथ सार्वजनिक कार्य किया है, और देश की स्वाधीनता के उस महान् युद्ध में मेरे साथ तरह-तरह की मुसीबतें उठायी हैं। आज मुझे भीतर से ऐसी दुर्दमनीय प्रेरणा हो रही है कि मैं अपने इस आरोप को सिद्ध करके दिखा दूँ कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति नीचे से ऊपर तक मूलतः बिलकुल गलत है। और 'हरिजन' में जिस बात को प्रगट करने का अब तक प्रयास करता रहा हूँ और फिर भी ठीक-ठीक प्रगट नहीं कर सका, वही अब मेरे सामने सूर्यवत् स्पष्ट हो गयी है। और प्रतिदिन उसकी सच्चाई मुझ पर अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है।" *

* हरिजन सेवक २–१०–३७, बुनियादी शिक्षा में संकलित—पृष्ठ—५८

I am not surprised at the caution with which he (i.e. Dr. Arundale) approaches the idea of self-supporting education. For me it is the crux. My one regret is that what I have seen through the glass darkly for the past 40 years, I have begun to see now quite clearly under the stress of circumstances. Having sqoken strongly in 1920 against the present system of education, and having now got the opportunity of influencing, however little it may be, ministers in seven provinces, who have been follow workers and sufferers in the glorious struggle for freedom of the country, I have felt an irresistible call to make good the charge that the present mode of education is radically wrong from bottom to top. And what I have been struggling to express in these columns very inadequately has come upon me like a flash and the truth of it is daily growing upon me.

Educational Reconstruction.—P. 7.

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन वर्धा-१९३८—गांधी जी के द्वारा प्रस्तावित शिक्षा-पद्धति से भारतीय शिक्षा जगत में एक हलचल-सी मच गयी। शिक्षा-शास्त्रियों ने इस पद्धति के विरुद्ध तरह तरह के आक्षेप प्रस्तुत किये। आक्षेप का प्रमुख विषय शिक्षा की स्वाश्रयिता थी। अतः यह आवश्यक हो गया कि गांधी जी की योजना शिक्षा-शास्त्र की कसौटी पर कसी जाय। उसी उद्देश्य से २३ अक्तूबर १९३७ को प्रथम बुनियादी शिक्षा सम्मेलन वर्धा में आमंत्रित हुआ। सम्मेलन में राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त कांग्रेसी प्रान्तों के शिक्षा मंत्री भी बुलाये गये। सम्मेलन का सभापतित्व स्वयं गांधी जी ने किया। सम्मेलन में बुनियादी शिक्षा की पद्धति पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ। अन्त में इसने निम्नलिखित चार प्रस्ताव पास किये।

१—इस कॉन्फरेन्स की राय में देश के सब बच्चों के लिऐ सात वर्ष की मुफ्त और लाजिमी तालीम का इन्तजाम होना चाहिये।

२—तालीम का जरिया मातृ भाषा होनी चाहिये।

३—"यह कॉन्फरेन्स महात्मा गांधी की इस तजवीज की ताईद करती है कि इस तमाम मुद्दत में शिक्षा का मध्यबिन्दु किसी किस्म की दस्तकारी होना चाहिये, जिससे कुछ मुनाफा हो सके, और बच्चों में जो कुछ अच्छे गुण पैदा करते हैं और उनको जो शिक्षा दीक्षा देनी है, वह जहाँ तक हो सके किसी केन्द्रीय दस्तकारी से सम्बन्ध रखती हो और जिस दस्तकारी का चुनाव बच्चों के मामूल का लिहाज रख कर किया जाय।"

४—"यह कॉन्फरेन्स आशा करती है कि इस तरीके से धीरे-धीरे अध्यापकों की तनखाह का खर्च निकल आयेगा।" *

जाकिर हुसैन कमिटि रिपोर्ट

इन प्रस्तावों के आधार पर "प्राथमिक शिक्षा के अध्ययन-क्रम की योजना तैयार करने के लिए" सम्मेलन ने डाक्टर जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक कमिटि नियुक्त की। कमिटि को यह आदेश दिया कि "वह अपनी योजना को कॉन्फरेन्स के सभापति के पास एक महीने के अन्दर भेज दे।" कमिटि ने बड़ी तत्परता से कार्य आरंभ किया और २ दिसम्बर १९३७ को डाक्टर जाकिर हुसैन ने महात्मा गांधी के पास अपनी रिपोर्ट प्रेषित कर दी।

---

* हरिजन सेवक ३० अक्तूबर—१९३७

रिपोर्ट में कमिटि ने बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों तथा सिद्धांतों को स्पष्ट किया, ७ कक्षाओं (ग्रेडों) को क्रम-बद्ध अध्ययन-क्रम निर्धारित किया तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण, बुनियादी शालाओं के प्रशासन आदि प्रासंगिक विषयों के सम्बन्ध में बहुमूल्य सुझाव उपस्थित किये। समवायी शिक्षण के मार्ग-प्रदर्शन के रूप में रिपोर्ट ने, कताई तथा बुनाई को केन्द्रीय उद्योग मानकर, कई समवायी पाठ भी प्रस्तुत किये। बुनियादी शिक्षा के इतिहास में जाकिर हुसैन कमिटि-रिपोर्ट का विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः बुनियादी शिक्षा के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक आदर्शों एवं मान्यताओं का शास्त्रीय एवं सुव्यवस्थित रूप इसी रिपोर्ट में प्रथम अभिव्यक्त हुआ।

रिपोर्ट के प्रथम अध्याय में कमिटि ने प्रचलित शिक्षा पद्धति का परीक्षण किया और यह सिद्ध किया कि यह शिक्षा पद्धति राष्ट्र की नयी आवश्यकताओं तथा मांगों की पूर्ति में नितान्तः असमर्थ थी। साथ ही इसमें प्राणदायिनी तथा सृजनात्मक प्रेरणाओं का बिलकुल अभाव था। † इसके द्वारा ऐसे व्यक्ति उत्पन्न न हो रहे थे, जो सामाजिक उत्पादनों में हाथ बटा सकें तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए समाज की श्रीवृद्धि में अपना पूरा योग दे सकें। इसमें कोई ऐसा तत्त्व न था, जो शोषण और अहिंसात्मक शक्तियों पर आश्रित प्रतियोगिता-पूर्ण अमानुषिक समाज के बदले, सहयोग के नये सिद्धांतों पर आधारित मानवीय समाज की सृष्टि करता। ‡

कमिटि ने महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की, जिन्होंने एक ऐसी योजना का आविष्कार किया "जो जन-शिक्षा की समस्या को व्यावहारिक ढंग से कम से कम समय में हल कर सकती थी।" महात्मा गांधी की योजना की मूलाधार धारणा यह थी कि, यदि शिक्षा सही सिद्धांतों पर आधारित है, तो यह किसी दस्तकारी अथवा उत्पादक कार्य के द्वारा ही दी जानी चाहिए। यह

† It is neither responsive to the realistic elements of the present situation, nor inspired by any life-giving and creative ideal.

‡ It has no conception of the new co-operative social order which education must help to bring into existence to replace the present competitive and inhuman regime based on exploitation and violent force.

Basic National Education—Hindustani Talimi Sangh.—p. 11.

कारीगरी अथवा उत्पादक कार्य स्कूल की अन्य सभी शिक्षाओं का आधार रहेगा।" † गांधी जी के विचार में यह योजना, निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को तत्क्षण लागू करने में सरकार की सहायता करती।

दस्तकारी की शिक्षा

कमिटि की रिपोर्ट ने स्कूल में दस्तकारी की शिक्षा का परीक्षण शैक्षणिक, मनो वैज्ञानिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टियों से किया और यह विचार व्यक्त किया कि "आधुनिक शिक्षा सिद्धांतों के अनुसार बच्चों की शिक्षा किसी उपयुक्त कार्य के द्वारा ही दी जानी चाहिए। ऐसी ही शिक्षा से एक समन्वित और सर्वांगीण शिक्षा सम्भव हो सकती है।" *

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दस्तकारी के द्वारा दी जानी वाली शिक्षा बच्चों को उस यातना से मुक्त करती है, जो उन्हें नितान्तः बौद्धिक तथा मानसिक शिक्षा से भुगतनी पड़ती है। इसके द्वारा बौद्धिक तथा व्यावहारिक अनुभव संतुलित होते हैं तथा शरीर एवं मस्तिष्क-दोनों ही प्रशिक्षित किये जा सकते हैं। इस प्रकार की शिक्षा से बच्चों को न केवल साक्षरता, अर्थात्, पुस्तकों के पढ़ने की क्षमता प्राप्त होती है, बल्कि उन्हें अपने हाथ तथा अपनी बुद्धि को उपयोगी कार्यों में लगाने की शक्ति प्राप्त होती है। संक्षेप में,

† The basic idea of his scheme.........is that education, if sound in its principles, should be imparted through some craft or productive work, which should provide the nucleus of all other instructions provided in the school.

Basic National Education.—p. 12.

* Modern educational thought is practically unamimous in commending the idea of educating children through some suitable form of productive work. The method is considered to be the most effective approach to the problem of providing an integral all-sided education.

Basic National Education—pp. 12-13.

दस्तकारी की शिक्षा के द्वारा "सम्पूर्ण व्यक्तित्व की साक्षरता" होती है। *

सामाजिक दृष्टि से दस्तकारी की शिक्षा से हाथ के काम करने वाले तथा मस्तिष्क के काम करने वाले लोगों के बीच की खाई भरने लगेगी। इस शिक्षा के द्वारा ही हाथ के काम का महत्त्व तथा मानवीय एकता का भाव प्रतिष्ठापित हो सकेगा।

आर्थिक दृष्टि से, दस्तकारी के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा देश के श्रमिकों की उत्पादन-शक्ति की वृद्धि करेगी और साथ ही उन्हें अपने अवकाश को लाभपूर्वक व्यतीत करने की क्षमता देगी।

योजना की नागरिकता

बुनियादी शिक्षा में एक आदर्श नागरिक की शिक्षा भी सन्निविष्ट है—इस बात की ओर भी कमिटि ने शिक्षकों तथा शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया। ‡ आधुनिक भारत में नागरिकों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की परिधि उत्तरोत्तर वृद्धिशील हैं और इसलिए यह आवश्यक है कि नयी शिक्षा पद्धति के द्वारा बच्चों को इन अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की न केवल पूर्ण पहचान हो जाय, बल्कि इनके उपयोग एवं उपभोग का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाय। समाज की श्रीवृद्धि के लिए यह भी आवश्यक है कि समाज का हर सदस्य समाज की कुछ उपयोगी सेवा कर सके। अतः बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह भावी नागरिकों में आत्म-महत्त्व, गौरव, तथा

* Psychologically.........it relieves the child from the tyranny of a purely academic and theoretical instruction against which its active nature is always making a healthy protest. It balances the intellectual and practical elements of experience, and may be made an instrument of educating the body and mind in co-ordination. The child acquires not the superficial literacy.........but the far more important capacity of using hand and intelligence for some constructive purpose. This, if we may be permitted to use the expression, is "the literacy of the whole personality."

Basic National Education—p. 13.

‡ We are also anxious that teachers and educationists who undertake this new educational venture should clearly realise the ideal of citizenship inherent in it.

Zakir Hussain Committee Report—P. 15.

कुशलता की भावना भरे, तथा एक सहयोगी समाज के सदस्य के रूप में आत्मोत्थान तथा समाज सेवा की प्रेरणा उन्हें दे। † संक्षेप में बुनियादी शिक्षा योजना एक ऐसे सहयोगी समाज की परिकल्पना करती है, जिसमें समाज-सेवा का भाव बच्चों तथा प्रौढ़ों के समस्त क्रियाओं में प्रमुख स्थान रखेगा। ‡

नितान्त: शैक्षणिक दृष्टि से, दस्तकारी-केन्द्रित शिक्षा अधिक सार्थक तथा वास्तविक हो सकती है। इस शिक्षा से जो ज्ञान अर्जित होगा, वह जीवन से सम्बन्धित होगा तथा उस ज्ञान का प्रत्येक अवयव एक-दूसरे से संयोजित रहेगा। *

किंतु, कमिटि की दृष्टि में, दस्तकारी की शिक्षा के उपर्युक्त लाभों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि जो दस्तकारी अथवा उद्योग शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु माना जाय, उसमें शैक्षणिक संभावनाओं का बाहुल्य रहे। उसमें इतनी क्षमता रहे कि वह मानव जीवन के प्रमुख हितों तथा व्यापारों को अपने साथ, प्राकृतिक ढंग से, संबद्ध कर सके। साथ ही इसका क्षेत्र इतना व्यापक हो कि वह स्कूल के शिक्षा-क्रम के सभी विषयों को सन्निविष्ट कर सके। नयी शिक्षा पद्धति का प्रथम उद्देश्य कुशल कारीगर उत्पन्न करना नहीं, जो कि दस्तकारी की यांत्रिकता में कुशल हो, बल्कि दस्तकारी में निहित संभावनाओं को

† Thus the new scheme which we are advocating will aim at giving the citizens of the future a keen sense of personal worth, dignity and efficiency, and will strengthen in them the desire for self-improvement and social service in a co-operative community.

Zakir Hussain Committee Report—P. 16.

‡ In fine, the scheme envisages the idea of a co-operative community, in which the motive of social service will dominate all the activities of childern during the plastic years of chidhood and youth.

The Report—P. 16.

* From the strictly educational point of view, greater concreteness and reality can be given to the knowledge acquired by children by making some significant craft the basis of education. Knowledge will thus become related to life, and its various aspects will be correlated with one another.

Basic National Education—P. 14.

शिक्षा के कार्य के लिए अधिकतम मात्रा में प्रयुक्त करना है। * यह तभी सम्भव है जब कि उद्योग स्कूल के शिक्षा-क्रम का केवल एक विषय न रहे, वल्कि यह अन्य विषयों के शिक्षण की रीतियाँ भी अनुप्राणित करे। जैसा कि महात्मा गांधी ने स्वयं कहा था, "दस्तकारी की शिक्षा केवल यांत्रिक न हो, बल्कि वैज्ञानिक हो, अर्थात् दस्तकारी के हर क्रिया के क्यों और कहाँ का परिज्ञान बच्चों को हो जाय"। यदि दस्तकारी की शिक्षा अन्य विषयों से असंबद्ध होकर स्वतंत्र रूप में दी जायगी तो इस शिक्षा से छात्रों का केवल बोझ बढ़ेगा और एक समन्वित ज्ञान की उपलब्धि उन्हें न हो सकेगी। अत: यह आवश्यक है कि छात्रों के सभी ज्ञान केन्द्रीय उद्योग से प्रादुर्भूत होकर एक दूसरे से सम्बन्धित होते चलें और एक समग्र ज्ञान का उद्‌बोध करा सकें।

बुनियादी शिक्षा की स्वाश्रयिता

कमिटि ने बुनियादी शिक्षा की स्वाश्रयिता के पहलू को एक भिन्न दृष्टि से देखा। कमिटि की विचार में, बुनियादी शिक्षा की योजना का मूल्यांकन स्वाश्रयिता के आधार पर न होना चाहिए। स्वाश्रयिता तो इस शिक्षा की प्रासंगिक बात थी, जिसके बिना भी इसका निजी महत्त्व, शिक्षा सिद्धांत की दृष्टि से, अत्यधिक था। अत: बुनियादी शिक्षा का ग्रहण, एक स्वस्थ शिक्षा-प्रणाली के रूप में, होना चाहिए था, जिसके द्वारा राष्ट्रके पुनस्संगठन का कार्य शीघ्रता से हो सकता था। यह खुशी की बात थी कि बुनियादी शिक्षा, प्रासंगिक रूप में ही, काफी अंश तक स्वाश्रयी हो जा सकती थी।

कमिटि ने दस्तकारी की शिक्षा में काफी सतर्कता की सिफारिश की, ताकि इस शिक्षा से छात्रों को वांछित ज्ञान तथा कुशलता प्राप्त हो सके। किंतु कमिटि ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि बुनियादी शिक्षा योजना का परिचालन इस भांति न हो कि शिक्षा के सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक उद्देश्य नीचे पड़ जायं। इसका भय था कि शिक्षक बच्चों के श्रम का

* The object of this new educational scheme is not primarily the production of craftsmen able to practise some crafts mechanically, but rather the exploitation for educative purposes of the resources implicit in craft work. This demands that educative work should not only form a part of the school curriculum—its craft side—but should also inspire the method of teaching all other subjects.

Basic National Education—P. 14.

उपयोग, आर्थिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए, जरूरत से ज्यादा करें और दस्तकारी के शैक्षणिक पहलू पर कम ध्यान दें *

बुनियादी शिक्षा की प्रगति—१९३८-४०

"जाकिर हुसैन कमिटि रिपोर्ट" को महात्मा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उन्होंने इसके द्वारा प्रस्तावित बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा को "देहात के बच्चों की शिक्षा में एक क्रान्ति" कहा। सन् १९३८ ई० में हरिपुरा कांग्रेस ने भी बुनियादी शिक्षा योजना को अपनी सहमति प्रदान की। † इसी कांग्रेस के निर्देशानुसार, शिक्षा के "इस बुनियादी अंग का काम चलने के लिए, अप्रील १९३९ में 'हिन्दुस्तानी तालिमी संघ' स्थापित हुआ और बुनियादी शिक्षा का प्रसार सुगमता से होने लगा।

अप्रिल १९३८ में बुनियादी शिक्षा की प्रथम संस्था—"विद्यामन्दिर, ट्रेनिंग स्कूल"—वर्धा में स्थापित हुई। बिहार, मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, बम्बई तथा काश्मीर राज्य में बुनियादी शिक्षा की शालाएं, प्रयोग के रूप में, खुलने लगीं। जामिआ मिलिआ इसलामिआ, आंध्र जातीय कलाशाला आदि राष्ट्रीय विद्यालयों में भी बुनियादी शिक्षा के कार्य

* But here we must sound a necessary note of warning. There is an obvious danger that in the working of this scheme the economic aspect may be stressed at the sacrifice of the cultural and educational objectives. Teachers may devote most of their attention and energy in extracting the maximum amount of labour from children, while neglecting the intellectual, social and moral implications and possibilities of craft teaching.

Report—P. 18.

† कांग्रेस की राय है कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की जगह निम्न बुनियादी वसूलों के मुताबिक बुनियादी शिक्षा दी जाय।

१—देश के तमाम लड़के-लड़कियों को सात साल तक मुफ्त और लाजिमी तालीम मिलनी चाहिए।

२—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।

३—यह सात साल की तमाम तालीम किसी उत्पादक हाथ की दस्तकारी के मार्फत दी जाय और जहाँ तक सम्भव हो दूसरी तमाम हलचलें और काम भी इसी केन्द्रीय धंधों के ईर्द-गिर्द चलें।

समग्र नई तालीम—हिन्दुस्तानी तालिमी संघ—पृष्ठ—३

प्रारम्भ हो गये। बुनियादी शिक्षा के प्रथम वर्ष—१९३८-३९ के अन्त तक बुनियादी शिक्षा के १० ट्रेनिंग केन्द्र खुल गये। इनके अतिरिक्त संयुक्त प्रान्त में ७ पुनर्संजीवन केन्द्र (Refresher centres) खोले गये। साथ ही, कुछ बुनियादी स्कूल स्थापित हुए तथा कुछ प्राथमिक स्कूल बुनियादी स्कूलों में परिवर्तित कर दिये गये।

दूसरे वर्ष १९३९-४० में बुनियादी शिक्षा की प्रगति दृढ़ रही। इस वर्ष मध्य प्रान्त, बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों में ३ नये ट्रेनिंग स्कूल कायम किये गये। मध्य प्रान्त की सरकार ने प्रान्त के नार्मल स्कूलों के शिक्षकों तथा निरीक्षकों के प्रशिक्षण के लिए वर्धा में प्रथम श्रेणी का एक ट्रेनिंग कालेज खोला। बुनियादी स्कूलों को खोलने तथा चुने हुए प्राथमिक स्कूलों को बुनियादी स्कूल में परिवर्तित करने के कार्य भी जारी रहे। बिहार में चम्पारण जिले के बेतिया सबडिवीजन में बुनियादी शिक्षा का एक सघन क्षेत्र चुना गया और इसमें ३० बुनियादी स्कूल खोले गये। उड़ीसा के जैतपुर सबडिवीजन में भी ऐसे ३० स्कूल खोले गये। बम्बई प्रान्त के ४ सघन क्षेत्रों में ५८ चुने हुए स्कूल, आंशिक रूप से, बुनियादी स्कूलों में परिवर्तित किये गये। मध्य प्रान्त के सरकार ने वर्धा जिले के ४० स्कूलों में बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत के प्रयोग का आदेश दिया।

बुनियादी शिक्षा के प्रसार के अतिरिक्त, सन् १९३८-४० की अवधि में, इस शिक्षा के सिद्धांतों के अनुसार सामान्य शिक्षा-पद्धति के पुनर्गठन की ओर भी कदम उठाया गया। वस्तुतः बुनियादी शिक्षा-योजना ने समस्त देश में शिक्षा के पुनर्गठन की एक लहर दौड़ा दी। संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार प्रान्त में शिक्षा-पद्धति के पुनर्गठन के लिए विशिष्ट कमिटियाँ नियुक्त की गयीं। इस प्रकार की कमिटि काश्मीर राज्य में भी कायम की गयी। केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति ने श्री बी. जी. खेर (बम्बई प्रान्त के मुख्य तथा शिक्षा-मंत्री) के अधीन, अन्य योजनाओं के प्रकाश में, बुनियादी शिक्षा योजना के परीक्षण के लिए एक कमिटि नियुक्त की। इन सभी कमिटियों ने बुनियादी शिक्षा के प्रमुख सिद्धांतों को स्वीकार किया। कई स्थानों में तो बुनियादी शिक्षा योजना के अध्ययन-क्रम, कुछ संशोधनों के साथ, सामान्य शिक्षा पद्धति में अंगीकृत कर लिये गये।

बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम सम्मेलन

सन् १६३६ के अक्तूबर में पूना में बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन बुलाया गया। इन कार्यकर्त्ताओं के अनुभवों के आधार पर, इस सम्मेलन ने कई निर्णय किए, जिनमें बुनियादी शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से, निर्णय नं० ११ तथा १२ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे।

निर्णय नं० ११—बुनियादी शिक्षा के शिक्षण में समवाय का प्रयोग जबर्दस्ती न किया जाय। समवाय की स्थापना केवल केन्द्रस्थ दस्तकारी के साथ ही तक सीमित न रहे। यह समवाय बच्चों के भौतिक तथा सामाजिक वातावरण से भी संबद्ध किया जाय। ये वातावरण समवाय के अवसर, प्रचुरता से, उपस्थित करते हैं। साथ ही इनके द्वारा बच्चों का बुनियादी ज्ञान समृद्ध होता है। *

निर्णय नं० १२—किसी स्कूल की बुनियादी दस्तकारी का चुनाव, स्थानीय लोगों के प्रमुख व्यवसायों के अनुसार किया जाय। * विभिन्न दस्तकारियों के लिए स्कूलों की संख्या के निर्धारण में क्षेत्र-विशेष के विभिन्न व्यवसायों के वितरण पर ध्यान दिया जाय।

हमने देखा है कि महात्मा गांधी ने केन्द्रीय दस्तकारी को ही बुनियादी शालाओं के शिक्षण आधार माना था। जाकिर हुसैन कमिटि ने भी समवायी शिक्षण का आधार-दस्तकारी ही—माना। किंतु पूना सम्मेलन में समवाय का आधार केवल दस्तकारी न रहा। सम्मेलन ने बच्चों के भौतिक तथा सामाजिक वातावरण को भी समवाय का आधार माना। साथ ही सम्मेलन ने इस बात पर बल दिया कि समवायी की स्थापना, अप्राकृतिक रूप में, जबर्दस्ती न की जाय। स्पष्टतः ये बातें बुनियादी शिक्षा की भावना के विकास में विशिष्ट स्थान रखती हैं।

* This correlation should not, however, be necessarily forced and teaching should be correlated not only to the basic craft, but also to the child's physical and social environment, which offer rich possibilities for the purpose and enrich the children in basic knowledge.

One step Forward—P. 218.

* In the chrice of the basic craft for any school the predominant occupation of the people in the locality should be taken into account, and in deciding the number of schools centring round each craft in any case reference should be made to the distribution of various occupations in that locality.

One Step Forward—P. 219.

इनके द्वारा समवायी शिक्षा की संभावनाएँ अधिक विस्तृत हो गयीं। साथ ही अप्राकृतिक समवाय की आशंकाएँ समाप्त हो गयीं।

निर्णय नं० १३ ने केन्द्रीय दस्तकारी के चुनाव में शिक्षकों को अधिक सहूलियतें दीं। इस निर्णय ने प्रचलित धारणा का भी निराकरण किया, जो कताई-बुनाई को ही एक-मात्र केन्द्रीय दस्तकारी मानती थी। स्कूल की शिक्षा को स्थानीय परिस्थितियों से संबद्ध करने की ओर इस निर्णय ने निश्चित निर्देश दिया।

बुनियादी शिक्षा की प्रगति (१९४०–४५)

द्वितीय महायुद्ध तथा कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के पदत्याग का परिणाम बुनियादी शिक्षा की प्रगति पर स्वभावतः प्रतिकूल पड़ा। अतः १९४०–४१ के बाद बुनियादी शिक्षा के प्रसार की गति, निश्चित रूप से, मन्द पड़ गयी। अप्रील १९४० ई० में वर्धा का विद्या मन्दिर ट्रेनिंग महाविद्यालय बन्द कर दिया गया। मध्य प्रान्त की सरकार ने नार्मल स्कूलों को बेसिक ट्रेनिंग स्कूलों में परिवर्तित करने की योजना भी त्याग दी। फरवरी १९४१ में, उड़ीसा सरकार ने बुनियादी शिक्षा के प्रयोग का कार्य बन्द कर दिया। प्रान्त का 'बेसिक शिक्षा बोर्ड' विघटित कर दिया गया और बेसिक ट्रेनिंग स्कूल तथा बेसिक स्कूल भी दूसरे ही महीने बन्द कर दिये गये। किंतु सरकारी आज्ञाएँ, उड़ीसा में, बुनियादी शिक्षा को मृत न कर सकीं। प्रान्त के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता तथा जनता ने बुनियादी शिक्षा के कार्य को जारी रखा। उन्होंने "उत्कल मौलिक शिक्षा परिषद्" नामक एक संस्था संगठित की, जिसके तत्त्वावधान में बुनियादी शिक्षा का कार्य, गैरसरकारी चेष्टा के रूप, में चलता रहा।

सन् १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का प्रभाव, बुनियादी शिक्षा के इतिहास पर, गहरा पड़ा। बुनियादी शालाएं, इसके शिक्षक तथा प्रबन्धक भी सरकारी दमन के शिकार बने। कई स्थानों में राष्ट्रीय विद्यालयों में ताले लगा दिये गये। उड़ीसा का "मौलिक शिक्षा परिषद्" भी कोप-भाजन बना। इसके मन्त्री तथा उपमन्त्री कैद कर लिये गये। बुनियादी शिक्षा का कार्य, लगभग दो वर्षों के लिए, एकदम बन्द हो गया। किंतु, बिहार, उड़ीसा तथा काश्मीर में, सरकारी प्रयोग के रूप में, बुनियादी शिक्षा के कार्य चलते रहे। कई राष्ट्रीय संस्थाओं में भी बुनियादी शिक्षा के कार्य जारी रहे।

जामिआ मिलिआ इसलामिआ दिल्ली, तिलक महाराष्ट्र विद्यालय, पूना, तथा हिन्दुस्तानी तालिमी संघ, सेवाग्राम के तत्त्वावधान में बुनियादी शिक्षा की ज्योति प्रज्वलित होती रही।

किंतु इस अवधि में सरकारी तथा गैरसरकारी चेष्टाओं के संयोजन का कार्य न हो सका। बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं को एक, स्थान पर एकत्र होकर, अपने प्रयोगों के बारे में विचार-विनिमय करने का अवसर न मिल सका। † बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में कोई साहित्य का निर्माण भी न हो सका। संक्षेप में, बुनियादी शिक्षा किसी तरह जीवित मात्र रही।

द्वितीय बुनियादी शिक्षा सम्मेलन, (जामिआनगर, दिल्ली)

सन् १९४१ ई० में जामिआनगर, दिल्ली में, बुनियादी शिक्षा का द्वितीय सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में बुनियादी शिक्षा की उपलब्धियों पर विचार-विमर्श हुआ और यह मत प्रकट किया गया कि, योजना के कार्यान्वित करने में विभिन्न कठिनाइयों की दृष्टि से, अब तक की उपलब्धियां संतोषजनक थीं तथा भविष्य में अधिक उपलब्धियों की आशा की जा सकती थी। † सम्मेलन में ११ प्रस्ताव पास हुए। ६ठे प्रस्ताव में समवायी शिक्षण के प्रति आस्था प्रकट की गयी, किंतु यह दोहराया गया कि समवायी का स्थापन अप्राकृतिक न हो और समवाय के लिये दस्तकारी, सामाजिक वातावरण तथा भौतिक वातावरण—इन तीनों केन्द्रों का पूर्ण उपयोग किया जाय। ‡

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन (सेवाग्राम)

जनवरी १९४५ में सेवाग्राम में राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ। बुनियादी शिक्षा के इतिहास में इस सम्मेलन का विशिष्ट स्थान है। अब तक बुनियादी शिक्षा एक नये प्रकार की

† There were, however, no points of contact between the government and non-Government experiments of Basic Education. There were no meetings, no conferences, where the workers could assess the results of their experience.

Seven years of work—p. 21

‡ This conference, however, wishes to reiterate its former findings that correlation should not be forced and pedantic and that all the three centres of correlation, viz. the craft, the social environment and the physical environment should be fully exploited.

Resolution No. 6. Second Basic Education conference, 1941.

प्राथमिक शिक्षा के रूप में ही गृहीत हो रही थी। किंतु सेवाग्राम के सम्मेलन में महात्मा गांधी ने यह घोषित किया कि बुनियादी शिक्षा "जीवन भर की शिक्षा" थी। उन्होंने कहा—

मुझे यह साफ-साफ दीख रहा है कि बुनियादी शिक्षा का वृत्त बढ़ना चाहिए। इस वृत्त में हर व्यक्ति की हर अवस्था की शिक्षा शामिल होनी चाहिए। * बुनियादी स्कूल के शिक्षक को अपने को एक व्यापक शिक्षक मानना चाहिए। ज्यों ही वह किसी व्यक्ति—स्त्री या पुरुष, बच्चे या बूढ़े के सम्पर्क में आवे, उसे यह सोचना चाहिए कि मैं इस व्यक्ति को क्या दे सकता हूँ" मान लो मैं एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आऊँ जो गन्दा तथा नासमझ हो। मेरा यह कर्त्तव्य होगा कि मैं उसे स्वच्छता की बात बताऊँ, उसकी नासमझी मिटाऊँ और उसकी मानसिक परिधि को बढ़ाऊँ।
बच्चों पर उनके जन्म लेते ही, मैं ध्यान देना शुरु कर दूँगा। मैं तो एक कदम आगे बढ़ूँगा और कहूँगा कि शिक्षक का कार्य उसके पहले भी प्रारम्भ हो जाता है। † ....अब हम लोगों का कार्य सात से चौदह वर्ष के बच्चों तक सीमित नहीं है। नयी तालीम ने अपना दायरा आज बढ़ा लिया है। इस दायरे में मानव जीव के गर्भाधान से मृत्यु तक की अवधि सन्निविष्ट है। ‡

इसी सम्मेलन में श्री के० जी० मशरूवाला ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसका आशय यह था कि बुनियादी शिक्षा से न केवल शिक्षा में क्रान्ति लायी जाय, बल्कि इसके द्वारा भारतीय राष्ट्र के सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में भी क्रान्ति लायी जाय, ताकि जीवन की एक नयी प्रणाली (New way of life) उद्भूत हो सके।

* It had become clear to me that the scope of basic education has to be extended. It should include the education of every body at very stage of life.

† Again I must have my eye on the children right from their birth. I will go a step forward and say that the work of the educationists begins even before that.

‡ Now our scope is no longer limited to the child between seven and fourteen. Nai Talim or New Education has extended its scope today to the whole span of life from the moment of conceptoin to the hour of death.

Seven years of work.

महात्मा गांधी के नये निर्देश के अनुसार बुनियादी शिक्षा को "जीवन भर की शिक्षा" बनाने की ओर सम्मेलन ने ध्यान दिया। अतः बुनियादी शिक्षा के तीन चरण निर्धारित किए गये।

पूर्व-बुनियादी शिक्षा
बुनियादी शिक्षा
उत्तर-बुनियादी शिक्षा

पूर्व-बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था सात वर्ष के नीचे के बच्चों के लिए की जानी चाहिए थी। बुनियादी शिक्षा सात से चौदह वर्ष के बालक-बालिकाओं को दी जानी चाहिए थी। उत्तर-बुनियादी शिक्षा चौदह वर्ष के उपरान्त शुरु होनी चाहिए थी। सम्मेलन ने तीनों शिक्षाओं की व्यवस्था के लिए अलग अलग प्रस्ताव पास किये। पहले प्रस्ताव में एक स्वतः पूर्ण उत्तर-बुनियादी शिक्षा योजना के निर्माण की सिफारिश की गयी। † दूसरे प्रस्ताव में हिन्दुस्तानी तालिमी संघ को अनुरोध किया गया कि वह पूर्व-बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में योजना बनाने के लिए एक कमिटि नियुक्त करे। ‡ सम्मेलन ने यह आवश्यक समझा कि, बुनियादी शिक्षा के अंग के रूप में, एक सुव्यवस्थित वयस्क शिक्षा योजना भी देश में चालू की जाय। सम्मेलन ने तीसरे प्रस्ताव के द्वारा हिन्दुस्तानी तालिमी संघ को आग्रह किया कि वह "वयस्क शिक्षा उप-समिति" की सिफारिशों के आधार पर एक वयस्क शिक्षा कमिटि संगठित करे, जिसके ऊपर राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा की योजना बनाने का भार सौंपा जाय। *

† This Conference recommends that the Hindustani Talimi Sangh should give full consideration to the question of post-basic education as a system complete in itself.

‡ This Conference believes.........that it is appropriate that the task of educating the chidren of the country under seven years of age should be taken up and recommends that the Hindustani Talimi Sangh appoint a Committee to draw up a scheme of pre-basic education which will serve as foundation for basic education.

Seven years of work—pp. 23--24.

* This Conference accepts the main recommendation of the report of Adult Education Sub-Committee and recommends to the Hindustani Talimi Sangh that Adult Education Sub-Committee be appointed to draw up a scheme of national adult education on the lines suggested in the report.

Seven years of work—pp. 23-24.

बुनियादी शिक्षा की प्रगति—१९४६–४७

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सन् १९४६ ई० में कांग्रेस मंत्रि-मंडलों ने शासन का भार पुनः अपने हाथों में लिया। इन मंत्रिमंडलों के अधीन बुनियादी शिक्षा को पूर्ण सम्बल प्राप्त हुआ। फलतः सन् १९४६–४७ ई० के बीच बुनियादी शिक्षा की प्रगति दृढ़ हुई। बुनियादी शिक्षा की संभावनाएं केवल शिक्षा के क्षेत्र तक सीमित न रहीं, बल्कि इनके द्वारा ग्रामोत्थान के कार्य की बात भी सोची जाने लगी।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने बुनियादी शिक्षा के प्रसार की ओर अवि-लम्ब ध्यान दिया। बम्बई प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री बी० जी० खेर ने कांग्रेसी प्रान्तों के शिक्षा-मंत्रियों तथा शिक्षा के कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन बम्बई में बुलाया। इस सम्मेलन में तीन प्रस्ताव पास हुए, जिनमें प्रथम प्रस्ताव इस तरह था :—

(१) सम्मेलन की सम्मति में बुनियादी शिक्षा प्रायोगिक अवस्था पार कर चुकी है। अतः सम्मेलन प्रान्तीय सरकारों से प्रार्थना करता है कि वे अपने-अपने प्रान्त में इस शिक्षा को लागू करें।

इस सम्मेलन के निर्णय के अनुसार सभी प्रान्तों में बुनियादी शिक्षा के प्रसार का कार्य तीव्रता से आगे बढ़ने लगा। कई देशी राज्यों में भी बुनियादी शिक्षा के प्रसार के कार्य जोर से प्रारम्भ हो गये। इस तरह, सन् १९४७ ई० तक बुनियादी शिक्षा, भारतीय शिक्षा पद्धति, में अपना निश्चित स्थान बना चुकी थी।

सन् १९३७–४७ की अवधि में, व्यापकता की दृष्टि से, बुनियादी शिक्षा की उपलब्धियां सीमित रहीं। इन दस वर्षों में बुनियादी शिक्षा को अधिकतर प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। कांग्रेस मंत्रिमण्डलों की छत्रछाया इसे केवल ४ वर्षों तक ही प्राप्त रही। फिर भी, बुनियादी शिक्षा ने अपना मार्ग निरूपित कर लिया। अब इसे इस मार्ग पर निश्चितता के साथ आगे बढ़ना था।

सन् १९३७–४७ की उपर्युक्त घटनाओं से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि १० वर्षों के इतिहास में बुनियादी शिक्षा ने नयी दिशाओं में कदम बढ़ाये, नयी मान्यताओं की सृष्टि की, नये-नये व्यवहारों को अंगीकृत किया। अपने आधारभूत सिद्धांतों को अक्षुण्ण रखते हुए इसने परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा रूपान्तर की क्षमता प्रदर्शित की और यह

स्पष्ट कर दिया कि नयी शिक्षा पद्धति कोरी सिद्धांतवादी न थी, बल्कि यह व्यावहारिक जगत से अपना पूर्ण साम्य स्थापित करना चाहती थी। अर्थात्, बुनियादी शिक्षा पद्धति एक प्रगतिशील शिक्षा पद्धति थी, जो कि आवश्यकतानुसार, अपनी मान्यताओं में वांछित संशोधन करने के लिए सतत प्रस्तुत थी। †

बिहार में बुनियादी शिक्षा (१६३८-४७) ‡

बिहार में बुनियादी शिक्षा की चेष्टाएं जून १६३८ में प्रारम्भ हुई। इसी महीने प्रान्तीय सरकार ने श्री रामसरण उपाध्याय तथा श्री शिवकुमार लाल को संक्षिप्त प्रशिक्षण के लिए वर्धा भेजा। ये सज्जन क्रमशः पटना सेकेन्डरी ट्रेनिंग स्कूल तथा इससे संलग्न 'प्रैक्टिसिंग स्कूल' के प्रधानाध्यापक थे। वर्धा से लौटने पर इन्होंने बुनियादी शिक्षा का कार्य पटना सेकेन्डरी ट्रेनिंग स्कूल में ही शुरू कर दिया। यह स्कूल शीघ्र ही बेसिक ट्रेनिंग स्कूल के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। दिसम्बर १६३८ ई० में सरकार ने 'बेसिक ऐजुकेशन बोर्ड' का संगठन किया। अप्रिल १६३६ ई० में चम्पारण जिले के बेतिया सबडिवीजन में वृन्दावन ग्राम के आस-पास बुनियादी शिक्षा के प्रयोग के लिए एक सघन क्षेत्र (compact area) चुना गया। यहां ३५ बुनियादी स्कूल खोले गये, जो कि १२५ वर्गमील क्षेत्र में वितरित थे। इसी क्षेत्र में १५ और स्कूलों को खोलने की योजना बनायी गयी। बुनियादी शिक्षा के सुप्रसिद्ध शास्त्रियों तथा स्वयं महात्मा गांधी ने इस क्षेत्र का निरीक्षण किया और अपने आशीर्वाद दिये। शुरू में इन स्कूलों में एक ही कक्षा खोली गयी। योजना के अनुसार स्कूल में एक-एक कक्षा हर आने वाले वर्ष में जोड़ी जातीं, ताकि १६४७ तक ये सभी स्कूल सात-वर्गीय पूर्ण विकसित बुनियादी स्कूल हो जाते।

† It will be evident from the forgoing review that Basic education is not a static but a dynamic concept which, while remaining firmly rooted in certain fundamentals, has still shown its potentiality for adjustment and growth according to the needs of the situation.

Nurullah & Naik—P. 812.

‡ इसकी अधिकांश सामग्री "Basic Education in Bihar" नामक पुस्तक से ली गयी है, जो बिहार बेसिक ऐजुकेशन बोर्ड के द्वारा प्रकाशित हुई है।

सितम्बर १६३६ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और नवम्बर महीने में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने पद-त्याग कर दिया। प्रान्त का शासन, ६३ वीं धारा के अधीन, सलाहकारों की सहायता से गवर्नर करने लगे। शिक्षा के सलाहकार श्री इ० आर० जे० आर० कजिन्स आई० सी० एस० थे। इस अस्थायी सरकार ने वृन्दाबन के प्रयोग को जारी रखने का निश्चय किया। किंतु स्कूलों की अधिकतम संख्या ३० कर दी गयी। इस तरह, अन्तरिम सरकार के अधीन बिहार में बुनियादी शिक्षा के प्रयोग पूर्ववत् जारी रहे। प्रयोग के क्षेत्र पटना बेसिक ट्रेनिंग स्कूल, इससे संलग्न प्रैक्टिसिंग स्कूल तथा वृन्दावन के २७ स्कूल ही रहे। यह क्षेत्र विस्तृत न किया गया। बुनियादी स्कूलों की उपलब्धियों की जांच प्रतिवर्ष एक निरीक्षण-बोर्ड के द्वारा होती थी, जो कि बेसिक ऐजुकेशन बोर्ड के द्वारा नियुक्त होता था। इस निरीक्षण बोर्ड में देश के चुने हुए शिक्षा-शास्त्री रहते थे। सन् १६४४ ई० में 'सार्जेन्ट शिक्षा योजना' प्रकाशित हुई, जिसमें ६ से १४ वर्षों के बच्चों के ८ वर्ष की अनिवार्य शिक्षा की सिफारिश की गयी। बिहार की सरकार तथा बिहार 'बेसिक एजुकेशन बोर्ड' ने सार्जेन्ट योजना की सिफारिश मान ली। अतः सन् १६४६ में बिहार के बुनियादी स्कूलों में ८ वीं कक्षा भी खोली गयी। सन् १६४६ के दिसम्बर में वृन्दाबन बेसिक स्कूलों के छात्रों के ८ वर्ष का अध्ययन-क्रम समाप्त हो गया। अब इनके आगे पढ़ने की व्यवस्था करनी आवश्यक हो गयी। फलतः जनवारी १६४७ ई० में कुमारबाग में एक उत्तर बुनियादी (post-basic) स्कूल खोला गया।

सन् १६४४-४५ में बिहार सरकार ने युद्धोत्तर पुनर्गठन योजना के अधीन श्री वाई० ए० गोडबोले की अध्यक्षता में एक शिक्षा कमिटि (Education Committee) नियुक्त की। इस कमिटि ने प्रान्तों की प्राथमिक शिक्षा पद्धति में, क्रमशः, परिवर्तन करने की सिफारिश की। "केन्द्रीय शिक्षा परामर्श दात्री समिति" ने सर्जेन्ट योजना में ४० वर्ष में अनिवार्य बुनियादी शिक्षा के परिचालन का प्रस्ताव रखा था। बिहार की उपर्युक्त शिक्षा-कमिटि ने प्रथम ४० वर्ष की अवधि में, बिहार के १/४ भाग को बुनियादी शालाओं से आच्छादित करने की योजना प्रस्तुत की। साथ ही उसने अन्य क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूलों के विकास तथा सुधार की सिफारिश की, ताकि ये स्कूल ४०

वर्ष की प्रथम अवधि के बाद शीघ्रता और आसानी से बुनियादी शालाओं में परिवर्तित कर कर दिये जायं। बिहार शिक्षा-कमिटि की इन सिफारिशों के अनुसार, बिहार के "बेसिक शिक्षा बोर्ड" ने बुनियादी शिक्षा के प्रसार की एक पंचवर्षीय योजना बनायी। इस योजना में ३२ बेसिक ट्रेनिंग स्कूल, १६०० बेसिक स्कूल, १६० पोस्ट-बेसिक स्कूल तथा १ बेसिक ट्रेनिंग कालेज आगामी ५ वर्षों में खोलने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। किन्तु ये सभी संस्थाएं पांच वर्ष की अवधि में खोली नहीं जा सकती थीं। अतः बोर्ड ने यह सिफारिश की कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रथम पांच वर्ष में बेसिक ट्रेनिंग संस्थाएं प्रचुरता से खोली जायं, ताकि इनके द्वारा बुनियादी शिक्षा के संचालन के लिए उपयुक्त शिक्षक, पर्याप्त संख्या में, उपलब्ध हो सकें। जैसे-जैसे इन ट्रेनिंग स्कूलों से प्रशिक्षित शिक्षक निकलते जाते, वैसे-वैसे बुनियादी स्कूलों के विस्तार का कार्य अग्रसर होता जाता। बोर्ड ने यह अनुमान लगाया कि १५ वर्षों में इस प्रारम्भिक योजना का लक्ष्य प्राप्य हो जाता।

इसी बीच प्रान्त की राजनीतिक स्थिति ने करवट बदली। अप्रिल १९४६ ई० में कांग्रेस मंत्रियों ने प्रान्तीय शासन का भार फिर अपने कंधों पर लिया। कुछ ही दिन बाद केन्द्रीय कार्यपालिका में भारतीय नेताओं का समावेश हुआ, जिसका विवरण हम पहले दे चुके हैं। बुनियादी शिक्षा के प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत हो गया। केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति पुनर्गठित की गयी। इसने अनिवार्य शिक्षा की सार्जेन्ट-योजना को आवश्यकता से अधिक दीर्घकालीन माना। इसने सिफारिश की कि ६ से ११ वर्ष की बुनियादी शिक्षा का प्रबन्ध, १० वर्ष की अवधि में, कर लिया जाय; और ५ वर्ष के अतिरिक्त समय में ६ से १४ वर्ष की शिक्षा सभी बच्चों के लिए अनिवार्य हो जाय। बिहार बेसिक ऐजुकेशन बोर्ड ने भी अपने पंचवर्षीय योजना का संशोधन किया और यह निश्चय किया गया कि शिक्षकों के प्रशिक्षण का कार्य तीव्र किया जाय। यह भी तय किया गया कि बुनियादी शिक्षा के विस्तार के कार्य में स्थानीय साधनों—भूमि, मकान आदि को, अधितकम मात्रा में, उपलब्ध बनाया जाय। इस संशोधित योजना के अनुसार बिहार में बुनियादी शिक्षा का प्रसार तीव्रता से होने लगा।

३१ मार्च १६४६ को बिहार में १३ बेसिक ट्रेनिंग स्कूल, १०० बेसिक स्कूल तथा १ पोस्ट-बेसिक स्कूल क्रियाशील थे। इन स्कूलों में क्रमशः ६४६, ११०२५ तथा २८४ छात्र बुनियादी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इस समय तक बिहार में बुनियादी शिक्षा पर कुल मिलाकर २५,७६,०३२ रुपये खर्च हुए थे। इसमें ६,४२,२७६ रुपये १६३८-४६ के बीच के प्रयोग में खर्च हुए। शेष १६,३३,७५६ रुपये १६४६-४६ की अवधि में बुनियादी शिक्षा के प्रसार में व्यय हुए। †

वयस्क शिक्षा

सन् १६३७ में देश के ११ प्रान्तों में उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ। स्वभावतः प्रान्तीय सरकार वयस्क-शिक्षा के प्रसार की ओर पूर्णतः आकृष्ट हुई। जनहित के कार्यों में जन-सामान्य की निरक्षरता को दूर हटाना प्रथम स्थान रखता था। फलतः शिक्षा के क्षेत्र में कांग्रेसी मन्त्रियों ने वयस्क-शिक्षा के प्रसार को सबसे अधिक महत्त्व दिया। केन्द्रीय सरकार भी वयस्क-शिक्षा की समस्या से उदासीन न रह सकती थी। सन् १६३६ में केन्द्रीय सरकार को "शिक्षा परामर्शदात्री समिति" के द्वारा वयस्क-शिक्षा-कमिटि (Adult Education committee) स्थापित हुई। इस कमिटि के अध्यक्ष बिहार के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री डा० सैयद महमूद मनोनीत हुए। देश की व्यापक निरक्षरता तथा आर्थिक विपन्नता को ध्यान में रखते हुए कमिटि ने वयस्क-शिक्षा के दो उद्देश्य निर्धारित किये—

(१) वयस्क निरक्षरों को पढ़ना, लिखना तथा अंकगणित (तीन आर) की समुचित शिक्षा दी जाय।

(२) वयस्कों को उनके व्यावसायिक जीवन से सम्बन्धित ज्ञान प्रदान किया जाय तथा उन्हें नागरिकता का सामान्य परिचय दिया जाय।

देश के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अभ्युत्थान के लिए कमिटि ने वयस्क-शिक्षा के प्रसार को अत्यावश्यक माना। ‡ निरक्षर जन-समुदाय के बीच समाज-सुधार तथा आर्थिक समृद्धि की कोई भी

† Basic Education in Bihar Book I—P. 9.

‡ I need hardly emphasize the importance of Adult Education as the foundation on which must be based the development of the social, economic and political life of this ancient land of ours-

Dr. Syed Mahmud—Speech as the Chairman of the Adult Education Committee.—1939.

योजना सफल नहीं हो सकती थी। वयस्क-शिक्षाकी आवश्यकता इसलिए भी अधिक थी कि देश में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के कार्यक्रम की सफलता बहुत कुछ वयस्कों के सहयोग पर ही अवलम्बित थी। निरक्षर माँ-बाप अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति उतनी रुचि नहीं रख सकते, जितनी की शिक्षित माँ-बाप रख सकते हैं। *

इस तरह सन् १९३७ ई० के पश्चात भारत की वयस्क-शिक्षा को एक नयी प्रेरणा प्राप्त हुई। लगभग सभी कांग्रेसी प्रान्तों में वयस्क-शिक्षा के प्रसार की चेष्टाएँ होने लगीं। इन प्रयत्नों में बिहार सरकार के प्रयत्न विशेष महत्त्व रखते हैं। बम्बई प्रान्त तथा मैसूर देशी-राज्य में भी वयस्क-शिक्षा के प्रशंसनीय कार्य हुए। इनका संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

बम्बई—अपने संगठन के बाद शीघ्र ही कांग्रेसी सरकार ने वस्यक-शिक्षा की समस्या के अध्ययन के लिए एक कमिटी नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष डाक्टर क्लिफोर्ड मन्शार्ट (Clifford Manshardt) थे। इस कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार एक प्रान्तीय वयस्क-शिक्षा-बोर्ड संस्थापित हुआ, जिसके तत्वावधान में वयस्क-शिक्षा का कार्य नियमित रूप से प्रारम्भ हो गया। बोर्ड ने सर्वप्रथम बम्बई शहर में ही वस्यक-शिक्षा की एक योजना प्रचालित की। इस योजना के अनुसार स्कूल तथा कालेज के छात्रों को, गर्मी की छुट्टी में, वयस्क-शिक्षा के कार्य में लगाया गया। इस प्रयास में इतनी सफलता मिली कि बोर्ड ने यह तय किया कि इस योजना को स्थायी रूप दिया जाय। इसी उद्देश्य से बम्बई शहर वयस्क-शिक्षा-कमिटी (Bombay City Adult Education Comittee) आयोजित की गई और इस कमिटी को ५०००० रु० वार्षिक सहायता स्वीकृत की

* No Government can afford today to be blind to the imperative need of the expansion of primary education, but for the speeding up of the tempo of the progress of education of boys and girls a sympathetic atmosphere and the helpful cooperation of the parents is an urgent necessity, and this can not be achieved unless and until the parents themselves realise the importance of education. Thus adult education is no less important for the expansion and completion of our programme of primary education.

Dr. Syed Mahmud, speech as Chairman of Adult Education Committee.—1939.

गई। कार्य की देख-रेख के लिए एक विशेषज्ञ साक्षरता-अफसर की नियुक्ति भी की गई। योजना के अनुसार बम्बई नगर में वयस्क-शिक्षा का कार्य सफलतापूर्वक चलने लगा। दुर्भाग्यवश, शीघ्र ही कांग्रेसी सरकार ने पद-त्याग कर दिया, जिससे योजना को बड़ा आघात पहूँचा। यद्यपि ९३वीं धारा (Scetion 93 Covt.) की सरकार ने भी योजना को चालू रक्खा, किन्तु इसकी प्रारम्भिक शक्ति कायम न रह सकी। सन् १९४६ ई० में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् वयस्क-शिक्षा की ओर पुनः पूरा ध्यान दिया जाने लगा। १५ से ४० वर्ष के बीच के सभी वयस्कों को साक्षर बनाने के निमित्त एक दस-वर्षीय योजना संचालित की गई। इस योजना के अनुसार बम्बई प्रान्त में वयस्क शिक्षा का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। सन् १९३७–४७ की अवधि में 'बम्बई नगर वयस्क-शिक्षा कमिटि' के द्वारा कुल मिलाकर १९५,००० वयस्क, साक्षरता के लिए, भरती किये गये। इनमें १२१,००० वयस्कों ने साक्षरता परीक्षा पास की। इनमें ९८,००० पुरुष तथा २३,००० स्त्रियां थीं। इन वयस्कों की साक्षरता के कार्य में कुल मिलाकर ७०६,००० रुपये खर्च हुए। इस तरह, प्रति वयस्क ५ रु० १३ आ० साक्षरता-प्राप्ति में, व्यय हुआ।* कमिटि ने नये साक्षरों के लिए उत्तर साक्षरता (post literacy) कक्षाएं भी आयोजित कीं। इसके अतिरिक्त, कमिटि ने वयस्कों के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित कीं तथा एक पाक्षिक-पत्रिका भी निकाली।

देहाती क्षेत्रों में, साक्षरता का कार्य सुचारु-रूप से न चल सका। प्रान्तीय वयस्क शिक्षा बोर्ड ने, इस कार्य के लिए, प्रमंडलीय तथा जिला कमिटियां संगठित कीं। इन कमिटिओं के जिम्मे उन संस्थाओं अथवा व्यक्तियों को स्वीकृति देने का अधिकार दिया गया, जो वयस्यक-साक्षरता के कार्य करना चाहते थे। प्रत्येक साक्षरता-केन्द्र के शिक्षक को ४ रु० मासिक अनुदान मिलता था। शिक्षक अथवा संस्था के अनावर्त्तक अनुदान के रूप में ६० रु० तक मिला करते थे, जिससे वे केन्द्र के सामान, शिक्षण-सामग्री आदि खरीद सकते थे। किन्तु इस योजना का दुरुपयोग होने लगा। फलतः सरकार ने प्रति साक्षर पारिश्रमिक की दर ४ रु० से घटाकर १० आ० कर दिया। इसका फल यह हुआ कि साक्षरता केन्द्रों में वयस्कों की संख्या घटने लगी।

* Nurullah & Naik—P. 818.

स्थिति सुधारने के विचार से सरकार ने अनुदान की दर पुनः ४ रु० प्रति साक्षर कर दी। वयस्क शिक्षा केन्द्रों के प्रबन्ध तथा प्रशासन में भी कुछ हेर-फेर किये गये। किंतु फिर भी, वयस्क शिक्षा की स्थिति में विशेष उन्नति न हुई। सन् १९४६–४७ में बम्बई प्रान्त के देहाती क्षेत्रों में कुल मिलाकर १,८१८ साक्षरता कक्षाएं खुली हुई थीं, जिनमें ४८,५७७ निरक्षर भरती थे। इस वर्ष कुल मिलाकर २२,३०० निरक्षर साक्षर हुए। *

मैसूर—मैसूर राज्य में वयस्क-शिक्षा की दिशा में प्रशंसनीय कार्य हुए। सन् १९४० ई० में मैसूर विश्वविद्यालय ने शहर की निरक्षरता के विरुद्ध एक आन्दोलन का सूत्रपात किया। किन्तु शीघ्र ही सरकार की सहायता तथा सहानुभूति से "मैसूर राज्य वयस्क शिक्षा समिति" (Mysore State Adult Education Council) की स्थापना हुई। सभा में ६०–७० सदस्य थे। साल में दो-तीन बार सभा की बैठक होती थी, जिसमें वयस्क-शिक्षा सम्बन्धी सामान्य नियम निर्धारित किये जाते थे तथा आय-व्यय का लेखा-जोखा होता था। दैनिक कार्यों के संचलान के लिए सभा ने १२ सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति नियुक्त की, जो कि महीने में एक बार अवश्य बैठती थी। वयस्क-शिक्षा के संचालन तथा निरीक्षण के लिए विशेपज्ञ आफिसर प्रत्येक जिले में नियुक्त किये गये। वयस्क-शिक्षा-केन्द्रों के आयोजन तथा सुप्रबन्ध के लिए प्रत्येक जिले में कुछ अन्य कार्यकर्ताएँ भी नियुक्त हुए। वयस्क-शिक्षा का कार्य मुख्यतया निम्नांकित तीन रूपों में चलता था।

(१) साक्षरता कक्षाएँ—निरक्षर वयस्कों को सर्वप्रथम साक्षरता की शिक्षा दी जाती थी। पढ़ना-लिखना तथा गणित सम्बन्धी सामान्य ज्ञान साक्षरता-कक्षाओं में दिलाया जाता था। साक्षरता प्राप्त करने पर एक जाँच होती थी तथा सफल छात्रों को प्रमाण-पत्र दिया जाता था।

(२) साक्षरता प्राप्त करने पर वयस्कों के लिए पुस्तक पढ़ने-पढ़ाने का विशेष केन्द्र आयोजित होता था, ताकि नवसाक्षर पुनः निरक्षर बन जायँ तथा अपने नव-अर्जित ज्ञान को विकसित कर सकें। इन नव-साक्षरों के लिए विशेष प्रकार की पुस्तकें लिखीं तथा प्रकाशित की जाती थीं, ताकि उनके पढ़ने में वयस्क पर्याप्त रुचि ले सकें।

* Nurullah & Naik—P. 819.

(३) ग्राम-पंचायत की संरक्षणता में वयस्कों की ज्ञान-वृद्धि के लिए पुस्तकालयों का प्रबन्ध किया गया। पुस्तकालय खोलने के लिए ग्राम-पंचायत को ३०) इकट्ठा करना पड़ता। राज्य की वयस्क-शिक्षा सभा की ओर से ७०) मिलते थे। इस तरह १०० की लागत से एक छोटा-सा पुस्तकालय खड़ा हो जाता था। सन् १९४८ ई० में इस तरह के १८१२ पुस्तकालय राज्य भर में संचालित थे।

वयस्कों के लिए उपयुक्त पुस्तकों का आयोजन मैसूर राज्य वयस्क-शिक्षा सभा के द्वारा ही होता था। यह सभा उपयुक्त पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध स्वयं करती थी। सभा के प्रकाशन में साक्षरता की पाठ्य-पुस्तकें, वयस्क-शिक्षा की पुस्तकें तथा वयस्कों के उपयुक्त पत्र-पत्रिकाएँ थीं। 'बेलकू' नामक साप्ताहिक पत्रिका की ६००० प्रतियाँ सभी साक्षरता केन्द्रों तथा ग्राम-पुस्तकालयों में निःशुल्क भेजी जाती थीं। "पुस्तकप्रपञ्च" नामक एक मासिक पत्रिका भी सभा के द्वारा प्रकाशित होती थी जिसमें ग्राम-जीवन से सम्बन्धित उपयोगी लेख आदि रहते थे। उपयोगी पुस्तकों की सूची तथा समीक्षाएँ भी इसमें दी जाती थीं, जिनसे ग्राम-पुस्तकालयों को अपने लिए पुस्तकें चुनने में बड़ी सहायता मिलती थी।

विद्यापीठ—राज्य वयस्क-शिक्षा-सभा की ओर से 'नंजनगढ़' में एक विद्यापीठ भी संस्थापित हुआ, जिसमें वयस्कों को विभिन्न विषयों की नियमित शिक्षा दी जाती थी। इस विद्यापीठ का निर्माण डेनमार्क के सुप्रसिद्ध "लोक-हाई स्कूल" के अनुकरण पर हुआ है। विद्यापीठ में छात्रावास भी है, जिनमें छात्रों का रहना अनिवार्य है। यहाँ की शिक्षा की अवधि ५ महीने की होती है। कृषि तथा ग्राम-उद्योग से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा यहाँ विशेष रूप से दी जाती है। विद्यापीठ वयस्क-शिक्षा के कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण-केन्द्र का कार्य भी करता है। राज्य के वयस्क-शिक्षा-विभाग के कर्मचारी यहाँ प्रशिक्षित होने आते हैं। मैसूर का यह विद्यापीठ अपने ढंग की एक परमोपयोगी संस्था है।

बिहार—मार्च, १९३८ ई० में तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री डा० सैयद महमूद के द्वारा बिहार के निरक्षरता-निवारण आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ। शुरू में यह आन्दोलन नितान्तः स्वाश्रयी था। स्थानीय चन्दों तथा कुछ धनी-मानी व्यक्तियों की आर्थिक सहायता के बल पर ही यह आन्दोलन कुछ दिनों तक बड़ी स्फूर्ति के साथ चलता रहा। मई से सितम्बर, १९३८ तक पाँच महीने की अवधि में प्रान्त में हजारों केन्द्र

खोले गये, जिनमें एक लाख से अधिक वयस्कों ने साक्षरता ग्रहण की। सितम्बर १९३८ के अन्त में, ६८२१ निरक्षरता-निवारण केन्द्र खुले हुए थे, जिनमें १२१७६५ वयस्क शिक्षा-ग्रहण के लिए दाखिल थे। निरक्षरता-निवारण का कार्यक्रम निम्नलिखित ४ रूपों में चलता था।

१—सभी लो० प्रा०, अ० प्रा० तथा मिड्ल स्कूलों को निरक्षरता-निवारण केन्द्र खोलना पड़ता था। प्रत्येक केन्द्र को प्रति साक्षर-वयस्क ५ आने के हिसाब से आर्थिक सहायता मिलती थी।

२—स्कूलों के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थाओं में भी साक्षरता-केन्द्र खुले हुए थे। इन्हें प्रतिवर्ष १५ रु० की वार्षिक सहायता मिलती थी।

३—प्रत्येक जिले में प्रतिवर्ष एक थाना सघन साक्षरता-कार्य के लिए चुन लिया जाता था। उस थाने के १५ से ४० वर्ष की अवस्था-वाले सभी पुरुषों को साक्षर बना देने की पूर्ण चेष्टा की जाती थी। थाने के कार्य के निरीक्षण तथा प्रबन्ध के लिए एक विशेष निरीक्षक नियुक्त रहते थे। केन्द्रों के आयोजन तथा संगठन के लिए कई कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। इस कार्यक्रम के अनुसार प्रति वर्ष एक थाना सघन कार्य के लिए चुना जाता था। वर्ष की समाप्ति पर थाने में छोटे-छोटे पुस्तकालय खोले जाते थे, ताकि नये वयस्क अपनी नवार्जित साक्षरता को जीवित रख सकें तथा आगे पढ़ने में रुचि ले सकें।

४—अपना घर साक्षर बनाओ (Make your home literate) —इस कार्यक्रम के अनुसार एक परिवार के लोगों के बीच ही साक्षरता केन्द्र खोला जाता था। केन्द्र का शिक्षक सामान्यतः उस परिवार का ही कोई छात्र होता था, जिसे अपने माँ-बाप, चाची-चाचा आदि लोगों को साक्षर बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता था। यह कार्यक्रम सर्व-प्रथम चीन में सफलतापूर्वक उपयुक्त हुआ था। इसके सम्बन्ध में 'हरिजन' में सन् १९३९ में डाक्टर हेन्गाचिह्-ताओ के दो लेख प्रकाशित हुए, जिसके आधार पर भारत में यह कार्यक्रम प्रचलित हुआ।

५—उच्च स्कूलों तथा कालेजों को भी निरक्षरता-निवारण केन्द्र अपने नियमित कार्य के अंग के रूप में खोलने पड़ते थे। उन्हें किसी तरह की आर्थिक सहायता न दी जाती थी।

६—सरकार की ओर से जेलों में भी निरक्षरता-निवारण केन्द्र खोले गये थे तथा प्रत्येक कैदी को साक्षर बनाने की चेष्टा की जाती थी। सिपाहियों तथा चौकीदारों को भी साक्षर बन जाने का आदेश सरकार की ओर से जारी किया गया था।

७—मिल-मालिकों तथा अन्य प्रकार के बड़े व्यावसायियों को अपने श्रमिकों को साक्षर बनाने के लिए निरक्षरता-निवारण केन्द्र, अपने खर्च से, खोलने पड़ते थे।

अक्टूबर, १९३८ में बिहार के निरक्षरता-निवारण आन्दोलन को १९३८–३९ साल के लिए ८०,००० रुपये की सहायता मिली। सितम्बर, १९३८ से मार्च १९३९ तक निरक्षरता-निवारण केन्द्रों के त्रैमासिक दो सत्र समाप्त हुए। प्रथम सत्र में ९५३८ केन्द्रों में २०८६२२ वयस्क साक्षर हुए तथा द्वितीय सत्र में १४२५९ केन्द्रों में ३१८७३७ वयस्क साक्षर बने। १९३८–३९ साल की समाप्ति पर बिहार सरकार के द्वारा ४½ लाख व्यक्ति निरक्षरता-निवारण केन्द्रों में साक्षर हुए घोषित किये गये।

आन्दोलन के द्वितीय वर्ष १९३९–४० में भी वयस्क-शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। प्रथम वर्ष की नाईं इस वर्ष भी हजारों की संख्या में निरक्षरता-निवारण केन्द्र खोले गये। साल के अन्त तक १८८७८ केन्द्र खुले, जिनमें ११६८३२५ वयस्क साक्षरता के लिए भर्ती थे। इन वयस्कों में ४१३४३२ वयस्क साक्षर हुए। कई कारणों से साक्षरता-प्राप्त व्यक्तियों की संख्या गतवर्ष (४½ लाख) से कुछ कम ही रही। आन्दोलन में लगे कार्यकर्ताओं की संख्या २०,५६७ थी, जिसमें ५,२६७ कार्यकर्ता प्राथमिक स्कूलों के शिक्षक थे। इस वर्ष आन्दोलन पर २ लाख रुपया व्यय हुआ, जिसमें सरकारी सहायता १८०५१० रुपये की थी। गतवर्ष की नाईं जेलों में भी निरक्षरता-निवारण केन्द्र क्रियाशील रहे। सेन्ट्रल जेलों के ५९४ कैदियों ने तो दो वर्ष के लगातार अध्ययन के फलस्वरूप अ० प्रा० तथा लो० प्रा० की पूर्ण परीक्षाएं पास कीं। गया जेल में ४,२११ कैदी साक्षरता ग्रहण करते थे, जिनमें २,३६३ कैदियों ने पढ़ना, लिखना तथा गणित का सामान्य ज्ञान भलीभाँति प्राप्त कर लिया था। इस वर्ष ९,००० चौकीदारों ने भी साक्षरता प्राप्त की।

इस तरह बिहार का वयस्क-शिक्षा आन्दोलन बहुत ही प्रभावशाली तथा व्यापक आन्दोलन के रूप में परिलक्षित हुआ। निरक्षरता-निवारण के क्षेत्र में समस्त भारत में बिहार का प्रथम स्थान था। वयस्क-शिक्षा के सुविख्यात विशेषज्ञ डाक्टर फ्रैंक लौबक के मत में "आधुनिक भारत में सरकार द्वारा संचालित आन्दोलनों में बिहार का निरक्षरता-निवारण आन्दोलन सबसे प्रभावोत्पादक था।" * दुर्भाग्य-वश द्वितीय महायुद्ध-जनित परिस्थितियों के कारण प्रथम कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल को शीघ्र ही पद-त्याग करना पड़ा। स्वभावतः नव-जात वयस्क-शिक्षा आन्दोलन पर इसका प्रभाव बहुत ही प्रतिकूल पड़ा। ९३वीं धारा की सरकार (Section 93) ने वयस्क-शिक्षा कार्य को बन्द तो नहीं किया, किन्तु अब वह नितान्तः सरकारी व्यापार रह गया। उसका आन्दोलनात्मक स्वरूप स्वभावतः मिट-सा गया और फलतः वयस्क-शिक्षा विभाग एक महज यान्त्रिक विभाग रह गया, जिसके आधार में न कोइ सजीव प्रेरणा थी, न कोई स्पष्ट आकर्षण। पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार निरक्षरता-निवारण योजना किसी प्रकार चलती मात्र रही। सरकारी आंकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष निरक्षरता-निवारण केन्द्रों में लगभग २ लाख वयस्क साक्षर होते गये। सरकारी कोष से दो लाख, बाद में महंगी के कारण ३ लाख रुपये, इस योजना पर प्रतिवर्ष खर्च होते रहे। सन् १९४४ के सितम्बर में एक योजना चालू की गयी, जिसके अनुसार पूर्व-शिक्षित वयस्कों की एक जाँच होती थी। जाँच का उद्देश्य यह पता लगाना था कि नव-शिशित वयस्कों की साक्षरता कायम है अथवा नहीं। इस जाँच में असफल होनेवाले वयस्क पुनः साक्षरता कक्षा में भर्ती किये जाते थे। किन्तु इस 'योजना' से भी वयस्क-शिक्षा को विशेष लाभ न हो सका।

सन् १९४६ ईस्वी में कांग्रेस ने प्रान्तों में पुनः पद-ग्रहण किया। शिक्षा-मन्त्री आचार्य बदरीनाथ वर्मा के नेतृत्व में प्रान्त की वयस्क-शिक्षा योजना का सिंहावलोकन किया गया तथा विगत अनुभवों के आधार पर सन् १९४७ ईस्वी में एक नयी योजना प्रचालित की गई, जो कि "वयस्क शिक्षा योजना" के नाम से विख्यात हुई। नयी योजना के अनुसार एक पंचवर्षीय कार्यक्रम तैयार किया गया, जिसके अनुसार

* The most impressive Govt. compaigns conducted in India in modern times. Dr. Frank Laubach—India shall be Literate.

प्रतिवर्ष २ लाख वयस्क शिक्षित किये जा सकते थे। योजना का उद्देश्य भी पहले की अपेक्षा विस्तृत हो गया। वयस्क-शिक्षा केन्द्रों का उद्देश्य वयस्कों को केवल साक्षर बनाना न था, बल्कि उन्हें नागरिकता, स्वास्थ्य तथा सफाई आदि बातों की भी शिक्षा दी जानी चाहिए थी। इस प्रकरण के अधिकांश लेखक की पूर्व-प्रकाशित पुस्तक "वयस्क शिक्षा प्रणाली" से उद्धृत किये गये हैं।

शिक्षा के पुनर्गठन की योजनाएं

सन् १९३७–४७ की अवधि में शिक्षा के सुधार तथा पुनर्गठन की ओर सरकारी तथा गैरसकारी चेष्टाएं, जितनी अधिक मात्रा में उद्भूत हुईं, उतनी पहले कभी नहीं हुई थीं। इन चेष्टाओं के फलस्वरूप इस अवधि में कई योजनाएं प्रकट हुईं। ये योजनाएं सरकारी तथा गैरसरकारी दोनों ही प्रकार की थीं। कुछ योजनाएं अखिल भारतीय स्वरूप की थीं, कुछ प्रान्तीय सरकारों के द्वारा प्रान्तीय समस्याओं से ही सम्बन्धित थी। अखिल भारतीय योजनाओं में निम्नलिखित प्रमुख थीं :—

१—राष्ट्रीय पुनर्गठन कमिटि (National Planning Committee) के तत्त्वाधान में निर्मित शिक्षा पुनर्गठन की योजना

२—अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन (All India Eduactional Confernce) के द्वारा प्रस्तावित योजना

३—युद्धोत्तर शिक्षा-प्रसार योजना १९४४ (सार्जेन्ट रिपोर्ट)।

इन तीनों में, युद्धोत्तर शिक्षा-प्रसार होजना सब से महत्त्वपूर्ण थी। अत: इसका संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है। भारत सरकार के निर्देश पर केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति ने यह योजना सन् १९४४ में उपस्थित की। सधारणतया यह योजना 'सार्जेन्ट रिपोर्ट' के नाम से बिख्यात है। जान सार्जेन्ट, जो कि उस समय केन्द्रीय सरकार के शिक्षा परामर्शदाता थे, इस योजना के प्रस्तुतीकरण में महत्त्वपूर्ण योग दिया था।

योजना का उद्देश्य ४० वर्ष की अवधि में भारत को शिक्षा के क्षेत्र में, इग्लैंड के समकक्ष बना देना था। इसी लक्ष्य के प्रकाश में योजना ने भारतीय शिक्षा के सभी पहलुओं के सम्बन्ध में अपने सुझाव उपस्थित किये। भारतीय शिक्षा-पद्धति, योजना में निम्नलिखित चरणों में बांटी गयी।

(१) प्रथम चरण—३ से ६ वर्ष के बच्चों के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा

(२) द्वितीय चरण—६ से १४ वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क, अनिवार्य प्राथमिक अथवा बुनियादी शिक्षा। यह शिक्षा दो स्तर की होनी चाहिए थी—निम्न बुनियादी शिक्षा (Junior Basic), जो कि ६–११ वर्ष के बच्चों के लिए होती तथा उच्च बुनियादी शिक्षा (Senior Basic), जो कि ११–१४ वर्ष के बच्चों के लिए होती

(३) तृतीय चरण—चुने हुए छात्रों के लिए हाई स्कूल की शिक्षा। यह शिक्षा ११ से १७ वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए ६ वर्ष की होनी चाहिए थी।

(४) चतुर्थ चरण—३ वर्ष की विश्वविद्यालय की शिक्षा। यह शिक्षा इन्टरमिडिएट कक्षा के बाद तीन वर्ष की अवधि की होनी चाहिए थी, जो कि चुने हुए छात्रों को ही दी जानी चाहिए थी।

इस सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त, योजना में टेकनिकल, व्यापारिक तथा कला शिक्षाओं के अंशकालिक तथा पूर्ण कालिक—दोनों ही रूपों में आयोजित करने की सिफारिश की गयी। निरक्षरता-निवारण तथा जन-शिक्षा के लिए पुस्तकालयों के प्रसार की ओर योजना ने सरकार का ध्यान आकर्षित किया। शिक्षकों के प्रशिक्षण, शारीरिक शिक्षा, स्कूलो में जलपान का प्रबन्ध, आदि प्रश्नों पर भी योजना में महत्त्वपूर्ण सुझाव उपस्थित किये गये।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को सार्जेन्ट-रिपोर्ट ने राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का एक आवश्यक अंग माना। † इस शिक्षा का प्रधान उद्देश्य बच्चों को सामाजिक अनुभव देना था, न कि शिक्षा देना। ‡ यह शिक्षा पूर्णतः निःशुल्क होनी चाहिए थी। पूर्व-प्राथमिक अथवा नर्सरी स्कूलों के शिक्षण का कार्य, खास तौर से प्रशिक्षित, स्त्री-शिक्षिकाओं के द्वारा सम्पादित होना चाहिए था।

† An adequate provision of Pre-Primary instruction in the form of Nursery schools or classes is an essential adjunct to any national system of education.

‡ The main object of education at this stage is to give young children social experience rather than formal instruction.

Sargent Report 16-17

प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के लिए रिपोर्ट ने, कुछ आवश्यक संशोधन के साथ, बुनियादी शिक्षा को ही उपयुक्त माना। बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत 'क्रिया के द्वारा ज्ञान' के सिद्धांत को रिपोर्ट ने पूर्णतः स्वीकार किया और यह परामर्श दिया कि प्राथमिक शिक्षा का सारा पाठ्य-क्रम इस सिद्धांत पर पल्लवित् हो। किंतु रिपोर्ट ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी सम्मति में शिक्षा, किसी भी चरण में, विशेषतः प्राथमिक चरण में, स्वाश्रयी नहीं हो सकती है, न होनी चाहिए। छात्रों के उत्पादन से, अधिक से अधिक, दस्तकारी के सामान खरीदे जा सकते हैं। *

माध्यमिक शिक्षा

रिपोर्ट के विचार में हाई स्कूलों की शिक्षा उन्हीं छात्रों को दी जानी चाहिए थी, जिनकी क्षमताएं, औसत छात्रों से, स्पष्टतः ऊंची थी। अतः हाई स्कूलों के लिए छात्रों का चुनाव उनकी क्षमताएं, प्रवृत्तियां तथा उनके प्रतिभा के आधार पर होना चाहिए था। रिपोर्ट के अनुमान के अनुसार प्राथमिक स्कूलों से पास करने वाले छात्रों के लगभग २० प्रतिशत हाई स्कूलों के लिए उपयुक्त हो सकते थे। हाई स्कूलों में छात्रों की भरती की अवस्था ११ वर्ष होनी चाहिए। हाई स्कूलों में ५० प्रतिशत छात्रों के लिए निःशुल्क पढ़ने की अनुमति मिलनी चाहिए, ताकि योग्य छात्र अर्थाभाव के कारण हाई स्कूल की शिक्षा से बंचित न हों।

रिपोर्ट की दृष्टि में, माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालय शिक्षा की पृष्ठभूमि मात्र न रहे, बल्कि स्वतः पूर्ण हो। हाई स्कूलों से प्रतिभावान छात्र विश्वविद्यालयों के लिए प्रस्तुत अवश्य किये जायं, किंतु अधिकांश

* The Board, however, are unable to endorse the view that education at any stage and particularly in the lowest stage can or should be expected to pay for itself through the sale of articles produced by the pupils.

The most which can be expected in this respect is that sales should cover the cost of the additional materials and equipments required for practical work.

Sargent Report. p. 7.

छात्रों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जो उन्हें सीधे किसी व्यवसाय में लगा सके। *

हाई स्कूल दो तरह के हों — साहित्यिक तथा टेकनिकल। पहली श्रेणी के हाई स्कूल कला तथा विज्ञान की सामान्य शिक्षा दें, दूसरी श्रेणी के हाई स्कूल प्रायोगिक विज्ञान तथा औद्योगिक एवं व्यापारिक ज्ञान दें।

हाई स्कूलों में शिक्षा के माध्यम मातृभाषाएं हों। अंग्रेजी अनिवार्य द्वितीय भाषा रहे।

विश्वविद्यालय

भारतीय विश्वविद्यालय में कई अच्छी बातें हैं, किंतु उनमें कई दोष भी हैं। वे दोष मुख्यतया निम्नलिखित हैं—

क—उनके कार्य, समग्र रूप से, भारतीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते। †

ख—विश्वविद्यालयों के उत्पादन तथा बाजार की मांग में कोई साम्य नहीं है।

ग—विश्वविद्यालय की शिक्षा में परीक्षाओं का अधिक महत्त्व है।

घ—इन परीक्षाओं के कारण विश्वविद्यालय के छात्रों के अध्ययन का वृत्त संकीर्ण रहता है। इससे उन्हें मौलिक चिन्तन तथा विद्वता की प्रेरणा नहीं मिलती।

च—विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए 'मैट्रिकुलेशन परीक्षा' पास रहना पर्याप्त रहता है। यह परीक्षा अपेक्षाकृत आसान होती है। स्पष्टतः विश्वविद्यालयों में बहुत से ऐसे छात्र भी दाखिल हो जाते हैं, जो इसकी शिक्षा के लिए सर्वथा अयोग्य रहते हैं।

* High school education should on no account be considered simply as a preliminary to university education, but as a stage complete in itself.

.........while it will remain a very important function of the High School to pass on their most able pupils to universities or other institutions of equivalent standard, the large majority of High School leavers should receive an education that will fit them for direct entry into occupations and professions.

Sargent Report—p. 20.

† Indian universities as they exist today, despite many admirable features do not fully satisfy the requirements of a national system of education.

Sargent Report—P. 22.

छ—अनेक सुयोग्य तथा प्रतिभावान छात्र, आर्थिक कठिनाइयों के कारण, विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। ऐसे छात्रों के लिए विश्वविद्यालयों की ओर से खास प्रबन्ध नहीं है।

ज—विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में फेल होने वाले छात्रों की संख्या अत्यधिक है।

इन त्रुटियों के निराकरण के लिए रिपोर्ट ने कई सुझाव दिये, जिनमें प्रमुख ये थे :—

१—विश्वविद्यालयों की शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के उद्देश्य से इसमें प्रवेश पाने की शर्तों में संशोधन किया जाय।

२—गरीब विद्यार्थियों को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाय।

३—विश्वविद्यालय-शिक्षा से वर्तमान इन्टरमिडिएट कक्षाएं हटा ली जायं। इन कक्षाओं का पाठ्य-क्रम हाई स्कूल की शिक्षा में सम्मिलित कर लिया जाय। जब तक यह न हो जाय, तब तक के लिए, इन्टरमिडिएट कक्षा का पहला साल हाई स्कूल में जोड़ दिया जाय, दूसरा साल इन्टरमिडिएट में संलग्न किया जाय।

४—विश्वविद्यालय शिक्षा का अध्ययन-क्रम, कम से कम, ३ साल का हो।

५—उपकक्षा प्रणाली (Tutorial system) का प्रबन्ध विस्तृत किया जाय और शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों का वैयक्तिक सम्पर्क और भी निकट बनाया जाय।

६—स्नातकोत्तर अध्ययन तथा अनुसंधान के कार्य का मानदण्ड ऊंचा किया जाय।

७—जिन स्थानों में विश्वविद्यालय तथा कालेजों के शिक्षकों की शर्तें सुयोग्य व्यक्तियों को शिक्षण कार्य के लिए आकर्षित न करती हों, वहाँ विश्वविद्यालय तथा कालेजों के शिक्षकों की सेवा, उनके पारिश्रमिक आदि अधिक आकर्षक बनायी जायं।

टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा

देश की आवश्यकताओं के आधार पर रिपोर्ट ने, टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा की चार श्रेणियाँ कीं। प्रथम श्रेणी की शिक्षा उन

लोगों को दी जानी चाहिए थी, जो कि देश के युद्धोत्तर निर्माण में मुख्य प्रशासक तथा अनुसंधानकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित होते। इनकी शिक्षा उच्च कोटि की होनी चाहिए थी। इस शिक्षा के लिए चुने हुये व्यक्ति ही अंगीकृत किये जाने चाहिए थे।

दूसरी श्रेणी की शिक्षा उन लोगों के लिए आयोजित होनी चाहिए थी, जो विभिन्न उद्योगों तथा व्यावसायों में छोटे-छोटे प्रशासनीय पद ग्रहण करते। टेकनिकल हाई स्कूलों में शिक्षित छात्रों के लिए किसी प्रकार की विशेषीकृत शिक्षा का आयोजन होना चाहिए था। *

तीसरी श्रेणी की शिक्षा 'कुशल कारीगरों' के उत्पादन के विचार से संगठित होनी चाहिए थी। टेकनिकल हाई स्कूलों में ही इस प्रकार के कुशल कारीगरों का उत्पादन हो सकता था। सीनियर बेसिक स्कूल के छात्रों को, इन कार्यों के लिए, जुनियर टेकनिकल स्कूल अथवा औद्योगिक स्कूल में दो-तीन साल की अतिरिक्त शिक्षा दी जानी चाहिए थी।

चौथी प्रकार की शिक्षा का ध्येय वैसे लोगों को उत्पन्न करना था, जो कि अर्द्ध-कुशल अथवा सामान्य श्रमिक के कार्य करते। इन कार्यों के लिए सीनियर बेसिक-शिक्षा-प्राप्त किये हुए छात्र उपयुक्त थे। किंतु इन अर्द्ध-कुशल कारीगरों तथा श्रमिकों को अपनी योग्यता तथा कुशलता बढ़ाने की सुविधा मिलनी चाहिये, ताकि इनमें से कुछ लोग कुशल कारीगर में बदल सकें।

इन व्यवस्थाओं के अतिरिक्त, रिपोर्ट ने उन कारीगरों तथा श्रमिकों के अंश-कालिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की सिफ़ारिश की, जो विभिन्न औद्योगिक सेवाओं में नियुक्त थे। इस अंश-कालिक प्रशिक्षण से न केवल इनकी औद्योगिक निपुणता में वृद्धि होती, बल्कि इससे अन्य कई तरह के लाभ थे।

* Steps should be taken to improve the conditions of service including reumneration of University and College teachers, where those now in operation are not attracting men and women of the requisite calibre.

Sargent Report P. 23

वयस्क शिक्षा

रिपोर्ट ने वयस्क शिक्षा के प्रसार को प्रजातंत्र की सफलता के लिए अत्यावश्यक माना। † रिपोर्ट की दृष्टि में, वयस्क शिक्षा वयस्क साक्षरता तक सीमित न रहनी चाहिए थी। किंतु भारत की तत्कालीन परिस्थिति में, जब कि निरक्षरों की संख्या अत्यधिक थी, साक्षरता को वयस्क शिक्षा का प्रथम सोपान माना जाना चाहिए था। साक्षरता के साथ ही, वस्यक शिक्षा की चेष्टाएँ शुरू से ही की जानी चाहिए थीं, ताकि वयस्क जागरूक तथा क्रियात्मक नागरिक बन सकें।

वयस्क शिक्षा के संगठन के लिए रिपोर्ट ने कुछ सुझाव पेश किये। वे इस तरह थे—

वयस्क शिक्षा १० से ४० वर्ष की अवस्था के किशोरों तथा प्रौढ़ों के लिए आयोयित होनी चाहिए।

१०–१६ वर्ष के किशोरों के लिए अलग कक्षाएँ आयोजित की जायं। ये कक्षाएँ सामान्यत: दिन में ही लगें। लड़कियों के लिए भी अलग कक्षाओं की व्यवस्था की जाय।

वयस्क शिक्षा को रुचिकर तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए श्रव्य-दृश्य उपदानों–चित्र, मैजिक लालटेन, सिनेमा, रेडिओ आदि का व्यवहार प्रचुरता से होना चाहिए। संगीत तथा नृत्य, विशेषत: लोक-नृत्य, भी व्यवहृत किये जायं। वयस्कों के लिए उपयुक्त पुस्तकों को प्राप्य बनाने के उद्देश्य से पुस्तकालयों का प्रबन्ध, पर्याप्त संख्या में, होना चाहिए। परिभ्रमणशील पुस्तकालयों से अपेक्षाकृत कम खर्च में काम चल सकेगा।

† The role of adult education is to make every possible member of a state an effective and efficient citizen and thus to give reality to the ideal of democarcy. The main emphasis in this country must, for sometime to come, be literacy, although from the very beginning some provision must be made for adult education proper.

Sargent Report--P, 46.

वयस्क शिक्षा का कार्य केवल गैरसरकारी साधनों से नहीं चल सकता। अतः वयस्क शिक्षा के संचालन का प्रधान उत्तरदायित्व सरकार पर ही रहना चाहिए। *

मजबूर बच्चों की शिक्षा (Education of the handicapped)

रिपोर्ट ने मजबूर बच्चों की शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा का आवश्यक अंग माना और इस शिक्षा के आयोजन का उत्तरदायित्व सरकारी शिक्षा विभागों पर आरोपित किया। ‡ शिक्षा की दृष्टि से रिपोर्ट ने मजबूरी की दो श्रेणिया कीं—मानसिक मजबूरी, शारीरिक मजबूरी। मानसिक मजबूरी वाले छात्रों की श्रेणी में गंदे, पिछड़े तथा कमजोर बुद्धि वाले छात्र थे। शारीरिक श्रेणी के मजबूरी वाले छात्रों की श्रेणी में अंधे, बहरे, गूंगे आदि रखे जा सकते थे। इन दोनों प्रकार के मजबूर छात्रों की शिक्षा के लिए विशिष्ट विद्यालयों का आयोजन अपेक्षित था। रिपोर्ट ने यह भी परामर्श दिया कि मजबूर छात्रों के लिए उत्पादक कार्यों में प्रशिक्षित करना श्रेयस्कर था।

शिक्षकों के प्रशिक्षण

रिपोर्ट ने विभिन्न श्रेणी के स्कूलों के शिक्षकों की योग्यता निर्धारित की और इनके प्रशिक्षण की आवश्यकता भी प्रतिपादित की। रिपोर्ट की दृष्टि में पूर्व-प्राथमिक, जूनियर बेसिक तथा सिनियर बेसिक स्कूलों के शिक्षकों की न्यूनतम योग्यता "हाई स्कूल पाठ्य-क्रम समाप्त किया हुआ" रहना चाहिए था। पूर्व-प्राथमिक तथा जूनियर बेसिक स्कूलों के शिक्षकों को दो वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए था, सीनीयर बेसिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए ३ वर्ष का प्रशिक्षण अपेक्षित था। हाई स्कूलों के उन शिक्षकों जो स्नातक न थे, २ वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए था। स्नातक शिक्षकों के लिए एक ही वर्ष का प्रशिक्षण पर्याप्त था।

* Although substantial help can be had from voluntary organisation, the problem of adult education as a whole is so far too vast to be within the capacity of unaided voluntary efforts. The state must accept the prime responsibility for tackling the problem.

Sergent Report.—P. 52.

‡ The provision for such children should from an essential part of a national system of education and should be administered by the Education Department.—Sargent Report.

किसी स्कूल में शिक्षकों की संख्या क्या होनी चाहिए—इस सम्बन्ध में रिपोर्ट ने निम्नलिखित अनुपात निर्धारित किये।

पूर्व बुनियादी तथा निम्न बुनियादी स्कूल	३० बच्चों पर—१ शिक्षक
उच्च बुनियादी स्कूल	२५ छात्रों पर — १ ,,
हाई स्कूल	२० छात्रों पर — १ ,,

शिक्षक के पदों पर उपयुक्त व्यक्तियों को आकृष्ट करने के लिए रिपोर्ट ने यह परामर्श दिया कि सभी श्रेणी के स्कूलों के तत्कालीन वेतन-क्रम में सुधार किया जाय। यह सुधार प्राथमिक श्रेणी के स्कूलों के शिक्षकों के वेतन-क्रम में सब से अधिक आवश्यक था, क्योंकि इन शिक्षकों के वेतन अत्यन्त कम थे।

छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति के लिए रिपोर्ट ने इसकी पूर्ण जाँच की सिफारिश की। यह जाँच, पूर्ण शिक्षा की अवधि में, ४ बार होनी चाहिए थी। पहली जाँच ६ वर्ष की अवस्था में होनी चाहिए थी, जब कि छात्र प्राथमिक अथवा बुनियादी स्कूल में दाखिल हो, दूसरी जाँच ११ वर्ष की अवस्था में होनी चाहिए थी, तीसरी १४ वर्ष की अवस्था में, चौथी १६ या १७ वर्ष की अवस्था में। यह जाँच सुयोग्य डाक्टर के द्वारा होनी चाहिए थी। इन चार जाँचों के बीच की अवधि में यदि किसी छात्र में, किसी तरह की व्याधि शिक्षक को दृष्टिगोचर होती, तो उसे उसकी सूचना स्कूल-डाक्टर को देनी चाहिए थी। हर छात्र के सम्बन्ध में उसके स्वास्थ्य का एक लेखा रखा जाना चाहिए था, जो कि, छात्र के स्कूल बदलने पर, बदले हुए स्कूल में भेज दिया जाना चाहिए था। छात्रों की व्याधियों की चिकित्सा के लिए खास तरह के जांच-गृह तथा चिकित्सालय स्थापित होने चाहिए थे।

छात्रों के शारीरिक हित के लिए यह भी आवश्यक था कि हर स्कूल तथा कालेज में शारीरिक प्रशिक्षण आयोजित किया जाय। इस कार्य के लिए अनुभवी तथा सुयोग्य अफसर नियुक्त किये जायं। शारीरिक शिक्षा पर स्कूल के समस्त खर्च का, १/१० खर्च अपेक्षित था।

मनोरंजक तथा सामाजिक कार्य

किसी भी शिक्षा पद्धति में मनोरंजक तथा सामजिक कार्यों की शिक्षा की व्यवस्था अत्यावश्यक है। रिपोर्ट की दृष्टि में, शिक्षा का वास्तविक अर्थ व्यक्ति और समाज का सामंजस्य होना चाहिए, न कि सिर्फ मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक उपदेशों का जबर्दस्ती समावेश। †

मनोरंजक तथा सामाजिक कार्यों की शिक्षा की व्यवस्था स्कूल के छात्रों तथा बाहर के किशोरों एवं प्रौढ़ों—सबों के लिए होनी चाहिए। स्कूलों के छात्रों में बालकों तथा किशोरों की मनोरंजक तथा सामाजिक कार्य की शिक्षा उनकी अवस्थाओं तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुकूल होनी चाहिए।

उन युवकों के लिए, जिनकी अवस्था १४–२० वर्ष की है, तथा जो स्कूल छोड़ चुके हैं, उनके लिए मनोरंजन तथा सामाजिक कार्य की शिक्षा के लिए विशिष्ट आयोजन होना चाहिए। इनके लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक युवक आंदोलन संगठित होना चाहिए। यह आन्दोलन वर्त्तमान युवक संस्थाओं अथवा समितियों के कार्यों के बदले में नहीं चलाया जाय, अपितु यह इन्हें सम्बलित करने की चेष्टा करे। इस आन्दोलन के संचालन तथा प्रशासन के लिए सुयोग्य व्यक्ति नियुक्त किये जायं। ‡

रोजगार-प्रबन्धक कार्यालय

रोजगार-प्रबन्धक कार्यालय शिक्षा प्रशासन का प्रमुख अंग है। इस तरह के कार्यालय भारत में विशिष्ट स्थान रखते हैं, जहाँ रोजगार के द्वार अभी सीमित हैं। सीनीयर बेसिक, जुनियर टेकनिकल तथा हाई स्कूलों की पढ़ाई समाप्त करने वाले छात्रों के रोजगार की व्यवस्था का उत्तरदायित्व इन्हीं रोजगार-प्रबम्धक कार्यालयों पर सौंपा जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों को अपना-अपना रोजगार-प्रबन्धक कार्यालय आयोजित

† Education in the real sense should be a training in the process of social adjustment rather than the mere injection of a special dose of mental, moral or physical instruction.

Report. p. 62.

‡ Apart from the needs of boys and girls in schools and colleges, special attention should be paid to those in the 14–20 age-group who are no longer attending school. To serve these, youth movements on All-India Basis should be set up.

Report. p. 62.

करना चाहिए। बड़े-बड़े स्कूलों तथा कालेजों में भावी व्यवसाय निर्देशक (career masters) के पदों की सृष्टि होनी चाहिए। *

प्रशासन

शिक्षा के प्रशासन का प्रधान उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकारों पर ही रहना चाहिये। किंतु विश्वविद्यालय तथा उच्च टेकनिकल शिक्षा, अखिल भारतीय पैमाने पर, संयोजित होनी चाहिए। शिक्षा-प्रसार की नयी योजनाओं को कार्योन्वित करने के लिए छोटे-छोटे प्रशासनीय विभाग एक समूह में संगठित किये जा सकते हैं, अथवा सन्निकट के बड़े प्रान्तों में संयोजित किये जा सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति के हितों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के बीच आर्थिक तथा अन्य बातों में अधिक सहयोग स्थापित हो।

प्रान्तीय सरकार, शिक्षा-प्रसार की योजनाओं को कार्योन्वित करने के लिए जो भी प्रशासनीय परिवर्तन चाहें, कर सकते हैं। किन्तु अनुभवों के आधार पर रिपोर्ट ने यह परामर्श दिया कि स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं से शिक्षा-सम्बन्धी सभी अधिकार प्रान्तीय सरकार वापस लौटा लें। † ये अधिकार केवल उन्हीं संस्थाओं को छोड़ दिये जा सकते थे, जो शिक्षा-कार्य भली-भांति निभा रहे थे।

शिक्षा विभाग के पदाधिकारियों के पतनोन्मुख मानदण्ड को उन्नत बनाना अत्यावश्यक है। अतः इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाय। ‡

* Employment Bureau form an essential part of an educational administration. They are specially necessary in India in view of the restricted openings at the moment for progressive employment.

† Experience, however, suggests that they should be well advised to resume all educational powers from local bodies except where they are functioning efficiently.

‡ Steps should be taken to check the present deterioration in the status and calibre of the educational administration services and to enable it to secure the services of the type of officers who will be capable of carrying a scheme of the kind contemplated into successful operation.

Report—68

खर्च

रिपोर्ट के द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति के कार्यान्वित करने में, सार्वजनिक कोष से, कुल मिलाकर २७,७००० लाख रुपये खर्चा किये जाने चाहिए थे। ये खर्चा विभिन्न श्रेणी के विद्यालयों में निम्न-लिखित रूप में आवण्टित थे।

पूर्व-प्राथमिक अथवा पूर्व बुनियादी स्कूल	३२०	लाख
जुनियर बेसिक अथवा प्राथमिक स्कूल	११,४००	,,
सीनियर बेसिक अथवा मिडिल स्कूल	८,६००	,,
हाई स्कूल	५,०००	,,
विश्वविद्यालय	४७०	,,
टेकनिकल, व्यावसायिक स्कूल आदि	८००	,,
वयस्क शिक्षा	३००	,,
शिक्षकों का प्रशिक्षण	४५०	,,
मनोरंजन तथा सामाजिक कार्य	१००	,,
रोजगार-प्रबन्धक कार्यालय	६०	,,
	२७,७००	लाख

सार्जेन्ट रिपोर्ट—एक समीक्षा

भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन के इतिहास में युद्धोत्तर भारतीय शिक्षा विकास योजना (सार्जेन्ट रिपोर्ट) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह योजना ही "एक मात्र ऐसा व्यापक प्रयास था, जिसमें समग्र भारतीय शिक्षा-समस्या का,—शिशु-शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक का—······सांगोपांग पर्यवेक्षण किया गया"। † वस्तुतः यह योजना राष्ट्रीय शिक्षा की पहली वृहत् योजना थी। इस योजना ने पहली बार भारत की शिक्षा-सम्बन्धी संभावनाओं को पूर्ण रूप से व्यक्त किया। इसने उस धारणा का उन्मूलन किया, जो भारत को, शिक्षा के क्षेत्र में, अन्य राष्ट्रों से, सर्वदा के लिए, पिछड़ा हुआ मानता था। इसने पहली बार इस बात की उद्घोषना की कि, शिक्षा के क्षेत्र में, भारत की उप-लब्धियाँ अन्य राष्ट्रों की उपलब्धियों की सीमाओं को स्पर्श कर सकती हैं,

† शंभुनाथ ओझा—भारतीय शिक्षा की प्रगति—पृ० १५३

यदि इसके लिए उचित चेष्टा की जाय। * दूसरी ओर, योजना ने भारत की राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या की विशालता का भान भी लोगों को, स्पष्ट रूप से, करा दिया। इसने यह साफ कर दिया कि यह समस्या कुछ इतनी वृहत् थी कि शिक्षा-प्रसार की छोटी-छोटी तथा एकांगी योजनाओं से इसका निराकरण कभी भी सम्भव नहीं था और यह अत्यावश्यक था कि इस समस्या के हल के लिए एक सुव्यवस्थित, व्यापक, सर्वांगीण तथा दीर्घकालीन कार्यक्रम अपनाया जाय।

योजना की दूसरी विशेषता यह है कि इसने शिक्षा के सभी स्तरों पर, सभी श्रेणी के छात्रों के लिए समान अवसरों की उपलब्धि की व्यवस्था की। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर इसने न केवल निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की सिफारिश की, बल्कि उन अड़चनों के निवारण की सिफारिश की, जो कि गरीब बच्चों के अनिवार्य शिक्षा के ग्रहण के मार्ग में रुकावटें उपस्थित कर रही थीं। इन बच्चों के लिए दोपहर का नाश्ता, पाठ्य-पुस्तकें, छात्रवृत्तियाँ, चिकित्सा आदि के प्रबन्ध के द्वारा योजना ने इनकी प्राथमिक शिक्षा के ग्रहण की विभिन्न असुविधाओं को दूर करने की चेष्टा की। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी योजना ने साधनहीन छात्रों के लिए शुल्क की माफी तथा छात्रवृत्तियाँ आदि की स्वीकृति की सिफारिश की। यद्यपि योजना की सिफारिशें, अवसरों की समान उपलब्धि के कार्य में, पर्याप्त न थीं, इन्हों ने प्रचलित स्थिति में महत्त्वपूर्ण सुधार की कल्पना अवश्य की।

योजना की तीसरी विशेषता यह थी कि इसने शिक्षण-व्यवसाय का महत्त्व, स्पष्ट शब्दों में, प्रतिष्ठापित किया और यह भी स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय शिक्षा की स्थिति में पर्याप्त सुधार असंभव था, जब तक कि शिक्षकों के वेतन बढ़ाये न जाते, तथा उनकी सेवाओं की शर्तें अच्छी न बनायी जातीं। इन गुणों के साथ ही, योजना में कई ऐसी बातें थीं, जिनके कारण यह भारत के लोगों तथा शिक्षा-शास्त्रियों को खुश न कर सकी। इन बातों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :—

* It is the *first comprehensive scheme of national education;* it does not start with the assumption, implicit in all previous Government schemes, that India is destined to occupy a position of educational inferiority in the comity of nations.

K. G. Saiyidain—
Year Book of Education. 1949. p. 507.

योजना ने अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य की सिद्धि की जो अवधि निर्धारित की, वह अत्यधिक थी। किसी राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, विशेषकर शिक्षा के पुर्निनर्माण, के लिए ४० वर्ष की अवधि भारतीय दृष्टिकोण से काफी दीर्घ मालूम हुई। योजना के सही परिचालन के बाद भी भारत, शिक्षा के क्षेत्र में, इंग्लैंड के स्तर तक सन् १९८४ में पहुंच सकता था। कोई भी भारतीय इसे अंगीकार करने के लिए प्रस्तुत न होगा कि भारत इतने समय तक के लिए इंग्लैंड अथवा अन्य देश से पिछड़ा समझा जाय। हम आगे देखेंगे कि भारतीय संविधान में यह निर्देश दिया गया कि १० वर्ष की अवधि में देश के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा प्राप्य हो जाय। संविधान के अवतीर्ण होते ही सरकारी चेष्टाएँ इस लक्ष्य की सिद्धि की ओर प्रेरित होने लगी। किंतु परवर्ती कठिनाइयों की दृष्टि से, यह निश्चितता पूर्वक नहीं कही जा सकता कि संविधान का निर्देश, निर्दिष्ट समय में, साध्य हो सकेगा। ऐसी स्थिति में, हम सार्जेन्ट योजना के द्वारा निर्धारित अवधि को अत्यधिक नहीं मानते, विशेषकर वैसी स्थिति में जब कि योजना ने शिक्षा को आदर्श पृष्ठभूमि में ही प्रसारित करने की सिफारिश की थी। इस बात की सत्यता अब हमें स्पष्ट होने लगी है कि "ध्वंसात्मक कार्य आसान होते हैं, किन्तु निर्माण के कार्य में अपेक्षाकृत बहुत समय लगता है"। † शिक्षा के "संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों पक्षों" पर यथोचित ध्यान रखते हुए भारतीय शिक्षा के पूर्ण राष्ट्रीयकरण में हमारी गति तीव्र निस्सन्देह होनी चाहिए, किन्तु उतनी तीव्र नहीं कि हम थक कर शीघ्र हाथ-पांव पसार लें। कुछ विद्वानों ने, शिक्षकों की समस्या को हल करने के लिए यह परामर्श उपस्थित किया है कि शिक्षित नर-नारियों को शिक्षण-कार्य के लिए, अनिवार्य रूप से, भरती किया जाय। ‡ इस व्यवस्था को उपयोगी मानते हुए भी इसकी कठिनाइयों तथा खतरों को दृष्टि से ओझल करना

† भारतीय शिक्षा की प्रगति शम्भु नाथ ओझा-पृष्ठ—१३६।

‡ If the requisite number of persons is not forth coming on voluntary basis, we should not hesitate to conscript educated men and women for the purpose. It is already an accepted principle that men can be conscripted for war. There is no reason why they should not be conscripted in a war against ignorance and illiteracy.

Nurullah & Naik—P. 847

उचित न होगा। साथ ही, शिक्षा-प्रसार की कोई भी ठोस योजना इस प्रकार के प्रसाधनों को अपने कार्यक्रम का प्रमुख शिलाधार नहीं बना सकता। इस तरह, योजना के द्वारा प्रस्तावित ४० वर्ष की अवधि अधिक अवश्य है, किन्तु उतनी अधिक नहीं, जितनी हम १० वर्ष पहले मानते थे।

योजना की आर्थिक व्यवस्था भी कड़ी आलोचना का विषय बनी। सन् १९४० की जन-संख्या के आधार पर अखण्ड भारत को शिक्षित बनाने में, योजना के अनुसार, ३१३ करोड़ रुपये व्यय होते। जन-संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि तथा बढ़े हुए मूल्यों के विचार से, योजना को कार्यान्वित करने में ९०० करोड़ रुपये का वार्षिक खर्च होता। स्पष्टतः इतनी बड़ी रकम भारतीय सार्वजनिक कोष की शक्ति से बाहर थी। किन्तु, "ध्यान रहे कि शिक्षा सुधार में क्षुद्र नोचा-खोंची बहुत हो चुकी है, और उसके प्रभाव भी प्रत्यक्ष देखे जा चुके हैं। वास्तविक सुधार तो सर्वांगीण ही होगा, और बिना ऐसा किये एक संतुलित विकास असम्भव है। इसके लिए धन की आवश्यकता अत्यन्त स्वाभाविक है। शायद लोग यह भूल जाते हैं कि शिक्षा देने का व्यय एक दीर्घकालीन पूंजी के समान है। वह रुपया व्यर्थ नहीं जाता, बल्कि देश की उन्नति में सहायक सिद्ध होता है।" †

आक्षेप का तीसरा विषय यह है कि योजना ने शिक्षा-प्रसार के लिए निश्चित कार्यक्रम उपस्थित न किये। किसी भी व्यावहारिक योजना के लिए कार्यक्रम का प्रस्तुतीकरण, लक्ष्य-निर्धारण से कम आवश्यक नहीं। इस दृष्टि से, योजना में शिक्षा के पुनर्निर्माण का एक आवश्यक अंग अछूता रह गया।

योजना का आक्षेप का चौथा विषय यह है कि इसके स्रष्टाओं ने भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन के लिए इंग्लैंड की शिक्षा-पद्धति तथा शिक्षा के इतिहास से आदर्श ग्रहण किया। वस्तुतः इंग्लैंड की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ भारत से इतनी भिन्न हैं कि भारतीय शिक्षा के पुनर्निर्माण का आदर्श इंग्लैंड सही-सही नहीं उपस्थित कर सकता। अतः आदर्श के परिग्रहण के लिए योजना को उन देशों से प्रकाश ग्रहण चाहिए था, जिनकी परिस्थितियाँ भारतीय परिस्थितियों से मिलती-जुलती है। चीन, मिश्र, तुर्की, डेनमार्क तथा सोविएत रूस

---

† शम्भुनाथ ओझा भारतीय शिक्षा की प्रगति पृष्ठ–१३५–३६

इसके लिए अधिक उपयुक्त थे।* इन देशों की शिक्षा-समस्यायें लगभग वे ही थीं, जो कि भारत की थीं। इन्होंने कम समय में ही इन समस्याओं के हल करने में काफी सफलता प्राप्त की। १५ वर्ष की अवधि में ही रूस ने अपने राज्य के सभी प्रान्तों में ७० प्रतिशत साक्षरता प्राप्त कर ली। वस्तुतः योजना को उन प्रयोगों तथा पद्धतियों पर ध्यान देना चाहिए था, जो कि इन प्रगतिगामी देशों में व्यवहृत किये गये थे। ऐसा करने से योजना कुछ अधिक व्यावहारिक तथा क्रियात्मक होती।

* Nurullah & Naik p. 848.

आठवाँ अध्याय

अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के गुण-दोष

भारतीय रंगमंच पर अभिनीत अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के आविर्भाव तथा विकास के महान नाटक की प्रमुख घटनाओं का विवरण हम गत पाँच अध्यायों में प्रस्तुत कर चुके। १५ अगस्त १६४७ को इस महान् नाटक के अन्तिम अंक का पटाक्षेप हुआ, जिसका प्रथम अंक सन् १६०० ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी के प्रतिष्ठापन के साथ प्रारम्भ हुआ था। १५ अगस्त १६४७ ने भारतीय इतिहास में जिस नये तथा गौरवपूर्ण युग का समारम्भ किया, उसका परिचय हम शीघ्र ही अगले अध्याय में प्रस्तुत करेंगे। किंतु इसके पहले हम अतीत के लगभग ३०० वर्षों पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे और यह जानने की चेष्टा करेंगे कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने हमें क्या दिये और क्या न दिये।

हमने देखा है कि विगत ५० वर्षों से अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध तरह-तरह की आलोचनाएँ उपस्थित होती आ रही थीं। इनमें कुछ ऐसी भी थीं, जो सर्वथा निष्पक्ष न थीं तथा जो उन प्रतिक्रियात्मक भावनाओं से प्रेरित थीं, जो भारत में अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध प्रादुर्भूत हुई थीं। आज स्वतंत्र देश के नागरिक की हैसियत से हम उन व्यवस्थाओं तथा व्यवहारों को, जो विदेशी हुकूमत ने, भारत में प्रतिष्ठापित तथा प्रचालित की थीं, अधिक निष्पक्षता के साथ देख सकते हैं। और आज इस बात को हम स्पष्टतः समझने लगे हैं कि अंग्रेजों के द्वारा भारत में निरूपित पद्धतियों में यदि कुछ दोष थे, तो उनमें कुछ गुण भी थे, जिनसे हमारा काफी हित हुआ। अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति में भी बहुत-सी ऐसी बातें थीं, जो हमारे वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक थीं, किंतु साथ ही इसमें बहुत-सी ऐसी बातें भी थीं, जिनसे हमारा बड़ा उपकार हुआ। वस्तुतः, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह अंगीकार करना पड़ता है कि अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने जो कुछ हमें दिया उसका पलरा, जो कुछ नहीं दिया उसके

पलरे से सम्भवतः भारी था। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक होगा कि अंग्रेजी शिक्षा भारतवासियों पर अंग्रेजों के द्वारा लादी नहीं गयी थी—जबर्दस्ती आरोपित नहीं की गयी थी, बल्कि नये तथा पुराने, पश्चिमी तथा पूर्वी, रूढ़ि तथा प्रगति आदि विरोधी भावनाओं के घात-प्रतिघातों में प्रस्फुटित हुई थी। अंग्रेजी शिक्षा के भारत में आरोपन का उत्तरदायित्व बहुधा मेकाले के सर पर मढ़ा जाता है। किंतु, हमने स्पष्टतः देख लिया है कि मेकाले ने कोई बनी-बनायी शिक्षा-पद्धति इंग्लैंड से नहीं लायी थी, न उसे इंग्लैंड की सरकार से अंग्रेजी-शिक्षा के आरोपन के लिए आदेश ही मिला था। उसके भारत पहुँचने के बहुत पहले से अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था, जिसका नेतृत्व भारतीयों ने भी किया था, न कि सिर्फ अंग्रेजों ने। अंग्रेजी शिक्षा के प्रबल विरोधी हेस्टिंग्स, मिन्टो, प्रिंसेप जैसे अंग्रेज थे, न कि राजा राममोहन राय जैसे भारतीय। मेकाले ने, बिलकुल वैयक्तिक हैसियत से; अपनी शक्ति अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में लगायी और उसके सशक्त कंधों को, जो कि प्रगतिगामी भारतीय विचारधारा से—परिपुष्ट हुआ, सफलता मिली। लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में जो निर्णय दिये, वे लन्दन के निर्देश से नहीं, न भारत के अंग्रेज गवर्नर-जेनरल की हैसियत से, बल्कि भारत के उस भू-भाग के शासक की हैसियत से जिसमें शान्ति तथा व्यवस्था कायम रखने का उत्तरदायित्व उस पर था। शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों पर जो संघर्ष उस समय चल रहा था, उन संघर्षों के विचार से बेंटिंक के निर्णय अवश्यंभावी थे—टाले नहीं जा सकते थे। अतः अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के परिचालन का कर्त्तव्य अंग्रेजी हुकूमत पर, शुरू में, प्रगतिशील भारतीयों तथा अंग्रेजों के द्वारा लादा गया, न कि अंग्रेजी हुकूमत ने यह शिक्षा भारतवासियों पर लादी। सन् १८३३ तक तो अंग्रेज सरकार, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, भारतीय शिक्षा के प्रश्न से दूर भागती रही। अंग्रेजी शिक्षा से अंग्रेजी सत्ता को जो सम्बल प्राप्त होता उसका स्पष्ट भान, अंग्रेजी सरकार को, समय के विचार से, अपेक्षाकृत पीछे हुआ। प्रारम्भ में अंग्रेजी शिक्षा की तथाकथित बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं ने ही इस के परिचालन की प्रेरणाएँ उपस्थित कीं।

निष्पक्ष दृष्टि से देखने पर हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मेकाले ने भारत में जिस शिक्षा-पद्धति के परिचालन की सिफारिश की, तथा जिसे सरकार को स्वीकार करना पड़ा, तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय शिक्षा के समाधान का एक मात्र सही उपाय था। भारतीय संस्कृति तथा प्राच्य साहित्य के सम्बन्ध में मेकाले ने जो अहम्मन्यता पूर्ण विचार व्यक्त किये, उसके लिए हम उसे चाहे जो कुछ भी कहें, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि "अंग्रेजी भाषा के द्वारा नये ज्ञान का जो सिद्धांत उसने प्रतिष्ठापित करवाया, वह, जमाने के विचार से, भारत में अंग्रेजी हुकूमत का सबसे उपयोगी और क्रान्तिकारी निश्चय था"। † इस सिद्धांत का महत्त्व हमें तब स्पष्ट होगा, जब हम उन स्थितियों तथा उन परिणामों पर ध्यान दें, जो अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के अतिरिक्त अन्य पद्धति के परिचालन से उत्पन्न होते। वैसी स्थिति में

भाषा-जनित विभिन्नताएं इस रूप में प्रकट हो जातीं कि भारतीय राष्ट्र की एकता की भावना भी शायद कुंठित हो जाती।

भारतीय बहुत से ऐसे नये ज्ञान के अर्जन से वंचित रह जाते, जिनके द्वारा भारत का पुनरूत्थान सम्भव हो सका।

पश्चिम के वैज्ञानिक अन्वेषण, धूमिल होकर, हमारे पास देर से पहुंचते तथा विश्व के वैज्ञानिक कार्यों में भारत का क्रियात्मक भाग एक सुदूर लक्ष्य हो जाता। ‡

† Divested of its narrow prejudices against Hindu civilization and of the shelf of books for which he was prepared to exchange the entire treasure of oriental literature......... its main thesis of an education based on New Learning and through the medium of English was, in the circumstances of the time, the most beneficently revolutionary decision taken by British Government of India.

‡ The particularisms based on vernaculars would have grown so greatly as to break up even the idea of an Indian unity. Much of the new learning on which India's great recovery has been based would not have been available to us, No doubt the scientific development of the west would have reached us secondhand, but participation in the scientific world would have been but a distant ideal.

Panikkar—A Survey of Indian History—P. 258.

इस तरह, अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति की सबसे बड़ी देन यह थी कि इसने भारतीय मस्तिष्क का द्वार पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के लिए खोल दिया। अंग्रेजी भाषा के द्वारा भारतीय उन नये विचारों से अवगत हो सके, जो सामाजिक, राजनीतिक, तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में पाश्चात्य देशों में समुत्पन्न हो चुके तथा हो रहे थे। इन विचारों ने भारत के नव-जागरण में महत्त्वपूर्ण योग दिया। यहाँ यह कह देना प्रासंगिक है कि अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय सभ्यता पतन की अन्तिम सीमा को स्पर्श करने लग गयी थी। † राजनीतिक विश्रृंखलताओं, धार्मिक रूढ़ियों तथा सामाजिक विभेदों से भारतीय समाज अंधकार के गर्त में पड़ा कराह रहा था। कुछ क्षेत्रों को छोड़कर, भारत के अधिकांश भूभाग में भारतीय संस्कृति अन्तिम साँस ले रही थी। धर्म के नाम पर अनाचार तथा भ्रष्टाचार की तूती बोल रही थी। भारत की आत्मा नैराश्य के गहन समुद्र में उब-डूब कर रही थी। ‡ ऐसी ही परिस्थिति में भारतीय चेतना पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आयी। इन विचारों ने गतिहीन तथा-मृत प्राय भारतीय चेतना के लिए संजीवनी का काम किया। * भारतीय मस्तिष्क एक नये स्पन्दन, नयी स्फूर्ति से जाग उठा। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान ने भारतीयों को एक जोर का झटका दिया और वे आखें मीचते हुए विस्तर छोड़कर उठ खड़े हुए। मानव समुदाय के कुछ जत्थे प्रगति-पथ पर कितने आगे बढ़ गये थे—इसका ज्ञान उसे तब हो गया, इसीकी देर थी। भारतीय समाज के नवनिर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया। भारतीय जीवन में जो गतिशीलिता आगे परिलक्षित हुई, उसका प्रथम स्पन्दन पाश्चात्य ज्ञान और नये विचारों ने ही दिया।

† This contact came at a very opportune time when Indian culture and social organisations were at their lowest ebb.

Nurullah & Naik.—P. 865

‡ In fact India at the end of the eighteenth century in its most widely populated areas and traditional centres of culture lay prostrate and gasping. Religion was degraded and demorilising. India's soul was sunk in deep pessimism.

Panikkar—A Survey of Indian History.—P. 266

* It had a tremendous vivifying efect. It freed the Indian mind from the "thraldom of old world ideas" and laid the foundation of a Renaissance in modern Indian life.

Nurullah & Naik—P. 865.

अंग्रेजी ने न केवल पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का द्वार हमारे लिए खोल दिया, बल्कि उसने भारत के प्राचीन ज्ञान को भी हमारे सामने, नयी दीप्ति के साथ, उपस्थित कर दिया। मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में भारतीय अपनी सांस्कृतिक निधियों को भी भूल से गये थे। † वेद और उपनिषद्, रामायण और महाभारत, महावीर और बुद्ध के नाम मात्र भर भारतीय मस्तिष्क में कायम रह गये थे। अजन्ता और एल्लोरा, नालन्दा और विक्रमशिला, अशोक और विक्रमादित्य भारतीय इतिहास के पन्नों में किसी तरह जीवित थे। पाश्चात्य विद्वानों ने ही हमारे इतिहास और हमारे साहित्य के सुनहले पृष्ठों को हमारे सामने खोल कर रख दिया। मैक्समूलर, मानियर विलियम्स जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने ही भारतीय साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन का श्रीगणेश किया। ‡ इन्हीं विद्वानों के अध्ययन तथा गवेषणाएं, अंग्रेजी के माध्यम से, हमारे सामने प्रकट हुईं और भारत का शिक्षित 'मध्य वर्ग' अपनी सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन तथा सही परिग्रहण की ओर प्रेरित हो सका।

भारतीय साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन की पद्धति का सूत्रपात पाश्चात्य विद्वानों ने ही किया। यद्यपि इनकी आलोचनाएं सर्वदा सही न थीं, इन्होंने ही भारतीय मस्तिष्क को भारत के प्राचीन सांस्कृतिक साहित्य के अनुशीलन, अन्वेषण तथा उचित परिधारण का प्रशिक्षण दिया। * यूरोपीय विद्वानों ने ही हमारे खोये हुए इतिहास के पन्नों

† The truth which we should not forget is that except in the field of music and literature we had ceased to be the heirs to our own culture.

Panikkar—A Survey of Indian History P. 265.

‡ It may sound strange but it is non-the-less true that it was the enthusiasm of Max-muller, Monier Williams and others for the culture of India that gave the first impetus to the modern study of classics in India.

Also it was through the translations published by European scholars *in English* that the new middle classes began to know of the higher things in thier own thought."

Panikkar—A Survey of Indian History—P. 270.

* The lead in this new method came from Western scholars of oriental languages. They might have frequently blundred but to them we must acknowledge our gratitude for the first discovery of a tool which we have since made our own & improved.

Nurullah & Naik—P. 866.

को, पहली बार, जोड़-जोड़, कर संग्रहित किया। इन्हीं विद्वानों की, अंग्रेजी में अभिव्यक्त, कृतियों ने भारतीय सम्राटों, भारतीय कलाकारों तथा भारतीय विद्वानों एवं भारतीय जनता के गौरवपूर्ण जीवन की पूर्ण झाँकी हमे दी। कहने की आवश्यकता नहीं कि अतीत के पुण्य दर्शन ने हमारे भविष्य के मार्ग भी प्रदर्शित किये। अपने जगमगाते भूत के नये आलोक में हमे यह समझने में देर न लगी कि हमारी परम्परा विजय की है, प्रगति की है और विश्व-कल्याण की है। * हमारे इतिहास और साहित्य के पन्नों से हमारे पूर्वज मानो हमें धिक्कार कर कहने लगे—आर्य-सन्तान ! राम और कृष्ण के वंशज, वेद और उपनिषद् के अनुयायी, तुम्हारी यह दशा ! सुदूर चीन, जापान तथा कोरिया के किसी कोने से बुद्ध की आत्मा पुकार उठी—क्या तुम तथागत को भूल गये, जिसने संसार के कल्याण के लिए,क पिलवस्तु के राज-प्रासाद में भगवती यशोधरा के स्नेह-पाश को झटका देकर निविड़ निशा में 'महाभिनिष्क्रमण' में प्रयाण किया किया था। हमारी आत्मा एक बार सिहर उठी। हम क्या थे और क्या हो गये—इसकी चेतना से हमारे व्यक्तित्व का कण-कण आलोड़ित हो उठा। हमने अपना रास्ता तय कर लिया। अपने पूर्वजों की आत्मा को शान्ति और सुख देंगे—हमने प्रण किया। भारत का नवनिर्माण प्रारम्भ हुआ।

यह सही है कि शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के व्यवहार से भारतीय भाषाओं के विकास के मार्ग में बहुत बड़ी अड़चन उपस्थित हो गयी। किंतु यह भी सही है कि अंग्रेज शासकों तथा अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के उन्नायकों ने ही, आधुनिक युग में, भारतीय भाषाओं के विकास की पहली प्रेरणा दी। अंग्रेज अफसरों तथा धर्म-प्रचारकों ने, अपने स्वार्थ के लिए ही सही, भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया, इनके व्याकरण तैयार किये, इसके शब्दकोष बनाये तथा अन्य कार्य किये। इन्हीं लोगों ने कई भाषाओं की पहली पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं। आदिवासियों की भाषाओं के अध्ययन के कार्य में तो विदेशी धर्म-प्रचारक, बहुत दिनों तक, अकेले रहे। कई

* Gradually the Hindu woke to the fact that his was not a race whose destiny it was to be conquered by foreign people, but one which through many centuries had to its credit achievements in every sphere.

Panikkar—P. 270.

यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण खोज भी किये। ग्रियर्सन के द्वारा विरचित "लिंगविस्टिक सरवे ऑफ इंडिया" आज भी भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में एक सम्मानित ग्रन्थ माना जाता है। अतः भारतीय भाषाओं के विकास की प्रेरणा हमें अंग्रेजों से ही प्राप्त हुई। यद्यपि हमारी अपनी चेष्टाएँ, इस दिशा में, शीघ्र काफी आगे बढ़ गयीं और हम अपनी भाषाओं के उत्थान के कार्य में दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने लगे। किंतु हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतीय भाषाओं के अध्ययन तथा उनकी समुन्नति के प्रयास की प्रेरणा हमें यूरोपीय विद्वानों के द्वारा ही प्राप्त हुई, जिन्हें अंग्रेजी हुकूमत ने हमारे सम्पर्क में लाया। *

इतना ही नहीं, अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने ही भारतीय भाषाओं को उच्च शिक्षा के माध्यम के योग्य बनाया। जिस समय मेकाले ने अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के प्रतिष्ठापन की सिफारिश की थी, उस समय संस्कृत तथा फारसी को छोड़ कर, अन्य भारतीय भाषाओं में इतनी क्षमता न थी कि वे, माध्यमिक शिक्षा के आगे भी, शिक्षण का माध्यम बन सकती थीं। यदि अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का प्रतिष्ठापन न होता, तो भारतीय विश्वविद्यालयों के द्वारा वैसे भारतीय समुत्पन्न न होते, जिन्होंने नये ज्ञान-विज्ञान को भारतीय भाषाओं में रूपान्तरित किया और कर रहे हैं। इनकी चेष्टाओं के कारण ही आज भारतीय भाषाएँ इस स्थिति को प्राप्त कर चुकी हैं कि उनके द्वारा विश्वविद्यालयों की शिक्षा भी संभव हो गयी है। अस्तु, भारतीय भाषाओं की समृद्धि के कार्य में, मेकाले की शिक्षा प्रणाली ने, अप्रत्यक्ष रूप से, जो योग दिया—उसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते। उसने ही भारत में पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान-से-सम्पन्न असंख्य विद्वानों को आविर्भूत किया,

* But the fact remains that the first incentives to the study of modern Indian languages came from European scholars whom the British contact introduced into India.

Nurullah & Naik—p. 866.

जिनकी वाणी तथा लेखनी आज, विश्वविद्यालयों में, भारतीय भाषाओं के प्रतिष्ठापन के कार्य में संलग्न है। ‡

मेकाले की शिक्षा पद्धति ने ही भारत को, आधुनिक ज्ञान के क्षेत्र में, दो-चार कदम आगे बढ़ने का मौका दिया। भारत के स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय ने आधुनिक ज्ञान के संचरण तथा समृद्धि में जो कुछ भी योग दिया, वह मेकाले की पद्धति के कारण ही सम्भव हो सका। इस पद्धति ने न केवल पाश्चात्य ज्ञान को भारत के सम्मुख रखा, बल्कि भारतीय ज्ञान को भी संसार के सामने रखने में यह समर्थ हुआ। अंग्रेजी भाषा के अनुचित महत्त्व से हमारी भावनाओं को चाहे जो भी आघात पहुँचे, इतना हमें अंगीकार करना पड़ेगा कि अंग्रेजी के द्वारा भारत अपने प्राचीन तथा अर्वाचीन—दोनों ही निधियों को संसार के सामने सुगमता से रखने में समर्थ हो सका।

अंग्रेजी शिक्षा संस्थाओं, विशेषतः कालेजों तथा विश्वविद्यालयों, ने भारत में राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया। लगभग एक ही पाठ्य-क्रम को व्यवहृत करने वाले प्रान्तीय विश्वविद्यालयों तथा कालेजों ने, भारतीय समाज में, उस मध्य वर्ग (Middle class) के सृजन में योग दिया, जो कि नयी पद्धति में शिक्षित था तथा देश की विभिन्न समस्याओं को लगभग एक दृष्टि से देखता था। इस प्रकार की वर्गीय शिक्षा के दोष चाहे जो भी हों, इसने इतना अवश्य किया कि भारत के हर प्रान्त में बहुत से ऐसे लोगों को तैयार कर दिया, जो अखिल भारतीय स्तर पर, एक भाषा बोल सकते थे, जो एक ही दृष्टिकोण रखते थे, तथा जो भारतीय हित के विचार से किसी प्रश्न को देख सकते थे। नव-ज्ञान से सुसंपन्न, एक भाषा बोलने तथा लिखने वाले, एक तरह की बात सोचने वाले मध्य वर्ग के लोगों ने भारत में

‡ Education up to university standards would have been imposible without decades of preparation, which would have required an army of men trained in English and familiar with the new learning of the west. This, after all, is what Mecaulay's system has done. It has developed the Indian languages to standards in which a university education is now becoming possible. But without the universities teaching in English and producing the army of workers, such a development would hardly have been possible.

Panikkar—A Servey of Indian History—p. 259.

राष्ट्रीय जागरण का मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं लोगों ने पहले-पहल राष्ट्रीय उत्थान का शंखनाद किया और राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन भी किया। जन-आन्दोलन के युग में भी आन्दोलन का सूत्र अधिकतर मध्य-वर्गीय लोगों के हाथों में ही रहा। अतः, यह कहने में हमें संकोच न होना चाहिए कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने भारत में राष्ट्रीय जागरण के उन्नायकों तथा सूत्रधारों की उत्पत्ति में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। हमने देखा है कि स्वयं मेकाले ने ऐसी स्थिति की परिकल्पना की थी। सन् १६३३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारपत्र (चार्टर) के पुनरावर्तन के अवसर पर उसने कहा था "सम्भव है भारत के लोगों का मस्तिष्क हमारी पद्धति में इस तरह विकसित हो जाय कि वे यूरोपीय राजनीतिक संस्थाओं की मांग पेश करने लगें। किन्तु इससे हमे भयभीत न होना चाहिए। हो सकता है कि राज्य-सत्ता हमसे हस्तान्तरित हो जाय। किन्तु तब भी हमारी कुछ ऐसी विजय हैं, जो कभी भी हार में नहीं बदल सकतीं। वे विजय हैं—आदिम विचारों पर बुद्धि और विवेक की विजय। हमारी कला, हमारी नैतिकता, हमारे साहित्य और कानून—इनके साम्राज्य अक्षुण्ण रहेंगे।* मेकाले की इस भविष्यवाणी की अहंमन्यता को हम छोड़ दें, तो यह मानना पड़ेगा कि उसके अनुमान सर्वथा गलत न थे। अंगरेजों को भारत की राज्य-सत्ता छोड़नी पड़ी, किंतु उनके कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, उनके साहित्य, उनके नियम-कानून आज भी भारत में बहुत-कुछ प्रतिष्ठित हैं और रहेंगे।"

अब, हम अंगरेजी शिक्षा पद्धति के दूसरे पक्ष की ओर दृष्टिपात करें। अंगरेजी शासन की छत्र छाया में यह पद्धति भारत में लगभग २०० वर्षों तक क्रियाशील रही। किंतु इस लम्बी अवधि में भी यह भारत के अधिमांश लोगों को स्पर्श न कर सकी। सन् १६४७ के अन्त में भारत के केवल १५ प्रतिशत लोग साक्षर हो सके। इस तरह संख्यात्मक दृष्टिकोण से देखे जाने पर अंगरेजी हुकूमत द्वारा प्रचालित अंगरेजी शिक्षा पद्धति नितान्तः असफल रही। स्पष्टतः एक ऐसी शिक्षा पद्धति जिसमें देश के लगभग ८५ प्रतिशत लोगों की शिक्षा की व्यवस्था न हो सके, कभी भी उपयुक्त नहीं समझी जा सकती।

---

* देखिए प्रस्तुत पुस्तक पृष्ट—६२

शिक्षा के गुणात्मक दृष्टिकोण से देखने पर भी अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति संकीर्ण तथा एकांगिक परिलक्षित हुई। इस शिक्षा-पद्धति में वे तत्त्व न थे, जो भारतीय जीवन की वैयक्तिक तथा सामाजिक मांगों की पूर्ति करते। वस्तुतः इस शिक्षा-पद्धति के उद्देश्यों को कभी भी वह व्यापकता तथा सम्पन्नता न प्राप्त हुई जो भारतीयों के समग्र विकास के लिये अपेक्षित थी। सन् १८१३ के अधिकार-पत्र में 'प्राच्य साहित्य के पुनरुद्धार तथा विद्वान देशवासियों के प्रोत्साहन' ही शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य रहा। १८५८ के संदेश-पत्र में, जैसा कि हम देख चुके हैं, कम्पनी—सरकार की शिक्षा का लक्ष्य "यूरोप की समुन्नत कला, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य का प्रचार" रखा गया। इस उदारवादी लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए संदेश पत्र ने यह भी स्पष्ट किया कि शिक्षा का लक्ष्य यह भी हो कि 'इसके द्वारा कम्पनी सरकार को सुयोग्य तथा विश्वास-पात्र कर्मचारियों की प्राप्ति हो और भारतीय इंग्लैंड के कारखाने के उत्पादनों की खपत करने वाले तथा कच्चे माल को भेजने वाले हों"। स्पष्टतः इन शब्दों में सरकारी शिक्षा-पद्धति की उस उपयोगितावादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई, जो कि अंगरेजी सरकार की साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशिक मनोवृत्ति के द्वारा प्रेरित थी। यह सही है कि समय-समय पर शिक्षा के प्रसार के द्वारा भारतीयों को स्वशासन के लिए प्रशिक्षित करना भी कहा गया। जैसा कि हम देख चुके हैं, ग्रान्ट और मेकाले ने भी उस परिणाम की कल्पना की थी, जो कि अंगरेजी शिक्षा के प्रसार से उत्पन्न हो सकता था। किंतु अंग्रेजी सरकार के अधिकांश अंग्रेज पदाधिकारी इस प्रकार की कल्पना से भी सहम उठते थे और उनकी यह चेष्टा रहती थी कि स्वशासन के दिन भरसक भारत में आविर्भूत ही न हों। हम कह चुके हैं कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में राजनीतिक जागरण की प्रेरणा दी। किंतु अंग्रेजी शिक्षा का यह परिणाम, अप्रत्यक्ष रूप से, स्वतः प्रकट हुआ, न कि अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का ऐसा स्पष्ट लक्ष्य था। भारतीय जीवन के पुनरुत्थान के कार्य में भी, जैसा कि हम देख चुके हैं, अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। किंतु यह पुनरुत्थान भी इस शिक्षा-पद्धति का प्रमुख अभीप्सित लक्ष्य न था। इस तरह, अपने २०० वर्षों के सुदीर्घ इतिहास में अंग्रेजी सरकार की शिक्षा-पद्धति के रचनात्मक तथा सृजनात्मक लक्ष्य क्या-क्या होने चाहिए थे—इसका स्पष्ट निर्देश कभी न हुआ। फलतः सरकारी शिक्षा-पद्धति से जो भी

लाभ हमें हो सके वे प्रासंगिक रूप में हुए, न कि उस शिक्षा-पद्धति ने इसके लिए खास प्रयास किया।

लक्ष्य के निर्धारण की उपेक्षा से अंग्रेजी शिक्षा से जो-जो हानियाँ हुईं, उससे कम हानियाँ अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के प्रसार की गलत रीतियों के निर्धारण से न हुईं। नये ज्ञान के प्रसार के लिए यह अनिवार्य न था कि इग्लैंड की शिक्षा-पद्धति की जो मान्यताएं तथा व्यवहार थे, वे, अविकल रूप में, भारत में व्यवहृत किये जाते। यह भी अनिवार्य न था कि नये ज्ञान के प्रसार के लिए केवल अंगरेजी विद्यालय ही उपयुक्त थे। किंतु सरकार ने ये दोनों ही किये। इग्लेंड की शिक्षा-सम्बन्धी नीतियों तथा व्यवहारों को उसने भारत में नये सिरे से आरोपित किया। भारतीय शिक्षा की स्वदेशी परम्परा में भी बहुत सी ऐसी बातें थीं, जिनके संशोधन, सुधार तथा रूपान्तर से नयी शिक्षा की मार्गों की पूर्ति हो सकती थी—इसकी कल्पना अधिकांश अंगरेज शासकों ने न की। भारत की असंख्य देशी पाठशालएं, जो कि सदियों से भारतीय जनता की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती आ रही थीं, सर्वथा बेकार मानी गयीं और इनके पुनरुद्धार का कोई प्रयत्न न हुआ। फलतः ये बनी-बनायी चीजें, प्रोत्साहन की कमी के कारण, भारत की धरती से विलुप्त हो गयीं। इससे भारत की जन-शिक्षा को बड़ा आघात पहुँचा। दूसरी गलत रीति, जो अंगरेजी सरकार ने व्यवहृय की, वह निस्यन्द सिद्धांत (filtration theory) के प्रतिष्ठापन के कारण हुई। इस सिद्धान्त ने नये ज्ञान के संचरण की अवधि काफी लम्बी कर दी। हमने देखा है कि इस सिद्धान्त की संभावनाएं बहुत दिनों तक बेकार सिद्ध हुईं। १६ वीं सदी के आसपास ही इस सिद्धान्त से नये ज्ञान के प्रसार में योग मिला। किंतु उस समय तक अंगरेजी शिक्षा-पद्धति केवल विशिष्ट वर्ग की शिक्षा कीं व्यवस्था की ओर ही केन्द्रित रही।

शिक्षा के माध्यम के रूप में अंगरेजी के व्यापक प्रयोग से नये ज्ञान के प्रसार में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हुई। साथ ही, छात्रों के मस्तिष्क पर अनावश्यक दवाव पड़ा था। यह सत्य है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंगरेजी माध्यम के प्रयोग से कई लाभ हमें हुए। किंतु, यह भी सत्य है कि निम्न कक्षाओं में अंगरेजी माध्यम के प्रयोग से बालकों के मस्तिष्क पर अनावश्यक बोझ पड़ा, शिक्षकों की चेष्टाएं नये ज्ञान के

अर्जन की अपेक्षा अंगरेजी पर प्रभुत्व कराने में केन्द्रित हो गयीं, और छात्रों के बहुमूल्य समय का अपव्यय हुआ। इसके अतिरिक्त अंगरेजी माध्यम ने भारतीय भाषाओं के विकास में बहुत दिनों तक रुकावटें उपस्थित कीं। माध्यम के अतिरिक्त, अंगरेजी को, भाषा के रूप में, जरूरत से अधिक महत्त्व दिया गया। इसके भी दुष्परिणाम प्रकट हुए बिना न रहे। स्कूलों के अध्यापन में, अंगरेजी की वेदी पर, अन्य विषयों की शिक्षाएं बहुधा कुरबान कर दी गयीं।

शिक्षा-प्रसार की उपर्युक्त गलत रीतिओं का प्रचलन मुख्यत: इसलिए हुआ कि यह पद्धति इग्लैंड की शिक्षा पद्धति के प्रतिरूप में व्यवहृत की गयी। भारत की स्थितियों, इसकी विशिष्ट सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं आदि पर इस पद्धति ने स्वल्प ध्यान न दिया। भारतीय शिक्षा पद्धति में कोई व्यवहार इसलिए जारी किया गया कि वह इग्लैंड की शिक्षा-पद्धति में प्रचलित था। वस्तुत: अंग्रेजी शासन के अधीन भारतीय शिक्षा-पद्धति इग्लैंड की शिक्षा-पद्धति के दामन से चिमटी रही। † आधुनिक भारतीय शिक्षा का सबसे बड़ा अभिशाप यही था। इसने ही भारत में आधुनिक शिक्षा के स्वतंत्र विकास की प्रेरणा तथा अवसर-दोनों ही छीन लिए। फलत: भारतीय शिक्षा-पद्धति, एक पछलगुवे शिक्षा पद्धति की तरह, सर्वथा विदेशी शिक्षा पद्धति के आदर्शों तथा मान्यताओं के संरक्षण में क्रियाशील रही, यद्यपि न इसकी अपेक्षा थी, और न यह उपयुक्त ही था।

उपर्युक्त स्थिति का एक प्रमुख कारण यह भी था कि अंग्रेजी शासन-काल में प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों एवं व्यवहारों के समन्वय की चेष्टा कभी भी न की गयी। कुछ अंग्रेज पदाधिकारियों को, जैसाकि हम देख चुके हैं, भारतीय संस्कृति तथा भारतीय साहित्य के प्रति बड़ी आस्था थी। किन्तु अधिकांश अंग्रेज पदाधिकारियों की दृष्टि में, भारतीय संस्कृति निम्न कोटि की थी और पाश्चात्य संस्कृति के साथ इसका किसी प्रकार का समन्वय संभव न था। ‡ "पूरब पूरब ही है, और पश्चिम पश्चिम ही हैं" इस धारणा ने भारत में पूर्व और

† In fact one can not help feeling that Indian education has all along been like a cindrella tied to the apron string of the educational system of England.

‡ East is East and West is West and never the twain shall meet.

Kipling Quoted in Nurullah & Naik.—p. 859,

पश्चिम की गंगा-यमुनी प्रवाहित न होने दी, जो कि अपेक्षित थी। इसके बदले, पाश्चात्य संस्कृति, अंग्रेजी शिक्षा के प्रमुख माध्यम से, भारतीयों पर लादी जाने लगी। फलस्वरूप, इसने भारत में बहुत से ऐसे लोगों को उत्पन्न कर दिया जो अपने देश में ही विदेशी हो गये, जोकि रूप-रंग में भारतीय, किन्तु रहन-सहन, रूचि-विचार में अंग्रेज हो गये।" नये ज्ञान की सार्थकता तथा उपयोगिता इसमें थी कि वह पुराने का संस्कार करे, न कि उसका बहिष्कार। आवश्यकता इस बात की थी कि भारतीय आदर्शों के धागे में नये ज्ञान के पुष्प इस भांति पिरोये जायँ कि भारतीय कण्ठ को सुशोभित करने वाला एक सुन्दर हार प्रस्तुत हो जाय। किन्तु ऐसा न हो सका। अंग्रेजी शिक्षा ने शिक्षितों और अशिक्षितों—पुराने तथा नये—के बीच एक ऐसी खाई उत्पन्न कर दी जो आज भी पूरी तरह भर न पायी है।

अंग्रेजी शिक्षा की अधोमुखी प्रवत्तियाँ, कालान्तर, में अंग्रेजी प्रशासन की ओर से भी आविर्भूत हुईं। राज्याश्रित शिक्षा-पद्धति होने के कारण यह शिक्षा-पद्धति उन इच्छाओं तथा चेष्टाओं के वशीभूत रही, जो कि अंग्रेजी सरकार ने समय-समय पर भारत में अंग्रेजी सत्ता के संरक्षण के लिए प्रदर्शित किये। यह शिक्षा-पद्धति राष्ट्रीय एकता को प्रश्रय नहीं दे सकी, यद्यपि, इस दिशा में, महत्त्वपूर्ण कार्य इसके द्वारा अनायास ही हुआ। कभी-कभी तो इसने प्रत्यक्ष रूप से भारतीय राष्ट्र को विभाजित करने का प्रयत्न किया। हिन्दू और मुसलमानों के लिए अलग पद्धतियों के प्रोत्साहन से इसने भारत के दो महान जातियों के सम्मिश्रण तथा एकोकरण के मार्ग में रोड़े उपस्थित किए। "भेद डालो और शासन करो" की नीति बहुधा शिक्षा के क्षेत्र में भी अनुस्यूत हो गयी। इसी तरह, सरकार की धार्मिक तटस्थता की नीति ने भारतीय शिक्षा को मानव व्यक्तित्व के एक प्रमुख अंग को स्पर्श करने से बंचित कर दिया। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी भारतीय विद्यालयों ने अपनी आवाज न उठायी। यह ठीक है कि सरकार के लिए उलझनों से अलग रहना ही युक्ति-संगत था। किन्तु जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, उसका यह कर्त्तव्य है कि वह छात्रों में सुधारात्मक तथा सृजनात्मक भावनाओं को जागृत तथा परिपुष्ट करे। भारत की आधुनिक शिक्षा-पद्धति में इन उपकरणों का नितान्त अभाव रहा और यह, प्रत्यक्ष रूप से, समाज को कुरीतियों के

निराकरण करने वाले नागरिकों को समुत्पन्न न कर सकी। विदेशी सत्ता की आश्रिता रहने के कारण इसका प्रथम कार्य उस सत्ता के संरक्षण का रहा, भारतीय समाज के अभ्युत्थान तथा संवर्द्धन का नहीं।

अंग्रेजी शासन के अधीन भारतीय शिक्षा के प्रशासन का कार्य, सामान्यतः, औसत दर्जे के लोगों के द्वारा होता रहा। अलेक्जेंडर ग्रान्ट, माईकल सैडलर जैसे कुछ व्यक्तियों को छोड़ कर, शिक्षा-विभागों के अधिकांश पदाधिकारियों में इतनी क्षमता न थी कि वे भारतीय शिक्षा का, उचित रीति से, संचालन करते। इस स्थिति का प्रधान कारण यह था कि शिक्षा-विभाग की सेवा की शर्तें इतनी अच्छी न थीं, जो सुयोग्य व्यक्तियों को आकृष्ट करतीं। सन् १८६६ ई० में शिक्षा-सेवा के सुधार के निमित्त आइ० इ० एस० के पदों की सृष्टि हुई। किंतु इससे भी यथेष्ट लाभ न हुआ। शिक्षा-विभाग के उच्च पदों पर औसत दर्जे के अंग्रेज ही प्रतिष्ठित होते रहे। इसके अतिरिक्त शिक्षा विभाग का महत्त्व, सरकार की दृष्टि में, अन्य विभागों की तुलना में सामान्यतः नीचे रहा। वस्तुतः शिक्षा को कभी भी, प्रशासन के क्षेत्र में, प्राथमिकता (priority) न मिली। बहुत दिनों तक तो इसका कार्य अन्य विभागों के सचिवों के द्वारा सम्पन्न होता रहा। आर्थर मेह्यू के शब्दों में बहुधा "अनुभवी सचिव सुबह में अपनी शक्तियाँ आर्थिक तथा कानूनी फाइलों पर व्यय कर लेने के पश्चात्, शाम को शिक्षा के प्रस्तावों का प्रारूप तैयार करते थे।" शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की एक बड़ी कठिनाई यह भी थी कि उन्हें अन्य विभागों के अधिकारियों से सहयोग न मिलता था, जो कि शिक्षा के विस्तार के लिए अपेक्षित था। सन् १६२१ के पश्चात्, जबकि शिक्षा भारतीय मंत्रियों को हस्तान्तरित कर दी गयी, यह सहयोग और भी कम हो गया। यदि भारतीय शिक्षा को, सरकार की प्रशासनीय व्यवस्था में, उचित स्थान मिला रहता तथा शिक्षा-विभाग को अन्य विभागों का सहयोग प्राप्त हुआ रहता, तो अंग्रेजी शासन-काल में भारतीय शिक्षा की उपलब्धियाँ कहीं अधिक हुई रहतीं।

अंग्रेजी शासन के २०० वर्ष की लम्बी अवधि में भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में कभी भी एक सुसंगठित दीर्घ-कालीन योजना न प्रस्तुत की गयी। इसका फल यह हुआ कि भारत के प्रशासक, अपनी

वैयक्तिक रुचियों के अनुसार, शिक्षा का निर्देश करते रहे। † बहुधा किसी अच्छे प्रशासक के शिक्षा-सम्बन्धी सुधार, उसके उत्तराधिकारी के द्वारा, स्थगित या बन्द कर दिये गये। शासकों के कार्य-काल की अवधि, जो सामान्यत: ५ से १० वर्ष की हुआ करती थी, शिक्षा की नयी नीति की अवधि भी थी। किसी शासक के भारमुक्त होते ही वह नीति या तो त्याग दी जाती थी या स्थगित हो जाती थी और नयी नीति व्यवहृत होती थी। ऐसे सतत परिवर्तनशील नीति में, एक सुदीर्घ योजना न प्रस्फुटित हो सकती थी, न कार्यान्वित; जिसका परिणाम भारतीय शिक्षा की प्रगति के लिए अत्यन्त घातक हुआ। *

इस तरह, विदेशी सत्ता के द्वारा विदेशी आदर्शों पर प्रचालित होने, देश की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुकूल निर्दिष्ट लक्ष्य के न रहने, शिक्षा-प्रसार की सुव्यवस्थित योजना का अभाव, शिक्षा के प्रसार में गलत रीतियों के अनुसरण, शिक्षा-विभागों के पदाधिकारियों में पर्याप्त क्षमता की कमी आदि के कारण अंग्रेजों के द्वारा संचालित शिक्षा-पद्धति की उपलब्धियां संख्यात्मक तथा गुणात्मक-दोनों—ही क्षेत्रों में अत्यन्त सीमित रहीं। साथ ही इसने कई ऐसी मान्यताओं तथा व्यवहारों की सृष्टि की जो, राष्ट्रीय हित के विचार से, घातक सिद्ध हुई। फिर भी, जैसा कि हम इस अध्याय के पूर्वार्द्ध में कह चुके हैं, अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने हमारे सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के पुनरुत्थान की न केवल प्रेरणा दी, बल्कि इसका मार्ग भी, कई रूपों में, प्रशस्त किया। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने हमारे समस्त दृष्टिकोण में एक महान् परिवर्तन उपस्थित किया, जिसके द्वारा हमारे विचारों में एक नया स्पन्दन, नयी चेतना और नयी स्फूर्ति आयी। इस शिक्षा-पद्धति ने संसार के नये विचारों, नयी मान्यताओं एवं नये व्यवहारों से सान्निध्य स्थापित करने में हमारी सहायता की। अंग्रेजी साहित्य ने विश्व के नवीनतम

† Inumerable instances can be quoted where each successive official rode his own hobby horse as hard as he could and cared neither to develop the sound policy of his predecessor nor to plan something for his successor to continue.

Nurullah & Naik—p. 865.

* This kaleidoscopic background made long.range planning impossible and had disastrous consequences on the progress of Indian Education.

Nurullah & Naik—P. 865.

अन्वेषणों, कृतियों तथा विचारों को हमारे लिए सुलभ बना दिया। इस शिक्षा पद्धति ने ही लगभग एक हजार वर्षों की हमारी एकान्तता (isolation) मिटा दी, और हम संसार के मानव समुदायों के साथ, प्रगति-पथ पर, कदम बढ़ाने में शीघ्र समर्थ हो सके।

भारत में अंग्रेजी शासन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए सन् १९०४ ई० में लार्ड कर्जन ने कहा था "इसका संदेश संगमरमर पर खुदा हुआ हैं, यह भाग्य के चट्टानों से काटकर गढ़ गया है। वह संदेश है—हमारे कार्य न्याय-संगत हैं और वे चिरस्थायी रहेंगे।" † जिन प्रसंगों में कर्जन की ये युक्तियाँ आविर्भूत हुई, उन प्रसंगों के विचार से ये सर्वथा अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। किंतु यदि इनकी व्यापकता की परिधि को हम संकुचित कर दें, तो हमें मानना पड़ेगा कि अंग्रेजों की सांस्कृतिक देन, भारत में, उनके जाने के बाद भी विद्यमान हैं, और रहेंगी, और सतत प्रगतिशील भारतीय संस्कृति में घुलमिल कर एक हो जायंगी। ‡

† To me the message is carved in granite, it is hewn out of the rock of doom—that our work is righteous and it shall endure.

Lord Curzon quoted in Nurullah & Naik—P. 867.

‡ These cultural contributions of the British people will remain with us for all time and will be ultimately absorbed in the dynamic and complex pattern that Indian culture has always been.

Nurullah & Naik—P. 867.

नौवाँ अध्याय

स्वतंत्र भारत में शिक्षा

१९४७-१९५६

सामान्य परिचय

१५ अगस्त १९४७ भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। उसी दिन लगभग २०० वर्षों की पराधीनता के पश्चात् भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, और भारतीय इतिहास के समुज्ज्वल युग का समारम्भ हुआ। स्वतंत्रता की प्राप्ति ने राज्य-सत्ता के नये उद्देश्य प्रतिष्ठापित किये और सरकार पर नये उत्तरदायित्व आरोपित किये। २६ जनवरी १९५० को स्वतंत्र भारत का संविधान प्रचालित हुआ, जिसके अनुसार भारत में एक "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" स्थापित हुआ। गणतंत्र के प्रतिष्ठापन ने राज्य के ऊपर शिक्षा-सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को गहन बना दिया। गणतंत्र के सिद्धांतों और मान्यताओं की सम्यक् पूर्ति के लिए शिक्षा का प्रसार राज्य का प्रथम उत्तरदायित्व हो गया। राज्य का यह भी उत्तरदायित्व हुआ कि वह देश के सभी बच्चे तथा बच्चियों को समान अधिकार तथा विकास के समान अवसर प्रस्तुत करे। इस उद्देश्य के सिद्धि की लिए यह आवश्यक हो गया कि भारतीय शिक्षा-पद्धति का पुनर्गठन, राष्ट्रीय हित के विचार से, शीघ्रातिशीघ्र किया जाय। यह भी आवश्यक हो गया कि देश के सभी स्कूली-अवस्था के बालक-बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा, कम से कम अवधि में, उपलब्ध कर दी जाय; और देश के असंख्य निरक्षर वयस्कों के लिए सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पुनर्गठन की आवश्यकता स्पष्ट दीख पड़ी और इनसे सम्बन्धित वैज्ञानिक तथा टेकनिकल शिक्षा का आयोजन भी आवश्यक हो गया। संविधान के 'निर्देशक-तत्त्व' में शिक्षा-सम्बन्धी निम्नलिखित उत्तरदायित्व राज्य पर स्पष्टतः आरोपित किये गये।

"राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर सब बालकों को चौदह वर्ष की अवस्था समाप्ति तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।"

"राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेष तथा अनुसूचित आदम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।" †

संविधान के इन आदेशों ने भारत सरकार पर जन-शिक्षा के शीघ्र प्रसार का उत्तरदायित्व स्पष्ट शब्दों में निर्धारित किया। साथ ही, इसने उन लोगों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की बात कही जो समाज में तब तक पिछड़े हुए हैं।

अंग्रेजी शासन के अधीन देश की सांस्कृतिक शिक्षा सबसे अधिक उपेक्षित हो गयी थी। मुसलिम शासन के अन्त तक शाही दरबार तथा राजे-महाराजे, अमीर-उमराँव आदि देश की संगीत, नृत्य, चित्रकारी आदि कलाओं को अपने आश्रय देकर प्रोत्साहित किया करते थे। अंगरेजी राज्य ने शाही दरबार के साथ उन नवाबों तथा रईसों की परम्परा का भी अन्त कर दिया, जो देश की कलाओं को प्रश्रय दिया करते थे। अत: स्वतंत्र भारत की सरकार का एक बड़ा उत्तरदायित्व यह भी हुआ कि देश की इन सांस्कृतिक परम्पराओं को न केवल संरक्षण की व्यवस्था करे, बल्कि इन्हें विकसित बनावे। अंग्रेजी शासन के अधीन भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध केवल पश्चिमी यूरोप तक ही सीमित था। नवीन भारत के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपने सांस्कृतिक सम्बन्ध को व्यापक बनावे, ताकि भारतीय नागरिक में एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभ्युदय हो सके।

ये थीं स्वतंत्र भरत की शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताएँ और माँगें। अकेले नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा का परिचालन ही कुछ इतना बड़ा कार्य था, जिसमें राष्ट्र की सारी शक्तियों कें संयोजन की अपेक्षा थी। अन्य कार्य भी टाले नहीं जा सकते थे। दूसरी ओर, सरकार के आर्थिक साधन तथा अन्य उपादान सीमित थे। दुर्भाग्यवश, स्वतंत्रता का अवतरण कुछ ऐसी परिस्थितियों में हुआ, जिनके कारण देश का पुनर्निर्माण अत्यन्त कठिन हो गया।

स्वतंत्र भारत की कठिनाइयाँ

"गवर्नमेन्ट आफ इन्डियन ऐक्ट-१९४७" ने देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ इसके विभाजन की व्यवस्था भी की। इस व्यवस्था ने

† भारत का संविधान—अनु० ४५-४६, पृष्ठ—२४

स्वतंत्र भारत के अरूण क्षितिज पर विषाद की काली रेखाएं चित्रित कर दी। स्वतंत्रता के कुछ दिन पहले से ही साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गये थे। देश के विभाजन के बाद भी दंगे जारी रहे। पाकिस्तान में पड़ने वाले हिन्दुओं की जान, माल, इज्जत खतरे में पड़ गयीं। फलस्वरूप, लाखों की संख्या में, पाकिस्तान में पड़ने वाले हिन्दु घर-बार छोड़कर भारत आने लगे। भारत सरकार के सामने एक विकराल समस्या खड़ी हो गयी। इतने लोगों को भोजन देना, कपड़ा देना, घर देना, रोजगार देना आसान बात न थी। सरकार को सारी शक्तियाँ इन विस्थापितों के पुनर्वास के कार्य में केन्द्रीभूत हो गयीं। सरकार ने समस्या पर विजय पा ली। किन्तु इसमें सार्वजनिक कोष से करोड़ों रुपये खर्च करने पड़े।

साम्प्रदायिक कलह ने न केवल निरोह जनता के प्राणों की होली खेली, न केवल इसने विस्थापितों की विकट समस्या उत्पन्न की, बल्कि इसने हमारी सबसे बड़ी निधि भी छीन ली। साम्प्रदायिकता की वेदी पर राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। ३० जनवरी १६४८ को एक विभ्रान्त भारतीय युवक ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी। आधुनिक युग का सबसे महान मानव, क्षण भर में, संसार से विदा हो गया। सारा देश शोक-सागर में निमग्न हो गया। विश्व के सभी राष्ट्रों ने अपने झंडे झुका लिये। स्वतंत्र भारत के लिए यह वज्रपात था। स्वतंत्रता-संग्राम का कुशल सेनानी, विजय के प्रथम प्रहर में ही, हमें छोड़कर चल बसा। स्वतंत्र भारत का नवनिर्माण उसके आशीर्वाद से बंचित रह गया। आधुनिक शिक्षा को एक नया संदेश देने वाला महान शिक्षा-शास्त्री अपनी नयी व्यवस्था के नये प्रयोग का मार्ग प्रदर्शित न कर सका। स्वतंत्र भारत की शिक्षा के नवनिर्माण के लिए यह एक महान क्षति थी।

स्वतंत्र भारत की सरकार के सामने एक दूसरी विपत्ति भी शीघ्र आ खड़ी हुई। द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न महंगी का दौर-दौरा तो पहले से ही विद्यमान था। रोजमर्रे की आवश्यक सामग्रियां चौगुने दाम पर भी कठिनता से मिलती थीं। प्राकृतिक प्रकोप ने महँगी की कठिनाइयों को और भी उग्र बना दिया। अनावृष्टि तथा बाढ़ के प्रकोप से देश में अन्न का उत्पादन घट गया। आम जनता के लिए दो जून का भोजन दुर्लभ होने लगा। विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। सरकार की परेशानी हद को छूने लगी, किन्तु हमारे कर्णधारों

की हिम्मत न टूटी। विदेशों से अन्न मंगाने का कार्य शुरू हुआ। इधर "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन चला। सरकार ने समस्या पर विजय पाली। किन्तु सार्वजनिक कोष से असंख्य रुपये विदेशों में उड़ेलने पड़े। देश के रचनात्मक कार्यों के लिए सरकारी खजाने का मुंह संकीर्ण हो गया।

तीसरी समस्या जो स्वतंत्र भारत की सरकार को हल करनी पड़ी वह थी देशी राज्यों की समस्या। "गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट १९४७" ने देशी राज्यों को लगभग स्वतंत्र कर दिया था; भारतीय संघ में शामिल होना या न होना—उनकी इच्छा पर निर्भर था। इस व्यवस्था से देश की एकता खतरे में पड़ गयी थी। किन्तु हमारे कुशल नेताओं की कुशल नीति ने समस्या पर विजय पायी। भारत के सभी देशी राज्य भारतीय गणतंत्र में शामिल कर लिये गये। संघ-सरकार की सत्ता देश के हर भूभाग पर पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापित हो गयी, जो कि पहले कभी न हुई थी। इस एकीकरण ने समस्त देश को जो शक्ति दी उससे हम परिचित हैं। भारतीय शिक्षा पर इस एकीकरण का प्रभाव अत्यन्त शुभ पड़ा। अबतक आधुनिक भारत के शिक्षा का इतिहास अधिकांशतः अंग्रेजी भारत के शिक्षा का इतिहास था। देशी राज्यों की शिक्षा देश की सामान्य शिक्षा-पद्धति का अनुगमन करने के लिए बाध्य न थी। कुछ राज्यों को छोड़कर, अधिकांश देशी राज्य, शिक्षा के क्षेत्र में, अंग्रेजी भारत से पिछड़े हुए थे। यदि ये राज्य भारतीय संघ के प्राकृतिक अंग न बन जाते, तो समग्र देश की प्रगति असम्भव थी। आज राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के वृत्त से देश का कोई भी अंचल अलग नहीं रह सकता। अतः आधुनिक शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए देशी राज्यों का एकीकरण अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ।

ऐसी ही परिस्थितिओं में स्वतत्र भारत की शिक्षा के इतिहास का प्रथम अध्याय शुरू हुआ। स्पष्टतः, इन परिस्थितिओं में सरकार शिक्षा अथवा अन्य रचनात्मक कार्यों की ओर न पर्याप्त ध्यान दे सकती थी, न पर्याप्त रुपये ही खर्च कर सकती थी। फलस्वरूप, स्वतंत्रता के प्रथम चरण में भारतीय शिक्षा की वह प्रगति न हो सकी, जो कि अनुकूल परिस्थितिओं में हुई रहती। फिर भी, सरकार, शिक्षा की ओर से विमुख न रह सकती थी। विभिन्न कठिनाइयों के समक्ष भी वह शिक्षा के पुनर्निर्माण तथा प्रगति की ओर सचेष्ट रही। हम आगे

देखेंगे कि अपने १० वर्ष के संकटपूर्ण जीवन में ही स्वतंत्र भारत ने अपनी शिक्षा-पद्धति को संवारने तथा समृद्ध करने की जो चेष्टाएं कीं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं।

प्रशासन

हम देख चुके हैं कि सन् १६२१ ई० में ही शिक्षा प्रान्तीय सरकार के अधीन हो गयी थी और इसके संचालन का उत्तरदायित्व उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपा गया था। स्वतंत्र भारत में भी शिक्षा राज्य-सरकारों के ही अधीन रही। किंतु, 'भारत के संविधान' में निम्नलिखित शिक्षा-संस्थाओं तथा व्यवस्थाओं पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार निर्दिष्ट किया गया। †

१—" इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित कोई अन्य संस्था

२—"भारत सरकार से पूर्णत: या अंशत: घोषित तथा संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित वैज्ञानिक या शिल्पिक शिक्षा संस्थाएं।

३—"उच्चतर शिक्षा या गवेषण की संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और शिल्पिक-संस्थाओं में एकसूत्रता लाना और मानों का निर्धारण

संविधान के ये आदेश उच्च शिक्षा तथा टेकनिकल शिक्षा के हितों की दृष्टि से दिये गये। उच्च शिक्षा के मानदन्ड को सुरक्षित रखने तथा वैज्ञानिक एवं टेकनिकल शिक्षा के सम्यक् आयोजन के लिए केन्द्रीय संरक्षण आवश्यक समझा गया।

सामान्य नीति तथा समस्याएँ :—

स्वतंत्रता की प्राप्ति महात्मा गांधी के कुशल नेतृत्व में एक ऐसे आन्दोलन के द्वारा प्राप्त हुई थी, जो सत्य और अहिंसा पर आधारित था। अत: स्वतंत्रता की प्राप्ति पर, भारतीय हृदय में उन प्रतिक्रियात्मक भावनाओं का उदय न हुआ जो बहुधा ऐसे युगान्तकारी अवसरों पर, विदेशी सत्ता तथा उनके द्वारा प्रतिष्ठापित संस्थाओं के विरूद्ध उत्पन्न होती हैं। फिर भी, कुछ लोग ऐसे अवश्य थे जो कि अंग्रेजों के द्वारा आरोपित तथा पल्लवित सभी संस्थाओं के उन्मूलन की आकांक्षा रखते

† भारत का संविधान—सप्तम अनुसूची—६३, ६४, ६६ पृष्ठ— २८५–८६

थे; और इतिहास के प्रभावों को मिटाकर देश का निर्माण उन आदर्शों तथा मान्यताओं पर करना चाहते थे, जो हजार वर्ष पुरानी पड़ गयी थीं। सौभाग्यवश ऐसे लोगों की संख्या अधिक न थी। देश का नेतृत्व उन लोगों के हाथ में था जो स्वतंत्र भारत का निर्माण, ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में, देश की आधुनिक आवश्यकताओं के विचार से करना चाहते थे। अतः प्रतिक्रियात्मक भावनाओं का भारतीय शिक्षा के इतिहास पर कोई प्रभाव न पड़ा। † किन्तु, स्वतंत्र भारत के शिक्षा-पद्धति के निरूपण में कई समस्यायें उपस्थित हो गयीं, जिनका शीघ्र निराकरण आवश्यक हो गया।

हमने देखा है कि अंग्रेजी शासन-काल में भारतीय शिक्षा-पद्धति में वे पद्धतियाँ तथा संस्थाएँ उपेक्षित हो गयी थीं, जो भारत की धरती में सदियों से चिमटी हुई थीं। इन पद्धतियों तथा संस्थाओं के पुनरुद्धार की आवाज उठनी स्वाभाविक थी। दूसरी आवाज, और भी सशक्त रूप, में अंग्रेजी माध्यम के विरुद्ध सुनाई पड़ने लगी। आगे हमने देखा है कि अंग्रेजी शासन के अन्त होते-होते, अंगरेजी माध्यम, माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र से, निष्कासित हो गया था। लगभग सभी माध्यमिक स्कूलों में शिक्षण के माध्यम, भारतीय भाषाएँ हो गयी थीं। अब, यह समझा जाने लगा कि उच्च-शिक्षा के क्षेत्र से भी अंगरेजी माध्यम निष्कासित कर दिया जाय। भारत के शिक्षा-शास्त्री इस बात से सहमत थे कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, उच्च-शिक्षा में भी मातृभाषाएँ शिक्षण के माध्यम बनें। किन्तु वे इस बात पर दृढ़ थे कि उच्च-शिक्षा से अंगरेजी माध्यम के निष्कासन का प्रश्न नितान्तः शैक्षणिक दृष्टि से देखा जाय, न कि राजनीतिक प्रतिक्रियाओं की दृष्टि से। उच्च-शिक्षा के क्षेत्र से अंगरेजी माध्यम तभी हटाया जाय, जब कि उच्च-विद्यालयों के शैक्षणिक स्तर को इससे खतरा पहुँचने की आशंका न रहे। ऐसे शिक्षा-शास्त्रियों को भारतीय नेताओं की सहमति मिली और यह निश्चित किया गया कि उच्च शिक्षा में मातृभाषाओं का प्रतिष्ठापन क्रमशः इस अनुपात में किया जाय कि उच्च शिक्षा, विशेषतः विज्ञान तथा टेकनेलौजी की शिक्षा, को किसी तरह का आघात न पहुँचे। भारतीय शिक्षा के नव-

† The fact that the struggle for freedom was fought under the leadership of Mahatma Gandhi gave it a unique character and ruled out a violent break with the past.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India (1947--52) P. 3

निर्माण का तीसरा विवादास्पद प्रश्न अंगरेजी भाषा के अध्ययन के सम्बन्ध में था। हमने देखा है कि अंगरेजी शासन-काल में माध्यमिक तथा उच्च विद्यालयों के अध्ययन-क्रम में अंगरेजी को अत्यधिक महत्व प्राप्त था। इस महत्व के विरुद्ध तरह-तरह के विचार, स्वतंत्रता के पश्चात, प्रकट किये जाने लगे। कुछ लोगों की सम्मति में स्कूली शिक्षा में अंगरेजी की शिक्षा अनिवार्य न रहनी चाहिए थी, कुछ लोग इसका अध्ययन हाई स्कूलों की आठवीं श्रेणी से करना चाहते थे, बहुत से लोग ऐसे भी थे जो अंगरेजी को स्कूली शिक्षा का एक महत्व-पूर्ण विषय मानते थे और इसकी पढ़ाई आधुनिक छठी कक्षा से ही करना चाहते थे। स्थानाभाव के कारण इन विभिन्न मतों का परीक्षण यहाँ सम्भव नहीं। किन्तु यह कह देना आवश्यक है कि देश के अधिकांश शिक्षा-शास्त्रियों का यह निश्चित विचार था कि स्कूलों के पाठ्य-क्रम में अंगरेजी को हल्का करने, या देर से स्थान देने, या सर्वथा निष्कासित कर देने का प्रश्न गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय और इस सम्बन्ध में जो निर्णय दिया जाय वह देश की शैक्षणिक आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से हो, न कि किसी प्रतिक्रियावादी दृष्टि-कोण से। किन्तु अभी तक, अखिल भारतीय रूप में, इस प्रश्न का हल नहीं हो सका है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission), जिसका पूर्ण विवरण हम आगे देंगे, ने यह मत प्रकट किया कि अंगरेजी की शिक्षा छठे वर्ग से ही शुरु की जाय। † किन्तु यह परामर्श सर्वत्र कार्यान्वित न हुआ है।

सामान्य प्रगति

अनेक कठिनाइयों के कारण, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, सन् १६४७–५६ की अवधी में भारतीय शिक्षा की प्रगति उतनी न हो सकी, जितनी अपेक्षित था। फिर भी, इस अवधि में शिक्षा के लग-भग सभी क्षेत्रों में पहले से कहीं अधिक उन्नति हुई सन् १६४७ में ६ से ११ वर्ष की अवधि के केवल ३० प्रतिशत बच्चे स्कूलों में दाखिल थे। ११–१७ वर्ष की अवस्था के लिए यह अनुपात केवल १० प्रतिशत था, और १७–२३ वर्ष के लिए केवल १ प्रतिशत। इन्जिनियरिंग तथा टेकनीकल शिक्षा में स्थिति और भी असंतोषप्रद थी। १६४७–४८ में भारत के इन्जिनियरिंग तथा टेकनिकल कालेजों से

† Secondary Education Commission Report—P. 71.

क्रमशः केवल ६३० तथा ३२० स्नातक उत्पन्न हुए थे। इस वर्ष साक्षरता का अनुपात लग-भग सैकड़े १५ था। † सन् १६५१–५२ में ६–११ वर्ष के वयवर्ग के ४० प्रतिशत बच्चे स्कूल में भरती थे। सन् १६५५–५६ में यह अनुपात लगभग ५० प्रतिशत होगया। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की काफी प्रगति हुई। सन् १६४७–४८ में केवल २३७००० छात्रों ने स्कूल-परित्याग प्रमाण-पत्र उपलब्ध किया था। सन् १६५१–५२ में इनकी संख्या ५८६००० थी। कला तथा विज्ञान के स्नातकों की संख्या भी १६४८–५२ वर्ष की अवधि में २४८१४ से बढ़कर ३५,५८८ हो गयी। इन्जिनियरिंग तथा टेकनिकल शिक्षा के छात्रों की संख्या १६४७–५२ के बीच दो-गुणी से भी अधिक होगयी। सन् १६५२ ई० में इन्जिनियरिंग कालेजों से २५०० तथा टेकनिकल कालेजों से ६०० छात्र स्नातक होकर निकले। सन् १६४७–४८ में, जैसा कि हम आगे देख चुके हैं, इन स्नातकों की संख्या केवल ६३० तथा ३२० थी। ‡ सन् १६५२–५६ के बीच भी प्रगति की गति दृढ़ रही। पर्याप्त आँकड़ों के अप्राप्य होने के कारण इस अवधि की प्रगति की तुलना सन् १६४७–५२ की अवधि से नहीं की जा सकती। किन्तु सन् १६५३–५४ में सारे देश में कुल मिलाकर ३,२१,४०५ शिक्षा-संस्थाएँ क्रियाशील थीं, जिनमें २६५'३५ लाख छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन सभी संस्थाओं पर कुल मिलाकर १४६'४० करोड़ रुपये खर्च हो रहे थे। *

कमिटियाँ तथा कान्फरेन्स

सन् १६४७–५६ की अवधि के बीच शिक्षा के पुनर्गठन तथा प्रसार के निमित्त कई कमिटियाँ नियुक्त हुईं तथा कई सम्मेलन आमन्त्रित किये गए। इनमें प्रमुख ये थे:—

जनवरी १६४८ में भारत सरकार के तत्त्वावधान में एक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन में सभी राज्यों के शिक्षा मंत्री, विश्वविद्यालयों के उपकुलपति तथा चुने हुए शिक्षा शास्त्री बुलाये गये।

† Quinquennial Review of the Progress of Education in India—P. 4.

‡ Quinquennial Review of the Progress of Education in India —P. 5.

* India—1956—Publications Division—Ministry of Info mation & Broadcasting—P. 266.

सम्मेलन की बैठक दो दिनों—१५, १६ जनवरी—तक हुई। सम्मेलन में भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण बातें तय हुईं। ये निम्न-लिखित थीं:—

क—अपने शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों में राज्य बच्चों के लिए बुनियादि शिक्षा के प्रबन्ध तथा वयस्कों के लिए सामाजिक शिक्षा के प्रबन्ध को प्रथम स्थान दे। इन शिक्षाओं का आयोजन सरकार, युद्धोत्तर विकास योजना द्वारा निर्धारित अवधि से, कम समय में करे।

ख—वैज्ञानिक तथा शिल्पिक (टेकनिकल) शिक्षा के प्रसार का शीघ्र आयोजन किया जाय, ताकि देश के उद्योग तथा कृषि का विकास हो सके।

सम्मेलन में यह भी तय हुआ कि केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति के द्वारा परामर्शित माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा आयोगों की नियुक्ति शीघ्र की जाय।

'खेर कमिटि' में बुनियादि शिक्षा के प्रसार के प्रश्न की पूरी जाँच की और यह सिफारिश की कि निःशुल्क अनिवार्य बुनियादी शिक्षा १६ वर्ष की अवधि में पूरी तरह लागू कर दी जाय। यह १६ वर्ष की अवधि तीन चरणों में बाँटी जानी चाहिए थी। प्रथम तथा द्वितीय चरण ५-५ वर्ष के होने चाहिए थे। तृतीय चरण की अवधि ६ वर्ष की होनी चाहिए थी। कमिटि ने यह भी सिफारिश की कि बुनियादी शिक्षा के कुल खर्च का ७० प्रतिशत राज्य सरकारों के द्वारा बहन किया जाय और शेष केन्द्रीय सरकार के द्वारा।

वैज्ञानिक जन-शक्ति समिति (Scientific Manpower Committee)

भारत सरकार ने सन् १९४७ ई० में वैज्ञानिक जन-शक्ति समिति नियुक्त की, जिसे देश की वैज्ञानिक तथा शिल्पिक आवश्यकताएँ क्या थीं तथा इन आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे हो सकती थीं—इनके सम्बन्ध में सुझाव पेश करने थे। समिति ने जुलाई १९४८ में अपनी रिपोर्ट अर्पित कर दी। समिति ने यह कहा कि आगामी ५-१० वर्ष में देश को ५४,००० इन्जिनियरों तथा २०,००० शिल्पिकों की आवश्यकता होगी। समिति के अनुसार, देश की तत्कालीन वैज्ञानिक तथा शिल्पिक संस्थाओं से इस संख्या के ५० प्रतिशत से अधिक लोग उत्पन्न न हो सकते थे। अतः वैज्ञानिक, शिल्पिक, इन्जिनियरिंग,

चिकित्सा, कृषि आदि शिक्षाओं के विस्तार के लिए एक पंचवर्षीय योजना (Five year Plan) बनायी गयी।

ग्राम वयस्क शिक्षा गोष्ठी (Rural Adult Education Seminar)

नवम्बर १६४० में राष्ट्र संघ के शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन एवं भारत सरकार के तत्त्वावधान में, दिल्ली में, ग्रामीण क्षेत्रों में वयस्क शिक्षा की समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिए एक गोष्ठी आयोजित हुई। इस गोष्ठी में ५ महादेशों के १६ देशों के प्रतिनिधि उपस्थित हुए। पूर्वीय देशों में इस तरह की अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी पहली बार बुलायी गयी थी। इस गोष्ठी में वयस्कों के लिए मौलिक शिक्षा (fundamental education) के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव उपस्थित किये गये, जिनका उल्लेख हम आगे यथास्थान करेंगे। इस गोष्ठी ने, पूर्वीय देशों में, वयस्क शिक्षा के प्रसार के एक व्यापक कार्य-क्रम का समारंभ किया। †

शिक्षण का माध्यम

शिक्षण के माध्यम का प्रश्न आधुनिक भारतीय शिक्षा के इतिहास में लगभग दो वर्षों से विवादास्पद विषय था। अंग्रेजी माध्यम देश में किस तरह प्रतिष्ठापित हुआ—इसका विवरण हम दे चुके हैं। १६वीं सदी के प्रारम्भ से (राष्ट्रीय भावना की जागृति के पश्चात्) अंग्रेजी माध्यम के विरुद्ध जोरदार आवाज उठने लगी थी—यह भी हम देख चुके हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद, जैसाकि आगे इस अध्याय के सामान्य परिचय में हम कह चुके हैं, यह आवाज और भी जोरदार हो गयी। इस समय तक भारत के सभी शिक्षाशास्त्री तथा विचारक इस बात पर मतैक्य रखते थे कि अँग्रेजी माध्यम स्कूल के शिक्षण से दूर हो जाना चाहिए। किंतु इस बात पर इनका मतैक्य न था अंग्रेजी के स्थान पर कौन सी भाषा शिक्षा का माध्यम बने। इस प्रश्न के हल करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने अगस्त १६४६ में सभी राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में, माध्यम के सम्बन्ध में, महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। वे ये थे:—

क—निम्न बुनियादी (प्राथमिक शिक्षा) के माध्यम मातृभाषाएँ हों। जिन स्थानों में मातृभाषा क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषा से

† Quinquennial Review of the Progress of Education in India (1947-52)—P. 12.

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने हिन्दी के वांछित प्रसार के निमित्त एक पन्द्रह-वर्षीय कार्यक्रम तैयार किया, जो कि पाँच-पाँच वर्षों की तीन चरणों में विभाजित है। पहले चरण में हिन्दी वैज्ञानिक तथा टेक-निकल शब्दों के निर्माण का कार्य समाप्त हो जायगा, दूसरे चरण में अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार होगा, तीसरे चरण में केन्द्रीय सरकार के सारे कार्य हिन्दी में होने लगेंगे, तथा अंगरेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी प्रान्तीय सरकारों के साथ पत्र-व्यवहार हो सकेंगे।

हिन्दी भाषा में टेकनिकल शब्दों के निर्माण के लिए केन्द्रीय सरकार ने १६ पारिभाषिक समितियाँ नियुक्त की हैं। गणित, भौतिकि, रसायन तथा विज्ञान की शिक्षा में प्रयुक्त होने वाले हिन्दी शब्दों के अन्तिम रूप, माध्यमिक स्कूलों तक, तय कर लिये गये हैं। रेल, तार, डाक, औषधि, कृषि आदि के सम्बन्ध में "हिन्दुस्तानी कलचरल सोसाइटी" इलाहाबाद को सरकार ने ६० हजार रुपये अंगरेजी-हिन्दी शब्दकोष तैयार करने के लिये दिये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को १५ हजार रुपये का अनुदान हिन्दी भाषा और साहित्य के वृहत् इतिहास लिखने के लिए दिया गया है। हिन्दी शब्द सागर का पहला खंड "ज्ञान सरोवर" प्रकाशित हो चुका है। *

केन्द्रीय शिक्षा विभाग

हम कह चुके हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात् देश के शिक्षा-प्रशासन की प्रचलित पद्धति में, किसी तरह का परिवर्तन न हुआ। राज्यों में भी शिक्षा का प्रशासन पूर्ववत् चलता रहा। किन्तु केन्द्रीय शिक्षा विभाग के रूप तथा कार्यों में परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हुए। हमने पहले देखा है कि सन् १९४५ तक केन्द्रीय प्रशासन में शिक्षा का स्वतंत्र स्थान न था। यह विभाग, स्वास्थ्य तथा कृषि विभागों के साथ संलग्न था। सन् १९४६ ई० में ही शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कृषि तीनों अलग विभाग के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। सन १९४७ ई० में शिक्षा मंत्रालय की सृष्टि हुई। तब से इस मंत्रालय के अधीन केन्द्रीय शिक्षा विभाग विकसित होता आ रहा है। इस विभाग की एक विशेषता यह है कि इसमें विशेषज्ञ तथा प्रकाशक-इन दोनों के कार्य एक ही पद में संश्लिष्ट कर दिये गये हैं। वस्तुतः शिक्षा मंत्रालय में कोई भी व्यक्ति प्रशासक

* India 1956 — The Publications Division—Ministry of Information and Broadcasting.

New Delhi—P. 276

के पद पर नियुक्त न हो सकता है, यदि उसने कम-से-कम ३ वर्षों तक शिक्षण का कार्य न किया हो। विशेषज्ञ तथा प्रशासक का एकीकरण, शिक्षा के हित की दृष्टि से, उपयोगी सिद्ध हुआ है। * इसी व्यवस्था के अधीन केन्द्रीय मंत्रालय ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। अतः यह सिद्ध हो गया है कि प्रशासक तथा विशेषज्ञ के पदों का एकीकरण, शिक्षा हित के विचार से, अच्छा है। दुर्भाग्यवश, यह व्यवस्था राज्यों के शिक्षा-प्रशासन में न हो पायी, जिससे कई तरह की गड़बड़ी, राज्य के शिक्षा-संचालन में, दृष्टिगोचर होती रहती है।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में शिक्षा-मंत्री की सहायता के लिए प्रमुख शिक्षा सलाहकार तथा सचिव रहते हैं, जो अतिरिक्त सचिव, संयुक्त शिक्षा सलाहकार से सम्बलित रहते हैं। इनके अधीन दो उपसचिव तथा चार उप-शिक्षा सलाहकार रहते हैं, जो कि भिन्न-भिन्न विभागों के अध्यक्ष रहते हैं। शिक्षा मंत्रालय के दफ्तर वासिंगटन, लन्दन, बोन्न तथा नैरोबी–विदेशों—में स्थित हैं। स्वतंत्रता के बाद केन्द्रीय मंत्रालय के कार्य बहुत बढ़ गये हैं। सम्प्रति इसके अधीन ६ विभाग क्रियाशील हैं। वे ये हैं। *

१—प्रशासन तथा विश्वविद्यालय
२—हिन्दी तथा सांस्कृतिक विषय
३—टेकनिकल तथा वैज्ञानिक विषय
४—छात्रवृत्तियाँ तथा सूचना
५—बुनियादी तथा सामाजिक शिक्षा
६—माध्यमिक शिक्षा।

जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के अधीन अलीगढ़, बनारस, दिल्ली तथा विश्वभारती विश्वविद्यालय, तथा उच्च शिक्षा की अन्य कई संस्थाएँ हैं। इनके अतिरिक्त निम्न-लिखित विभाग भी शिक्षा मंत्रालय के प्रशासन में हैं।

१—आरकेलोजिकल सरवे आफ इन्डिया
२—ऐन्थ्रोपोलौजिक सरवे आफ इन्डिया

* This system has on the whole worked well at the Centre and the large expansion which has taken place in recent years has justified the soundness of the principle—Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1947-52, P. 16.

* India—1955—Publications Divisions—Ministry of Information and Broadcasting. Government of India—P. 352.

३—नैशनल आरकाइव्स

४—नैशनरल लैबोरट्री–कलकत्ता

अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से मंत्रालय के द्वारा छात्रवृत्तियाँ तथा पारितोषिक प्रदान किये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संस्था (यूनेस्को) के साथ सहयोग स्थापित कर भारत की शिक्षा–संस्कृति के उत्थान की ओर भी केन्द्रीय शिक्षा विभाग सचेष्ट रहता है।

राज्य शिक्षा विभाग

राज्यों में शिक्षा का प्रकाशन स्वतंत्रता के पश्चात् भी बहुत-कुछ द्वैध प्रणाली के अनुसार होता रहा। इसके अनुसार राज्य शिक्षा मंत्रालय के अधीन एक शिक्षा विभाग होता है, जिसके अधिकारी शिक्षा-सचिव होते हैं तथा जिसके परामर्शों के अनुसार मंत्री कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा-निर्देशक विभाग (directorate) होता है, जिसके मुख्य अधिकारी लोक शिक्षा निर्देशक (Director of Public Instruction) होते हैं। शिक्षा–सचिव अधिकतर प्रशासनीय अधिकारी होते हैं, जो कि अखिल भारतीय प्रशासन सेवा (I. S. A.) के सदस्य रहते हैं। लोक-शिक्षा निर्देशक की नियुक्ति साधारणतः उन लोगों में से होता है जो राज्य की शिक्षा सेवा में अनुभव प्राप्त किये हुए व्यक्ति होते हैं। इस तरह द्वैध शासन की व्यवस्था के अधीन एक प्रशासक के अधीन एक विशेषज्ञ को कार्य करना पड़ता है। इस प्रथा के अन्य कई दोष हैं, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इस द्वैध प्रणाली के विरुद्ध विभिन्न आयोगों ने अपने विचार प्रकट किये–यह भी हम देख चुके हैं। केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति ने भी इस प्रथा को उठाने की कई बार सिफारिश की। सर जान सार्जेन्ट अपनी दस-वर्षीय (१९३७-४७) शिक्षा रिपोर्ट में भी इस प्रणाली के दोषों का पूर्ण विवेचन किया। फिर भी राज्यों के प्रशासन में यह व्यवस्था अभी तक टिकी है। कहीं-कहीं दोनों अधिकारियों के कार्य-

* In spite if the advice of various commissions and repeated recomendations of the Central Advisory Board of Education, this systen of the control still persists under which an expert educationist is placed under a member of a Provincial or Indian Adminstrative Service.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India (1947-52) —P. 16.

लय एक कर दिये गये हैं, किंतु फिर भी द्वैध शासन के रूप में अन्तर न पड़ा है। अतः राज्यों के शिक्षा-प्रशासन में वह सुधार न किया जा सका, जो कि स्वतंत्र भारत की शिक्षा की माँगों के लिए अपेक्षित था।

पंचवर्षीय योजनाएँ

सन् १९४६-१९५६ की अवधि की, राष्ट्र के समग्र हित के विचार से, सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं का परिचालन। शिक्षा के इतिहास में भी पंचवर्षीय योजनाओं का विशिष्ट स्थान है। शिक्षा प्रसार की योजनाएं पहले भी बनी थीं, किन्तु ये योजनाएं अधिकतर अकेले शिक्षा के दृष्टिकोण से ही बनायी जातीं थी, जिसके कारण इन योजनाओं का देश के सम्पूर्ण हितों से कोई लगाव न रहता था। पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा राष्ट्र के सम्पूर्ण अथवा सर्वांगीण विकास के अंग के रूप में गृहीत हुई है। अतः योजनाओं की शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्थाएँ अधिक सार्थक, व्यावहारिक तथा राष्ट्र-हित से सबद्ध हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के प्रसार का महत्व पूर्णतः स्वीकार किया गया है। * यह भी स्वीकार किया गया है कि शिक्षा की वर्त्तमान सुविधाएँ अत्यन्त न्यून हैं और देश की शिक्षा सम्बन्धी नयी माँगों की पूर्ति, इन सुविधाओं को काफी बढ़ाये बिना, नहीं हो सकती। फिर भी देश के पुनर्निर्माण के कार्य में योजना ने भौतिक उत्पादन की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया। इस उद्देश्य से, योजना में कृषि (जिसमें सिंचाई सम्मिलित है,) की उन्नति को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया।* कृषि के विकास से ही अन्न तथा कच्चे माल का पर्याप्त उत्पादन सम्भव था, जिसके बिना राष्ट्र की प्रगति, अन्य क्षेत्रों में, सम्भव न थी।

* The success of a demo cracy depends on the growth of a spirit of cooperation. disciplined citizenship and capacity of the ordnary citizen to participate intelligently in public affairs:— The existing educational facilities are obviously inadequate First Five Year Plan.

Peoples Edition—P. 220

* For the immediate five year period, agriculture including irrigation and power, must have the topmost priority.

First Five Year Plan. Peoples Edition P. 220

खाद्यान्न और कच्चे माल के बुनियाद पर ही राष्ट्रीय समृद्धि की इमारत खड़ी की जा सकती थी। † अतः योजना ने शिक्षा तथा समाज-सेवा को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिया, जो कि परिस्थितिओं के विचार से, अवश्यंभावी था।

आर्थिक व्यवस्था

योजना में भारतीय शिक्षा की विभिन्न समस्याओं की चर्चा की गयी और यह विचार व्यक्त किया गया कि अब तक की चेष्टाएँ, इन समस्याओं के हल करने में बहुत ही कम समर्थ हुई हैं। योजना के अनुसार अभीतक शिक्षा अधिकांशतः पुरानी पद्धति पर परिचालित होती आ रही थी और इसके पुनर्निर्माण का कार्य लगभग अछूता ही था। ‡ दूसरी ओर, योजना का प्रधान लक्ष्य खाद्य तथा कच्चे माल के उत्पादन की वृद्धि था। अतः शिक्षा की समस्याओं के पूर्ण समाधान में यह असमर्थ थी। इसने इस समस्या को, आंशिक रूप में ही, हल करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। योजना में व्यय किये जाने वाले समस्त धन का केवल ७ प्रतिशत शिक्षा की मद में दिया गया, जिसके अनुसार शिक्षा के लिए, ५ वर्ष की अवधि में, १६१ करोड़ रुपये खर्च करने की व्यवस्था की गई। इन रुपयों में ४१.५ करोड़ केन्द्र के द्वारा तथा शेष रुपये राज्यों के द्वारा खर्च किये जाने चाहिए थे। * यह खर्च शिक्षा के विभिन्न विषयों पर निम्नलिखित रूप में आवशिटत था।

† It is clear that without a substantial increase in the production of food and of raw materials, needed for country, it will be impossible to sustain a higher tempo of development in other sectors. Food and raw matering are the wherewithals for further development, and the creations of conditions of sufficiency and even plentitude in respect of them, is therefore fundamental. First Five Year Plan.

People's Edition—P. 20

‡ But, by and large, teaching continues on the old lines and practically the entire task of remodelling the system still remains to be done.

First Five year Plan—People's Edition.—P. 220.

* योजना के द्वारा प्रस्तावित खर्च लगभग १५६ करोड़ था, ३६ करोड़ केन्द्र के द्वारा तथा ११७ करोड़ राज्यों के द्वारा। (योजना पृष्ठ २२)

India 1955. Publications Divisions—Ministry of Information and Broadcasting—Government of India.

P. 333-34.

केन्द्रीय खर्च

१	पूर्व विश्वविद्यालय शिक्षा	१६·४६	करोड़
२	विश्वविद्यालय शिक्षा	३·४३	,,
३	टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा	१६·६४	,,
४	विद्यार्थियों के द्वारा ग्राम तथा समाज-सेवा	१·०००	,,
५	अन्य कार्य—	०·६८	,,
	कुल—	४१·५१	करोड़

राज्यों के खर्च

१	प्रशासन	१·०	करोड़
२	प्राथमिक शिक्षा	७३·०	,,
३	बुनियादी शिक्षा	१·६	,,
४	माध्यमिक शिक्षा	८·७	,,
५	विश्वविद्यालय शिक्षा	१०·६	,,
६	टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा	१०·६	,,
७	सामाजिक शिक्षा	६·४	,,
८	अन्य कार्य	७·०	,,
	कुल—	११६·५	करोड़

सन् १६४६–५० में शिक्षा की मद में कुल खर्च लगभग १०० करोड़ था। इस तरह योजना में तत्कालीन खर्च का लगभग ५० प्रतिशत अधिक स्वीकृत किया गया।

प्राथमिकताएं

सीमित साधनों की दृष्टि से, योजना ने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा के पुनर्गठन तथा विकास में विषयों का चुनाव, उनके सापेक्षिक महत्त्व के विचार से, किया जाय। † वर्त्तमान सुविधाओं को सशक्त तथा विकसित करने के अतिरिक्त, निम्नलिखित विषयों को प्रथम स्थान दिया जाय।

† The lack of resources makes it imperative that the programme should be drawn up according to a carefully considered system of priorities.

First Five year Plan—People's edition— p. 221.

परियोजना (Pilot Projects) प्रचालित करना।

ख—वर्त्तमान प्राथमिक स्कूलों को इस रूप में विकसित करना कि वे अन्ततः बुनियादी स्कूलों में परिवर्तित हो जायँ। †

६–१४ वर्ष के बच्चों की शिक्षा का रूप बुनियादी शिक्षा निश्चित हो चुका था। किन्तु इस दिशा में ठोस कार्य अबतक न हो पाया था। अतः योजना ने इस बात पर जोर दिया कि बुनियादी शिक्षा, सभी बच्चों के लिये, शीघ्रातिशीघ्र सुलभ हो जानी चाहिए। चूँकि देश के अधिकांश प्राथमिक शिक्षक निम्न योग्यता रखते थे, अतः यह आवश्यक था कि शिक्षण की प्रणालियाँ तथा रीतियाँ इस भाँति विकसित की जायँ कि इनके द्वारा ये अल्प-योग्यता के शिक्षक बुनियादी शिक्षा को कार्यान्वित करने में समर्थ हो जायँ। ‡ इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए योजना ने यह सिफारिश की कि हर अ तथा ब श्रेणी के राज्यों में बुनियादी शिक्षा की शालाओं का एक समूह स्थापित किया जाय। स श्रेणी के राज्यों के लिए यह समूह दिल्ली में अवस्थित किया जाय। इस समूह में कई पूर्व-बुनियादी तथा बुनियादी, एक उत्तर-बुनियादी (Post-basic), एक शिक्षक-प्रशिक्षण-स्कूल तथा एक शिक्षक प्रशिक्षण-कालेज रहें। शहरी क्षेत्रों में कुछ बुनियादी स्कूल खोले जायँ, ताकि बुनियादी शिक्षा शहरी आवश्यकताओं के अनुकूल बनायी जा सके। एक सघन क्षेत्र में स्थापित होने के कारण बुनियादी स्कूलों का समूह न केवल चालक परियोजना का कार्य करेगा, बल्कि यह जन-समुदाय में स्वावलम्बन तथा सहयोग का भाव विकसित करेगा। इस परियोजना का अन्तिम उद्देश्य यह होना चाहिए कि इसके द्वारा क्षेत्र-विशेष का पुनर्निर्माण हो सके। *

† Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1947—52. P. 20.

‡ The foremost task in this field is the improvement of technique and the development of method by which it can be passed on to the vast majority of teachers of rather low educational qualifications. First Five year Plan—P. 222.

* Located in one compact area, these institutions would not only serve as pilot projects in the field of basic education, but would also help to deveop a spirit of self-help and cooperation in the entire community. The aim is to make the school the community centre for the reconstruction of the entire area.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India (1947—52) p. 20.

प्रचलित पद्धति के प्राथमिक स्कूलों की उपलब्धियाँ निम्न कोटि की हैं। अत: इस प्रकार के नये स्कूलों के खोलने की प्रवृत्ति प्रोत्साहित न की जाय; बल्कि उपलब्ध साधनों से वर्त्तमान प्राथमिक स्कूलों के सुधार एवं पुनर्गठन की चेष्टा, बेसिक पद्धति पर, की जाय। इस उद्देश्य से शिक्षकों को दस्तकारी की शिक्षा, बड़े पैमाने पर, दी जाय; और जहाँ तक सम्भव हो सके, प्राथमिक स्कूलों में दस्तकारी की शिक्षा शुरू कर दी जाय। †

ख—माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति हो चुकी थी। इसलिये योजना ने माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में खास निर्देश न दिये। किन्तु इसने स्पष्ट कर दिया कि माध्यमिक शिक्षा जन-शिक्षा के निर्धारित स्वरूप, अर्थात् बुनियादी शिक्षा, से ही विकसित हो, ताकि प्राथमिक स्कूलों से जो छात्र माध्यमिक स्कूलों में जायँ, उन छात्रों को माध्यमिक स्कूलों के पाठ्य-विषय अथवा शिक्षण-पद्धति पहले के पाठ्य-विषय तथा शिक्षण-पद्धति से सर्वथा बेमेल न दीख पड़ें। * योजना ने यह भी परामर्श दिया कि माध्यमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में पर्याप्त विविधता लायी जाय, ताकि यह किशोरों के विभिन्न प्रवृत्तियों तथा रुचियों के अनुकूल हो सके। योजना के विचार में यह भी आवश्यक था कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने पर अधिकांश छात्रों को किसी व्यवसाय में सीधे लग जाने की क्षमता हो जानी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए यह अपेक्षित था कि देश में बहूद्देश्यीय (multi-purpose) माध्यमिक स्कूल खोले जायँ, जिनमें कृषि तथा गृह-उद्योगों की शिक्षा की खास व्यवस्था रहे।

† In view of poor return from ordinary primary schools the tendency to open new schools should not be encouraged, resources should be concentrated on the improvement and remodelling of existing primary schools on the basic lines in so far as it is possible to do this with the available staff,

First Five Year Plan—People's Edition—P. 222.

* We should, however, like to stress that it must grow from the education that is being given at the mass level, in other words, it should be closely integrated with basic education.

First Five Year Plan—People's Edition—P. 253

ग—विश्वविद्यालय शिक्षा

विश्वविद्यालयों की आर्थिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए योजना ने यह विचार प्रकट किया कि ऐसे नये विश्व-विद्यालय तबतक न स्थापित किये जायं, जब तक उनका आर्थिक आधार सुदृढ़ न हो। वर्त्तमान साधनों से अधिकतम लाभ उठाने के लिए यह अपेक्षित था कि विश्वविद्यालय के खर्च, जहाँ सम्भव हो सके, कम किये जायं। † विश्वविद्यालय शिक्षा की दूसरी समस्या यह थी कि कालेजों में छात्र, अत्यधिक संख्या में, भरती थे। इस स्थिति के निराकरण के लिए यह आवश्यक था कि विश्वविद्यालयों में उन्हीं छात्रों को प्रविष्ट किया जाता, जो इसके लिए पर्याप्त योग्यता रखते थे। साथ ही माध्यमिक शिक्षा को स्वतः पूर्ण बनाया जाय, ताकि माध्यमिक स्कूलों से पास होने वाले अधिकांश छात्र किसी कार्य में लग जायं।

प्रचलित रीति के अनुसार कई तरह की सरकारी सेवाओं में उम्मीदवारों के लिए विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ आवश्यक थीं। इससे भी विश्वविद्यालयों में भीड़ रहती थी, और इनकी शिक्षा का मान गिर रहा था। अतः योजना में यह सिफारिश की गयी कि सरकारी सेवाओं की नियुक्तियां किसी स्वतंत्र प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा हों और इस परीक्षा में शामिल होने के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री अनिवार्य न हों।

विश्वविद्यालय आयोग, जिसका परिचय हम आगे देंगे, के द्वारा प्रस्तावित ग्रामीण विश्वविद्यालय (Rural University) के विचार से योजना ने अपनी सहमति प्रकट की और यह परामर्श दिया कि कम से कम एक ग्रामीण विश्वविद्यालय, योजना की अवधि में, अवश्य स्थापित किया जाय। यह विश्वविद्यालय उस क्षेत्र में स्थापित किया जाय, जहाँ पूर्व-विश्वविद्यालय बुनियादी शिक्षा, पूरी तरह, व्यवहृत हो चुकी हो।

घ—सामाजिक शिक्षा

योजना में वयस्क शिक्षा के प्रचलित अर्थ को विस्तृत किया गया, ताकि इस शिक्षा के द्वारा वयस्कों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों की

† Insistence on a degree for many grades and posts has been an important factor in creating congestion and thereby reducing standards in university education.

First Five year Plan—People's Edition—P. 223.

जानकारी हो, उन्हें अपने अवकाश को अच्छी तरह बिताने की रीति मालूम हो तथा नागरिक के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान हो। वयस्क शिक्षा के लिए "सामाजिक शिक्षा" शब्द का प्रचलन इसी उद्देश्य से किया गया था। वयस्क शिक्षा का प्रसार केवल विशिष्ट संस्थाओं के द्वारा न हो, बल्कि सभी प्रकार के सहयोगी कार्य-जैसे ग्राम पंचायतों के कार्य, कोआपरेटिव सोसाइटी के कार्य-मजदूर संघ के कार्य-समाज शिक्षा के अवसर प्रस्तुत करें। प्रत्येक स्कूल तथा कालेज को भी अपने इर्द-गिर्द में सामाजिक शिक्षा का प्रसार करना चाहिए।

च—व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में योजना ने स्नातकोत्तर अध्ययन तथा अनुसंधान की सुविधाओं को बढ़ाने की सिफारिश की। उसने यह भी सिफारिश की कि चूँकि उद्योगों के कार्यकर्ताओं तथा टेकनिकल शिक्षा देने वाले शिक्षकों के प्रशिक्षण के साधनों का अभाव था, इनकी वृद्धि की जाय। टेकनिकल शिक्षा के अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी योजना में कई परामर्श उपस्थित किये गये, जिनमें पुनर्संजीवन शिक्षा (Refresher Course) के आयोजन तथा देहात के कारीगरों के लिए ग्रामीण प्रशिक्षण केन्द्रों के प्रबन्ध प्रमुख थे।

छ—स्त्री शिक्षा

योजना ने देश के शिक्षात्मक उत्थान के लिये स्त्री शिक्षा को प्रश्रय देना आवश्यक माना। यद्यपि स्त्रियों के लिए सामान्य शिक्षा के अवसर पूर्णतः उपलब्ध रहने थे यह अपेक्षित था कि उनके लिए वैसी शिक्षा का आयोजन अवश्य किया जाय, जिसके प्रति उनकी खास अभिरूचि हो। चूँकि बहुत सी लड़कियों की शिक्षा, कम अवस्था में ही, कई कारणों से, समाप्त हो जाती है, इसलिए यह आवश्यक था कि लड़कियों तथा स्त्रियों को 'प्राइवेट' रूप से अध्ययन करने तथा विभिन्न परीक्षाओं में शामिल होने की सुविधा दी जाय। उनके लिए अल्प-कालीन शिक्षा का आयोजन भी अपेक्षित था।

ज—प्रचलित शिक्षा पद्धति में, हाथ के काम का सर्वथा निष्कासन है, जिसका प्रभाव, राष्ट्रीय हित के विचार से, अच्छा न पड़ता था। अतः योजना ने छात्रों के हाथ के काम और शारीरिक श्रम की शिक्षा की व्यवस्था की सिफारिश की, जिसके अनुसार छात्रों को शारीरिक श्रम

के दैनिक अभ्यास के अतिरिक्त, ६ महीने से एक साल की पूर्ण अवधि, हाथ के काम करने में ही, पूर्णतः व्यतीत होती। इस लम्बी अवधि के कार्य सामुदायिक विकास योजना तथा ऐसे ही जनोपयोगी निर्माण-कार्य के साथ संबद्ध किये जाने चाहिए थे। इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था के लिए, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, योजना ने १ करोड़ रुपये निधारित किये, जो कि कालेजों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों के ऊपर खर्च किये जाने चाहिये थे।

ज—शिक्षकों के वेतन तथा सेवा की शर्तें

योजना ने यह स्वीकार किया कि देश की शिक्षा के स्तर के पतन का एक मुख्य कारण यह भी था कि यहाँ के शिक्षकों के वेतन तथा सेवा की शर्तें नितान्तः असंतोष-प्रद थीं। † अतः योजना ने इस बात की सिफारिश की कि सभी राज्य-सरकार शिक्षकों के वेतन तथा सेवा की शर्तों में पर्याप्त उन्नति करें, ताकि वे अन्य सेवाओं के समकक्ष होजायँ।‡ शिक्षकों को यह भी छूट दी जाय कि वे, श्रमिक बच्चों के लिए कक्षाएँ अयोजित कर तथा विश्वविद्यालय में प्रसार-केन्द्र खोलकर अपनी आय बढ़ावें।

पहली पंचवर्षीय योजना मार्च १९५६ को समाप्त हो गयी। इसके द्वारा "समाज के समाजवादी ढंग के निर्माण का पथ प्रशस्त हुआ है।" इस योजना के अधीन शिक्षा की प्रगति भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में, क्या हुई—इसका विवरण हमें आगे यथास्थान देंगे। संक्षेप में, पहली पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियाँ इस प्रकार थीं—

योजना के प्रारम्भ होने के पहले ६–११ साल के वय-वर्ग के बच्चों में से ४२ प्रतिशत के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था थी। इनमें से बालकों की संख्या ५९ प्रतिशत और बालिकाओं की २५ प्रतिशत थी। * "पहली योजना के अन्त में ५०

† One of the chief causes of poor standard in the country's educational mstitutions is the low scale of salaries paid to teachers and the highly unsatisfactory conditions of their service.

‡ We consider that every State Government shoud, within the limits of its resources, try to put the remuneration of teachers on a fair basis of comparision with that of other services.

First Five Year Plan—People's Edition—P. 225.

* दूसरी पंचवर्षीय योजना—पृष्ठ १८०

प्रतिशत बच्चों के लिए अतिरिक्त सुविधाएँ प्राप्त होंगी, इनमें बालक ६८ प्रतिशत तथा बालिकाएं ३२ प्रतिशत रहेंगी। ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग में जिन बच्चों के लिए सुविधाएं प्राप्त हैं, उनकी संख्या बढ़कर १४ से १७ प्रतिशत हो गयी, किंतु स्कूल जाने वाले ऐसे बच्चों में लड़कियाँ २० प्रतिशत ही हैं। १४ से १७ वर्ष के वय-वर्ग में पहली योजना के काल में छात्रों की संख्या ६.४ प्रतिशत से ६ प्रतिशत पहुँच गई, पर स्कूल जाने वाले बच्चियों का अनुपात १/६ रहा। †

दूसरी पंचवर्षीय योजना

अप्रिल १९५६ ई० में दूसरी पंचवर्षीय योजना प्रचालित हुई। "दूसरे पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में और भी अधिक तेजी से विकास हो, और देश की उत्पादन क्षमता इस प्रकार से बढ़े कि बाद की योजना अवधि में विकास की गति द्रुततर हो।" ‡ अतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी शिक्षा तथा समाज सेवा को वह स्थान प्राप्त न हो सका, जो इनके सम्यक् विकास के लिए अपेक्षित था। किन्तु योजना में शिक्षा का महत्त्व पूर्णतः स्वीकार किया गया और यह कहा गया कि "आर्थिक विकास स्वाभाविक रूप से मानवीय साधनों की मांग करता है, और लोकतांत्रिक ढाँचे में ऐसे मूल्यों तथा मान्यताओं के निर्माण की आशा की जाती है जिनके लिए शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण साबित होती है।" अतः दूसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए ३२० करोड़ रु० प्रस्तावित हुये है। इनमें से २२५ करोड़ रुपये राज्यों की योजना में और ९५ करोड़ रुपये केन्द्रीय शिक्षा मत्रांलय की योजना में आवण्टित हैं। शिक्षा के क्षेत्र में खर्च का अस्थायी आवण्टन इस प्रकार हैं—*

प्रशासन	७.४ करोड़
प्राथमिक (जुनियर बेसिक) शिक्षा	६२.८ ,,
मिडिल स्कूल शिक्षा	२४-२ ,,
माध्यमिक शिक्षा	४२.५ ,,
बिश्वविद्यालय शिक्षा	६६.६ ,,
प्रौद्योगिक शिक्षा	४६.३ ,,
समाज शिक्षा	५.० ,,
विविध	४२.१ ,,
	३२०.०

† दूसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूप रेखा)—पृष्ठ—१८७

‡ ,, ,, पृष्ठ—२

* ,, ,, पृष्ठ—१८७

प्राथमिक शिक्षा—योजना में प्राथमिक शिक्षा के जो कार्यक्रम बनाये गये हैं उनसे यह आशा की जाती है कि "दूसरी योजना के अन्त तक ६ से १० वर्ष वाले वय-वर्ग के ६० प्रतिशत, तथा ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग के १६ प्रतिशत बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होंगी। प्राथमिक कक्षाओं में ६६ लाख और माध्यमिक कक्षाओं में ८ लाख छात्र बैठेंगे। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ६०,००० नए प्राथमिक स्कूल तथा ५,००० मिडिल स्कूलों के खोलने की आवश्यकता है। आशा की जाती है कि बेसिक स्कूलों की संख्या १२,००० हो जायगी और जिन मौजूदा स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिणत किया जायगा, उन्हें मिलाकर प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की संख्या १३ प्रतिशत हो जायगी"।* योजना की प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यों की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या द्रुतगति से बढ़ायी जाय। इस सम्बन्ध में योजना ने यह आशा प्रकट की कि योजना के अन्त तक प्रशिक्षित शिक्षकों का अनुपात ७५ प्रतिशत पहुँच जायगा।

योजना में यह स्वीकार किया गया कि अच्छी शिक्षा पद्धति वही होगी, जिसमें गुण और परिमाण दोनों का ध्यान रखा जाय। उच्चतर मानदंड प्राप्त करने के लिए व्यावहारिक प्रयोग तथा उन्नत तरीकों पर बराबर जोर देना बहुत ही महत्वपूर्ण है। किन्तु विकास की वर्त्तमान स्थिति में संख्या पर बल देना एक तात्कालिक आवश्यकता है। "देहातों के पुनर्निर्माण में स्कूलों का बहुत बड़ा भाग है और यह जरूरी है कि दूसरी योजना के अन्त तक कोई भी गाँव, जिसकी आबादी ५०० या उससे अधिक है, स्कूल के बिना न रह जाय।

प्राथमिक सतह पर शिक्षा की वृद्धि तीव्र करने के उद्देश्य से योजना में मितव्ययता की सिफारिश की गयी है। मितव्ययता हर दिशा में अपेक्षित है। विशेषतः निम्नलिखित रीतियों से सरकारी खर्च की रकम कम हो सकती है।

१—इमारतों पर सरकारी खर्च कम किया जाय।

२—बारी पद्धति (shift system) पर स्कूलों का संगठन किया जाय।

* दूसरी पंचवर्षीय योजना—प्रारम्भिक रूपरेखा, पृ० १८८

३— ६ से ११ वाले वय-वर्ग के लड़के और लड़कियों को, जहाँ तक सम्भव हो सके, एक साथ शिक्षा दी जाय।

सरकारी साधनों से अधिकतम लाभ उठाने के लिए योजना ने यह सिफ़ारिश की कि इन 'साधनों को स्थानीय सामुदायिक प्रयासों के द्वारा विस्तृत किया जाय। इन सामुदायिक संस्थाओं को शिक्षा के लिए एक उपकर (cess) वसूल करने का अधिकार दिया जाय।

योजना ने शिक्षकों के प्रचलित वेतन से असंतोष जाहिर करते हुए यह कहा कि "शिक्षा के प्रभावकारी पुनर्गठन के लिए शिक्षकों के वेतन में सन्तोषजनक वृद्धि की व्यवस्था जरूरी है।" अतः यह आवश्यक है कि "शिक्षकों के वेतन की सतह स्थानीय वेतनों के ढांचे के साथ इस प्रकार से संयुक्त होनी चाहिये कि उस वेतन पर इस पेशे में अच्छे लोग आएँ और उसमें टिके रहें"।* वेतन बढ़ाने के अलावा योजना ने यह भी परामर्श दिया कि विशेष परिस्थितियों में जैसे प्रशिक्षण सम्बन्धी योग्यता, अध्यापन सम्बन्धी अनुभव, बारी शिक्षा पद्धति या सामाजिक शिक्षा वर्गों के संचालन आदि की दृष्टि से शिक्षकों को अतिरिक्त वेतन देने की व्यवस्था होनी चाहिए। † इस सम्बन्ध में योजना ने यह भी सिफारिश की कि "किसी सरकार में प्राथमिक स्कूलों के जितने भी शिक्षक हों, वे राज्य राज्य की सेवा के उपयुक्त ग्रेड के अन्तर्गत कर दिये जायँ", ताकि एक ही राज्य में विभिन्न संस्थाओं के अधीन कार्य करनेवाले शिक्षकों के वेतन-क्रम में भिन्नता न रहे। वेतन-क्रम की एक रूपता से शिक्षकों के लिए पेन्शन, निर्वाह-निधि, अनुदान आदि के प्रबन्ध में अधिक सहूलियतें‡ उत्पन्न होंगी।

माध्यमिक शिक्षा—दूसरी पंचवर्षीय योजना में माध्यमिक शिक्षा के लिए ४३ करोड़ दिये गये हैं जब कि पहली पंचवर्षीय योजना में इसके लिए केवल २२ करोड़ ही दिये गये थे। अतः यह आशा की जाती है कि इस योजना की अवधि में "माध्यमिक शिक्षा का नवीकरण और एक कदम आगे बढ़ेगा।" योजना ने माध्यमिक शिक्षा आयोग (जिसका विवरण हम आगे देंगे) की सिफारिशों के आधार पर माध्यमिक

* दूसरी पंचवर्षीय योजना—प्रारम्भिक रूपरेखा। पृ० १९०

† दूसरी पंचवर्षीय योजना—प्रा० रूपरेखा। पृ० १९१, पृ १६१

‡ ,, ,, पृ० १६२

शिक्षा के पुनर्गठन का परामर्श दिया है। हाई स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूल (Higher Secondary Schools) तथा बहूद्देशीय स्कूलों (Multi-purpose Schools) में परिणत करने का कार्य तीव्र किया जायेगा। पहली योजना के अधीन लगभग २५० बहूद्देशीय स्कूल स्थापित हुए हैं। दूसरी योजना के अवधि में बहूद्देशीय स्कूलों की संख्या बढ़कर ८५५ हो जाएगी। इसी प्रकार हाई स्कूलों तथा उच्च माध्यमिक स्कूलों की संख्या (जिनमें मिडिल स्कूल शामिल हैं) १०,८०० से बढ़कर, दूसरी योजना के अन्त तक ११,३००० हो जाएगी।"*

माध्यमिक शिक्षा में विविधता लाने पर दूसरी पंचवर्षीय योजना ने बहुत जोर दिया है। "यह एक सर्वमान्य बात है कि माध्यमिक शिक्षा के सोपान में पाठ्यक्रम में बढ़ती हुई विविधता आनी चाहिए जिससे कि छात्र अपनी रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार प्रशिक्षित हो सकें।"† योजना ने ऐसे जुनियर प्रौद्योगिक टेकनिकल स्कूलों की स्थापना की सिफारिश की है, जिनमें मिडिल या सिनियर बेसिक शिक्षा समाप्त किये हुए छात्र ३ साल तक प्रौद्योगिक तथा पेशे सम्बन्धी शिक्षा पा सकेंगे। शुरू में ऐसे ५० जुनियर प्रौद्योगिक स्कूलों को खोलने का परामर्श योजना ने दिया है।

शिक्षकों के प्रशिक्षण के महत्व को स्पष्ट करते हुए योजना ने यह विचार प्रकट किया कि "बहूद्देशीय, जुनियर औद्योगिक तथा अन्य स्कूलों के पेशे सम्बन्धी पाठ्य-क्रम के लिए माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बहुत ध्यान देना पड़ेगा।" प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में दस्तकारी की शिक्षा के कार्य में प्रगति तभी हो सकती है, जब कि "उपयुक्त शिक्षक उपयुक्त मात्रा में पाए जायँ। योजना ने यह आशा प्रकट की कि इसकी अवधि में प्रशिक्षित शिक्षकों का अनुपात ६० से बढ़कर ६५ हो जायगा।‡ राज्यों की योजनाओं में ५०० डिग्री वाले तथा १००० डिप्लोमा वाले शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का विधान किया गया है।

* दूसरी पंचवर्षीय जोजना— प्रा० रूपरेखा—पृ० १९१

† „ „ „ १९२

‡ „ „ „ १९२

विश्वविद्यालय की शिक्षा—पहली पंचवर्षीय योजना के अधीन विश्वविद्यालय तथा कॉलेजों के छात्रों की संख्या में बहुत बड़ी वृद्धि हुई। योजना के प्रचालित होने के पहले इनकी संख्या ४,२०,००० थी, और योजना के अन्त में उनकी संख्या लगभग ७,२०,००० हो गयी। कला, वाणिज्य तथा विज्ञान में डिग्री प्राप्त करनेवाले छात्रों की संख्या ४१,००० से बढ़कर ५८,००० हो गयी।* योजना की दृष्टि में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों का यह एकांगी संख्यात्मक विस्तार शुभ न था। कॉलेजों में भीड़ की समस्या, जिसकी ओर प्रथम योजना ने भी ध्यान आकर्षित किया था, घटने के बदले बढ़ गयी थी। अतः यह आवश्यक है कि कॉलेजों में भीड़ के घटाने की ओर पहले से अधिक ध्यान दिया जाय। उच्च शिक्षा की दूसरी समस्या, जो कि पहली समस्या से बहुत-कुछ सम्बन्धित है, इसके मानदण्ड का पतन है। "विश्वविद्यालय के अन्तर्मुख कॉलेज जिनमें से कइयों में मानदण्ड असन्तोषजनक है एक और महत्वपूर्ण समस्या पेश करते हैं"।† इन समस्याओं के हल करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए योजना ने उन विभिन्न उपायों की चर्चा की, जो कि सरकार के द्वारा इस कार्य में व्यवहृत हो रहे थे। योजना ने आशा प्रकट की कि इनके सम्यक् प्रयोग से "विश्वविद्यालय की शिक्षा को वृहत्तर उद्देश्य, अर्थ तथा दिशा प्राप्त होगी और इस प्रकार राष्ट्रीय विकास में अधिक सहायता मिल सकेगी"।‡

समाज शिक्षा—सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी के १६·६ प्रतिशत लोग साक्षर हैं। यदि कुल आबादी से १० वर्ष के कम उम्र के बच्चों को निकाल दिया जाय तो साक्षरता का अनुपात लगभग २० प्रतिशत होगा। यह सीमित साक्षरता भी पुरुषों तथा स्त्रियों एवं शहरी तथा देहाती क्षेत्रों में बेमेल ढंग से वितरित है। पुरुषों की साक्षरता २४·९ प्रतिशत है, जब कि स्त्रियों की साक्षरता केवल ७·९ है। शहरी क्षेत्रों में साक्षरता का अनुपात ३४·६ है तो देहाती क्षेत्रों में १२·१। इस तरह साक्षरता की समस्या कई तरह की है। अतः योजना ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि "समाज शिक्षा को

* दूसरी पंचवर्षीय योजना—प्रा० रूपरेखा पृष्ठ—१९२

† " " "

‡ " " "

बहुत अधिक महत्व देने की जरूरत हैं।* समाज शिक्षा के प्रसार के साधनों की चर्चा करते हुए योजना ने कहा कि अभी तक यह शिक्षा "मुख्यतः राष्ट्रीय विस्तार सेवा तथा सामुदायिक विकास सेवा और गैरसरकारी जरियों" से की जा रही है। किंतु योजना ने यह आशा प्रकट की कि शिक्षा-पद्धति में प्रस्तावित सुधार होते ही देश के सामान्य विद्यालय समाज शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य करने लगेंगे। "शिक्षा-पद्धति में ज्योंही आवश्यक प्रस्तावित सुधार कर दिये जाते है, त्योंही यह संभव होगा कि प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में अधिकाधिक संख्या में शिक्षा जारी रखने की निरन्तरता की श्रेणियाँ तथा समाज शिक्षा की श्रेणियाँ बढ़ायी जाएँ।" योजना ने इस सम्बन्ध में समाज शिक्षा के संगठनकर्ताओं के प्रशिक्षण, जनता कॉलेजों की स्थापना, ग्राम तथा जिला पुस्तकालयों के आयोजन, दृश्य-श्रव्य शिक्षा की व्यवस्था तथा बच्चों एवं वयस्कों के लिए उपयुक्त साहित्य के सृजन की ओर अधिक ध्यान दिया। इसने एक "मौलिक शिक्षा केन्द्र" शीघ्र खोलने की सिफारिश भी की, जहाँ समाज शिक्षा के संगठनकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जायगा और "समाज शिक्षा तथा बुनियादी शिक्षा से सम्बद्ध समस्याओं पर शोध और अध्ययन जारी रखा जायगा।"

प्रौद्योगिक शिक्षा—प्रौद्योगिक शिक्षा के विकास का विशिष्ट महत्व प्रतिपादित करते हुए योजना ने यह विचार प्रकट किया कि "विकास के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से बढ़ती हुई संख्या में प्रौद्योगिक कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। पहली योजना में कुछ उन्नति होने पर भी हमें जितने इंजीनियरों तथा प्रौद्योगिक कर्मचारियों की आवश्यकता है, उतने लोगों को भरती करना मौजूदा संस्थाओं के सामर्थ्य के बाहर है। दूसरी योजना में औद्योगिक शिक्षा के सम्बन्ध में यह सबसे बड़ी समस्या है।"

प्रौद्योगिक शिक्षा के महत्व को दृष्टि में रखते हुए, योजना ने इसकी सुविधाओं को बढ़ाने के लिए ५० करोड़ रुपये की व्यवस्था की है। औद्योगिक शिक्षा के प्रसार के कार्यक्रम दो तरह के होंगे। एक

* दूसरी पंचवर्षीय योजना-प्रारम्भिक रूपरेखा, पृष्ठ—१९३

के द्वारा पहली योजना में जो कार्य शुरू किये गये, उन्हें विकसित, समुन्नत तथा विस्तृत किया जायगा। दूसरे कार्यक्रम के अनुसार, इस अवधि में औद्योगिक शिक्षा के नये कार्य शुरू किये जायँगे तथा तथा नयी संस्थाएँ स्थापित की जायँगी। इन दोनों तरह के कार्यक्रमों के अनुसार जो जो कार्य किये जायेंगे उनका संक्षिप्त परिचय योजना के शब्दों में, ही नीचे दिया जाता है।

"अखिल भारतीय रूप से कार्य करने वाली कुछ मौजूदा संस्थाओं को और भी विकसित किया जाएगा, विशेषकर दिल्ली पौलिटेकनिक, खड़गपुर की प्रौद्योगिक विज्ञान संस्था का उल्लेख किया जा सकता है। जब इनका पूरा विकास होगा, तब इनमें अध्ययन और शोध के लिए नए विषयों की श्रेणियाँ भी खोली जाएँगी। खड्ग-पुर संस्था १,००० स्नातक और ८०० स्नातकोत्तर छात्रों को प्रशिक्षित करेगी। यह प्रस्ताव है कि खड़गपुर संस्था के अतिरिक्त तीन और भी उच्च प्रौद्योगिक संस्थाएँ, एक उत्तर में, दूसरी पश्चिम में और तीसरी दक्षिण में स्थापित की जाएँ। इन संस्थाओं में इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिक विज्ञान के सारे विषयों में स्नातकोत्तर सुविधाएँ दी जाएँगी। पश्चिम वाली संस्था १९५६-५७ में, दक्षिण वाली संस्था १९५८-५९ में और उत्तर वाली संस्था १९६०-६१ में स्थापित करने का प्रस्ताव है। इन संस्थाओं में से प्रत्येक में ८०० प्राक्स्नातक तथा ६०० स्नातकोतर छात्रों की शिक्षा की व्यवस्था होगी। धनबाद की खनिज तथा व्यावहारिक भूगर्भ विज्ञान सम्बन्धी संस्था का प्रसार होगा। अन्य कार्यक्रम जो दूसरी योजना में पूरे किए जाएँगे वे हैं: ४ विभिन्न केन्द्रों में प्रौद्योगिक शिक्षकों के लिए प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम का संगठन किया जाना, लगभग ५०० शिक्षकों को डिग्री संस्थाओं में तथा १,००० को अन्य संस्थाओं में प्रशिक्षित किया जायगा। एक कार्यक्रम यह भी है कि ४,००० डिग्री छात्रों, ५,००० डिप्लोमा छात्रों १,८०० अप्रेन्टिसों, १६,८०० जूनियर प्रौद्योगिक छात्रों और ५०० शिक्षकों के लिए होस्टल बनाए जाएँ। योजना काल में एक प्रशासन कर्मचारी कॉलेज तथा प्रबन्धक संस्था की स्थापना करने का प्रस्ताव है। इसी प्रकार मुद्रण की एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना होगी। अन्त में औद्योगिक धन्धों के फोरमैनों के प्रशिक्षण के लिए इस योजना में व्यवस्था की गई है।

"इस प्रकार दूसरी योजना के अन्त तक ५१ ऐसी संस्थाएँ होंगी जो स्नातक सतह पर और १०४ संस्थाएँ डिप्लोमा की सतह पर शिक्षा देंगी। इंजीनियरिंग में स्नातकों की संख्या १९५५ में जहाँ ३,६०० और इंजीनियरिंग डिप्लोमा-धारियों की संख्या जहाँ ४,९०० थी वहाँ १९६० में क्रमशः ६,००० और ८,००० हो जाएगी।

"रहा यह कि प्रशिक्षण की जो सुविधाएँ प्रस्तावित हैं उनसे काम बनेगा या नहीं, इस पर इंजीनियरिंग कर्मचारी वर्ग समिति ने विचार किया है और इनकी अन्तरिम सिफारिशें प्राप्त हो चुकी हैं। समिति का निष्कर्ष यह है कि दूसरी योजना में इंजीनियरिंग शिक्षा की जो सुविधाएँ प्रस्तावित हैं, उनके अलावा १,६९० इंजीनियरिंग स्नातकों को असैनिक, यांत्रिक वैद्युतिक, तार-संचार, धातु शास्त्रीय, खान सम्बन्धी इंजीनियरिंग की तथा ५,७५० डिप्लोमा धारियों को असैनिक, यांत्रिक तथा विद्युत्-इंजीनियरिंग की अतिरिक्त सुविधाएँ देना आवश्यक होगा। जब तक इसका उपाय नहीं किया जा सकता, तब तक दूसरे और तीसरे योजना काल में कमी बढ़ती जाएगी। समिति ने यह सिफारिश की है कि स्नातक प्रशिक्षण की मौजूदा संस्थाओं तथा डिप्लोमा देने वाली संस्थाओं में क्रमशः २० और २५ प्रतिशत क्षमता बढ़ाई जाय। इसने यह भी सुझाव रखा है कि १५ इंजीनियरिंग कॉलेज तथा ६२ इंजीनियरिंग स्कूल देश के विभिन्न भागों में और स्थापित किए जाएँ। इन सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए कुल १५ करोड़ रुपये की आवश्यकता है, इस समय इस पर विचार हो रहा है।

"हुनर वाले मजदूरों, फोरमैनों तथा अन्य परिदर्शक कर्मचारियों के लिए जो मांग बढ़ती जाएगी उसका भी दूसरी योजना में सामना करना है। श्रम मंत्रालय का एक कार्यक्रम है, जिसके अनुसार प्रतिवर्ष शिल्पियों की संख्या २०,००० बढ़ाई जाय और दो संस्थाएँ शिल्प शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए खोली जा रही हैं। अप्रेन्टिसों के प्रशिक्षण की सुविधाओं को बड़े पैमाने पर विकसित करना पड़ेगा, और इस क्षेत्र में निजी धन्धों पर जो अपेक्षाकृत संगठित उद्यम हैं, उनके व्यवस्थापन पर इसका भार पड़ेगा। लोहा तथा इस्पात मंत्रालय ने एक प्रशिक्षण विभाग खोला है जिसका काम है इस्पात के कारखानों के कर्मचारियों की जरूरत सम्बन्धी देखरेख और

आवश्यक व्यवस्था करना। ऐसे जो बहुत बड़े कार्यक्रम करने हैं, उसे देखते हुए रेल मंत्रालय ने कई नए प्रौद्योगिक स्कूलों की स्थापना का प्रस्ताव रखा है"।*

छात्रवृत्तियाँ—पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सुयोग्य छात्रों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ देने के लिए छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम लागू किये गये थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना ने पुरानी सभी छात्रवृत्तियों को जारी रखने के अतिरिक्त नये कार्यक्रम जारी करने की सिफारिश की। इसके लिये योजना ने १२ करोड़ रुपये स्वीकृत किये। यह राशि उस राशिके अतिरिक्त है जो कि पहली योजना के सामान्य कार्यक्रमों को जारी रखने के लिए जरूरी है। छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम में कई तरह की छात्रवृत्तियों के आयोजन शामिल हैं, उदाहरणार्थ, मैट्रिक्यूलेशन के बाद की छात्रवृत्तियाँ, शोध की छात्रवृत्तियाँ, समुद्र पार की छात्रवृत्तियाँ, भारत में एशियाई, अफ्रीकी आदि विदेशी छात्रों के लिए सांस्कृतिक छात्रवृत्तियाँ। अनुसूचित आदिम जातियों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए विशिष्ट छात्रवृत्तियाँ भी दी जाने की व्यवस्था है। राज्यों के द्वारा कई प्रकार की छात्रवृत्तियों के वितरण की सिफारिश भी योजना में की गयी है। योजना ने यह अनुमान किया है कि इसकी अवधि में "२५० छात्रों को बाहर जाकर ऊँची शिक्षा पाने, अनुसूचित आदिम जातियों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के ७४,५०० छात्रों, ४००० मैट्रिकोत्तर छात्रों, ३४० फेलोगणों और ३७२५ शोध कार्यकर्ताओं और २०६० विदेशी छात्रों को भारत में अध्ययन करने की सुविधा प्राप्त होगी।" †

बिहार में द्वितीय पंचवर्षीय योजना ‡

(प्रस्तावित कार्यक्रम)

बिहार में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अधीन २०४.२५ करोड़ रुपये खर्च किये जाने वाले हैं, जिनमें २५ करोड़ रुपये शिक्षा पर

* दूसरी पंचवर्षीय योजना—प्रारम्भिक रूपरेखा—पृष्ठ १९५-१९६।

† दूसरी पंचवर्षीय योजना—प्रा० रूपरेखा पृ० १९३

‡ A Guide to the Second Five Year Plan of Education, Government of Fihar.

व्यय होंगे। इस तरह योजना का १२·२ प्रतिशत खर्च शिक्षा में किया जायगा, जबकि पहली योजना के अधीन इस खर्च का अनुपात केवल ८·६ प्रतिशत था। २५ करोड़ रुपये में २२·८० करोड़ सामान्य शिक्षा पर तथा शेष २·२० करोड़ रुपये टेकनिकल शिक्षा पर व्यय होंगे।

२२·८० करोड़ रुपये का विभाजन इस प्रकार किया गया है।

प्राथमिक शिक्षा—११·३८ करोड़
माध्यमिक शिक्षा—५·१० ,,
विश्वविद्यालय शिक्षा तथा अनुसंधान कार्य—२ करोड़
शारीरिक शिक्षा— ·६१ ,,
विविध शिक्षा तथा प्रशासन— ३·२१ ,,

बिहार में ७१४६१ गाँव हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में ६००० शिक्षकों की नियुक्ति होगी। अतः ५०० या अधिक आबादी वाले गाँवों के अधिकांश में प्राथमिक स्कूल नहीं खोले जा सकते, यद्यपि राष्ट्रीय योजना में यह लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

अनुमान के अनुसार द्वितीय योजना के अन्त तक बिहार में ६-११ वर्ष वर्ग के केवल ३२ प्रतिशत छात्र स्कूलों में दाखिल हो सकेंगे, जबकि राष्ट्रीय अनुपात ६०. प्रतिशत होगा। बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में बिहार की स्थिति और भी नीचे रहेगी। अभी ६-११ वर्ष की अवधि के केवल ८ प्रतिशत बालिकाएँ स्कूलों में हैं।

प्रशासन—प्रशासन के क्षेत्र में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अधीन ऊपर से नीचे तक पुनर्गठन तथा विस्तार किया जायगा। शिक्षा विभाग के मुख्य अधिकारी लोक शिक्षा निर्देशक पूर्ववत् रहेंगे। उनकी सहायता के लिए एक अतिरिक्त लोक शिक्षा निर्देशक (Additional Director of Public Instruction), एक समाज शिक्षा निर्देशक (Director of Social Education), ६ उप-शिक्षा-निर्देशक, (सामान्य, कन्या, माध्यमिक, बुनियादी, प्राथमिक तथा दस्तकारी के लिए), ५ सहायक शिक्षा निर्देशक—३ प्राथमिक के लिए, १ बुनियादी और १ परियोजना के लिए होंगे। उप-शिक्षा निर्देशक तथा सहायक शिक्षा निर्देशक की सेवाएँ क्रमशः बिहार शिक्षा सेवा की प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की होंगी। इनके अतिरिक्त बिहार अवर

प्रशासन सेवा के ३ अधिकारी सामान्य शासन के लिए रहेंगे, बिहार द्वितीय शिक्षा सेवा के एक इंजिनियर रहेंगे। दस्तकारी के सहायक शिक्षा निर्देशक तथा उप-शिक्षा अधीक्षक के वर्त्तमान पद समाप्त कर दिये जायँ। कन्या शिक्षा के लिए एक निरीक्षिका (Inspectress) की नियुक्ति भी होगी।

अब तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (Board of Secondary Education) तथा बुनियादी और समाज शिक्षा बार्ड (Basic & Social Education) के सचिव इन शिक्षाओं के उप-निर्देशक का कार्य भी करते थे। किंतु द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अधीन ये मंत्री बोर्डों से ही संबद्ध पूर्णकालिक पदाधिकारी हो जायेंगे।

प्रमंडलीय स्तर पर इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स कायम रहेंगे, किंतु उनके पद का नाम प्रादेशिक उप-शिक्षा-निर्देशक (Regional Deputy Director of Education) हो जायगा।

जिला स्तर, पर एक एक जिला शिक्षा अधिकारी (District Educational Officer) रहेंगे, जो जिले की शिक्षा का प्रधान उत्तरदायित्व वहन करेंगे। इनके पद बिहार शिक्षा सेवा की प्रथम श्रेणी के होंगे। इनके अतिरिक्त हर जिले में एकएक जिला शिक्षा निरीक्षिका, एक-एक जिला शिक्षा अधीक्षक, एक-एक जिला समाज शिक्षा संगठनकर्ता और एक-एक शारीरिक शिक्षा उप-अधीक्षक रहेंगे। जिला शिक्षा अधीक्षक तथा जिला निरीक्षिका के पद बिहार शिक्षा सेवा की द्वितीय श्रेणी के होंगे। समाज शिक्षा संगठन कर्ता को भी यह श्रेणी (अवर या श्रेष्ठ) प्राप्त रहेगी। शारीरिक शिक्षा निर्देशक अवर सेवा के उच्च विभाग (यू० डी० एस० इ० एस०) में रहेंगे।

हर सबडिविजन में एक एक सब डिविजनल शिक्षा अधिकारी (Subdivisional Education officer) रहेंगे, जो कि बिहार शिक्षा सेवा की द्वितीय श्रेणी के होंगे। सबडिविजन के माध्यमिक स्कूलों के निरीक्षण का मुख्य उत्तरदायित्व उन्हीं पर रहेगा। इनकी सहायता के लिए हर सब-डिविजन में एक या अधिक उप शिक्षा-निरीक्षक (Deputy Inspector of Schools) रहेंगे। इनकी संख्या सब-डिविजन के अंचलों की संख्या पर आश्रित रहेगी। हर उप शिक्षा निरीक्षक के अधीन सामान्यतः ४० मिडिल स्कूल रहेंगे। कन्या शिक्षा के लिए, सदर सब-डिविजनों को छोड़कर,

हर सब-डिविजन में एक-एक उप शिक्षा निरीक्षिका (Deputy Inspectress of Schools) रहेंगी। इनके अतिरिक्त हर सब-डिविजन में बुनियादी तथा समाज शिक्षा के लिए एक-एक उप-अधीक्षक रहेंगे।

हर अंचल में एक सब-इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स रहेंगे। इनके अतिरिक्त अंचल में दो समाज शिक्षा संगठनकर्ता रहेंगे, जिनके पद एन० इ० एस० की योजना में स्वीकृत हैं।

प्राथमिक शिक्षा—प्रथम पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप यह आशा की जाती है कि प्राथमिक स्कूलों की संख्या ३०,०००, शिक्षकों की संख्या ६४,००० तथा छात्रों की संख्या १७ लाख हो जायगी। ६-११ वर्ष के वय-वर्ग के ३० प्रतिशत छात्र स्कूलों में दाखिल हो जायँगे। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अधीन ८७५० शिक्षक कार्यरत हुए थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अधीन ६००० नये शिक्षक नियुक्त होंगे। इन शिक्षकों में अधिकांश शिक्षकों की सेवाएँ प्रथम पंचवर्षीय योजना के अधीन खोले गये एक-शिक्षक प्राथमिक स्कूलों के सुधार के लिए व्यवहृत की जायँगी। यह आशा की जाती है कि द्वितीययोजना के अन्त में २,१०,००० छात्र स्कूलों में दाखिल हो जायँगे और शिक्षक छात्र का अनुपात १·३५ हो जायगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में मिडिल स्कूल खोलने की व्यवस्था न की गयी थी। किन्तु द्वितीय योजना के अन्तर्गत २००० शिक्षक मिडिल स्कूलों में दिये जायँगे। इससे ११-१४ वर्ष-वर्ग के ७०,००० छात्र स्कूलों में चले आयेंगे। यहाँ शिक्षक छात्र का अनुपात १ : ३० रहेगा। प्रथम योजना के अधीन २२५ मिडिल स्कूलों में विशेषीकृत दस्तकारी की शिक्षा जारी की गयी थी। द्वितीय योजना के अधीन २५० और स्कूलों को यह सुविधा दी जायगी। ऐसे हर स्कूल को ३,००० रु० अनावर्त्तक तथा ५०० रु० प्रति वर्ष आवर्त्तक अनुदान दिये जायँगे। माध्यमिक शिक्षा की नयी योजना के अनुसार इन स्कूलों से वर्त्तमान आठवाँ वर्ग क्रमशः हटा लिया जायगा और मिडिल स्कूलों में संलग्न कर दिया जायगा।

सरकारी सीनियर बुनियादी स्कूलों की संख्या ५३५ है। इनके प्रधानाध्यापक अभी अपेक्षित योग्यता नहीं रखते। द्वितीय योजना में

४०० बुनियादी शिक्षा में प्रशिक्षण पाये हुए स्नातकों की नियुक्ति इन स्कूलों में होगी।

प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलों की वेतन-वृद्धि की व्यवस्था भी द्वितीय योजना में की गयी है। इस योजना के अन्तर्गत १०,००० शिक्षकों को अल्पकालिक प्रशिक्षण दिया जायगा।

लगभग १५,००० प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलों के मकानों की दशा शोचनीय है। द्वितीय योजना की अवधि में १३५० स्कूलों को अपने मकानों के सुधार के लिए आर्थिक सहायता दी जायगी। यह भी प्रस्ताव है कि शिक्षकों के रहने के लिए ५०० गृह बनाये जायँगे, जिनमें २५००) प्रति गृह खर्च पड़ेगा। इनमें से अधिकांश गृह स्त्री-शिक्षिकाओं को दिये जायँगे।

तुर्की—वैशाली क्षेत्र में ५ सामुदायिक केन्द्रों के विकास तथा लालगंज केन्द्रीय पुस्तकालय के विकास के लिए ५०,००० रु० खर्च होंगे।

कन्या स्कूलों में २००० स्कूल धात्रियाँ (mothers) नियुक्त की जायँगी, जो छात्राओं की देखभाल करेंगी। इन्हें २० रु० प्रति माह पारिश्रमिक दिया जायगा।

माध्यमिक शिक्षा—प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत २५ गैर-सरकारी हाई स्कूल बहुद्देश्यीय स्कूल में परिवर्तित किये गये। द्वितीय योजना के अधीन ५० सरकारी हाई स्कूल बहुद्देश्यीय स्कूल में विकसित किये जायँगे। ये स्कूल प्रति वर्ष १० की दर से परिवर्तित होंगे। हर बहुद्देश्यीय स्कूल में तीन तरह की शिक्षा दी जायगी—मानवीय विषयों की, विज्ञान की, व्यावसायिक विषयों की। बहुद्देश्यीय सरकारी स्कूलों में ५ नये शिक्षक नियुक्त किये जायँगे। इनमें दो का वेतनक्रम २०० से ४५०, तथा ३ का १००-३५० रहेगा। इनके अतिरिक्त दो शिक्षकों के पद उन्नत किये जायँगे। इन स्कूलों के प्रधानाध्यापकों को ५० रु० मासिक भत्ता, वेतन के अतिरिक्त, मिलेगा। गैर सरकारी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों का वेतनक्रम २००-१०-४५० होगा। ५ नये शिक्षकों में ३ के वेतनक्रम १५०-१०-२५० तथा दो के १२५-५-२०० होंगे। दो पुराने पद भी उन्नत किये जायँगे। गैर सरकारी बहुद्देश्यीय स्कूलों के ५० प्रतिशत खर्च सरकार वहन करेगी, ५० प्रतिशत स्वयं स्कूल वहन करेगा।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत ११० गैर सरकारी हाई स्कूल उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित किये जायँगे। परिवर्तन की गति प्रति वर्ष २२ स्कूल होगी, इनमें ४ विज्ञान के तथा १८ अन्य विषयों से सम्बन्धित रहेंगे। विज्ञान की शिक्षा उन उच्चतर स्कूलों में जारी की जायगी जिनमें प्रथम योजना के अधीन पचास हजार रुपये का विकास अनुदान मिला था। अन्य विषय उन स्कूलों में जारी किये जायँगे, जिन्हें केवल १५ हजार रुपये, इस अनुदान के रूप में, मिले थे। हर उच्चतर माध्यमिक स्कूल को १० हजार रुपये का अनावर्त्तक अनुदान और मिलेगा। हर ऐसे स्कूल में दो एम० ए० या एम० एस-सी० रहने चाहिये। हर स्कूल को आवर्त्तक अनुदान-विज्ञान के लिये दो हजार तथा अन्य विषयों के लिये ७५० रु०, प्रति वर्ष मिलेंगे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अधीन १४ हाई स्कूलों को विज्ञान की शिक्षा की उन्नति के लिये ५०,००० रु० तथा १०२ हाई स्कूलों को आधार-विषयों की शिक्षा की उन्नति के लिये १५,००० रु० मिले थे। द्वितीय योजना के अधीन २०० हाई स्कूलों को १५,००० रु० प्रति स्कूल के हिसाब से आधार विषयों की उन्नति के लिये दिये जायँगे, जिससे ये स्कूल आगे चलकर आसानी से उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में बदले जा सकें।

पहली योजना में २८ स्कूलों को ५००० रु० तथा १०३ स्कूलों को २५०० रुपये के हिसाब से, पुस्तकालय के विकास के लिये अनुदान दिये गये थे, द्वितीय योजना के अनुसार ५० बहूद्देश्यीय स्कूलों को २५०० रुपये तथा २५० अन्य स्कूलों को पुस्तकालय के विकास के लिये दिये जायँगे।

पटना नगर में माध्यमिक शिक्षा की बढ़ती माँग की पूर्ति के लिये दो कन्या हाई स्कूल तथा एक बालक हाई स्कूल खोले जायँगे। इन स्कूलों को सरकार की ओर से ४०,००० रुपये प्रथम वर्ष में ही दिये जायँगे इनके अतिरिक्त जमीन, मकान तथा सामान के लिये भी अनावर्त्तक अनुदान दिया जायगा।

गैरसरकारी हाई स्कूलों के मकान की उन्नति तथा नये मकान बनाने के लिये तीन लाख रुपये प्रति वर्ष दिये जायँगे और एक लाख रुपये सामान, शिक्षण सामग्री आदि के लिये दिये जायँगे।

पिछड़े क्षेत्रों में द्वितीय योजना के अधीन ५५ हाई स्कूल खोले जायँगे। ये सरकार के द्वारा सहायता प्राप्त (subsidised) रहेंगे।

गैरसरकारी हाई स्कूलों के वेतनक्रम में समानता लाने के उद्देश्य से, द्वितीय योजना की अवधि में, सरकार की ओर से प्रति वर्ष २५,००,००० रुपये खर्च होंगे।

सरकारी कन्या हाई स्कूलों में आवास की सुविधा न होने का कारण कई तरह की कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। अतः द्वितीय योजना में कन्या हाई स्कूलों में १५ छात्रावास बनाये जायँगे। हर छात्रावास पर ४०,००० रु० खर्च होंगे। इनके अतिरिक्त प्रधान अध्यापिका एवं सहायक अध्यापिकाओं के आवास के लिये भी मकान बनाये जायँगे।

अभी राज्य के हाई स्कूलों में १०,५०० शिक्षक कार्य करते हैं, जिनमें ६२% प्रशिक्षित नहीं हैं। प्रशिक्षण की सुविधाओं को बढ़ाने के उद्देश्य से ४ ट्रेनिंग कालेजों में प्रतिवर्ष ५०-६० अधिक प्रशिक्षणार्थी भर्ती किये जायेंगे। इनके लिए एक अतिरिक्त लेक्चरर की नियुक्ति होगी। हर कॉलेज में ५०,००० रुपये छात्रावास के लिये दिये जायेंगे। राँची ट्रेनिंग कॉलेज के भवन के लिए ७ लाख रुपये दिये जायेंगे। इनके अतिरिक्त अल्पकालिक प्रशिक्षण तथा गोष्ठियों की व्यवस्था की जायेगी। दस्तकारी के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये हजारीबाग रिफॉरमेटरी स्कूल में एक विभाग खोला जायगा, जिसमें प्रतिवर्ष २०० शिक्षक प्रशिक्षित होंगे।

हर वर्ष ५० हाई स्कूलों से एक एक शिक्षक व्यावसायिक शिक्षा निर्देशन कला के प्रशिक्षण के लिये "ब्यूरो ऑफ वोकेशनल गाइडेन्स" में भेजे जायेंगे। स्त्री शिक्षिकाओं को संगीत की शिक्षा में प्रशिक्षण देने के लिये हर प्रमंडल में एक संगीत केन्द्र खोला जायेगा, जो कि स्थानीय कन्या स्कूल से संलग्न रहेगा।

उच्च शिक्षा—पटना विश्वविद्यालय के अंतर्गत आई० एस० सी० तथा बी० एस० सी० की शिक्षा के विस्तार के लिए ८·७ लाख रुपये दिये गये हैं। ये रुपये मगध महिला कॉलेज, पटना वीमेन्स कॉलेज तथा बी०एन० कॉलेज में जगहें बढ़ाने के लिये खर्च होंगे। पुस्तकालय

तथा कॉमन रूम के विकास के लिए पटना विश्वविद्यालय तथा इसके अंगीभूत कॉलेजों को ७·५० लाख रुपये दिये गये हैं। छात्रावास तथा शिक्षकों के क्वार्टर के लिये १० लाख रुपये दिये गये हैं। एम० एस-सी० कक्षाओं में जगहें बढ़ाने की व्यवस्था की गई है। पटना विश्वविद्यालय को एक लाख रुपये आवर्त्तक अनुदान विकास योजनाओं को चलाने के लिये दिये गये हैं। ६ लाख रुपये का आवर्त्तक अनुदान भी विश्वविद्यालय को अन्य कार्यों के लिये जैसे, दरभंगा भवन के खरीदने के लिए दिया गया है।

बिहार विश्वविद्यालय को विज्ञान की शिक्षा के प्रसार के लिये ६·१० लाख आवर्त्तक तथा १३·६० लाख अनावर्त्तक अनुदान दिये गये हैं। १३·५६ लाख का आवर्त्तक अनुदान तथा ३·६४५ लाख अनावर्त्तक अनुदान मुजफ्फरपुर, भागलपुर तथा राँची में स्नातकोत्तर शिक्षा के विकास के लिए दिये गये हैं, जिससे इन स्थानों में अंतत: विश्वविद्यालय विकसित हो सकें। ४ लाख रुपये का आवर्त्तक तथा ६ लाख रुपये का अनावर्त्तक अनुदान महिला कॉलेजों के विकास के लिये दिये गये हैं। विश्वविद्यालय के कॉलेजों में छात्रावासों तथा शिक्षकों के आवास के लिए १५ लाख रुपये का कर्ज दिया गया है। पिछड़े क्षेत्र के कॉलेजों के विकास के लिए १५ लाख रुपये का अनावर्त्तक अनुदान भी विश्वविद्यालय को दिया गया है। ३·२४ लाख रुपयों की व्यवस्था अन्य कार्यों के लिये की गई है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्य सरकार ने १९५५–५६ में, तुर्की में, एक ग्रामीण विश्वविद्यालय (Rural Institute) की स्थापना की। द्वितीय योजना के अधीन इस संस्था को २·२५ लाख रुपये आवर्त्तक तथा १० लाख अनावर्त्तक रूप में दिये जायेंगे।

लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा की सुविधाओं को विस्तृत करने के उद्देश्य से १ लाख रुपये निर्दिष्ट कर दिये गये हैं। ये रुपये गैर-सरकारी शिक्षण-कक्षाओं (Tutorial classes) के प्रबन्धकों को दिये जायेंगे।

राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) के विकास के लिये सरकार ने द्वितीय योजना में ५ लाख रुपये मकान बनाने के लिये तथा ५००० रुपये

सामान खरीदने के लिए स्वीकृत किये हैं। इसके मंत्री का पद बिहार शिक्षा सेवा की श्रेणी में उन्नत कर दिया जायेगा। इसके कार्यकर्ताओं के वेतनों में भी वृद्धि होगी।

मिथिला इन्स्टीच्यूट, नालंदा महाविहार, के० पी० जायसवाल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, प्राकृत तथा जैन रिसर्च इन्स्टीच्यूट के विकास के कार्यक्रम विचाराधीन हैं। अरबी तथा फारसी इन्स्टीच्यूट, जिनकी स्थापना, १९५५-५६ में ही पटने में हो चुकी थी, ५,००० रुपये प्रतिवर्ष, द्वितीय योजना के अधीन, दिये जायेंगे।

समाजशिक्षा—हर जिले में समाज शिक्षा के लिये एक-एक समाज शिक्षा संगठनकर्ता नियुक्त किये जायँगे। योजना के अधीन चार समाज सेवा कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण केन्द्रों को जनता कालेज में विकसित किया जायगा, जिनमें तीन पुरुषों तथा एक स्त्रियों के लिए होंगे। तुर्की जनता कालेज में ग्राम-सुधार के कार्यकर्ताओं के अल्पकालिक प्रशिक्षण के लिये दो गतिशील विभाग खोले जायँगे। सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत जो योजनाएँ चालू की गयी थीं वे चालू रक्खी जायंगी। योजना की अवधि में १७८ समुदायिक केन्द्र तथा १२०० सामाजिक शिक्षा केन्द्र खोले जायँगे।

शारीरिक शिक्षा—अभी शारीरिक शिक्षा के चार उपअधीक्षक हैं, जो कि चार प्रमंडलों मे रहते हैं। योजना के अन्तर्गत १३ और उपअधीक्षक नियुक्त होंगे जिससे हर जिले में इनकी संख्या १ हो जाय। पटने के स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय में अभी प्रतिवर्ष १०० छात्र भरती होते हैं। इनकी संख्या १४५ हो जायगी। महाविद्यालय के लिए स्वतंत्र मकान बनाया जायगा। शारीरिक शिक्षा के प्रोत्साहन के लिये २०,००० रु० चुने हुए व्यक्तियों को शारीरिक शिक्षा देने में खर्च किये जायँगे। गैर सरकारी हाई स्कूलों में शारीरिक शिक्षा के प्रबन्ध की व्यवस्था की जायगी। ऐसे ५०० गैर सरकारी स्कूलों को सरकार की ओर से ५० रु० मासिक सहायता मिलेगी ताकि ये स्कूल एक सुयोग शिक्षक नियुक्त कर सकें। पटने में एक खेल का "स्टेडियम" बनाया जायगा, जिसमें ५ लाख रुपया खर्च किया जायगा। इस 'स्टेडियम' में बच्चों के लिए एक अलग

स्थान रहेगा। समय-समय पर राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में खेल, कसरत आदि आयोजित किये जायेंगे। योजना के अधीन ५ लाख रु० प्राथमिक, माध्यमिक तथा बेसिक स्कूलों के छात्रों को दोपहर का जलपान देने में खर्च किया जायगा।

सांस्कृतिक—१·४५ लाख रुपये के खर्च से पटने के 'हार्डिंज पार्क' के खुले मैदान में एक रंगमंच बनाया जायगा। इसके अतिरिक्त ५ लाख रुपये के खर्च से एक नाट्यशाला भी बनाया जायगा, जोकि आधुनिक उपादानों से संपन्न रहेगा। राज्य की सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए राज्य सरकार की ओर से १०,००० रुपये केन्द्रीय अनुदान कमिटी को दिये जाते थे। यह रकम बढ़ाकर ३०,००० कर दी जायगी। भारतीय नृत्य-कला-मन्दिर तथा ऐसी ही संस्थाओं को ३,०००,०० रुपये अनावर्त्तक अनुदान दिये जायँगे।

पुस्तकालय—सिन्हा लाइब्रेरी, पटना (जोकि राज्य सरकार के अधीन हो गयी है) को द्वितीय योजना में १,५५,००० रुपये का अनावर्त्तक अनुदान मकान के लिए, ५०,००० रु० का पुस्तकों की खरीद के लिए तथा २५,००० रु० का सामान के लिए दिया जायगा।

जिला सहायता-प्राप्त पुस्तकालयों को, जिनकी संख्या १२ है, सरकारी पुस्तकालयों में परिवर्तित कर दिया जायगा। इस तरह हर जिले में सरकारी पुस्तकालय हो जायँगे। इनपर प्रति वर्ष, ५२,००० रु० खर्च होंगे। ग्रामीण सबडिवीजनों में पुस्तकालयों के विकास के लिए ३,००० रु० की सहायता प्रति वर्ष दी जायगी। राज्य में ३००० स्वीकृत पुस्तकालय हैं। इन्हें प्रति वर्ष १ लाख रुपये की सहायता मिलती थी। यह रकम बढ़ाकर २,५०००० कर दी जायगी। बच्चों के लिए पुस्तकालय तथा म्यूजियम की स्थापना पटना केन्द्रीय पुस्तकालय के साथ की जायगी। इसमें १५००००रु० अनावर्त्तक तथा २४,००० रु० आवर्त्तक खर्च किये जायँगे।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग
(University Education Commission)

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में, सन् १९४८-४९ की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की नियुक्ति थी। आयोग के अध्यक्ष डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे। इसके सदस्यों की संख्या १

थी, जिनमें भारत के अतिरिक्त अमेरिका तथा इंगलैंड के सुविख्यात शिक्षा-शास्त्री तथा शिक्षक सम्मिलित थे। आयोग का संगठन, भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के एक प्रस्ताव के अनुसार ४ नवम्बर, १६४८ को हुआ। आयोग को यह निर्देश दिया गया कि वह "भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा की स्थिति के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रस्तुत करे और इसके विकास तथा विस्तार के लिए परामर्श दे, जो देश की वर्त्तमान तथा भावी आवश्यकताओं के विचार से वांछित हों।" ६ दिसम्बर, १६४८ को भारत के शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने आयोग का उद्घाटन किया और इस सिलसिले में इसकी नियुक्ति के उद्देश्यों को स्पष्ट किया। आयोग ने भारत के सभी विश्वविद्यालयों का निरीक्षण किया और इनके अधिकारियों, प्राचार्यों तथा शिक्षकों से बातचीत की। कई स्थानों में आयोग ने विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों से भी भेंट की। इसके अतिरिक्त आयोग ने एक प्रश्नावली प्रसारित की, जिसके उत्तर ६०० लोगों ने दिये। आयोग ने बड़ी मुस्तैदी और लगन के साथ काम किया, जिसके फलस्वरूप, अपेक्षाकृत कम समय में, अगस्त १६४६ ई० में इसने अपनी रिपोर्ट शिक्षा मंत्रालय को प्रेषित कर दी।

आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के सभी पहलुओं की सम्यक् जाँच की और इनके सम्बन्ध में अपने विस्तृत सुझाव पेश किये। आयोग की जाँच के निर्णय, इसकी सिफारिशें तथा इनसे संलग्न सामग्री अत्यंत विशाल है। इस छोटी-सी पुस्तक में आयोग की रिपोर्ट की बातों का समाहार करना गागर में सागर भरने के दुस्साहस जैसा ही है। फिर भी यह अपेक्षित है। अतः आयोग की रिपोर्ट के प्रमुख अंशों तथा सिफारिशों को, अत्यन्त संक्षेप रूप में, नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

उच्च शिक्षा के उद्देश्य--आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्यों का परीक्षण देश के अतीत, वर्त्तमान तथा भविष्य-इन तीनों की पृष्ठभूमि में, शिक्षा के मानवीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों तथा मान्यताओं के विचार से किया और इस शिक्षा के निम्न-लिखित प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किये।

१—देश की स्वतन्त्रता के फलस्वरूप विश्वविद्यालयों के कर्तव्य तथा दायित्व विस्तृत हो गये हैं। अब उन्हें राजनीति, प्रशासन,

व्यवसाय, उद्योग तथा वाणिज्य सभी क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण करने योग्य व्यक्तियों को उत्पन्न करना है।* देश की विभिन्न भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तभी होगी जब यहाँ के विश्वविद्यालय न केवल ज्ञान प्रदान करेंगे, बल्कि ऐसे मस्तिष्क समुत्पन्न करेंगे जो देश के साधनों और मानवीय शक्तियों को संयोजित कर सकें।

२—विश्वविद्यालयों को न केवल देश की भौतिक समृद्धि का संरक्षण करना है, बल्कि उन्हें इसकी सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण तथा संवर्द्धन भी करने हैं। यदि भारत वर्तमान उलझनों में प्रकाश चाहता है, तो इस प्रकाश के लिए उसे उन लोगों की ओर न देखना चाहिए जो तात्कालिक समस्याओं में उलझे रहते हैं, बल्कि इसके लिए उसे अपने देश के साहित्यिकों, वैज्ञानिकों, कवियों, कलाकारों, अन्वेषकों तथा गवेषकों की ओर देखना चाहिए। राष्ट्रीय सभ्यता के स्रष्टा विश्वविद्यालयों में पाए जाते तथा प्रशिक्षित होते हैं। राष्ट्र की आत्मा उसकी संस्कृति में द्योतित रहती है और इस संस्कृति के संरक्षक विश्वविद्यालय हैं।†

३—प्राचीन के प्रति आस्था का यह अर्थ नहीं कि हम प्राचीन में ही विभोर हो जायँ और अपने विकास की गति शिथिल कर

---

*We have now a wider conception of the duties and responsibilities of teachers. They have to provide leadership in politics and administration, the professions, industries and commerce............They must enable the country to attain, in as short a time as possible, freedom from want, disease and ignorance, by the application and development of scientific knowledge.

It is for the universities to create knowledge and train minds who would bring together the two, material resources and human energies.

—University Education Commission Report. Vol. I—P. 33.

† If India is to confront the confusion of our time, she must turn for guidance, not to those who are lost in the mere exigencies of the passing hour, but to her men of letters, and men of science, to her poets and artists, to her discoverers and inventors. These intellectual pioneers of civilization are to be found and trained in the universities, which are the sanctuaries of the inner life of the nation.

—University Education Commission Report, Vol. I—P. 33.

दें। अपनी संस्कृति को प्रगतिशील रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्राचीन की अन्धपूजा छोड़ दें और नयी मान्यताओं की सृष्टि करें। मानव ने जो कुछ उपलब्ध किया है, वह जो कुछ उपलब्ध कर सकता है, उसका एक अंश मात्र है। अतः भूत के प्रति श्रद्धा के साथ साथ हमें भविष्य के प्रति जागरूक होना चाहिए। नये विचारों की सृष्टि का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों पर है।*

४—विश्वविद्यालय एक समन्वित ज्ञान के अर्जन का अवसर दें।†

५—शिक्षा केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं अपितु, आत्मा का प्रशिक्षण भी है। इसका उद्देश्य ज्ञान तथा विवेक (knowledge & wisdom) दोनों ही प्रदान करना है। विश्वविद्यालय अपने छात्रों को दोनों दें।‡

६—हमारा संविधान हमारे सामाजिक आदर्शों को निर्दिष्ट करता है। हमारी शिक्षा-पद्धति को इन आदर्शों की सुरक्षा करनी चाहिए। आज हम एक ऐसे गणतांत्रिक समाज के सृजन में लगनशील हैं, जोकि न्याय, स्वतंत्रता, समता तथा बन्धुत्व पर आधारित है। विश्वविद्यालय इन आदर्शों की सुरक्षा तथा संवर्द्धन में योग दें।×

---

* If our cultural life is to retain its dynamism, it must give up idolatry of the past and strive to realise new dreams. ....All that man has yet done is very little compared to what he is destined to achieve.

Universities are the homes of intellectual adventures.

—University Education Commission Report, Vol. I, P. 34.

† The purpose of all education......is to provide a coherent picture of the universe and an integrated way of life. We must obtain through it a sense of perspective, a synoptic vision, a Samanavaya of the different items of knowledge.

‡ Since education is both a training of minds and a training of souls, it should give both knowledge and wisdom.

—University Education Commission Report, Vol. I, P. 35.

× Our educational system must find its guiding principles in the aims of the social order for which it prepares, in the nature of the civilization it hopes to build..........

We are engaged in a quest for democracy through the realisation of justice, liberty, equality and fraternity.

—University Education Commission Report, Vol. I, P. 35-36.

७—शिक्षा का तात्पर्य केवल व्यक्ति और समाज का सामंजस्य नहीं। शिक्षा का एक महान् उद्देश्य यह भी है कि वह नये मूल्यों की सृष्टि करे और उसको प्राप्य बनावे।*

८—विश्वविद्यालयों को राष्ट्र के समक्ष न्यायपूर्ण तथा सद्व्यवहार का आदर्श उपस्थित करना चाहिए। दुःख का विषय है कि कई विश्वविद्यालय इस आदर्श की सुरक्षा नहीं कर रहे हैं। शिक्षा संस्थाओं में ही हम शरीर, बुद्धि तथा इच्छा के अनुशासन से चरित्र का निर्माण तथा व्यक्तित्व का सृजन कर सकते हैं।†

९—विश्वविद्यालय एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभ्युदय करावें, जिससे हम विश्व के साथ बन्धुत्व का नाता जोड़ सकें और संसार में शान्ति स्थापित करने में योग दे सकें।‡

संक्षेप में, उच्च शिक्षा के प्रमुख कार्य ज्ञान के संवरण, नये ज्ञान के अन्वेषण, जीवन के प्रयोजन की निरंतर खोज तथा देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त व्यावसायिक शिक्षा के आयोजन हैं। आदर्श अप्राप्य स्वप्न होते हैं, किंतु इनकी ओर निरन्तर प्रयत्न करना प्रत्येक नागरिक तथा राजनीतिज्ञ का कर्तव्य है।×

---

* But education is also an instrument for social change. It should not be its aim merely to enable us to adjust ourselves to the social envrvonment......The aim of education should be to break ground for new values and make them possible.

—University Education Commission Report. Vol. I, P. 44.

† Universities ought to be examples to the nation in fair dealing and decent behaviour. Some of the Universities, we regret to say, are not models of decency and dignity.

It is in educational institutions that we can train character, build personality by the discipline of body, intelligence and will.

—University Education Commission Report, Vol. I—P. 54.

‡ Universities must make provision for the study of the different aspects of international affairs......designed to further international security and the peaceful solution of international problems.

—University Education Commission Report, Vol. I, P. 66.

× Dissemination of learning, incessant search for new knowledge, unceasing efforts to plumb the meaning of life, provision for vocational education to satisfy the needs of our society are the vital tasks of higher education.

—University Education Commission Report, Vol, I—P. 66.

शिक्षा का मान—विश्वविद्यालय का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह अपने शिक्षण तथा परीक्षण के मान को उच्चतम शिखर पर रखे।× यदि हमारे विश्वविद्यालयों को देश के भावी नेताओं को समुत्पन्न करना है, जो कि अपेक्षित है, तो इनकी उपाधियाँ स्नातकों की बौद्धिक उपलब्धियों के उच्च मान प्रतिमूर्तित करें। किंतु भारतीय विश्व-विद्यालयों के शिक्षण तथा परीक्षण के औसत मान निम्नस्तर पर हैं। इसके कई कारण हैं। विश्वविद्यालय में दाखिल होनेवाले छात्रों की बौद्धिक योग्यता न्यून रहती है, जिससे वे विश्वविद्यालय की शिक्षा से लाभ उठाने में असमर्थ रहते हैं। इण्टरमिडिएट परीक्षा में अत्यधिक असफलताएँ इसके प्रमाण हैं। उच्च शिक्षा के मानदण्ड को ऊँचा उठाने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जायँ।

(१) विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए छात्र को मौजूदा इन्टरमिडिएट परीक्षा पास की योग्यता रहनी चाहिए।

(२) प्रत्येक प्रान्त में इन्टरमीडिएट कालेज पर्याप्त मात्रा में स्थापित किये जायँ।

(३) ऐसे अधिकांश छात्र जिन्होंने १०-१२ वर्ष तक शिक्षा पायी हो, व्यावसायिक स्कूलों में दाखिल होने के लिए प्रवृत्त किये जायँ। ऐसे व्यावसायिक स्कूल काफी संख्या में खोले जायँ।

(४) शैक्षणिक विश्वविद्यालय की अधिकतम छात्र-संख्या, कला तथा विज्ञान में, ३००० हो। संबद्ध कालेजों के लिए यह संख्या १५०० रहे।

(५) कालेज के वार्षिक कार्य-दिनों की संख्या कम-से-कम १८० रहे।

(६) शिक्षक के व्याख्यान 'ट्यूटोरियल' पुस्तकालय तथा लिखित कार्य से सम्बलित किये जायँ।

(७) किसी विषय के लिए पाठ्य-पुस्तक निर्धारित न की जाय।

(८) व्याख्यानों में छात्रों की उपस्थिति अनिवार्य रहे। प्राइवेट रूप से पास करनेवाले व्यक्तियों की श्रेणियाँ सीमित कर दी जायँ।

× It is the primary duty of a university to maintain the highest standards of teaching and examination,

If our Universities are to be the makers of future leaders of thought and action in the country, as they should be, our degrees must connote a high standard of scholarly achievements in our graduates.

University Education Commission Report, Vol. I, P. 84.

(९) उपकक्षा-प्रणाली प्रभावकारी ढंग से व्यवहृत की जाय। इसके लिए शिक्षकों की संख्यात्मक तथा गुणात्मक वृद्धि की जाय।

(१०) विश्वविद्यालय का पुस्तकालय सुसंगठित, सुसम्पन्न तथा सुसंचालित रहे।

(११) प्रयोगशालाओं (laboratories) के भवन, सामान, यंत्र आदि में उन्नति की जाय।

शिक्षक—शिक्षा की सफलता शिक्षकों के चरित्र तथा योग्यता पर इतनी निर्भर करती है कि विश्वविद्यालयों के सुधार की किसी भी योजना में उपयुक्त योग्यता के शिक्षकों को प्राप्ति पर सबसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।* दुर्भाग्यवश, विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की स्थिति, योग्यता के विचार से अत्यन्त असंतोष-प्रद है, जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालयों के शिक्षण के मान को आघात पहुँच रहा है।‡ इस स्थिति के कई कारण हैं, जिनमें शिक्षकों के कम वेतन, सेवा की अनाकर्षक शर्तें, अनुसंधान के अवसरों तथा प्रोत्साहनों की कमी प्रमुख हैं। अतः यह अपेक्षित है कि—

१. शिक्षकों के महत्व तथा दायित्व पूरी तरह स्वीकृत किये जायँ।

२. विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थिति सुधारी जाय।

३. विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की चार श्रेणियाँ हों—प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर्स, इंसट्रक्टर्स। इनके वेतन-क्रम इस तरह हों।

प्रोफेसर—	९००—५०—१३५० रु०
रीडर्स	६००—३०— ९०० ,,

---

* The success of the educational process depends so much on the character and ability of the teacher that in any plan of university reforms the main concern must be for securing an adequate staff with qualifications necessary for the discharge of its many-sided duties.

University Education Commission Report, Vol. I, P. 68.

‡ Unfortunately 'the positon today is far from satisfactory. The evidence from the universities points to great dissatisfaction with the existing conditions and deep concern over its consequences.

Indian Universities Commission Report, P. 69-70.

लेक्चरर्स ३००—२५— ६०० रु०
इन्सट्रक्टर्स ,,
या फेलोज— २५०
रिसर्च फेलो—२५०— ३५— ५०० ,,
संबद्ध कालेजों के शिक्षकों के वेतन-क्रम इस प्रकार हों।
जिनमें स्नातकोत्तर शिक्षा नहीं होती हो—
लेक्चरर—२००—१५—३२०—२०—४०० रु०
श्रेष्ठ पद— ४००—२५—६०० रु०
(हर कालेज में दो)
प्रिंसिपल— ६००—४०—८०० रु०
जिनमें स्नातकोत्तर शिक्षा होती हो :—
लेक्चरर—२००—१५—३२०—२०—४०० रु०
२५—५०० रु०
श्रेष्ठ पद— ५००—२५—८०० रु०
हर (कालेज में दो)
प्रिंसिपल—८००—४०—१०,०० रु०

५. एक पद से दूसरे ऊँचे पद पर उन्नति योग्यता के आधार पर हो।

६. अवर तथा श्रेष्ठ पदों का अनुपात २ : १ हो।

७. शिक्षकों के चुनाव में पूरी सतर्कता बरती जाय।

८. शिक्षकों के प्रोविडेन्ट फंड, छुट्टी, कार्य के घंटे आदि की शर्तें निश्चित रूप से, निर्धारित कर दी जायँ।

९. सामान्यतः शिक्षकों के कार्य-भार की अवधि ६० वर्ष की अवस्था तक हो। प्रोफेसरों को ६४ वर्ष तक कार्य करने की अनुमति दी जा सकी है।

पाठ्य-क्रम—जीवन की क्रिया में विभिन्न क्षेत्रों के अनुभव एक दूसरे से सर्वथा अलग नहीं, अपितु एक दूसरे से संश्लिष्ट होकर उपस्थित होते हैं। किन्तु शिक्षण की सुविधा के लिए हम पाठ्य-क्रम के द्वारा विभिन्न अनुभवों को एक दूसरे से अलग कर उपस्थित करते हैं। किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि पाठ्य-क्रम समग्र अनुभव की प्राप्ति के साधन मात्र हैं। इसके विषय स्वयं साध्य नहीं। अतः पाठ्य-क्रम के निर्माण तथा अनुसरण में इस बात पर सर्वथा ध्यान रहे

कि विभिन्न अनुभवों का पारस्परिक सम्बन्ध विच्छिन्न न होने पावे और इन अनुभवों के द्वारा एक समग्र ज्ञान की उपलब्धि हो सके।*

उच्च शिक्षा के पाठ्य-क्रम के तीन मुख्य उद्देश्य होने चाहिए— सामान्य शिक्षा, बौद्धिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा। सामान्य शिक्षा के द्वारा हम छात्रों को चुने हुए उन सूचनाओं से अवगत करावेंगे तथा उनपर प्रभुत्व देंगे, जिनके आधार पर वे अपने विचार, तर्क तथा कार्यों को स्वरूप दे सकेंगे। बौद्धिक शिक्षा के द्वारा हम छात्रों को स्वतंत्र चिन्तन, आलोचनात्मक जिज्ञासा तथा रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों की शक्ति देते हैं। व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा हम छात्रों को उनके जीवन के व्यवसाय अथवा विशिष्ट व्यापारों के लिए प्रशिक्षित करते हैं। ये शिक्षाएँ एक दूसरे से संबद्ध रहती हैं और इनकी प्राप्ति, स्वतंत्र रूप से, अलग अलग न होनी चाहिए।

पाठ्य क्रम की लीकबद्धता तथा जड़ता के कारण विश्वविद्यालयों में विशेषीकृत (specialised) अध्ययन का बोलबाला है, जिससे समग्र ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो पाती। अतः शिक्षा के विभिन्न तत्त्व एक दूसरे से सम्बन्धित होकर ही छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किये जायँ, जिससे उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके। साथ ही उन्हें, उनके विशिष्ट क्षेत्र में, पूरा प्रशिक्षण मिल सके। इस समग्र ज्ञान की उपलब्धि की चेष्टा माध्यमिक कक्षाओं से ही शुरू की जायँ जिनकी बुनियाद पर विश्वविद्यालय में शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रम के प्रसंग में आयोग ने निम्नलिखित प्रमुख सुझाव उपस्थित किये हैं:—

१. विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक स्कूल दोनों ही सामान्य शिक्षा के सिद्धांतों तथा व्यवहारों का अध्यापन शुरू कर दें और इसके लिए रिपोर्ट के परामर्शों के अनुसार उपयुक्त अध्ययन-क्रम तथा पाठन सामग्री तैयार करें।

---

* Courses of study are essential expedients of formal education, but they should be recognised as nothing but arbitrary though useful contrivances. Unless the vital inter-connections between all phases of education are kept in mind, the convenient devices of courses of study may become barriers which prevent our realizing the unity of knowledge and experience.

—University Education Commission Report, Vol. I. P. 117.

२. इन्टरमिडिएट तथा विश्वविद्यालयों में विशेषीकृत शिक्षा के दोषों को मिटाने के निमित्त सामान्य शिक्षा के सिद्धांतों तथा व्यवहारों की शिक्षा, यथाशीघ्र, शुरू कर दी जाय।

३. ज्ञान के हर क्षेत्र में सामान्य तथा विशेषीकृत शिक्षा के पारस्परिक सम्बन्ध की जांच की जाय। यह जांच छात्रों के वैयक्तिक, नागरिक तथा व्यावसायिक हितों की दृष्टि से की जाय।

स्नातकोत्तर प्रशिक्षण और अनुसंधान—प्रगतिशील समाज का अस्तित्व तीन तरह के लोगों पर आश्रित रहता है—विद्वान, आविष्कारक, अन्वेषक। विद्वान अतीत को पुनर्जीवित कर 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' प्रस्तुत करते हैं, आविष्कारक नये सत्य को प्राप्त करते है और अन्वेषक इन्हें नयी आवश्यकतों में व्यवहृत करते हैं। इन तीनों तरह के व्यक्तियों की उत्पत्ति विश्वविद्यालयों के द्वारा होती है, जो प्रगतिगामी विचारों को प्रभावशाली साधनों में संश्लिष्ट या गुंफित करते हैं। विद्यालय का कार्य केवल नागरिकता का प्रशिक्षण नहीं, बल्कि इसका कार्य ज्ञान की सीमा को विस्तृत करना भी है। वस्तुतः ज्ञान का विस्तार इसके शिक्षण की गतिशीलता की आवश्यक शर्त हैं, क्योंकि अन्वेषण के बिना अध्ययन मृत हो जायगा। * भारत में अनुसंधान की आवश्यकता न केवल बौद्धिक है, बल्कि व्यावहारिक भी है। कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य आदि का नवीकरण अनुसंधान के बिना नहीं हो सकता। अतः विश्वविद्यालयों की शिक्षा में अनुसंधान तथा अन्वेषण को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। इसके लिये निम्नलिखित परामर्श व्यवहृत किये जायँ।

(१) एम० ए० कक्षाओं में अखिल भारतीय स्तर पर, छात्रों को भरती हो। इन कक्षाओं के पाठ्यक्रम में अनुसंधान की रीतियों का प्रशिक्षण कराया जाय और शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों के बीच निकटतम संपर्क स्थापित किया जाय।

---

*Universities are responsible for as much extending the boundaries of knowledge as for the training of citizens; in fact, the advancement of knowledge is a necessary condition of the continued vitality of their teaching, for unless a study is rooted in research, it will die.

—University Education Commission Report, Vol. I—P. 140.

(२) पी० एच० डी० के प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की हो। पी० एच० डी० के छात्र संकीर्ण विशेषज्ञ न हों, बल्कि उनका अध्ययन व्यापक और गंभीर-दोनों ही हो। पी० एच० डी० के छात्रों का चुनाव अखिल भारतीय स्तर पर हो।

(३) पी० एच० डी० के पश्चात् चुने हुए छात्रों के लिए आगे के अध्ययन की व्यवस्था की जाय। इसके लिए 'फेलोशिप' का आयोजन हो।

(४) डी० लिट० तथा डी० एस० सी० की उपाधियाँ मौलिक ढंग के प्रकाशित कृतियों पर दी जायँ।

(५) शिक्षा मंत्रालय एम० एस-सी० तथा पी० एच० डी० के सुयोग्य छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ तथा निःशुल्क शिक्षा आयोजित करे। इन छात्रों का चुनाव सावधानी से किया जाय।

(६) विश्वविद्यालयों के विज्ञान विभागों को 'कैपिटल' तथा आवर्त्तक अनुदान, पर्याप्त मात्रा में दिये जायं।

व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education)—व्यावसायिक शिक्षा के प्रचलित अर्थों का समीक्षण करते हुए आयोग ने इस शिक्षा की यह परिभाषा निर्धारित की :—

"व्यावसायिक शिक्षा वह शिक्षा है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त परिश्रमपूर्ण तथा उत्तरदायी सेवा के लिए, व्यावसायिक भावना के साथ, अपने को तैयार करती हैं। व्यावसायिक शिक्षा शब्द का प्रयोग उन क्षेत्रों के लिए सीमित रहना चाहिए, जिनमें काफी जानकारी के साथ-साथ अनुशासित अन्तर्दृष्टि तथा उच्चतर कुशलता अपेक्षित है। कम श्रम की तैयारियाँ रोजगारिक (Vocational) अथवा शिल्पिक (Technical) कही जा सकती है।"

प्रचलित व्यावसायिक शिक्षा का एक बड़ा दोष यह है कि यह व्यावसायिक व्यक्तियों में कुशलता तो देती है, किंतु उन्हें वह ऐसा दर्शन नहीं देती, जिसके अनुसार वे अपने जीवन तथा कुशलता का प्रयोग करें। इसका फल यह होता है कि व्यावसायिक कुशलता से वह सामाजिक हित न हो पाता जो अपेक्षित है। दर्शन के अभाव में व्यावसायिक कुशलता पैसे से खरीदी जाती है और बहुधा वह ऐसे कार्य में प्रवृत्त रहती है जो असामाजिक कहे जा

सकते हैं।* अत: व्यावसायिक शिक्षा की आधारभित्ति केवल कुशलता नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, सामाजिक तथा मानवीय मूल्य की परख तथा वस्तुस्थिति के प्रति निष्पक्ष दृष्टि हो।£

व्यावसायिक शिक्षा के इन दायित्वों की पृष्ठभूमि में आयोग ने भारत के प्रमुख व्यवसायों की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं की जाँच की और इनके सम्बन्ध में अपने सुझाव पेश किये। आयोग की दृष्टि में, देश की वर्त्तमान आवश्यकताओं के विचार से, कृषि-शिक्षा का राष्ट्रीय शिक्षा योजना में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अत: इस शिक्षा के सम्यक् आयोजन की व्यवस्था सरकार की ओर से होनी चाहिए। देश की आर्थिक योजनाओं में "प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षाओं में कृषि के अध्ययन" को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। कृषि की शिक्षा, यथासंभव, ग्रामीण पृष्ठभूमि में दी जानी चाहिए, जिससे विषय का व्यावहारिक ज्ञान, वास्तविक परिस्थितियों में दिया जा सके। कृषि के नये विद्यालय नये ग्रामीण विश्वविद्यालयों से संलग्न किये जायँ। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार "कृषि प्रयोगशालाएँ", पर्याप्त संख्या में देश के सभी क्षेत्रों में खोलें। हर बेसिक प्राथमिक स्कूल तथा ग्रामीण माध्यमिक स्कूल में भी, जहाँ तक सम्भव हो सके, छोटी-सी 'कृषि फार्म' आयोजित किया जाय। कृषि के सम्बन्ध में स्नातकोत्तर अध्ययन तथा अनुसंधान की सुविधाएँ विस्तृत की जाय। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के साथ एक कृषि समिति संबद्ध की जायँ, जो कि उपलब्ध साधनों में से कृषि की उन्नति के लिए आवश्यक रकम निर्धारित करे।

---

* Professional education has failed in one of its large responsibilities, that of developing over-all principles and philosophy, by which professional men should live and work. To the extent that such purpose and philosophy are lacking, the engineer may be at the service of any one who will pay him well, regardless of the social worth of his service; the lawyer's skill may be for sale for right or wrong.........while each may have high skill, the total effect may be great internal stress and even social deterioration.

£ The foundation of professional education should be not only technical skill, but also a sense of social responsibility, an appreciation of social and human values and relationships, and disciplined power to see realities without prejudice or blind committment.

—University Education Commis.siono Report. P. 175.

व्यापारिक (Commercial) शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने यह सिफारिश की कि व्यापारिक विषयों के छात्रों को तीन-चार तरह के व्यापारिक संस्थाओं में व्यावहारिक कार्य करने के अवसर दिये जायँ। स्नातक होने के बाद कुछ छात्रों को खास-खास विषयों में विशेष अध्ययन करने की प्रेरणा दी जाय। व्यापारिक शिक्षा में 'मास्टर डिग्री' का अध्ययन पुस्तकीय कम हो तथा यह डिग्री अपेक्षाकृत कम लोगों को दी जाय।

शिक्षा-व्यवसाय के सम्बन्ध में आयोग ने सात सिफारिशें की, जिनमें प्रमुख ये थीं :—

(१) प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम बदले जायँ। इस पाठ्यक्रम में "स्कूल में अभ्यास" पर अधिक समय दिया जाय। छात्रों की उपलब्धियों के मूल्यांकन में अभ्यास का अधिक महत्व रहे।

(२) ट्रेनिंग कालेजों के अधिकांश शिक्षक उन लोगों में से चुने जायँ, जिन्हें स्कूल-शिक्षण-का पर्याप्त अनुभव रहे।

(३) शिक्षा सिद्धांत के पाठ्यक्रम लचीले बनाये जायँ, जिससे वे स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल मोड़े जा सकें।

(४) मास्टर डिग्री के लिए वे ही छात्र चुने जायँ, जिन्हें शिक्षण का कुछ वर्ष का अनुभव रहे।

(५) प्रोफेसर तथा लेकचरर, अखिल भारत स्तर पर, मौलिक कार्य करें।

इंजिनीयरिंग तथा टेकनोलौजिकल शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें कीं।

(१) देश की वर्त्तमान संस्थाएँ राष्ट्रीय पूँजी समझी जायँ और और इन्हें समुन्नत करने के प्रयास किये जायँ।

(२) इन्जिनीयरिंग स्कूलों की संख्या बढ़ायी जाय।

(३) देश की बढ़ती हुई बहुमुखी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्जिनीयरिंग स्कूलों के अध्ययन के विषय विस्तृत किये जायँ।

(४) इन्जिनीयरिंग शिक्षा में व्यावहारिक अभ्यास पर पूरा ध्यान दिया जाय।

(५) जहाँ तक सम्भव हो सके, वर्त्तमान इञ्जीनियरिंग कालेजों में स्नातकोत्तर अध्ययन तथा अनुसंधान प्रचलित की जायँ।

(६) उच्चतर टेकनोलौजिकल संस्थाएँ अविलम्ब स्थापित की जायँ।

(७) इंजिनीयरिंग कालेजों पर मंत्रियों अथवा सरकारी विभागों का प्रभुत्व न रहे।

देश की चिकित्सा—शिक्षा की समस्याओं के परीक्षण के पश्चात् आयोग ने इस शिक्षा के सुधार तथा समुन्नति के लिये कई सिफारिशें कीं, जिनमें प्रमुख ये थीं :—

(क) किसी मेडिकल कालेज में अधिक-से-अधिक १६० छात्र भरती किये जायँ।

(ख) हर छात्र के जिम्मे १० मरीज रहें।

(ग) चिकित्सा शास्त्र के छात्र को किसी ग्रामीण केन्द्र में भी प्रशिक्षण दिया जाय।

(घ) स्नातकोत्तर शिक्षा केवल चुनी हुई संस्थाओं में दी जाय, जहाँ इसके लिए उपयुक्त शिक्षक तथा साधन मौजूद रहें।

(च) जन-स्वास्थ्य तथा 'नर्सिंग' को अधिक महत्व दिया जाय।

(छ) देशी चिकित्सा-प्रणालियों में अनुसंधान की सुविधायें दी जायँ।

धार्मिक शिक्षा—आयोग ने धार्मिक शिक्षा को, सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक माना। एक अच्छा तथा सफल जीवन बिताने के लिए हमें केवल बौद्धिक जागरूकता की अपेक्षा नहीं, बल्कि इसकी अपेक्षा भी है कि हम संवेगात्मक पक्ष में प्रशांत रहें जिसके बिना उन सघर्षों तथा दबावों को हम बर्दाश्त न कर सकेंगे, जोकि जीवन में अनिवार्यतः पड़ते रहते हैं।† स्पष्टतः हम छात्रों के संवेगात्मक तथा नैतिक विकास को संयोग पर नहीं छोड़ सकते।‡

भारत में धार्मिक शिक्षा के इतिहास का सिंहावलोकन करते हुए आयोग ने यह कहा कि प्राचीन तथा मध्यकाल में भारतीय शिक्षा-पद्धति में धार्मिक शिक्षा का प्रमुख स्थान था। विदेशी शासक होने के कारण अंग्रेजों ने भारत में धार्मिक तटस्थता की नीति व्यवहृत की, जिसके फलस्वरूप 'धार्मिक शिक्षा' भारतीय शिक्षा पद्धति से

---

† For a satisfactory and successful life, a person must not be only intellectually alert but must be emotionally stable, able to endure the conflicts and tensions that life is almost sure to bring.

‡ We can not leave to chance the emotional and ethical development of the young people.

—University Education Commission Report, P. 287.

निष्कासित हो गयी। किंतु इसकी आवश्यकता पर आधुनिक काल में भी, जोर दिया जाता रहा है। धार्मिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति के प्रसंग में आयोग ने 'भारत के संविधान' के अनु० १६, २१, २२ को उद्धृत किया, जिसके अनुसार सरकारी शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती थी। धर्म निरपेक्ष राज्य होने के नाते संविधान की यह व्यवस्था स्वाभाविक है; किंतु आयोग के विचार में संविधान की धार्मिक मान्यताएँ, धार्मिक शिक्षा के निषेधक न हैं। 'धर्म निरपेक्षता का अर्थ धार्मिक निरक्षरता नहीं। इसका अर्थ है गहरी आध्यात्मिकता, न कि संकीर्ण धार्मिकता।''*

इन बातों की पृष्ठभूमि में आयोग ने धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें कीं।

(१) सभी शिक्षा-संस्थाओं के दैनिक कार्य कुछ मिनटों के लिए मौन आन्तरिक चिन्तन के साथ शुरू हों।

(२) डिग्री कक्षा के प्रथम वर्ष में संसार के महान धार्मिक नेताओं-जैसे गौतम बुद्ध, कनफ्यूसियस, जरथुस्त्र, सुकरात, ईसा, मुहम्मद, नानक, गाँधी की जीवनियाँ पढ़ायी जायँ।

(३) दूसरे वर्ष में संसार के धर्म-ग्रन्थों से सर्वोपयुक्त सामग्रियाँ चुन कर पढ़ायी जायँ।

(४) तीसरे वर्ष में धर्म के दर्शन की प्रमुख समस्याओं पर विचार किया जाय।

स्त्री-शिक्षा—आयोग ने आर्थर मेह्यू के इस कथन का समर्थन किया कि अंग्रेज सरकार ने अपनी शिक्षा-नीति के द्वारा दो बड़ी भूलें कीं—जनसमूह को शिक्षा से अछूता रखकर शिक्षितों तथा अशिक्षितों का भेदभाव बढ़ा दिया और शिक्षा की चेष्टाएँ केवल पुरुषों तक सीमित रखकर घर में विभिन्नता ला दी, जो कि पहले कभी न थी। † इन

---

* To be secular is not to be religiously illiterate. It is to be deeply spiritual and not narrowly religious.
—University Education Commission Report—P. 300.

† If the Government by the initial exclusion of the masses accentuated the segregation of the masses from the privileged few, by their initial restriction of their (educational) efforts to the male population, they brought a line of division where it had never existed before, within the household.

Arther Mahew—quoted in University Education Commission Report—P. 392.

निर्मित होते हैं।† अतः विश्वविद्यालय का यह कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियों की सम्भावनाओं का पूर्ण उत्कर्ष उनके शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक जीवन के सभी क्षेत्रों में करे। इसके लिए यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में वे ही छात्र भरती किये जायँ, जो इसकी शिक्षा से लाभ उठाने में समर्थ हों। यह भी आवश्यक है कि जो छात्र विश्वविद्यालयों में दाखिल हों, उनके सर्वांगीण विकास तथा उनके हितों की सुरक्षा की पूर्ण चेष्टाएँ की जायँ। † इसके लिए आयोग ने कई सिफारिशें कीं, जिनमें प्रमुख ये थीं।

(१) विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में छात्रों की भरती योग्यता के आधार पर ही हो।

(२) प्रतिभावान किंतु आर्थिक साधन-हीन छात्रों को, योग्यता के आधार पर, छात्रवृत्तियाँ दी जायँ।

(३) छात्रों के स्वास्थ्य की पूर्ण जाँच की जाय तथा इनकी चिकित्सा की व्यवस्था की जाय। छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अन्य सभी उपाय व्यवहृत किये जायँ।

(४) छात्रों की स्वास्थ्य-रक्षा तथा शारीरिक-विकास के लिए खेल, व्यायामशाला आदि आयोजित किये जायँ।

(५) सभी छात्रों के लिए दो वर्ष की शारीरिक शिक्षा अनिवार्य करदी जाय। जो छात्र शारीरिक रूप से असमर्थ हों अथवा जो एन० सी० सी० के सदस्य हों—इस अनिवार्य शिक्षा से बरी कर दिये जायँ।

(६) सभी संस्थाओं में एन० सी० सी० के दल संगठित हों।

(७) एन० सी० सी० का प्रबन्ध सीधे केंद्रीय सरकार के द्वारा हो, जो विश्वविद्यालयों तथा कालेजों को इस सम्बन्ध में सारी सुविधाओं का आयोजन करे।

(८) छात्रावास अच्छी स्थिति में रखे जायँ।

(९) विश्वविद्यालयों का विद्यार्थी-संघ, जहाँ तक सम्भव हो सके, राजनीति से अलग रहे। यह संघ छात्रों के द्वारा तथा छात्रों के लिए ही संचालित हो।

(१०) छात्र-प्रशासन (Student govt.) को प्रश्रय दिया जाय।

† The student is not created for the university but the university exists for the student and, therfore, it must spare no efforts and omit no devices which may promote the fullest and most complete realisation of the student's possibilities on all planes, physical, intellectual and spiritual.

—University Education Commission Report. P. 345.

(११) विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में 'विद्यार्थी विभाग' स्थापित किया जाय।

(१२) विद्यार्थियों के हितों की देखभाल के लिए एक एक परामर्श-दाता मण्डल-सभी संस्थाओं में संगठित हो।

शिक्षा के माध्यम—आयोग ने उच्च शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर गंभीर सोच-विचार किया। आयोग के समक्ष, इस सम्बन्ध में, जो विचार पेश किये गये, वे एक दूसरे के विरोधी थे। आयोग के शब्दों में 'शिक्षा के माध्यम से बढ़कर कोई भी विवादास्पद प्रश्न उसके समक्ष उपस्थित न हुआ।'† माध्यम का विषय बहुधा राष्ट्रीय भावनाओं से आच्छादित हो जाता था, जिससे इस पर ठंढे दिल से विचार करना कठिन हो जाता था। विभिन्न भारतीय भाषाओं की उपयुक्तता के गंभीर विवेचन के पश्चात् आयोग ने माध्यम के संबंध में निम्न-लिखित परामर्श उपस्थित किये—

१—उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में, जहाँ तक शीघ्र हो सके, अंग्रेजी के स्थान पर कोई भारतीय भाषा व्यवहृत की जाय। यह भाषा, अनेक कठिनाइयों के कारण, संस्कृत नहीं हो सकती।

२—उच्चतर माध्यमिक स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए तीन भाषाओं की जानकारी आवश्यक है—प्रादेशिक भाषा, संघीय भाषा तथा अंग्रेजी।

३—उच्चतर शिक्षा किसी प्रादेशिक भाषा (regional language) के द्वारा दी जाय। संघीय भाषा भी खास-खास विषयों अथवा सभी विषयों की शिक्षा के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

४. संघीय-भाषा की लिपि देवनागरी हो। इस लिपि की त्रुटियाँ दूर कर दी जायँ।

५. संघीय तथा प्रादेशिक भाषाओं के विकास के लिए शीघ्र कार्रवाई की जाय।

६. भाषाविदों तथा वैज्ञानिकों का एक मण्डल कायम किया जाय, जो सभी भारतीय भाषाओं के लिए समान रूप से व्यवहृत होने वाले वैज्ञानिक शब्दों का निर्माण करे। यह मण्डल वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध करे, जो सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित की जायँ।

---

† No other problem has caused greater controversy among the educationist and evoked more contradictory views from our witnesses.—University Education Commission Report—P. 305.

७. प्रान्तीय सरकार सभी उच्चतर माध्यमिक स्कूलों, डिग्री कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में संघीय भाषा के शिक्षण की व्यवस्था करे।

८. हाई स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का अध्ययन जारी रहे, जिससे हम नये ज्ञान से परिचित होते रहें।

परीक्षा—आधुनिक भारतीय शिक्षा-पद्धति का एक बड़ा दोष यह है कि इस पद्धति में परीक्षा को अत्यधिक महत्व दिया जाता आ रहा है। परीक्षा के विरुद्ध लगभग ५० वर्षों से आवाज उठती आ रही है। भिन्न-भिन्न समितियों तथा आयोगों ने भी इसके विरुद्ध परामर्श उपस्थित किये हैं। किन्तु फिर भी परीक्षाओं के बोझ से भारतीय शिक्षा मुक्त न हो पायी है।

आयोग ने भी परीक्षा की प्रचलित पद्धति के विरुद्ध, जोरदार शब्दों में, अपने विचार प्रकट किये। "यदि विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार का सबसे बड़ा विषय कोई है, तो वह परीक्षा है"।* किन्तु आयोग ने परीक्षा की पद्धति में सुधार की सिफारिश की, न कि इसके हटाने की। आयोग की सम्मति में यदि परीक्षाएँ भलिभाँति तथा उचित रीति से संचालित की जायँ, तो इनसे कई लाभ हो सकते हैं। अतः आयोग की दृष्टि में परीक्षाओं को हटाने के बदले, इनमें सुधार ही अपेक्षित हैं। सुधार के निमित्त, आयोग ने निम्नलिखित सुझाव उपस्थित किये—

(१) शिक्षा मंत्रालय के द्वारा ऐसे एक-दो विशेषज्ञों की नियुक्ति हो जो वस्तुरूप प्रश्न (Objective tests) तैयार कर सकें तथा इसके व्यवहार की रीति निर्दिष्ट कर सकें।

(२) हर विश्वविद्यालय के द्वारा एक पूर्णकालिक स्थायी परीक्षक मण्डल (Board of Examiners) संगठित हो, जिसमें अधिक-से-अधिक तीन सदस्य हों। इस मण्डल के दो कार्य होंगे :—

(क) विश्वविद्यालय अथवा कालेजों के शिक्षकों को 'वस्तुरूप प्रश्न' के निर्माण तथा प्रयोग के सम्बन्ध में परामर्श देना और पाठ्यक्रम के संशोधन के लिए मानदण्ड उपस्थित करना।

---

* We are convinced that if we are to suggest one single reform in University education it should be that of the examinations.

University Education Commiession Report. P. 328.

(ख) संबद्ध कालेजों का, समय-समय पर, गुणात्मक जाँच करना। इन जाचों के द्वारा कालेजों को, संख्यात्मक मान के अतिरिक्त, गुणात्मक मान की उपलब्धि के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

(३) उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के लिए मनोवैज्ञानिक जाँच की प्रश्नावली निर्मित की जाय। इसके द्वारा छात्रों की अन्तिम परीक्षा ली जाय। इसका प्रयोग विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष में प्रवेश पाने के लिए भी किया जा सकता है।

जब तक वस्तुरूप प्रश्न का निर्माण न हो जाय, तब तक के लिए परीक्षाओं के दोषों को निम्नलिखित रीतियों से कम किया जाय।

(१) सरकार के प्रशासनीय पदों के लिए विश्वविद्यालय की उपाधि आवश्यक न हो।

(२) प्रत्येक विषय की परीक्षा में जो अंक निर्दिष्ट रहें, उस अंक का एक-तिहाई पढ़ाई की पूर्ण अवधि के कार्य के लिए सुरक्षित रहे।

(३) कालेज की तीन वर्ष की डिग्री की पढ़ाई में एक अन्तिम परीक्षा के बदले कई कालिक (periodical) परीक्षाएँ ली जायँ।

(४) परीक्षकों का चुनाव काफी सावधानी से किया जाय। कोई भी व्यक्ति उस विषय में परीक्षक न बनाया जाय, जिसे उसने कम-से-कम ५ साल तक न पढ़ाया हो।

(५) परीक्षाओं में सफलता का मानदंड ऊँचा किया जाय और यह मानदंड सभी जगह, लगभग एक-सा रहे। प्रथम श्रेणी के लिए ७० प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी के लिए ५५ से ६६ प्रतिशत, तृतीय श्रेणी के लिए ४० प्रतिशत अंक अपेक्षित हैं।

ग्रामीण विश्वविद्यालय—भारत के वर्त्तमान विश्वविद्यालय, गुणात्मक त्रुटियों के अतिरिक्त, देश की उच्च शिक्षा की समस्या को स्पर्श मात्र करते हैं। नवीन और महान भारतीय गणतंत्र की उच्च शिक्षा का अधिकांश क्षेत्र अछूता है। मौजूदा विश्वविद्यालय का ढांचा शहरी है, जो कि देश के अधिकांश लोगों के वातावरण, उनकी मांगों, उनकी रुचियों आदि के अनुकूल नहीं हैं। अतः उच्च शिक्षा की ऐसी संस्थाओं का विकास अपेक्षित है, जो ग्रामीण भारत के असंख्य लोगों

को उनके वातावरण तथा जीवन से सम्बन्धित ज्ञान तथा कुशलता दे सकें तथा उन्हें प्रतिगामी बना सकें।‡

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए आयोग ने 'ग्रामीण विश्वविद्यालय की योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अनुसार ग्रामीण विश्वविद्यालयों का संगठन अनेक छोटे-छोटे तथा आवासिक पूर्व-स्नातक (undergraduate) कालेजों से हो। ये कालेज केन्द्रस्थ विश्वविद्यालय के चारों ओर वृत्ताकार रूप में स्थित रहें। इन कालेजों में प्रत्येक में लगभग ३०० छात्र हों। समस्त विश्वविद्यालयों में २५०० छात्र रहें। हर कालेज के शिक्षक अलग हों और अनिवार्य विषयों के अध्ययन के सभी सामान इसमें हों। किन्तु पुस्तकालय, लेबोरटरी तथा व्यायामशाला आदि कई कालेजों के लिए आयोजित हों। कालेजों की शिक्षा का उद्देश्य सामान्य शिक्षा के साथ-साथ विशिष्ट रुचियों को विकसित करना हो। पूर्व-स्नातक शिक्षा की अवधि में ही छात्रों को किसी विषय की विशेषीकृत शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए, जिसमें उसकी अभिरुचि हो तथा जिसके अध्ययन के लिए वह उत्सुक हो। यह विशेषीकृत शिक्षा केन्द्रस्थ विश्वविद्यालय अथवा व्यावसायिक स्कूल में दी जाय। इस पद्धति में कोई छात्र, एक ही समय, पूर्व-स्नातक कालेज तथा विश्वविद्यालय में शिक्षा-ग्रहण कर सकता है। कालेजों की शिक्षा में वृत्तिगत (Occupational) तैयारी सम्मिलित रहे। इन कालेजों के छात्रों का आधा समय अध्ययन तथा आधा समय व्यावहारिक कार्य में लगाया जाय।

प्रशासन:—आयोग की दृष्टि में विश्वविद्यालयों की प्रशासनीय पद्धति, कई तरह से, दोषपूर्ण थी। अतः विश्वविद्यालय शिक्षा के पुनर्गठन में विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के प्रशासनीय व्यवस्था में

Anyone can see that our present Universities besides some qualitative limitations, touch only the fringe of what is required in the way of higher education in the world's newest and most populous democracy.

‡ The general advance of rural India will call for ever-increasing range and quality of skill and training. To apply these and to meet the requirements of an educated citizenship, a system of rural colleges and universities is necessary.

University Education Commission Report, Vol. I—P. 574.

सुधार अत्यावश्यक था। इसके लिए आयोग ने निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें की।

१. विश्वविद्यालय शिक्षा समवर्ती सूची (Concurrent list) में रखी जाय।

२. केन्द्रीय सरकार के अधिकार, अर्थ, सुविधाओं के संयोजन, राष्ट्रीय नीति के प्रचालन, प्रशासन के मानदण्ड के निर्धारण आदि तक सीमित रहें।

३. विश्वविद्यालयों को अनुदान देने के लिए एक केन्द्रीय अनुदान आयोग (Central Grants Commission) नियुक्त हो। इस आयोग की सहायता के लिए कई विशिष्ट समितियाँ रहें।

४. कोई भी विश्वविद्यालय केवल संबद्धीय न रहे।

५. सभी सरकारी कालेज क्रमशः विश्वविद्यालयों के अंगीभूत कालेज हो जायं।

६. कालेजों की स्वीकृति। निर्धारित शर्तों की पूर्त्ति परही दी जाय।

७. कालेज की प्रबन्ध-समिति भली-भाँति संगठित हो।

८. विश्वविद्यालयों के दस अधिकारी अधिकारी इस क्रम में हो।

परिदर्शक (visitor), कुलपति, उपकुलपति, सिनेट, सिन्डिकेट, ऐकैडेमिक काउन्सिल, फैकल्टीज, बोर्ड आफ स्टडीज, अर्थ कमिटि, चुनाव कमिटि। भारत के गवर्नर-जेनरल (अब राष्ट्रपति) परिदर्शक हों। कुलपति सामान्यतः राज्य के राज्यपाल हों, उपकुलपति एक पूर्ण-सामयिक वेतन प्राप्त अधिकारी हों।

अर्थः—आयोग ने यह स्पष्ट कर दिया कि विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की अर्थिक स्थिति अत्यन्त असंतोषप्रद थी। उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आर्थिक साधनों के अभाव में उच्च शिक्षा के पुनर्गठन की महत्वपूर्ण योजनाएँ कार्यान्वित न हो सकेंगी। अतः यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की आर्थिक समस्याएँ हल की जायँ तथा इन्हें नयी योजनाओं में प्रचालन के लिए पर्याप्त आर्थिक अनुदान प्राप्त हो। इसके लिए आयोग ने निम्नलिखित मुख्य सिफारिशें कीं।

१. उच्च शिक्षा का आर्थिक उत्तरदायित्व राज्य ग्रहण करे।

२. प्राइवेट कालेजों को आवर्त्तक तथा अनावर्त्तक—दोनों ही

अनुदान दिये जायँ। आवर्त्तक अनुदान, निश्चित पद्धति के अनुसार दिया जाय।

३. इनकम-टैक्स के नियमों में संशोधन किया जाय, जिससे शिक्षा के कार्यों के लिए लोग दान देने में प्रोत्साहित हों।

४. आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए संस्थाओं को अतिरिक्त अनुदान दिये जायँ।

५. आगामी पाँच वर्ष में विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास के लिए सरकार १० करोड़ रुपये अलग से दे।

माध्यमिक शिक्षा आयोग

(Secondary Education Commission)

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में, स्वतन्त्र भारत के इतिहास की सबसे बड़ी घटना माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति थी। भारत सरकार के प्रस्ताव-पत्र, दिनांक २३ सितम्बर, १९५२ के अनुसार इस आयोग की नियुक्ति हुई। आयोग के अध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डाक्टर ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालिअर थे। इसके सदस्यों की संख्या ९ थी। आयोग को "भारत में माध्यमिक शिक्षा की वर्त्तमान स्थिति की सर्वाङ्गीण जाँच करने तथा इसके पुनर्गठन के परामर्श उपस्थित करने" का भार दिया गया। आयोग का उद्घाटन भारत के शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद के द्वारा ६ अक्तूबर १९५२ को हुआ। आयोग ने तत्क्षण अपना कार्य शुरू कर दिया। इसने एक लम्बी प्रश्नावली प्रसारित की, अनेक व्यक्तियों के बयान लिए तथा लगभग सभी प्रमुख स्थानों का दौरा किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट जून १९५३ में सरकार को अर्पित कर दी। स्वतंत्र भारत के आदर्शों, मान्यताओं तथा मांगों की पृष्ठभूमि में आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की वर्त्तमान स्थिति के मूल्यांकन के साथ-साथ इसके सुधार के लिए महत्वपूर्ण सुझाव उपस्थित किये। आयोग की रिपोर्ट बड़े आकार के ३०९ पृष्ठों में प्रकाशित हुई। रिपोर्ट के निष्कर्ष तथा सुझाव इतने महत्वपूर्ण तथा आकर्षक हैं कि इसका आद्योपान्त अध्ययन, हर शिक्षा-प्रेमी के लिए, अपेक्षित है। यहाँ इसके कुछ प्रमुख पहलुओं पर ही, अत्यन्त संक्षेप रूप में, ध्यान दिया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य—स्वतंत्र भारत की माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण के लिये आयोग ने देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दायित्वों का परिक्षण किया और कहा—

१. स्वतंत्र भारत न केवल स्वतंत्र है, बल्कि यहाँ एक धर्मनिरपेक्ष गणतांत्रिक राज्य प्रतिष्ठापित हुआ है।

२. यद्यपि भारत प्राकृतिक साधनों से समृद्ध है, इन साधनों के भलीभाँति उपयुक्त न होने के कारण यहाँ के निवासी सामान्यत: ग़रीब हैं और निम्न स्तर का जीवन बिताते हैं।

३. व्यापक दरिद्रता, शिक्षा की सुविधाओं की कमी आदि के कारण अधिकांश भारतीयों का ध्यान दिन-रात, रोटी-दाल की समस्या हल करने में केन्द्रित रहता है। इससे वे सांस्कृतिक विषयों तथा कार्यों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते।

अत: देश की शिक्षा-पद्धति को निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अभिप्रेत रहना चाहिए।

१. छात्रों में चरित्र का गठन हो, जिससे वे धर्म-निरपेक्ष गणतंत्र के सारे उत्तरदायित्वों का वहन कर सकें और देश का नैतिक अभ्युत्थान कर सकें।

२. छात्रों की व्यावहारिक तथा व्यावसायिक क्षमताएँ विकसित की जायँ, जिससे वे देश का आर्थिक उत्थान कर सकें।

३. छात्रों की साहित्यिक, कलात्मक तथा सभी सृजनात्मक भावनाएँ जागृत हों, जिससे वे अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और देश का सांस्कृतिक उत्थान कर सकें। इसके बिना एक प्रगतिशील राष्ट्रीय संस्कृति प्रादुर्भूत नहीं हो सकती।

माध्यमिक शिक्षा का सांगठनिक ढांचा—माध्यमिक शिक्षा के नये ढाँचे का निर्धारण आयोग ने इन बातों के विचार से किया—

(क) माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालय शिक्षा की केवल पृष्ठभूमि नहीं, अपितु स्वत: पूर्ण भी है। अत: यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के समाप्त करने पर छात्र किसी व्यवसाय में सीधे लग सकें और जीवन के उत्तरदायित्वों को वहन करने में समर्थ हो सकें।

(ख) उच्च शिक्षा के लिये वांछित बौद्धिक आधार तथा व्यावसायिक कुशलता—दोनों ही की प्राप्ति के लिए माध्यमिक शिक्षा की वर्त्तमान अवधि को कुछ बढ़ाना अपेक्षित है। अतः नये ढाँचे में माध्यमिक शिक्षा की वय-अवधि ११ से १७ हो और यह शिक्षा ७ वर्ष की हो।

(ग) कई कारणों से उच्च शिक्षा की अवधि बढ़नी नहीं चाहिये। अत: विश्वविद्यालयों के वर्त्तमान इन्टरमिडिएट कक्षाओं को हटा दिया जाय और इसके पाठ्य-क्रम का कुछ अंश माध्यमिक शिक्षा में ही सन्निविष्ट कर लिया जाय, कुछ अंश स्नातक पाठ्य-क्रम (Degree Course) में सम्मिलित कर लिया जाय। इस तरह विश्वविद्यालय का स्नातक अध्ययन-क्रम ३ वर्ष का होगा। विश्वविद्यालय आयोग ने भी ऐसी ही सिफारिश की है।

इन बातों की दृष्टि में आयोग ने सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा के संगठन के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें कीं।

१. माध्यमिक शिक्षा ४ या ५ वर्ष की प्राथमिक अथवा जुनियर बेसिक शिक्षा के बाद प्रारम्भ हो।

२. माध्यमिक शिक्षा के दो चरण हों:—

(क) मिडिल अथवा जुनियर माध्यमिक अथवा सीनियर बेसिक—३ वर्ष की शिक्षा।

(ख) उच्चतर माध्यमिक—४ वर्ष की शिक्षा।

३. विश्वविद्यालय की प्रथम उपाधि के लिए ३ वर्ष की शिक्षा हो।

४. जबतक माध्यमिक स्कूल का नया ढाँचा (उपरोक्त २) कार्यान्वित न हो, तबतक पुराने हाई स्कूल जारी रखे जायँ। इन स्कूलों से पास किये हुए छात्रों के लिए कालेजों में एक वर्ष का पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम आयोजित किया जाय।

५. व्यावसायिक कालेजों में नये उच्चतर माध्यमिक तथा पुराने हाई स्कूलों से पास किये हुए छात्र सीधे दाखिल हों। दूसरी श्रेणी के छात्रों को कालेजों में एक-वर्ष की पूर्व-विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त रहनी चाहिए।

६ छात्रों की विभिन्न रुचियों, शक्तियों तथा इच्छाओं की पूर्ति के लिए, जहाँ भी संभव हो सके, बहूद्देशीय (Multi-purpose) स्कूल स्थापित किये जायँ। इन स्कूलों से पास किये हुए छात्रों को विशेषीकृत अध्ययन के लिए, पोलीटेकनिक अथवा टेकनोलौजिकल संस्थाओं में भरती होने की सुविधा मिले।

७. कृषि-शिक्षा का प्रबन्ध सभी राज्यों के ग्रामीण स्कूलों में किया जाय।

८. बहूद्देशीये हाई स्कूलों के अंग के रूप में तथा स्वतंत्र रूप में टेकनिकल शिक्षा के स्कूल, पर्याप्त संख्या में, खोले जायँ। जहाँ तक संभव हो, टेकनिकल स्कूल औद्योगिक केन्द्रों के सन्निकट स्थापित हों। इनका कार्य उद्योगों से सहयोग के साथ चले।

बड़े शहरों में केन्द्रीय टेकनिकल स्कूल खोले जायँ, जो स्थानीय कई स्कूलों की माँगों की पूर्ति करें।

९. हर उद्योग के मालिक के लिए अपने कारीगरों को व्यावहारिक ट्रेनिंग पाने की सुविधा देना अनिवार्य रहे।

१०. टेकनिकल शिक्षा के प्रश्रय के लिये उद्योगों पर एक हलका उपकर लगाया जाय, जो कि "औद्योगिक शिक्षा उपकर" कहा जाय।

११. वर्त्तमान पब्लिक स्कूल सम्प्रति कायम रहें। इनके पाठ्य-क्रम राष्ट्रीय शिक्षा के सामान्य ढाँचे के मेल में हों। इन संस्थाओं को स्वावलम्बी होने की चेष्टा करनी चाहिए।

१२. आवासिक स्कूल, विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में, प्रचुरता से खोले जायँ।

शिक्षा के माध्यम और भाषाओं की शिक्षा—इस समस्या पर आयोग ने गंभीर विचार किया। समस्या के सम्बन्ध में आयोग के सामने विभिन्न मत प्रस्तुत किये गये। सबसे विवादास्पद प्रश्न अंग्रेजी था। आयोग की दृष्टि में अंग्रेजी का ठोस ज्ञान उच्च शिक्षा के सम्यक् परि-ग्रहण के लिए अत्यावश्यक है। अंग्रेजी का ज्ञान उन नये विषयों के अध्ययन के लिए भी अपेक्षित है, जो कि बहूद्देश्यीय स्कूल में शुरू किये जायंगे। अतः आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के प्रारम्भ से ही अंग्रेजी के अध्ययन की, वैकल्पिक रूप में, सिफारिश की। माध्यम तथा भाषाओं के सम्बन्ध में आयोग की प्रमुख सिफारिशें ये हैं :—

१. माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा हो। किन्तु विभिन्न भाषा बोलने वाले अल्प-संख्यकों के लिए

केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति की सिफारिशों के अनुसार खास सुविधाएँ दी जायँ।*

२. मिडिल स्कूलों की शिक्षा के स्तर पर, हर बच्चे को कम-से-कम दो भाषाएँ सिखलायी जायँ। अंग्रेजी तथा हिन्दी की शिक्षा जुनियर बेसिक शिक्षा के अन्तिम भाग में प्रारम्भ की जाय। किंतु एक ही वर्ष में दो भाषाओं की शिक्षा न शुरू की जाय।

३. उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर कम-से कम दो भाषाएँ पढ़ायी जायं, जिनमें से एक मातृभाषा या प्रादेशिक या राज्य भाषा हो।

पाठ्य-क्रम—माध्यमिक स्कूलों के प्रचलित पाठ्य-क्रम के विरुद्ध जो आक्षेप किये जाते थे, आयोग ने उनका परीक्षण किया और यह स्पष्ट किया कि प्रचलित पाठ्य-क्रम का वृत्त संकीर्ण है। यह नितान्ततः किताबी है। इसमें पाठ्य-विषय बहुत अधिक हैं। इसमें उन क्रियाओं का अभाव है, जिनसे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायता

---

† All these considerations lead to the conclusion that a study of English should be given due position in Secondry schools and facilities should be made available at the Middle School stage for its study on an optional basis,

Secondary Education Commission Report—P. 71.

* केन्द्रीय शिक्षा परामर्श-दात्री समिति ने सन् १९४९ ई० में अल्प-संख्यकों की शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया था।

जुनियर बेसिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। जिन स्कूलों में ४० ऐसे बच्चे हों जिनकी मातृभाषा, प्रादेशिक अथवा राज्य की भाषा से भिन्न हो, उन स्कूलों में कम-से-कम १ शिक्षक इन बच्चों को उनकी मातृ भाषा में शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया जाय। जहाँ प्रादेशिक और राज्य की भाषा मातृभाषा से भिन्न हो, वहां प्रादेशिक भाषा की शिक्षा जुनियर बेसिक स्कूल के तीसरे वर्ग से न पहले, न अन्तिम वर्ग के बाद, शुरू किया जाय। जो बच्चे प्रादेशिक भाषा से भिन्न मातृभाषा से प्राथमिक शिक्षा पाये हों, उन्हें माध्यमिक स्कूलों में दो वर्ष तक अपनी मातृ-भाषा में ही परीक्षा देने का हक रहे। जिन स्थानों में ऐसे बच्चों की संख्या अधिक हो, जिनकी मातृभाषा प्रादेशिक भाषा से भिन्न है, उन स्थानों के बच्चों के लिए मातृभाषा के माध्यम से पढ़ानेवाले विशिष्ट स्कूल के स्थापन की सुविधा दी जाय।

मिलती हो। यह किशोरों की विभिन्न क्षमताओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता, इसमें परीक्षा की प्रधानता रहती है तथा इसके द्वारा टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती।

इस स्थिति का एक कारण यह भी है कि प्रचलित पाठ्य-क्रमों के निर्माण के पीछे कोई स्पष्ट आदर्श या सिद्धान्त न हैं। विषयों के चुनाव छात्रों की वैयक्तित, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय विचारों से अपेक्षाकृत कम अनुप्राणित रहते हैं। अत: आयोग ने आधुनिक माध्यमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में उन आदर्शों, सिद्धांतों तथा मान्यताओं को अपनी दृष्टि में रखा, जो कि शिक्षा-शास्त्र के द्वारा स्वीकृत हैं तथा जो देश की वर्त्तमान परिस्थितियों में उपादेय हैं। इस पृष्ठ-भूमि में आयोग ने पाठ्य-क्रम निर्माण के निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किये —

१. पाठ्य-क्रम में उन सभी अनुभवों का सन्निवेश हो, जो छात्र स्कूल के जीवन के सभी क्षेत्रों—कक्षा, पुस्तकालय, लेबोरेटरी, खेल के मैदान आदि-में प्राप्त करता है।

२. पाठ्य-क्रम में इतनी विविधता तथा इतना लचीलापन हो कि वह वैयक्तिक विशेषताओं तथा आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित हो सके।

३. पाठ्य-क्रम अनिवार्य तथा नैसर्गिक रूप से सामाजिक जीवन से संबद्ध रहे।

४. पाठ्य-क्रम न केवल कार्य के लिए छात्रों को प्रस्तुत करे, बल्कि अवकाश को भलीभाँति बिताने के लिए भी प्रशिक्षित करे।

५. पाठ्य-क्रम विभिन्न स्वतंत्र विषयों में न बंटा हुआ हो, बल्कि विभिन्न प्रकार के ज्ञान-क्षेत्रों में बंटा हुआ हो, जो कि जीवन से सम्बन्धित हों।

इन सिद्धातों के आधार पर आयोग ने माध्यमिक स्कूलों का पाठ्य-क्रम इस प्रकार निर्धारित किया :—

१. मिडिल-स्कूल स्तर पर पाठ्य-क्रम में निम्नलिखित विषयों की शिक्षाएँ दी जायँ।

(१) भाषा (२) समाज - अध्ययन (३) सामान्य-विज्ञान (४) गणित (५) कला तथा संगीत (६) दस्तकारी (७) शारीरिक शिक्षा।

२. उच्च स्कूल तथा माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर शिक्षा के विषयों में विविधता लायी जाय। किंतु यहाँ भी निम्नलिखित विषय अनिवार्य रहें—

(१) भाषा (२) सामान्य विज्ञान (३) समाज अध्ययन (४) दस्तकारी ।

विविधता वाले विषयों में ७ समूह रहें :—

(१) मानवीय विषय (२) विज्ञान (३) टेकनिकल विषय (४) व्यापारिक विषय (५) कृषि (६) ललित कलाएँ (७) गृह-विज्ञान ।

विविधतावाले विषय हाई स्कूल अथवा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के द्वितीय वर्ष से शुरू किये जायँ ।

पाठ्य-पुस्तक—पाठ्य-पुस्तकों को उत्तम बनाने के विचार से हर राज्य में एक उच्च-शक्ति-प्राप्त पाठ्य-पुस्तक कमिटि (Text-Book Committee) संगठित की जाय । इस कमिटि में एक उच्च न्यायाधीश-भरसक हाईकोर्ट के न्यायाधीश, लोक-सेवा आयोग के एक सदस्य, एक उपकुलपति, एक हेड मास्टर, दो सुविख्यात शिक्षा-शास्त्री तथा लोक शिक्षा निर्देशक सदस्य रहें । यह कमिटि पाठ्य-पुस्तक के सम्बन्ध में कागज, छपाई, चित्र आदि के सम्बन्ध में स्पष्ट मानदण्ड निर्धारित करे ।

२. केन्द्रीय सरकार पुस्तक-चित्रण की कला के विकास के लिए एक विशिष्ट संस्था आयोजित करे अथवा वर्त्तमान कला स्कूलों को इसके लिए प्रोत्साहित करे ।

३. केन्द्रीय तथा राज्य-सरकार अच्छे चित्रों के ब्लौकों का एक संग्रहालय आयोजित करें । ये ब्लौक पाठ्य-पुस्तक कमिटि तथा प्रकाशकों को उधार दिये जायँ ।

४. हर विषय के लिए सरकार एक ही पाठ्य-पुस्तक निर्धारित न करे । उचित मानदण्ड रखने वाले कई पुस्तकें निर्धारित की जायं । शिक्षक इनमें से जिसे भी चाहें, चुनकर व्यवहृत करें । भाषा के विषय में हर कक्षा के लिए एक निश्चित पुस्तक निर्धारित की जाय, ताकि छात्रों का भाषा-ज्ञान क्रमिक हो ।

शिक्षण की गतिशील रीतियाँ—किसी पाठ्य-क्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसका संचालन उपयुक्त रीति से उपयुक्त शिक्षक के द्वारा हो । अच्छा से अच्छा पाठ्य-क्रम भी अनुपयुक्त शिक्षक के द्वारा तथा अनुपयुक्त रीति से कार्यान्वित होने पर सर्वथा

निष्फल हो जा सकता है।* अतः आयोग ने इस बात पर जोर दिया कि माध्यमिक शिक्षा के प्रस्तावित नये पाठ्य-क्रम का संचालन सही रीतियों से हो। आयोग के विचार से अच्छी शिक्षण-प्रणाली के निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

वह छात्रों में कार्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करे तथा इस कार्य को अच्छे से अच्छे ढंग से करने की उत्कट अभिलाषा जागृत कर दे।

वह नयी जानकारी को सार्थक तथा वास्तविक बनावे तथा ज्ञान और जीवन एवं स्कूल और समाज के बीच की खाई को दूर करे।

वह स्पष्ट चिन्तन की शक्ति दे, जो कि शिक्षित व्यक्ति से अपेक्षित है तथा जिसका महत्व, आज के युग में, जब कि मनुष्य को विभिन्न समस्याओं तथा स्थितियों पर ठंडे दिल से सोच-विचार करना पड़ता है, अत्यधिक है।

वह छात्रों की अभिरुचियों का वृत्त विस्तृत करे। एक संस्कृत व्यक्ति की रुचियाँ बहुमुखी होती हैं और यदि ये रुचियाँ स्वस्थ हुईं, तो निश्चय ही व्यक्तित्व समृद्ध होता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से देखे जाने पर आज की शिक्षण-पद्धति दोषपूर्ण है। वह न छात्रों में अपने कार्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करती है, न ज्ञान को जीवन से संबद्ध करती है, न स्कूल और समाज का सामंजस्य स्थापित करती है। इस पद्धति में शिक्षक शब्दों के वाग्जाल के द्वार छात्रों के दिमाग में, यांत्रिक ढंग से, बातें ठूँसते जाते हैं, जिनका कोई प्रयोजन छात्र को नहीं दीख पड़ता। इसके अतिरिक्त छात्रों में स्वतंत्र चिन्तन की शक्ति जागृत नहीं होती और उनकी रुचियाँ भी कुछ विषयों तक सीमित रहती हैं।

इन त्रुटियों के निराकरण तथा शिक्षण को प्रभावोत्पादक बनाने के उद्देश्य से आयोग ने शिक्षण की रीति के सम्बन्ध में ये सुझाव उपस्थित किये :—

---

‡ But every teacher and educationist of experience knows that even the best curriculum and the most perfect syllabus remain dead letter unless quickened into life by the right method of teaching and the right kind of teachers.

Secondary Education Commission Report. P. 102.

१—शब्दों के द्वारा ज्ञान देने के बदले शिक्षक कार्य-प्रणाली (Activily-method) तथा प्रोजेक्ट प्रणाली के द्वारा ज्ञान को उद्देश्यंपूर्ण, वास्तविक तथा सार्थक बनावें।

२—स्कूलों के कार्य-क्रम में "अभिव्यक्ति कार्य" को प्रश्रय दिया जाय, जिससे छात्र स्वयं ज्ञानार्जन करें तथा अपने नवार्जित ज्ञान का उपयोग करना सीखें।

३—अधिकतम मात्रा में ज्ञान देने की अपेक्षा शिक्षक की कोशिश यह रहे कि छात्र अध्ययन की रीतियों तथा स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानार्जन की प्रक्रियाओं में प्रशिक्षित हो जायँ।

४—छात्रों को "समूह में कार्य करने" के पर्याप्त अवसर दिये जायँ, जिससे वे समूहिक जीवन तथा सहयोग के गुणों से परिचित हो जायँ।

५—प्रभावोत्पादक शिक्षण के लिए उपयुक्त पुस्तकालय का होना अत्यावश्यक है। अतः हर माध्यमिक स्कूल में स्कूल-पुस्तकालय, वर्ग-पुस्तकालय तथा विषय-पुस्तकालय आयोजित हों। हर स्कूल में एक कुशल पुस्तकाध्यक्ष हो। स्कूल के सभी शिक्षकों को पुस्तकालय-प्रबन्ध की बुनियादी बातों की जानकारी रहनी चाहिए।

चरित्र की शिक्षा—आयोग ने अपनी रिपोर्ट के शुरू में ही इस बात को स्पष्ट कर दिया कि शिक्षा का एक बड़ा लक्ष्य छात्रों के चरित्र तथा व्यक्तित्व का प्रशिक्षण है। यह प्रशिक्षण इस भाँति होना चाहिए कि छात्रों की समस्त अन्तर्हित शक्तियाँ अधिकतम मात्रा में विकसित हों, साथ ही समाज का भी कल्याण हो। † किन्तु आधुनिक शिक्षा का एक बड़ा दोष यह है कि यह उन कार्यों की ओर बहुत कम ध्यान देती है, जिनके द्वारा चरित्र का निर्माण हो सकता है तथा वैयक्तिक ईमानदारी अथवा सामाजिक कर्तव्य के आदर्श प्रस्तुत होते हैं।

चरित्र की शिक्षा में आयोग ने निम्नलिखित तीन बातों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।

---

‡ We have made it clear that the supreme end of the educative process should be the training of the character and personality of the students.

Secondary Education Commission Report P. 119.

(क) चूँकि स्कूल समाज के अन्तर्गत एक छोटा समुदाय है, इसलिये जो दृष्टिकोण, मूल्य तथा व्यवहार समाज में प्रचलित हैं, वे स्कूल में भी प्रतिध्वनित होंगे। स्कूल में अनुशासनहीनता, असावधानी, श्रम के प्रति अनिष्ठा आदि बहुत-कुछ इसलिए भी हैं कि समाज में ये बातें मौजूद हैं। अत: चरित्र की शिक्षा केवल स्कूल ही तक सीमित नहीं रह सकती, बल्कि यह सामाजिक जीवन में भी अनिवार्य है। फिर भी शुरूआत स्कूल में होनी चाहिए और शिक्षकों को समाज की वास्तविकताओं के साथ-साथ वैसे आदर्श परिस्थितियों की सृष्टि, स्कूलों में, करनी चाहिए, जिनमें छात्र गृह तथा समाज की न्यूनताओं को मिटाने में समर्थ हो सकें। स्कूलों के कार्य केवल समाज के आदर्शों, मान्यताओं एवं व्यवहारों के संरक्षण नहीं, अपितु इनके दोषों के निराकरण, इनकी उन्नति और समृद्धि भी है।†

(ख) चरित्र की शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि स्कूल छात्रों के माता-पिता तथा समाज के लोगों का सहयोग प्राप्त करे।

(ग) चरित्र की शिक्षा किसी खास घंटे (period), किसी खास शिक्षक अथवा कुछ चुने हुए क्रियाओं तक ही सम्बन्धित नहीं रह सकती। इस शिक्षा में स्कूल के हर शिक्षक तथा हर कार्य को संलग्न रहना चाहिए।*

चरित्र की शिक्षा के अंग के रूप में आयोग ने अनुशासन की समस्या का परीक्षण किया और यह विचार व्यक्त किया कि जबतक स्कूलों से अनुशासनहीनता नहीं मिट जाती, तबतक शिक्षा के पुनर्गठन की कोई भी योजना, सही अर्थ में, सफल नहीं हो सकती।‡ आयोग ने पुनः स्पष्ट कर दिया कि अनुशासन की शिक्षा का

‡ We are convinced that it is the business of the school to train individuals who will not only be duly appreciative of their culture and good qualities of national character and national traditions but will also be able to analyse and evaluate it critically, to eschew whatever is weak or reactionary and to develop the qualities of character and intellect needed for the purpose.

Secondary Education Commission Report—P. 119-20.

† It is a project in which every single teacher and every Item of the school programme has to participate intelligently.

‡ No amount of improvement and reconstruction in education will bear much fruit if the schools themselves are undermined by indiscipline. Report P. 122.

उत्तरदायित्व केवल शिक्षकों पर नहीं है, बल्कि इसका उत्तरदायित्व माता-पिता, सामान्य जनता तथा सरकार पर भी हैं।* आयोग ने देश की राजनीतिक जीवन के उन प्रवृत्तियों की निन्दा की, जो चुनाव आदि के कार्य में अप्रौढ़ छात्रों की सेवाओं का उपयोग करती थीं। इसके दुर्गुणों की चर्चा करते हुए आयोग ने इस बात पर जोर दिया कि १७ वर्ष के नीचे के स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे विवादास्पद राजनीति के क्षेत्र में न लाये जायँ और न चुनाव के लिए उपयुक्त किये जायँ।† आयोग ने यह भी सिफारिश की कि विद्यार्थियों के बीच राजनीतिक नेताओं के भाषण सावधानी से दिये जायँ और वे छात्रों के उपयुक्त हों। छात्रों को अनुशासित रखने के लिए यह भी अपेक्षित है कि स्वयं शिक्षक भी अनुशासित रहें।

आयोग के अनुसार चरित्र-निर्माण में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग होता है। वस्तुतः शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती, जबतक कि इसके द्वारा छात्रों के मन में कुछ नैतिक सिद्धान्त पूर्णतः प्रतिष्ठित नहीं हो जाते।‡ स्कूलों में चरित्र की शिक्षा दी जाय या नहीं-इस सम्बन्ध में आयोग के सामने विभिन्न विचार पेश किये गये। इनके परीक्षण के पश्चात् आयोग ने यह विचार प्रकट किया कि संविधान की मान्यताओं के अनुसार स्कूलों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से नहीं दी जा सकती। यह शिक्षा स्वेच्छा पर ही आश्रित रह सकती है तथा स्कूल घंटे के बाद ही दी जा सकती है। आयोग ने यह भी कहा कि छात्रों का नैतिक प्रशिक्षण केवल वर्ग-शिक्षा से नहीं हो सकता, बल्कि यह प्रशिक्षण स्कूल, गृह तथा समाज के सामान्य तथा विशिष्ट जीवन से मिलना चाहिये।

---

* Disciplene therefore should be the responsibility of parents, teachers, the general public and the authorties concerned.

—Secondary Education Commission Report, P. 123.

† If therefore some of the unhealthy trends of political life are to be avoided in school life, a serious attempt should be made to see that children under the age of 17, who are in schools are not drawn into the vortex of controversial politics and are not utilised for election purposes.—Secondary Education Commission Report—P. 124.

‡ There is little doubt that the whole purpose of education is not fulfilled unles certain definite moral principles are inocculated in the minds of the youth of the country.

—Secondary Education Commission Report. P. 121

चरित्र-निर्माण के कार्य में आयोग ने, इतर-पाठ्य-क्रम (extra-curricular) व्यापारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया और यह कहा कि इन व्यापारों से, यदि ये भलीभाँति संचालित हों, छात्रों में बहुत से अच्छे गुणों तथा दृष्टिकोणों का अभ्युदय हो सकता है।† अतः आयोग ने इस बात की सिफारिश की कि छात्र स्काउट, नैशनल केडैट कोर, रेड क्रौस तथा अन्य सामाजिक हित के कार्यों में सक्रिय भाग लें। इन सभी बातों की पृष्ठभूमि में आयोग ने चरित्र की शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें कीं।

१—चरित्र की शिक्षा का उत्तरदायित्व स्कूल के सभी शिक्षकों पर रहे और यह शिक्षा स्कूल के हर कार्य के सिलसिले में दी जाय।

२—शिक्षकों तथा छात्रों में वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित हो और स्कूलों में स्वशासन की व्यवस्था हो, जिसमें छात्र विभिन्न उत्तरदायित्वों को ग्रहण करें।

३—सामूहिक खेल तथा अन्य सह-पाठ्यक्रम (Co-curricular) के कार्यों को विशेष महत्व दिया जाय। इनकी शैक्षणिक संभावनाओं का पूर्ण उपयोग किया जाय।

४—१७ वर्ष के नीचे के बच्चे राजनीतिक प्रचार तथा चुनाव आन्दोलनों में भाग न लें—इस उद्देश्य से विशिष्ट कानून पास किया जाय।

५—धार्मिक शिक्षा स्कूलों में दी जा सकती है किंतु वह स्वेच्छापूर्ण (Voluntary) हो तथा स्कूल के घंटे के बाहर दी जाय। यह शिक्षा धर्म से सम्बन्धित छात्रों को ही, उनके मां-बाप तथा प्रबन्धकों की सहमति से दी जाय।

६—स्कूल की शिक्षा में इतर-पाठ्य-क्रम के विषयों को आंगिक (integral) स्थान प्राप्त रहना चाहिए। सभी शिक्षक इन कार्यों में निश्चित समय दें।

७—राज्य सरकार स्काउट आन्दोलन को यथेष्ट आर्थिक सहायता दें तथा स्काउट कैम्प के आयोजन के लिए उपयुक्त स्थान प्रबन्धित करें। हर स्कूल अपने छात्रों को, समूहों में, इन कैम्पों में कुछ दिनों के लिए रहने की सुविधा दे।

---

† If they are properly conducted, they can help in the development of very valuable attitudes and qualities.

—Secondary Education Commission Report. P. 126.

८—एन० सी० सी० केन्द्रीय सरकार के अधीन की जाय, जो इसके सुप्रबन्ध, समुन्नति तथा प्रसार की व्यवस्था करे।

९—पूर्व-प्राथमिक चिकित्सा (First aid), सेन्ट जौन ऐम्बुलेन्स तथा रेड क्रौस के कार्यों में प्रशिक्षण की व्यवस्था सभी स्कूलों में भी जाय।

छात्रों को निर्देश तथा परामर्श—(Guidance and Consellling) अच्छी शिक्षा पद्धति की सफलता इस बात पर अवलंबित है कि छात्र को अपनी क्षमताओं एवं अपनी रुचियों का भान हो जाय तथा यह भी भान हो जाय कि इन क्षमताओं एवं रुचियों को किस भाँति और कहाँ तक वह विकसित करे कि समाज से वह अपना सही सामंजस्य स्थापित करने तथा अपने लिये उपयुक्त व्यवसाय प्राप्त करने में समर्थ हो जाय।† अतः हर माध्यमिक स्कूल में छात्रों को इसका निर्देश तथा परामर्श मिलना चाहिए कि छात्रों के उपयुक्त कौन-कौन से विषय हैं, जिनके अध्ययन से वे अधिकतम सफलता प्राप्त कर सकते थे। किंतु निर्देश तथा परामर्श का कार्य यांत्रिक ढंग से न होना चाहिए। बल्कि इसमें छात्रों की क्षमताओं एवं प्रवृत्तियों का पूर्ण अध्ययन तथा उनकी छान-बीन अपेक्षित है। अतः यह आवश्यक है कि इस कार्य के लिए सुयोग्य विशेषज्ञों की नियुक्ति हो, साथ ही शिक्षकों को भी इसके लिए प्रशिक्षित किया जाय। इन्हीं बातों को विचार से आयोग ने 'निर्देश तथा परामर्श" के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें कीं।

१—'निर्देश तथा परामर्श' के विषय पर सरकार उचित ध्यान दे।

२—विभिन्न व्यवसायों तथा उद्योगों की प्रवृत्तियों, कार्यों तथा महत्वों से छात्रों को अवगत कराने के लिए इनसे सम्बन्धित चलचित्र (Films) तैयार किये जायँ तथा इन्हें छात्रों को दिखलाया जाय। छात्रों को विभिन्न औद्योगिक स्थानों के भ्रमण भी कराये जायँ।

३—सभी स्कूलों को प्रशिक्षित पाठ्य-क्रम परामर्शदाताओं तथा भावी व्यवसाय निर्देशकों (Guidance officers and Career)

† The secret of good education consists in enabling the student to realise what are his talents and aptitudes and in what manner and to what extent he can develop them so as to achieve proper social adjustment and seek right types of employment.

Secondary Education Commissian Report, P. 131.

masters) की सेवाएँ, अधिकाधिक मात्रा में, क्रमशः उपलब्ध करायी जायँ।

४–केन्द्रीय सरकार विभिन्न प्रदेशों में परामर्शदाता अफसरों तथा भावी व्यवसाय-निर्देशकों के प्रशिक्षण केन्द्र खोले। इन केन्द्रों में हर राज्य, निर्धारित संख्या में, शिक्षकों तथा अन्य उपयुक्त व्यक्तियों को भेजे।

शारीरिक स्वास्थ्य—छात्रों के शारीरिक स्वास्थ्य की महत्ता प्रतिपादित करते हुए आयोग ने यह स्पष्ट कर दिया कि सभी राज्य-सरकारों को इसका उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए। आयोग ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि भारत में शारीरिक अस्वस्थता के शिकार छात्रों की संख्या अन्य देशों के छात्रों से कहीं अधिक है। अतः छात्रों का स्वास्थ्य एक ऐसा विषय है, जिसे किसी भी राज्य को उपेक्षित नहीं करना चाहिए। स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षा के तथा-कथित अधिक खर्च की चर्चा करते हुए आयोग ने यह विचार प्रकट किया कि इस प्रकार के खर्च की अस्वीकृति तथा कटौती, अर्थशास्त्र की दृष्टि से, युक्तिसंगत न है। अस्वस्थ नागरिकों की चिकित्सा के प्रबन्ध का खर्च स्वस्थ नागरिकों को उत्पन्न करने के खर्च से, कहीं ज्यादा पड़ता है। अतः सरकार को इस बात पर जोर देना चाहिए कि छात्रों का स्वास्थ्य स्कूल में ही इतना अच्छा हो जाय कि उनके अस्वस्थ रहने तथा अस्वस्थ होने की संभावनाएँ ही अत्यन्त कम हो जायँ। स्वास्थ्य की शिक्षा के लिए यह अपेक्षित है कि स्कूलों में स्वस्थ आदतों का निर्माण हो, स्वास्थ्य के संरक्षण तथा संवर्द्धन की शिक्षा मिले, छात्रों के स्वास्थ्य का निरीक्षण हो, बीमार छात्रों की चिकित्सा की व्यवस्था की जाय तथा छात्रों का भोजन संतुलित तथा पौष्टिक हो। इन बातों की दृष्टि में, आयोग ने शारीरिक स्वास्थ्य की शिक्षा के सम्बन्ध में ये सुझाव उपस्थित किये :—

१—हर राज्य में एक सुव्यवस्थित 'स्कूल चिकित्सा सेवा' संगठित किया जाय।

२—सभी छात्रों के स्वास्थ्य की पूर्ण जाच की जाय तथा उनकी व्याधियों की चिकित्सा की पूरी व्यवस्था की जाय।

३—कुछ शिक्षक पूर्व-प्राथमिक चिकित्सा कार्य में प्रशिक्षित किये जायँ।

४—छात्रावासों तथा सावासिक स्कूलों में छात्रों को पौष्टिक भोजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहे।

५—जहाँतक संभव हो सके, स्कूल के इर्द-गिर्द साफ रखे जायँ। इस कार्य में स्कूल भी सहायता करे। इसके द्वारा छात्रों को शारीरिक श्रम की उपयोगिता भी स्पष्ट हो जायगी।

६—छात्रों की शारीरिक शक्तियों के अनुसार उन्हें शारीरिक शिक्षा दी जाय।

७—छात्रों के शारीरिक कार्यों का पूरा लेखा रखा जाय।

८—४० वर्ष की अवस्था के नीचे के सभी शिक्षक स्कूल के शारीरिक कार्य में सक्रिय भाग लें।

९—शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण की सुविधाएँ विस्तृत की जायँ। इनके प्रशिक्षण में स्वास्थ्य-शिक्षा की सभी बातें शामिल रहें। इन शिक्षकों की सेवाएँ उसी योग्यता के अन्य शिक्षकों के समकक्ष ही रहें।

शिक्षक—आयोग के विचार में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की योजना में शिक्षकों की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण है। उनके वैयक्तिक गुण, उनकी शैक्षणिक योग्यता, उनका व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्कूल तथा समाज में उनका स्थान—ये सभी बातें ऐसी थीं, जिनपर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।* किसी स्कूल की नेकनामी या इस स्कूल का समाज के ऊपर-प्रभाव-दोनों ही इसमें कार्य करनेवाले शिक्षकों पर आश्रित रहते हैं। अतः शिक्षकों की विभिन्न समस्याओं के हल की चेष्टाओं को माध्यमिक शिक्षा के सुधार के कार्य में प्रथम स्थान मिलना चाहिए।†

शिक्षकों की वर्त्तमान स्थितियों का परीक्षण करते हुए आयोग ने यह विचार व्यक्त किया कि ये स्थितियाँ अत्यन्त असंतोषप्रद हैं तथा इनमें पर्याप्त सुधार अपेक्षित है। आयोग "सरकारी की

---

* We are, howrver, convinced that the most important factor in the contemplated educational reconstruction is the teacher—his personal qualities, his educational qualifications, his professional traning and the place he occupies in the school as well as in the community.

† Priority of consideration must therefore be given to the various problems connected with the improvement of thier status.

—Secondary Education Commission Report, P. 155.

आर्थिक कठिनाइयों से अपरिचित नहीं। फिर भी उसने स्पष्ट शब्दों में यह मत प्रकट किया "यदि शिक्षकों के वर्त्तमान असंतोष तथा नैराश्य को मिटाना तथा शिक्षा को, वास्तविक रूप में, राष्ट्र-निर्माण का साधन बनाना अभीप्सित है, तो यह नितान्त आवश्यक है कि उनके सामाजिक स्थान तथा उनकी सेवा की शर्तों में सुधार किया जाय।"*

शिक्षकों की विभिन्न समस्याओं के हल करने के उद्देश्य से आयोग ने निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें कीं—

१—हाई स्कूलों के शिक्षक 'ग्रैजुएट' हों तथा उन्हें शिक्षा-शास्त्र की डिग्री प्राप्त रहे। टेकनिकल विषयों को पढ़ानेवाले शिक्षकों को टेकनिकल शिक्षा में 'ग्रैजुएट' रहना चाहिए। साथ ही उन्हें इसके शिक्षण का प्रशिक्षण पाया रहना चाहिए।

२—एक ही योग्यता के तथा एक ही तरह के कार्य करनेवाले शिक्षकों को एक तरह का वेतन-क्रम प्राप्त हो, चाहे वे किसी भी तरह के स्कूल में कार्य करते हों।

३—शिक्षकों के वेतन-क्रम की जाँच तथा उपयुक्त वेतन-क्रम के निर्धारण के लिए विशिष्ट कमिटियाँ नियुक्त की जायँ।

४—शिक्षकों को अपने भविष्य तथा अपने बच्चों के भविष्य के सम्बन्ध में निश्चिन्त रखने के लिए त्रिमुखी साहाय्य योजना Triple Benifit Scheme) सभी राज्यों में प्रचालित किया जाय। इस योजना के अनुसार शिक्षकों को पेन्शन, प्रोविडेन्ट फंड तथा इन्श्योरेन्स—ये तीनों लाभ प्राप्त होंगे।

५—शिक्षकों की शिकायतों को सुनने तथा उनकी मांगों पर विचार करने के लिए निर्णायक-मण्डल या समितियाँ कायम की जायँ।

६—शिक्षकों के भारमुक्त होने की अवस्था ६० वर्ष हो, किंतु इसके लिए लोक-शिक्षा निर्देशक की स्वीकृति अपेक्षित है।

७—शिक्षकों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, स्कूल की सारी अवधि में, दी जाय।

---

* But we are convinced that, if the teachers' present mood of discontent and frustration is to be removed and education is to become a gennuine nation-building activity. it is absolutely necessary to improve their status and their condition of service.

Secondary Education Commission Report, P. 155-56.

८ - शिक्षकों को निःशुल्क चिकित्सा प्राप्त रहे।

९ —'प्राइवेट ट्यूशन' की प्रथा बन्द कर दी जाय।

१०—हेडमास्टर के पद के वेतन आदि काफी आकर्षक बनाये जायँ, जिससे इन पदों पर सुयोग्य व्यक्ति उपलब्ध हो सकें। शिक्षकों की सुविधाओं की वृद्धि के लिए आयोग ने अन्य कई सिफारिशें कीं।

इस सम्बन्ध में आयोग ने शिक्षक-प्रशिक्षण स्कूलों तथा महाविद्यालयों के सम्बन्ध में भी कुछ सुझाव उपस्थित किये। उनमें प्रमुख ये हैं :—

१ – प्रशिक्षण विद्यालय दो तरह के हों:—

(क) स्कूल-परित्याग प्रमाणपत्र पानेवाले व्यक्तियों के लिये, जिनके लिए २ वर्ष का प्रशिक्षण अपेक्षित है।

(ख) स्नातकों के लिए, जिनके लिए १ वर्ष का प्रशिक्षण अभी आवश्यक है। यह अवधि भी २ वर्ष की जाय।

पहली श्रेणी के विद्यालय विशिष्ट बोर्ड के द्वारा अनुशासित रहें। दूसरी श्रेणी के विद्यालय विश्वविद्यालय से संबद्ध रहें।

२—प्रशिक्षण विद्यालयों मे पुनर्जीवन पाठ (refresher course) आयोजित किये जायँ।

३—सभी प्रशिक्षण विद्यालयों में आवास की सुविधाएँ रहें, जिससे सामुदायिक जीवन व्यतीत किया जा सके।

परीक्षा तथा योग्यता-निर्धारण— आयोग के विचार में परीक्षा तथा योग्यता का निर्धारण शिक्षा-पद्धति में प्रमुख स्थान रखता है। * इसके द्वारा छात्रों के माता-पिता तथा शिक्षकों को समय पर यह पता चलता है कि छात्रों की प्रगति कितनी हुई है तथा किसी स्तर पर उनकी योग्यता क्या है। समाज को भी इनके द्वारा यह मालूम होता है कि उनके स्कूल अपने उत्तरदायित्व को सन्तोषप्रद रूप में वहन कर रहे हैं या नहीं। छात्रों को भी इसके द्वारा अध्ययन की प्रेरणा मिलती है। अतः छात्र, माता-पिता, शिक्षक और समाज—सबों की दृष्टि से परीक्षा तथा योग्यता-निर्धारण उपादेय है।

किंतु परीक्षा की प्रचलित पद्धति कुछ इस ढंग की है कि इसके

*The subject of examination occupies an important place in the field of education.
Secondary Education Commission Report P. 148

द्वारा लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। आन्तरिक तथा वाह्य दोनों ही परीक्षाएँ छात्रों की बौद्धिक क्षमताओं तथा योग्यता की जांच करती हैं। यह जांच भी सही-सही नहीं हो पाती। छात्रों की अन्य क्षमताओं तथा कार्यों की जांच की कोई चेष्टा नहीं की जाती। आज की परीक्षाएँ, अधिकतर, लेख-प्रणाली के प्रश्नों पर आधारित रहती हैं, जिनके मूल्यांकन में परीक्षकों की वैयक्तिक इच्छाओं, रुचियों एवं विचारों का प्रभुत्व रहता है। फलस्वरूप यह मूल्यांकन बहुधा गलत होता है और वस्तु-स्थिति का सही निर्धारण नहीं कर पाता। एक ही प्रश्नोत्तर कुछ परीक्षकों से ६० प्रतिशत अंक प्राप्त करता है तो कुछ परीक्षकों के द्वारा ४० प्रतिशत अथवा ७० प्रतिशत। अतः यह निष्कर्ष गलत नहीं कि "आज की परीक्षाएँ छात्रों की बौद्धिक क्षमताओं तथा उपलब्धियों का भी सही परिज्ञान हमें नहीं दे पातीं"* अन्य क्षमताएँ तथा उपलब्धियाँ तो अछूती रह जाती है।

आयोग ने इस विचार का भी परीक्षण किया जो परीक्षाओं के हटाने के पक्ष में है। आयोग ने इस विचार से अपनी सहमति न प्रकट की। आयोग की दृष्टि में, परीक्षाओं, विशेषतः वाह्य परीक्षाओं (external examination) का किसी भी शिक्षा पद्धति में, निज महत्व है। वाह्य परीक्षाएँ, सुनिश्चित लक्ष्य तथा मूल्यांकन के मान-दण्ड के निर्धारण के द्वारा, छात्र तथा शिक्षक दोनों को ही अच्छे कार्य की प्रेरणा देती हैं।† वाह्य परीक्षा का एक बड़ा लाभ यह भी है कि एक स्कूल दूसरे स्कूल से अपनी उपलब्धिओं की तुलना कर सकता है।

परीक्षाओं के इन लाभों की दृष्टि में, इनके हटाने की बात युक्ति-संगत न है। आवश्यक यह है कि परीक्षाओं की प्रचलित रीति में सुधार किया जाय। इसके लिए आयोग ने ये सिफारिशें उपस्थित कीं :—

---

*It may, therefore, be fairly infered that as at present conducted, examinations do not help us to evaluate correctly even the intellectual attainments of the pupils.

Secondary Education Commission Report-P. 145.

†Nevertheless, examinations and external examinations—have a proper place in every scheme of education. External examinations have stimulating effect both on the pupils and on the teachers by providing. well—defined goals and objective standards of evaluation.

Secondary Education Commission Report—P. 147.

१ वाह्य-परीक्षाओं की संख्या कम कर दी जाय। लेख-प्रणाली की जांच के दोषों को भी कम किया जाय। इसके लिए यह अपेक्षित है कि प्रश्नों के प्रकार बदल दिये जायं तथा वस्तुरूप-प्रश्न (objective tests) व्यवहृत हों।

२ छात्र की सर्वांगीण प्रगति की जांच तथा उसके भविष्य के मार्ग-निर्धारण के लिए यह जरूरी है कि हर छात्र का एक लेखा रखा जाय, जिसमें उसकी पूर्ण अवधि के कार्य तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियाँ अंकित रहें।

३ छात्रों की अन्तिम जांच में आन्तरिक जांच तथा उनके लेखा की बातों पर उचित ध्यान दिया जाय।

४ अंक के बदले सांकेतिक चिह्न सभी जांचों के मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त किये जायं।

५ माध्यमिक शिक्षा के अन्त में एक सार्वजनिक परीक्षा हो।

६ छात्रों के प्रमाणपत्रों में 'सार्वजनिक परीक्षा के फलों के अतिरिक्त आन्तरिक जांचों तथा लेखा की बातों का सारांश भी अंकित किया जाय।

७ अन्तिम सार्वजनिक परीक्षा में विभागीय परीक्षा (compartmental) पद्धति प्रचालित की जाय।

प्रशासन—शिक्षा के पुनर्गठन की किसी भी योजना में, जिसमें एक बड़े पैमाने पर अनेक तरह की संस्थाओं के विस्तार की परिकल्पना की गयी हो, प्रशासनीय विभाग पर, जिसके जिम्मे शिक्षा के प्रसार तथा सुव्यवस्थित विकास का उत्तरदायित्व रहता है, पूरा ध्यान देना आवश्यक है।* आयोग के विचार में शिक्षा की प्रशासनीय पद्धति, कई तरह से, दोषपूर्ण है। इन दोषों में शिक्षा विभाग में द्वैध शासन का प्रचलन, सरकार के विभिन्न विभागों में सहयोग की कमी, निरीक्षण की गलत रीतियाँ, निरीक्षकों में पर्याप्त क्षमताओं की कमी, स्कूलों के प्रबन्ध में सुव्यवस्था का अभाव आदि प्रमुख हैं। इन त्रुटियों

---

*In any scheme of educational reconstruction which envisages a large scale development of educational institutions of diverse varieties, it is necessary to consider carefully the administrative machinery that should be responsible for the spread of education and for its orderly development

Secondary Dducation Commission Report-P. 177.

के निराकरण तथा शिक्षा-प्रशासन को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से आयोग ने कई सिफारिशें कीं। उनमें मुख्य ये थीं :—

१ लोक-शिक्षा निर्देशकों पर ही शिक्षा मंत्री को परामर्श देने का प्रधान उत्तरदायित्व रहे। इसके लिए यह आवश्यक है कि उनके पद का स्तर कम-से-कम संयुक्त सचिव (Joint Secretary) का रहे तथा उन्हें मंत्री को सीधे परामर्श देने का अधिकार रहे।

२. माध्यमिक शिक्षा के सभी बातों के लिए एक 'बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन' कायम किया जाय, जिसके अध्यक्ष लोक-शिक्षा निर्देशक रहें। इसी बोर्ड की एक उप-समिति परीक्षाओं की देख-भाल करे।

३. शिक्षकों के प्रशिक्षण की सुव्यवस्था तथा समुन्नति के लिए एक 'टीचर्स ट्रेनिंग बोर्ड' स्थापित किया जाय।

४. केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति पूर्ववत कायम रहे। हर राज्य में भी इस तरह की राज्य शिक्षा परामर्शदात्री समिति कायम की जाय।

५. इन्सपेक्टर का कार्य हर स्कूल की समस्याओं का अध्ययन करना, इनके सम्बन्ध में परामर्श देना तथा इन परामर्शों को कार्यान्वित करने में शिक्षकों की सहायता करना है।

६. स्कूलों की स्वीकृति तभी दी जाय जब वे स्पष्टतः निर्धारित शर्तों की पूर्ति करते हों तथा निर्दिष्ट मानदण्ड को सुरक्षित रखते हों।

७. हर स्कूल की प्रबन्धकारिणी समिति सरकार से 'रजिस्टर्ड' रहे। स्कूल के हेडमास्टर इस समिति के पदेन सदस्य रहें। स्कूलों के आन्तरिक शासन में कोई भी सदस्य हस्तक्षेप न करे। हर प्रबन्धकारिणी समिति शिक्षकों के वेतन, छुट्टी आदि की शर्तें, निश्चितता पूर्वक, तय कर दे।

अर्थ—आयोग ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसके द्वारा प्रस्तावित माध्यमिक शिक्षा के सुधार की सिफारिशों में महत्वपूर्ण सिफारिशें ऐसी हैं, जिनके कार्यान्वित करने में काफी रुपये की जरूरत है।*

---

*While some of the recommendations we have made may possibly be implemented without undue strain on the financial resouces of the State or of the centre, the most important of our recommendations do require substantial financial help if they are to be carried out successfully.

—Secondary Education Commission Report-P. 208.

आयोग यह भी जानती थी कि राज्य की सरकारों – जिनके ऊपर माध्यमिक शिक्षा के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व था—की आर्थिक क्षमताएँ इन कार्यों के लिए असमर्थ थीं। अत: आयोग के विचार में यह जरूरी है कि केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा, विशेषत: टेकनिकल शिक्षा तथा नागरिकता की शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व अपने ऊपर भी ले।* यह भी आवश्यक है कि शिक्षा के लिये पर्याप्त, धन प्राप्त करने के उद्देश्य से, नये प्रकार के कर लगाये जायँ। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने नयी योजना के आर्थिक पक्ष के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव उपस्थित किये।

१. माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन तथा उन्नति के कार्य में केन्द्रीय तथा राज्य का पूर्ण सहयोग स्थापित हो।

२. व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए एक केन्द्रीय 'बोर्ड आफ वौकेशनल एजुकेशन' कायम किया जाय।

३. केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन का कुछ उत्तरदायित्व सीधे ग्रहण करे और इसके लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दे।

४. माध्यमिक स्तर पर टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए एक उपकर लगाया जाय जो कि 'औद्योगिक शिक्षा-उपकर' कहा जाय।

५. रेल, यातायात, डाक तथा तार जैसे उद्योगों तथा संस्थाओं —जिनका राष्ट्रीय करण हो चुका है—की आय का कुछ हिस्सा खास तरह की टेकनिकल शिक्षा के विकास के लिए दिया जाय।

६. शिक्षा के लिए दिये गये दान की रकम पर किसी प्रकार का उपकर न लगाया जाय।

७. शिक्षा-संस्थाओं के द्वारा खरीदे जाने वाले वैज्ञानिक यन्त्रों, सामनों तथा पुस्तकालय की पुस्तकों पर चुंगी न लगायी जाय।

---

*We have already expressed the view that the centre is not absolved of all responsibility in regard to secondary education, particularly those aspects which have a bearing on the general economic development of the country and the training for citizenship.

Secondary Education Commission Report—P. 208.

शिक्षा की प्रगति (१९४७-१९५६)

इस अध्याय के सामान्य परिचय में हमने देखा है कि स्वतंत्र भारतके इतिहास का प्रथम अध्याय विषम राजनीतिक परिस्थितियों, साम्प्रदायिक कलहों, महंगी और दुर्भिक्ष के बीच प्रारम्भ हुआ। हमने देखा है कि इन परिस्थितियों के सामाधान में सरकार के ध्यान तथा सार्वजनिक कोष-दोनों ही पर भारी दबाव पड़ा। फिर भी, जैसा कि हम संक्षेप में पहले हीं कह चुके हैं, स्वतंत्रता के विगत १० वर्षों में भारत में, शिक्षा के हर क्षेत्र में, अभूतपूर्व प्रगति हुई। शिक्षा के प्रसार के अतिरिक्त, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति की ओर भी सरकार ने पर्याप्त ध्यान दिया। शिक्षा के पुनर्गठन का जो-जो योजनाएँ बनायी गई तथा जो-जो आयोग नियुक्त हुए-उनके विवरण हम पहले दे चुके हैं। शिक्षा के प्रसार तथा उन्नति के कार्य में इन योजनाओं तथा आयोगों की सिफारिशें सरकार के समक्ष बराबर रहीं, यद्यपि, अनेक कठिनाइयों के कारण अभी तक, ये पूर्णरूप से कार्यान्वित न हो पायी हैं। नीचे हम स्वतंत्र भारत के १० वर्ष के जीवन में, शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में जो-जो प्रगति हुई, उनका संक्षिप्त परिचय उपस्थित करते हैं।

प्राथमिक तथा बुनियादी शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा का प्रसार स्वतंत्र भारत की शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टाओं में, प्रथम स्थान रखता है। हमने देखा है कि भारत के संविधान में सरकार के ऊपर यह दायित्व आरोपित किया गया कि वह १० वर्षों की अवधि में ६–१४ वर्ष के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कर दे। संविधान का यह निर्देश प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी सरकार की सारी योजनाओं तथा क्रियाओं का प्रकाश-स्तम्भ रहा। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा का, इस अवधि में, तीव्र विस्तार हुआ। सन् १९४७ ई० में भारत के प्रमुख प्रान्तों में प्राथमिक स्कूलों की संख्या १,३४,९६६ थी, जिनमें १,००,४७ ३१७ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।* सन् १९५३ ई० में इन्हीं प्रान्तों में प्राथमिक स्कूलों की संख्या १, ०, २८५, तथा छात्रों की संख्या १, ५६, ६५,०५६ हो गयी।† सन् १९५४ ई० में समस्त

* Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1947-52. P. 45.!

† India 1955-Publications Division-Govt. of India-Ministry of Information & Broadcasting-P. 334

भारत में कुल प्राथमिक स्कूलों की संख्या २,३६, ११८ थी, जिनमें २१०००००० छात्र भरती थे।* इन स्कूलों पर कुल मिलाकर ४७·३६ करोड़ रुपये खर्च हो रहे थे।†

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उद्देश्य से आसाम (१९४७), बम्बई (१९४७), मध्य भारत (१९४९), तथा विन्ध्य प्रदेश (१९५२) में कानून पास किये गये।

केन्द्रीय शिक्षा-परामर्श-दात्री समिति के परामर्श के अनुसार भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि ६-१४ वर्ष के वय-वर्ग के बच्चों की अनिवार्य शिक्षा का रूप, बुनियादी शिक्षा हो। इस निश्चय के पहले से ही प्राथमिक शिक्षा से लोगों को असंतोष हो रहा था और यह आवश्यक समझा रहा था कि प्राथमिक शिक्षा को बुनियादी शिक्षा की ओर मोड़ा जाय। सरकार के निश्चय ने इन चेष्टाओं को सार्वजनिक तथा देश-व्यापी रूप दिया। अत: सन् १९४७-५६ की अवधि में प्राथमिक स्कूलों को बुनियादी स्कूलों में परिवर्तित करने की पूरजोर चेष्टाएँ शुरू हुई। फलस्वरूप सन् १९५३ ई० में जुनियर बेसिक स्कूलों की संख्या (जिनमें उत्तर-प्रदेश के बुनियादी प्राथमिक स्कूल शामिल हैं) ३३, ७३९ हो गयी। यद्यपि बुनियादी शिक्षा सामान्य शिक्षा पद्धति से उच्चतर सिद्ध हो चुकी है, इस शिक्षा की उपलब्धियाँ उतनी नहीं हुई, जितनी कि लोगों को आशा थी।× इसका प्रधान कारण यह था कि बुनियादी शिक्षा को उचित नीति से संचालित करने वाले सुयोग्य शिक्षकों की नितान्त कमी थी। बुनियादी शिक्षा की मान्यताएँ शिक्षकों से बहुत अधिक अपेक्षा रखती हैं, जोकि प्रादुर्भूत न हुई।

शिक्षकों का प्रशिक्षण—प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षित होना अत्यावश्यक है। स्कूलों की वृद्धि के साथ-साथ शिक्षक के प्रशिक्षण की आवश्यकता भी

* India 1956.........Publications Divisions P. 268

† " " " "

× While the superiority of Basic over the old system is admitted by almost every one, results have not always been commensurate with the hopes entertained about the system.

Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1947-52.P.

अधिक स्पष्ट होने लगी। फलस्वरूप, सरकार का ध्यान शिक्षण की सुविधाओं के विस्तार की ओर गया; और सन् १९४८-५३ के बीच प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई। सन् १९४७ ई० में प्राथमिक स्कूलों में कुल ५६१,००० शिक्षक थे, जिनमें ५८.२ प्रतिशत प्रशिक्षित थे। इस वर्ष ट्रेनिंग स्कूलों में, औसत रूप से, ४०००० छात्र भरती थे। सन् १९५३ में इनकी संख्या प्रतिवर्ष ७०,००० हो गयी।* साथ ही, बहुत से सामान्य ट्रेनिंग स्कूलों को बेसिक ट्रेनिंग स्कूलों में परिवर्तित किया गया। सन् १८४८-५३ के बीच शिक्षकों के प्रशिक्षण के खर्च में भी काफी वृद्धि हुई। सन् १९४८ में इस शिक्षा पर केवल १०६ करोड़ रुपये खर्च हो रहे थे। सन् १९५३ ई० में यह खर्च बढ़कर २०९ करोड़ हो गया।†

शिक्षकों का वेतन—प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों की वेतन-वृद्धि की ओर भी कुछ चेष्टाएँ हुईं। केन्द्रीय वेतन आयोग (Central pay Commission) की सिफारिशों के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने संशोधित वेतन-क्रम को सभी केन्द्रीय राज्यों में लागू करने का परामर्श दिया, इसके अनुसार मैट्रिक ट्रेन्ड शिक्षकों का वेतन-क्रम ६८-४-१२०-५ १७० रखा गया तथा अप्रशिक्षित मैट्रिक शिक्षकों का वेतन-क्रम ५५-३-८५-४-१२५-५-१३० और अप्रशिक्षित अ-मैट्रिक शिक्षकों का वेतन-क्रम ३५-१-४०-२-९० निर्धारित किया गया। महँगी भत्ता अलग से मिलता था। इस तरह, केन्द्रीय प्रशासित किसी भी क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षकों का वेतन, सन् १९५३ में, १०० रु० प्रतिमास से कम न था।‡

केन्द्रीय सरकार के अनुकरण पर सभी राज्य-सरकारों ने भी प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के वेतन-क्रम में सुधार की चेष्टाएँ कीं। इनके फलस्वरूप सन् १९५१-५२ में अधिकांश राज्यों में शिक्षकों का न्यूनतम वेतन ३० रु० प्रतिमास हो गया, जबकि १९४७-४८ में यह १२-१५ रु० था।

बिहार—बिहार राज्य में भी सन् १९४७ के पश्चात् प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के वेतन के सुधार की ओर ठोस कदम उठाया गया। सरकार के आज्ञापत्र नं० ३८४९, दिनांक २७ मई के अनुसार प्राथमिक

---

* Humayun Kabir-Education in New India-P. 7.

† Quniquennial Review-Progress of Education in India P. 51.

‡ Do „ „ P. 52.

स्कूलों के शिक्षकों के लिए निम्नलिखित वेतन-क्रम १ ली अप्रैल १९४९ से लागू किये गये।*

प्रशिक्षित ग्रैजुएट — ७५-४-९५-इ० बी० ५-१२०—ई०बी०

अप्रशिक्षित ग्रैजुएट,—
आई० एस-सी०, आई०ए० (सी०टी०) ६०-२-८०—इ० बी—२-१००
अप्रशिक्षित आई० ए०—हेडमास्टर —४५-२-५५ ई० बी० २-७५
असिस्टेंट ,, —४०......

मैट्रिक सी० टी० —४५-२-५५ इ० बी० २-७५
अप्रशिक्षित मैट्रिक
अथवा वी० एम० सी० टी० —४०-१-५० इ० बी० १-६०

अमैट्रिक प्रशिक्षत— —३०—१-४०
एम० भी० जी० टी० या इ० टी० —३५-२-४५ इ० बी० १-५५
संस्कृत, फारसी आदि के शिक्षक —४०-१-५० इ० बी० १-६०
यू० पी० जी० टी० या इ० टी० —२५-½—३५
अन्य अप्रशिक्षित —२५—१—३०

वेतन के अतिरिक्त प्रतिमाह १० रुपया महंगी भत्ता हर शिक्षक को स्वीकृत किया गया।

१ ली अप्रिल १९५५ से उपर्युक्त वेतन-क्रम में पुनः सुधार किया गया और अ-मैट्रिक प्रशिक्षित शिक्षकों का वेतन-क्रम ३०-१-४० से बढ़ाकर ३५-१-४५ प्रतिमाह किया गया।+

बिहार सरकार की एक प्रस्तावित योजना के अनुसार प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के वेतन-क्रम में पुनः सुधार किया जानेवाला है, जिसके अनुसार प्रशिक्षित ग्रैजुएट तथा प्रशिक्षित इन्टरमिडिएट शिक्षकों के वेतन-क्रम पूर्ववत रहेंगे। किंतु निम्नलिखत योग्यता के शिक्षकों के वेतन-क्रम इस प्रकार होंगे—

---

*Letter No. 3849, Dated the 27th May 1949, Government of Bihar, Education Department.

+ Letter No. 1803, Dated the 7th March 1956, Government of Bihar, Education Department.

अप्रशिक्षित इन्टरमिडिएट या प्रशिक्षित मैट्रिक	—५०-२-६० इ० बी० ६०
प्रशिक्षित अ-मैट्रिक	—४०-२-५० इ० बी० १-६१-२-७५
अप्रशिक्षित मैट्रिक	—४०-२-५० इ० बी० १-६०
अप्रशिक्षित अ-मैट्रिक तथा प्रशिक्षित यू० पी०	—३०-१-४०

इस तरह सन् १९४७ के पश्चात् प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के वेतनमें, सभी राज्यों में, वृद्धि हुई। कहीं-कहीं तो यह वृद्धि चौगुनी और पाँचगुनी हुई। किंतु वस्तुओं के मूल्य की वृद्धि के कारण यह वृद्धि शिक्षकों की स्थिति सुधारने में विशेष सफल न हुई। और यह मानना पड़ता है कि प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों का वर्त्तमान वेतन ऐसा नहीं है कि वह उपयुक्त नर-नारियों को शिक्षण कार्य की ओर आकृष्ट कर सके।*

प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलों के प्रशासन के क्षेत्र में १९५४ ई० में, बिहार में, एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इसी वर्ष मार्च १९५४ में राज्य के विधान-मंडल ने "बिहार लोकल सेल्फ गवर्नमेंट अमेन्डिंग एण्ड वैलिडेटिंग ऐक्ट १९५४" पास किया, जिसके अनुसार प्रचलित लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट कानून में, शिक्षा से सम्बन्धित, कई परिवर्तन किये गये।† इसके पूर्व ही २५ जनवरी १९५४ में बिहार के राज्यपाल ने एक अध्यादेश के द्वारा उक्त कानून की मुख्य बातें, अस्थायी रूप में, चालू कर दी थीं। नये कानून के अनुसार हर जिले में एक जिला शिक्षा कोष (District Education Fund) कायम किया गया,‡ जिसमें जिला बोर्ड को प्राप्त होनेवाले सभी शिक्षा-सम्बन्धी रुपये संगृहित होते हैं। यह कोष जिला बोर्ड को ही सौंपा गया। किन्तु इस कोष के संचालन का अधिकार जिला शिक्षा अधीक्षक

---

* It must however be admitted that very much more will have to be done before we can build up a cadre of really competent and devoted teachers.

Humayun Kabir—Education in New India—P. 4.

† The Bihar Local Self-Government (Amending and Validating) Act, 1954.

‡ There shall be formed for each dist. a fund to be called the "District Education Fund."

Section 45 A.

(District Superintendnt of Education) को दिया गया, जिसकी नियुक्ति सरकार के द्वारा होती है।* जिला शिक्षा-अधीक्षक को यह भी अधिकार प्राप्त है कि वह, जिला बोर्ड की सहमति से, सहायता-प्राप्त स्कूलों के शिक्षकों अथवा अन्य तरह के कार्यकर्ताओं की नियुक्ति, पदोन्नति, बर्खास्तगी आदि करे। यदि इस सम्बन्ध में जिला शिक्षा-अधीक्षक तथा जिला बोर्ड में मतभेद उपस्थित हो जाय, तो विवादास्पद प्रश्न ऐसे अधिकारी के पास भेजा जाय, जो सरकार के द्वारा निर्दिष्ट किया जाय। उस अधिकारी का निर्णय अन्तिम होगा।†

कानून के अनुसार हर जिले में एक परियोजना कमिटि (Planning Committee) के संगठन की व्यवस्था भी की गयी है। इस कमिटि के अध्यक्ष 'डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट' तथा मंत्री शिक्षा-अधीक्षक रहेंगे। इनके अतिरिक्त कमिटी में निम्नलिखित सदस्यों को रहना चाहिए।

१— जिला बोर्ड के चेयरमैन

२—जिले के शिक्षा-निरीक्षक

३—जिला नगर पालिका के चैयरमैन

४—राज्य सरकार के द्वारा नियुक्त एक गैरसरकारी सदस्य

५—राज्य-सरकार के द्वारा नियुक्त बिहार विधान मंडल के प्रतिनिधि, जिनकी संख्या ५ से अधिक न होनी चाहिए।

जिला परियोजना कमिटी का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया कि वह जिले में प्राथमिक तथा मिडिल शिक्षा के विस्तार की योजना

---

* Subject to the provision contained in sub-section (3), the District Education Fund shall be vested in The District Board.........

The District Superintendent of Education appointed under section 62 A-shall operate the District Education Fund in accordance with rules made by the State Government.

Act. Section 54 A. (2) and (3).

† Subject to the rules made by State Government in this behalf, the appointment, posting and promotion of masters, assistant masters and other establishment of schools to which grant-in-aid are made shall be made, and disciplinary action, including removal and dismissal, against them shall be taken, by the District Superintendent of Education in consultation with the District Board. Section 62 B.

बनावे और शिक्षकों की नियुक्ति के लिए, समय-समय पर, उपयुक्त उम्मीदवारों की सूची तैयार करे।*

कानून के द्वारा राज्य-सरकार को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि यदि राज्य के द्वारा शिक्षा के कार्य के लिए, जिला बोर्डों को स्वीकृत या हस्तान्तरित रुपये, उन कार्यों में, जिनके लिए ये प्रदत्त या हस्तान्तरित हुए थे, भलीभाँति न व्यय हो रहे हों, तो वह एक ऐसे अधिकारी को नियुक्त करे, जो जिला बोर्ड के इस कानून के द्वारा दिये गये शिक्षा-सम्बन्धी सभी उत्तरदायित्वों का वहन करे। सरकार को यह भी अधिकार प्राप्त है कि वह जिला शिक्षा-कोष के संरक्षक को यह आदेश दे कि वह उक्त अधिकारी को उतने रुपये दे, जो कि उसके कार्यों के लिए आवश्यक हों।†

उपरोक्त कानून ने बिहार में जिला बोर्डों के अधिकार, प्राथमिक तथा मिडिल शिक्षा के सम्बन्ध में, अत्यन्त सीमित कर दिये। यद्यपि स्कूल, शिक्षक तथा कोष पर जिला बोर्डों को स्वामित्व, वैधानिक रूप से, कायम रहा, प्राथमिक तथा मिडिल शिक्षा के प्रशासन के क्रियात्मक अधिकार जिला शिक्षा-अधीक्षक को हस्तान्तरित हो गये। नयी व्यवस्था के अधीन प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलों के प्रशासन तथा सामान्य स्थिति में, कुछ ही दिनों में, काफी सुधार हुआ है।

---

* It shall be the duty of the Planning Committee to plan and regulate the expansion of primary and mjddle education, including location of educational schools or institutions and from time to time to prepare lists of suitable candidats............ for appointment as masters and assistant masters for schools.....

The Bihar Local Self-Government (Amending and Validating Act, 1954)—Section 65 O (5).

† If the State Government is satisfied, after enquiry as it thinks fit, that any sums granted or funds transfered by the State Government to the District Board for purposes of education are not being spent properly on the purpose for which the sums were granted or the funds were transfered, appoint an authority, who shall, subject to the control of the State Government; perform the duties imposed on the District Board under this Act in respect of education and direct the person having the custody of the District Education Fund to pay to such authority the amount necessary for the performance of such duties.

The Bihar Local Self-Self Government (Amending and Validating) Act, 1954.

—Section 65 D.

शिक्षकों की नियुक्ति, बदली तथा बर्खास्तगी अब अधिक नियमित रूप में होने लगी है। इनके वेतन की चुकती जो पहले बहुधा विलम्ब के साथ तथा अनियमित रूप में होती थी, अब लगभग समय पर होती है।

प्राथमिक स्कूलों के प्रशासन के संबंध में एक और परिवर्तन स्कूल सब-इन्सपेक्टरों पर जिला बोर्ड के तथा नगरपालिका के अधिकार के सम्बन्ध में हुआ। जिला बोर्ड के अध्यक्षों को यह अधिकार था कि वे इनके कार्यों पर सामान्य निगरानी रखें, इनके कार्यों के सम्बन्ध में गुप्त-रिपोर्ट (Confidential report) लिखें तथा इनकी सेवाएँ स्थगित (Suspend) भी कर दें। इनकी सहमति के विना सब-इन्स-पेक्टरों की बदली भी, जिला-निरीक्षकों के द्वारा नहीं हो सकती थी। जिला बोर्ड आदि के अधिकारी बहुधा इन अधिकारों को दुरुपयोग करते थे, जिनसे सब-इन्सपेक्टरों को इनकी ओर से तरह तरह की आशंकाएँ बनी रहती थीं। साथ ही प्रशासनिक क्षेत्र में अन्य कई तरह की गड़बड़ी होती थी। सरकार ने जिला बोर्डों से सब-इन्स-पेक्टरों से सम्बन्धि के प्रशासनिक वापस लौटा लिये।

हमने पहले देखा है कि कई आयोगों तथा कमिटियों ने इस बात की सिफारिश की थी कि प्राथमिक स्कूलों के सम्बन्ध में स्थानीय संस्थाओं के अधिकार सीमित कर दिये जायँ। बिहार सरकार की उपरोक्त चेष्टाएँ इस दिशा में एक ठोस कदम है, जो कि उचित है।

माध्यमिक शिक्षा—स्वतंत्रता के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा की उन्नति तथा इसके विस्तार के सम्बन्ध में व्यापक तथा महत्वपूर्ण कार्य हुए।* वस्तुतः भारतीय शिक्षा-पद्धति की शृंखला में माध्यमिक शिक्षा ही सबसे निर्बल कड़ी थी। अतः इस शृंखला को सबल बनाने के लिए माध्यमिक शिक्षा की कड़ी पर सबसे पहले और सबसे अधिक ध्यान देना था। फलतः स्वतंत्र भारत में शिक्षा के पुनर्गठन की जो जो योजनाएँ बनीं, उनमें माध्यमिक शिक्षा के सुधार पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया गया। माध्यमिक शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का पूर्ण अध्ययन माध्यमिक शिक्षा आयोग ने किया, जिसका परिचय हम पहले उपस्थित कर चुके हैं। इस रिपोर्ट

---

* India 1955.—P. 335.

के प्रकाशन के बाद, इसकी सिफारिशों के अनुसार माध्यमिक स्कूलों के स्वरूप, उनके पाठ्य-क्रम, शिक्षण, पाठ्य-पुस्तक, शिक्षण-सामग्री—सभी दिशाओं में सुधार किये जा रहे हैं।

गुणात्मक उन्नति के साथ-साथ, स्वतंत्र भारत में, माध्यमिक शिक्षा का संख्यात्मक विस्तार भी तीव्र तथा अभूतपूर्व हुआ।† भारत के प्रमुख प्रान्तों में सन् १९४८ ई० में कुल मिलाकर, १२,६९३ माध्यमिक स्कूल थे, सन् १९५३ ई० में इनकी संख्या १८,४९७ हो गयी। हाई स्कूलों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई, जो कि ३९९५ से ७०६२ हो गयी। यह वृद्धि लगभग ७७ प्रतिशत थी। इसी अवधि (१९४८—५३) में मिडिल स्कूलों की संख्या ८,६९८ से बढ़कर, ११,४३५ हो गयी § माध्यमिक स्कूलों की छात्र-संख्या में भी, स्वतंत्रता के पश्चात्, बड़ी वृद्धि हुई। सन् १९४८ में अ श्रेणी के राज्यों के मिडिल स्कूलों में लगभग १० लाख तथा हाई एवं उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में ८ लाख छात्र भरती थे। सन् १९५३में हाई तथा मिडिल स्कूलों के छात्रों की कुल संख्या ५९,०६,६६६ हो गयी। इन स्कूलों पर कुल मिलाकर ३६.८ करोड़ रुपये खर्च हो रहे थे। × माध्यमिक शिक्षा की यह प्रगति आगे भी कायम रही। सन् १९५३-५४ में, माध्यमिक स्कूलों की संख्या २५,६८४ तथा छात्रों की संख्या ६४·१३ लाख हो गयी। इनके ऊपर खर्च भी बढ़कर ४२·३४ करोड़ हो गया। इन स्कूलों के अतिरिक्त, सन् १९५१-५४ के बीच ५७०० माध्यमिक शिक्षा के अन्य स्कूल (मिडिल, सीनियर बेसिक, हाई तथा उच्चतर माध्यमिक) खोले गये, जिनमें १४·५ लाख छात्र दाखिल थे।†

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुसार, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की दिशा

---

* The expansion of Secondary education during the period may be regarded as almost phenomenal.

Quinquennial Review—Progress of Education in India 1947-52. P. 61.

‡ The period under review was marked by widespread and intense activity regarding the objectives, quality and scope of Secondary education.

Quinquennial Review—Progress of Education in India 1947-52 P. 61.

× It was generally agreed that it represented the weakest link in India's educational chain.

* Quinquennial Review—P. 61

में, निम्नलिखित कार्यक्रम केन्द्रीय सरकार के द्वारा संचालित हो रहे हैं।*

(१) ५०० बहूद्देश्यीय स्कूल जिनमें विज्ञान, टेक्नोलॉजी, कृषि-वाणिज्य, ललित-कला तथा गृह-विज्ञान के १००० कक्षाएँ होंगी, खोले जा रहे हैं।

(२) ३०० स्कूलों की, विज्ञान की शिक्षा के लिये, सरकार की ओर से सहायता दी जा रही है।

(३) २,००० स्कूल-पुस्तकालयों को समुन्नत किया जा रहा है। इनमें १५०० सामान्य स्कूल में स्थित हैं।

(४) २,००० मिडिल स्कूलों में दस्तकारी की शिक्षा आरम्भ की जा रही है।

(५) शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था बढ़ायी जा रही है।

(६) माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में गोष्ठियाँ (Seminar) आयोजित हो रही हैं।†

इन कार्यक्रमों के संचालन में केन्द्रीय सरकार की ओर से राज्य सरकारों को अनुदान दिये जा रहे हैं। ये अनुदान अनावर्त्तक खर्च के ६६ प्रतिशत तथा आवर्त्तक खर्च के २५ प्रतिशत के अनुपात में दिये जाते हैं।‡

माध्यमिक शिक्षा आयोग के परामर्शों के अनुसार भारत सरकार ने एक अखिल-भारतीय माध्यमिक शिक्षा सभा (All India Council of Secondary Education) स्थापित की है।

माध्यमिक शिक्षा की उन्नति के लिए केन्द्रीय सरकार के द्वारा कई गोष्ठियाँ आयोजित की गयीं। अमेरिका के 'फोर्ड फाउन्डेशन' नामक संस्था से इन गोष्ठियों के आयोजन में काफी सहयोग प्राप्त हुआ। माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण को समुन्नत बनाने तथा प्रशिक्षण के क्षेत्र में अनुसंधान के आयोजन के उद्देश्य से दिल्ली में 'सेन्ट्रल इंस्टिच्यूट आफ एजुकेशन' की स्थापना की गयी। शिक्षकों के अन्तर-सेवा प्रशिक्षण की सुविधाओं को विस्तृत करने की ओर भी प्रयास किया गया।

माध्यमिक स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों की उन्नति के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में दिल्ली में एक केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक

---

* jndia 1956. P. 268
† jndia 1956. P. 269
‡ India 1956. P. 269.

माध्यमिक स्कूल परीक्षा के सभी विषयों में निर्धारित अंक के २० प्रतिशत १० वें तथा ११ वें वर्ग में दिये गये दैनिक कार्य के लिए संरक्षित कर दिये गये। अन्तिम लिखित परीक्षा ८० प्रतिशत अंकों तक सीमित रही। परीक्षा पद्धति में यह प्रयोग सर्वथा नया था।

उच्च शिक्षा—सन् १९४७-५६ की अवधि में, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी, काफी प्रगति हुई। सन् १९४७ ई० में भारत में २१ विश्वविद्यालय थे। विभाजन के पश्चात्, जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, पंजाब तथा ढाका विश्वविद्यालय पाकिस्तान में चले गये। इस तरह, भारतीय विश्वविद्यालय की संख्या १९ रह गयी, स्वतन्त्रता के पश्चात् नये विश्वविद्यालयों की स्थापना, तीव्र गति से होने लगी।

सन् १९४८ ई० में भारत में २१ विश्वविद्यालय तथा ४१४ कालेज थे। सन् १९५३ ई० में इन विश्वविद्यालयों की संख्या ३०, तथा कालेजों की संख्या ६७९ हो गयी। इसी अनुपात में उच्च शिक्षा के छात्रों में भी वृद्धि हुई। सन् १९४८ ई० में इन छात्रों की संख्या १,७९, १७३ थी, सन् १९५३ ई० मे यह संख्या बढ़कर २,९९, ९१८ हो गयी। टेकनिकल तथा व्यावसायिक संस्थाओं में उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या १९४८-५३ के बीच ४४, ६०४ से बढ़कर ९८, ५६७ हो गयी।* उच्च शिक्षा की प्रगति आगे भी दृढ़ रही। दूसरे ही वर्ष (सन् १९५४ ई०) में विश्वविद्यालयों की संख्या ३१, कला तथा विज्ञान कालेजों की संख्या ६५१, व्यावसायिक कालेजों की संख्या २४२ तथा विशिष्ट कालेजों की संख्या ८० हो गयी।†

सन् १९४७-४८ में विश्वविद्यालयों एवं कला तथा विज्ञान कालेजों पर सरकारी कोष से ५.९९ करोड़ रुपये खर्च हो रहे थे।‡ सन् १९५३-५४ ई० में यह खर्च काफी बढ़ गया, जो कि निम्नलिखित रूप में आवण्टित था।×

विश्वविद्यालय—	६.०१ करोड़
कला तथा विज्ञान कालेज—	११.१३ ,,
व्यावसायिक कालेज—	५.८३ ,,
विशिष्ट संस्थाएँ—	.२७ ,,
उच्च शिक्षा बोर्ड—	१.५ ,,

---

* India 1955.—P. 337
† India 1956.—P. 269
‡ Quinquennial Review. 1947-52—P. 113
× India—1956.—P.269

सन् १९५४-५५ की अवधि में २ नये विश्वविद्यालय कायम हुए। इस तरह सन् १९५५ में कुल विश्वविद्यालयों की संख्या ३३ हो गयी।*

सन् १९४७-५६ के बीच भारत में जो नये विश्वविद्यालय कायम हुए। वे ये हैं:—

(१) पंजाब विश्वविद्यालय (सोलन)—यह विश्वविद्यालय पूर्व पंजाब के लिए सन् १९४७ ई० में स्थापित हुआ। यह शैक्षणिक तथा संबद्धीय—दोनों ही है।

(२) गौहाटी विश्वविद्यालय (आसाम)—यह विश्वविद्यालय सन् १९४८ ई० में स्थापित हुआ। यह शैक्षणिक तथा संबद्धीय-दोनों ही है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय का क्षेत्रीय अधिकार आसाम पर न रहा।

(३) जम्मू तथा काश्मीर (श्रीनगर) सन् १९४८ ई० में ही इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यह विश्वविद्यालय केवल संबद्धीय है।

(४) रूड़की विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय का बीजारोपण लगभग १०० वर्ष पहले थौमसन रूड़की कालेज के रूप में हुआ था, जिसके इतिहास से हम पहले परिचित हो चुके हैं। सन् १९४८ ई० में यह कालेज एक विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गया। यह आवासिक शैक्षणिक विश्वविद्यालय है। देश में इंजीनियरिंग शिक्षा का यह एक-मात्र विश्वविद्यालय है।

(५) पूना विश्वविद्यालय—यह विश्वविद्यालय सन् १९४९ ई० में कायम हुआ। महाराष्ट्र के वे कालेज जो पहले बम्बई विश्वविद्यालय के अधीन थे, इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत लाये गये। यह शैक्षणिक तथा संबद्धीय दोनों है।

(६) महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय (बड़ौदा)—इसकी स्थापना भी सन् १९४० ई० में ही हुई। इसका नामकरण बड़ौदा के लब्ध-प्रतिष्ठ महाराज सयाजीराव के नाम पर हुआ। यह शैक्षणिक तथा आवासिक है। इस विश्वविद्यालय में ललितकला, गृह-विज्ञान, भारतीय संगीत तथा समाज-शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

* India 1956. P.269.

(७) गुजरात विश्वविद्यालय (अहमदाबाद)—यह विश्वविद्यालय सन् १९५० ई० में कायम हुआ। यह शैक्षणिक तथा संबद्धीय दोनों है। इस विश्वविद्यालय के अधिनियम में यह निर्धारित किया गया कि अंग्रेजी माध्यम, एक निर्दिष्ट अवधि में, हिन्दी अथवा गुजराती या हिन्दी और गुजराती में बदल दिया जाय।

(८) कर्नाटक विश्वविद्यालय (धारवाड़)—इसकी स्थापना भी सन् १९५० ई० में ही हुई। यह भी शैक्षणिक तथा संबद्धीय-दोनों है।

(९) बिहार विश्वविद्यालय—सन १९५१ ई० में पटना विश्व-विद्यालय तथा बिहार विश्वविद्यालय कानून पास हुए। इन कानूनों के अनुसार पटना विश्वविद्यालय के क्षेत्र तथा कार्य विभाजित कर दिये गये। पटना विश्वविद्यालय का क्षेत्र केवल पटना निगम तक रहा, बिहार राज्य का शेष भाग बिहार विश्वविद्यालय के अन्तर्गत किया गया। पटना विश्वविद्यालय, जो कि पहले प्रधानतः संबद्धीय था, अब पूर्णतः शैक्षणिक विश्वविद्यालय हो गया। कालेजों के साथ इसका सम्बन्ध संघीय जैसा है। बिहार विश्वविद्यालय प्रधानतः संबद्धीय है, किंतु कई कालेजों में इसके द्वारा शिक्षण की व्यवस्था भी है। अतः इसके कार्य शैक्षणिक तथा संबद्धीय दोनों हैं।

(१०) श्रीमती नाथेबाई दामोदर थैकरसे (एस० एन० डी० टी०) महिला विश्वविद्यालय (बम्बई)—हमने पहले देखा है कि श्रीमती नाथेबाई दामोदर विद्यालय स्त्री-शिक्षा के उत्थान के लिए एक अखिल भारतीय संस्था थी। सन् १९५१ ई० में यह संस्था, विश्व-विद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गयी। यह विश्वविद्यालय संबद्धीय है। स्त्रियों के उपयुक्त विषयों की शिक्षाओं को प्रश्रय देना इसका विशिष्ट उद्देश्य है।

(११) विश्वभारती विश्वविद्यालय, (शान्ति निकेतन) विश्व भारती की स्थापना, जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा सन् १९२९ में हुई थी। सन् १९५१ ई० में भारतीय संसद् के एक अधिनियम के द्वारा यह संस्था केन्द्रीय सरकार के अधीनस्थ एक विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गयी। यह आवासिक, ऐकीय तथा शैक्षणिक विश्वविद्यालय है। शिक्षा, संस्कृति तथा ललित कला इस विश्वविद्यालय के विशिष्ट विषय हैं।

(१२) श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपती (मद्रास)—यह विश्वविद्यालय सन् १८५४ ई० में स्थापित हुआ। यह शैक्षणिक तथा आवासिक विश्वविद्यालय है।

(१३) जादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता—इसकी स्थापना सन् १६५५ में हुई। यह शैक्षणिक तथा संबद्धीय-दोनों है।

(१४) सरदार वल्लभ भाई विद्यापीठ—यह भी सन् १६५५ ई० में स्थापित हुआ। यह भी शैक्षनिक तथा संबद्धीय है।

विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों के अनुसार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ मुसलिम विद्यालयों के साम्प्रदायिक स्वरूप कानून के द्वारा बदल दिये गये। दिल्ली विश्वविद्यालय का भी रूपान्तर हुआ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, विश्वविद्यालय-शिक्षा को संयोजित करने के लिए एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की सिफारिश की थी। फलस्वरूप, भारत सरकार ने २८ दिसम्बर १६५३ को स्वर्गीय डा० भटनागर की अध्यक्षता में यह आयोग स्थापित किया। मंडल के प्रधान कार्य दो थे—विश्वविद्यालय शिक्षा का मापदंड निर्धारित करना तथा सभी विश्वविद्यालयों के मानों को संबद्ध करना। इस आयोग को वैधानिक अस्तित्व देने के उद्देश्य से, सन् १६५५ ई० में संसद् में एक कानून पास हुआ, जिसमें मंडल के संगठन तथा कार्य निर्दिष्ट किये गये। कानून के अनुसार आयोग के सदस्यों की संख्या ६ रखी गई, जिनमें ३ विश्वविद्यालयों के उपकुलपति रहने चाहिए थे, २ केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि तथा ४ सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री। आयोग को यह अधिकार प्राप्त है कि वह विभिन्न विश्वविद्यालयों के अनुदान की रकम निर्दिष्ट करे तथा उच्च शिक्षा की विकास-योजनाओं को कार्यान्वित करे।

सन् १६५४-५५ के अन्त तक आयोग ने १·६४ करोड़ रुपये विभिन्न कार्यों के लिए, विश्वविद्यालयों को दिये। १६५५-५६ में भी ३·५ करोड़ रुपये विश्वविद्यालयों को इसने स्वीकृत किये।†

---

† India 1956, P. 271.

विश्वविद्यालय आयोग की अन्य सिफारिशों, जिनका विवरण हम दे चुके हैं, को भी कार्यान्वित करने की चेष्टा हो रही है।

विश्वविद्यालयों के पारस्परिक सहयोग के उद्देश्य से अन्तर-विश्वविद्यालय मंडल (Inter University Board) स्थापित हुआ। इस मंडल का एक प्रमुख कार्य यह भी है कि यह भारतीय विश्वविद्यालय की उपाधियों को विदेशों में स्वीकृति दिलाने की चेष्टा करे। अप्रिल १९५३ में बोर्ड के तत्त्वावधान में शिक्षा-मंत्रियों तथा उपकुलपतियों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर को उठाने के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण निर्णय किये गये।

अनुसंधान—सन् १९४७ के पश्चात् उच्च शिक्षा के विभिन्न क्षेत्र में, अनुसंधान कार्य की उल्लेखनीय प्रगति हुई।‡ दिल्ली विश्वविद्यालय ने १९४७-५२ के बीच अखिल भारतीय स्तर पर १५० रु० के ३ अनुसंधान 'फेलोशीप' स्वीकृत किये। इतिहास तथा अर्थशास्त्र में भी इसने तीन छात्रवृत्तियाँ प्रतिवर्ष स्वीकृत कीं। बिहार सरकार ने दरभंगा में संस्कृत के स्नातकोत्तर अध्ययन तथा अनुसंधान के लिए "मिथिला इन्स्टिच्यूट" की स्थापना की। नालन्दा में इसने पाली तथा बौद्ध साहित्य के उच्च अध्ययन तथा शोध के लिए "मगध इन्स्टिच्यूट" स्थापित किया। प्राचीन इतिहास तथा पुरातत्व के सम्बन्ध में के० पी० 'जायसवाल इन्सटिच्यूट, पटना' क्रियाशील रहा। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने सुप्रसिद्ध विद्वानों के भाषण, हिन्दी में, आयोजित किये तथा कई विषयों से सम्बन्धित मौलिक ग्रन्थों का प्रकाशन, हिन्दी में, कराया। अप्राप्य रचनाओं की खोज में भी यह संलग्न रही।

बम्बई में अनुसंधान-कार्य के लिए १२ संस्थाएँ क्रियाशील थीं। इनमें अहमदाबाद का भौतिक प्रयोगशाला, बम्बई विश्वविद्यालय का आर्थिक तथा सामाजिक विभाग और 'इन्स्टिच्यूट आफ साइंस' 'टाटा इन्स्टिच्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च", "टाटा इन्स्टिच्यूट आफ सोशल साइन्सेज" प्रमुख थे। मद्रास विश्वविद्यालय ने तामिल के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किये।

इतर-पाठ्यक्रम कार्य :—सन् १९४७ के पश्चात् उच्च शिक्षा में शिक्षाप्रद तथा सृजनात्मक इतर-पाठ्य-क्रम के कार्यों को बड़ा प्रश्रय मिला।

‡ The development of research in various branches of knowledge was a notable achievement after 1947. Quinquennial Review. Progress of Education in India—1947-52, P. 121.

सभी विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में छात्र-संघ, सहयोग सोसाइटी, संगीत-नाट्य सभा, समाज सेवा दल आदि कायम किये गये। अन्त कॉलेजीय तथा अन्तर्विश्वविद्यालयीय प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की गयीं तथा परिभ्रमण संगठित हुए। विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में एन० सी० सी० सबसे आकर्षक बाहरी कार्य रहा। बड़ौदा विश्वविद्यालय ने सन् १९५१ में हिमालय-स्थित 'पिण्डारी-ग्लेसियर' की चढ़ाई आयोजित की।

टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा :—सन् १९४७–५६ की अवधि में टेकनिकल शिक्षा की बड़ी तीव्र प्रगति हुई। इस तीव्र प्रगति का मूल कारण यह था कि स्वतन्त्रता के साथ ही सरकार तथा जनता दोनों ही, देश के आर्थिक उत्थान के लिए, टेकनिकल शिक्षा का विस्तार आवश्यक मानने लगीं।* टेकनिकल शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार के साथ इस शिक्षा के प्राप्त करनेवाले छात्रों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई। सन् १९४७ ई० में टेकनिकल शिक्षा की संस्थाओं में ६,६०० छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। सन् १९५३ ई० में इनकी संख्या १२,७०० हो गयी।† इस संख्यात्मक विस्तार के अतिरिक्त, उपर्युक्त अवधि में, टेकनिकल शिक्षा के विस्तार के क्षेत्र में दो बातें दृष्टिगोचर हुई।(क) इस शिक्षा की सुविधायें—शिक्षक, सामान तथा भवन आदि में काफी वृद्धि हुई। ख—इनजिनियरिंग तथा टेकनिकल शिक्षा के प्रमुख विभागों के लिए उच्च विशेषीकृत शिक्षा आयोजित की गयी।‡

हमने देखा है कि टेकनिकल शिक्षा के संयोजन तथा विकास के लिए सन् १९४५ ई० में 'आल इंडिया कौंसिल आफ टेकनिकल एजुकेशन' की स्थापना हुई थी। कौंसिल ने ७ 'बोर्ड आफ स्टीज' तथा चार क्षेत्रीय कमिटियाँ नियुक्त कीं। इसी कौंसिल की सिफारिशों पर केन्द्रीय सरकार ने देश की चुनी हुई टेकनिकल शिक्षा की संस्थाओं के विकास की एक योजना स्वीकृत की। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए १६२ लाख अनावर्त्तक तथा २५.५ लाख आवर्त्तक खर्च

---

* Quinquennial Review of the Progress oi Education in India (1947-52) P. 125

† India 1956. P. 272

‡ Quinquennial Review of the Progress of Education in India. 1947-52

स्वीकृत किये गये।* इस योजना के अनुसार १५ संस्थाओं में शिक्षा की सुविधाएँ विस्तृत की गयीं। यह योजना आगे चलकर टेकनिकल शिक्षा की पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित कर ली गयी। इस पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य देश में टेकनिकल शिक्षा का सर्वांगीण विकास था।

क्षेत्रीय संस्थाएँ:—इंजीनियरिंग तथा टेक्नोलौजी के उच्च अध्ययन तथा अनुसंधान के लिए भारत सरकार ने खड्गपुर (पश्चिमी बंगाल) में "इंडियन इंसटिच्यूट आफ टेकनोलौजी' स्थापित किया।† यह इन्सटिच्यूट सन् १९५२ में क्रियाशील हो गया। आजकल इस इन्सटिच्यूट में लगभग १२०० छात्र स्नातकोत्तर अध्ययन अथवा अनुसंधान कर रहे हैं।‡ बंगलौर का 'इंडियन इंस्टिच्यूट आफ साइन्स, जो कि जमदेशजी ताता के द्वारा १९०९ ई० में ही स्थापित हो चुका था, विकसित किया गया। सरकार ने इस संस्था पर १७७ लाख रुपये खर्च किये।§ पश्चिमी क्षेत्र में टेकनोलौजी की एक उच्च संस्था बम्बई में खोली जानेवाली है। दिल्ली में शहर तथा देहात पुनर्निर्माण परियोजना की एक संस्था "स्कूल आफ टाउन ऐन्ड कन्ट्री प्लैनिंग" स्थापित की जा रही है।‡ इस योजना का उद्देश्य शहर, देहात तथा क्षेत्र-विशेष के पुनर्निर्माण के लिये कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना है।

टेकनिकल शिक्षा के संयोजन, संवहन तथा प्रसार के लिए इस शिक्षा को तीन कमिटियाँ कायम की गयीं—मानवीय शक्ति कमिटी, वैज्ञानिक कमिटी, समुद्रपार छात्रवृति कमिटी। मानवीय कमिटी को टेकनिकल शिक्षा के विस्तार के लिए कितने और किस प्रकार के व्यक्तियों की जरूरत होगी इसका निर्धारण करना था। वैज्ञानिक कमिटी के जिम्मे वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार तथा उन्नति की ओर ध्यान देना था। समुद्रपार छात्रवृत्ति कमिटी के जिम्मे उच्च शिक्षा तथा विशिष्ट शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियों का आयोजन करना था। तीसरे कार्यक्रम के अधीन तीन तरह की आर्थिक सहायता चालू की गयीं—

* Quinquennial Review of the Progress of Education in India 1947-52. P. 272

† India 1956. P. 272.

‡ Quinquennial Review of the Progress of Education in India. 1947-52.

§ India 1956.

व्यावहारिक प्रशिक्षण-वृत्ति, अनुसंधान प्रशिक्षण छात्रवृत्ति, उच्च वैज्ञानिक शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों को अनुदान। १९५४ ई० तक ६२५ सीनियर तथा ४४५ जुनियर छात्रवृत्तियाँ, इंजीनियरिंग के स्नातकों तथा डिप्लोमा-प्राप्त व्यक्तियों को आगे प्रशिक्षण के लिए, दी गयीं। इनके अतिरिक्त ४६५ सनीयर तथा ४३३ जुनियर छात्र-वृत्तियाँ, टेकनिकल शिक्षा के सम्बन्ध में अनुसंधान करने के लिए विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं को दी गयीं। २.५ करोड़ रुपये सरकार ने अनुदान तथा कर्ज के रूप में विभिन्न संस्थाओं को सामान खरीदने तथा अन्य कार्यों के लिए दिये।*

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अधीन केन्द्रीय सरकार ने अक्तूबर १९५५ तक १.४४ करोड़ रुपये टेकनिकल शिक्षा के लिए, अनुदान के रूप में, दिये। कई संस्थाओं को छात्रावास के निर्माण के लिए केन्द्रीय सरकार ने, सूद-रहित कर्ज के रूप में, ९८ लाख रुपये दिये।†

१९५५-५६ में देश में ३६ मेडिकल कालेज, २ मेडिकल स्कूल तथा ६ दन्त-चिकित्सा के कालेज थे। एलोपैथिक चिकित्सा की ५ अन्य संस्थाएँ क्रियाशील थीं। मेडिकल स्कूलों की कम संख्या इसलिए है कि १९५१ के पश्चात् ११ स्कूलों को कालेजों में परिवर्तित कर दिया गया। स्नातकोत्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए कई कालेजों तथा संस्थाओं के चुने हुए विभागों के शिक्षण का स्तर उठाया गया।‡ सन् १९५४-५५ में ९६ छात्र स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के लिए इन विभागों तथा संस्थाओं में भरती हुए। केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में एक अखिल भारतीय मेडिकल इंस्टीच्यूट (All India Medical Institute) की स्थापना की बात भी तय हो चुकी है, जिसपर ४.८ करोड़ रुपये अनावर्त्तक रूप में तथा १.३ करोड़ रुपये आवर्त्तक रूप में खर्च किये जायँगे। सहायक चिकित्सक (Auxiliary medical workers) का दो वर्ष के प्रशिक्षण की एक योजना भी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के द्वारा सन् १९५४ में स्वीकृत हो गयी है।

स्वतंत्रता के पश्चात् विशिष्ट रोगों तथा स्वराज्य सम्बन्धी विशिष्ट समस्याओं के सम्बन्ध में शोध करने के लिए कई अनुसंधान केन्द्र

---

* India. 1955.
† India. 1956.
‡ India. 1950.

तथा प्रयोगशालाएँ स्थापित की गयीं। इनमें न्यूट्रिशिन रिसर्च इंस्टिट्यूट (कूनुर), विरस (Virus) रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना (१६५३), इन्फ्लूएँजा सेन्टर (कूनुर) टी० बी० रिसर्च प्रोजेक्ट (आंध्र), लेप्रोसी टीचींग एण्ड रिसर्च इंस्टिट्यूट, चिंगलपेत (मद्रास), इंडियन कैंसर रिसर्च इंस्टिट्यूट, बम्बई (१६५२) प्रमुख हैं। प्रयोगशालाओं में बी० सी० जी० वैक्सीन लेबोरेटरी मद्रास और सेन्ट्रल ड्रग रिसर्च इस्टिट्यूट, कलकत्ता (१६४७) प्रमुख हैं। सेरोलौजिकल (Serological) प्रयोगशाला तथा कसौली प्रयोगशालाएँ पहले से ही क्रियाशील हैं।*

एलोपैथिक संस्थाओं के अतिरिक्त, आयुर्वेदीय तथा यूनानी पद्धति के ४० कालेज तथा स्कूल देश में क्रियाशील थे। इन कालेजों तथा स्कूलों के मान तथा पाठ्य-क्रम भिन्न-भिन्न हैं। इनमें एकरूपता लाने के विचार से एक कमिटी संगठित हो चुकी है।†

देशी चिकित्सा के विकास के लिए एक केन्द्रीय अनुसंधान इंस्टिट्यूट "सेन्ट्रल इस्टिट्यूट ऑफ रिसर्च" सन् १६५३ में स्थापित हो चुका है।

होमियोपैथी चिकित्सा के विकास के लिए केन्द्रीय सरकार ने पाँच वर्ष का एकपाठ्य-क्रम निर्धारित किया है। बम्बई तथा बंगाल की सरकारों को कम-से-कम एक-एक होमियोपैथी शिक्षा की संस्था को विकसित करने का आदेश दिया गया है, जिससे इनमें स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था की जा सके।‡

सामाजिक शिक्षा—गत अध्याय में हम देख चुके हैं कि प्रान्तीय स्वशासन के अधीन वयस्क शिक्षा की अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। द्वितीय महायुद्ध तथा कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के पदत्याग के कारण वयस्क शिक्षा की प्रगति लगभग ६ वर्षों तक शिथिल हो गयी थी। किंतु सन् १६४६ ई० में कांग्रेसी मंत्रिमंडल के पुनः भारग्रहण के पश्चात् इसकी प्रगति पुनः दृढ़ हो गयी। हम यह भी कह चुके हैं कि सन् १६४६ के बाद वयस्क शिक्षा का वृत्त विस्तृत हो गया था और इस शिक्षा में साक्षरता के अतिरिक्त नागरिकता, स्वास्थ-सफाई आदि भी शामिल हो गयी थीं।

* India 1956, P. 321-22

† India 1956, P. 321.

‡ India 1956, p. 319.

स्वतन्त्रता के पश्चात् वयस्क शिक्षा की गुणात्मक तथा बलात्मक दोनों ही उन्नति हुई। वयस्क शिक्षा अब पूर्णतः सामाजिक शिक्षा के रूप में परिवर्तित हो गयी और इसके वृत्त में वयस्कों की समस्त आवश्यकताएँ सन्निविष्ट की गयीं।* यह भी महसूस किया जाने लगा कि भारतीय गणतंत्र के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक शिक्षा का तीव्र विस्तार अत्यावश्यक था। वयस्क शिक्षा के प्रसार की प्रेरणा संयुक्त राष्ट्रसंघ के शैक्षणिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संस्था (यूनेस्को) से भी प्राप्त हुई। इस संस्था ने मानव समुदायों के उत्थान के लिए मौलिक शिक्षा (fundamental education) का प्रसार आवश्यक माना। वयस्क शिक्षा के नये कार्यक्रम में वयस्कों की आर्थिक स्थिति की उन्नति को अधिक महत्व दिया गया। इसके लिए यह चेष्टा की गयी कि उनकी व्यावसायिक कुशलता, चाहे जिस दस्तकारी से वह सम्बन्धित हो, समुन्नत की जाय; साथ ही उन्हें नये प्रकार की दस्तकारियों की शिक्षा दी जाय। इसके अतिरिक्त नागरिकता की शिक्षा, स्वास्थ्य-सफाई की शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा भी आवश्यक समझी गयीं। सामाजिक शिक्षा अथवा समाज शिक्षा शब्द का प्रचलन वयस्क शिक्षा की नयी मान्यताओं के विचार से ही हुआ।† सामाजिक शिक्षा से उस शिक्षा का तात्पर्य है, जिसके द्वारा जनता में नागरिकता की भावना का अभ्युदय हो तथा लोगों में सामाजिक दृढ़ता उत्पन्न हो। सामाजिक शिक्षा केवल निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाने की ओर प्रेरित नहीं रहती, बल्कि जन-सामान्य के मस्तिष्क को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करती है।‡

---

* Experience indicated that no programme of Adult Education would be complete or satisfying unless the content of education was changed to meet all adult requirement.

† With the establishment of Unesco, the conception of Fundamental Education as an esssential condition for the prosperity of the communities has also been gaining strength.

Quinquennial Review—Progress of Education in India. —P. 142.

‡ Since the object of this programme is to make the individual a better member of the community and simultaneously raise the stantard of life and society as a whole, it is described as social education to distinguish it from the older programme of merely literacy.

Humayun Kabir—Education in New India—P. 81-82.

सामाजिक शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व प्रधानतः राज्य-सरकारों पर ही रहा। केन्द्रीय सरकार के कार्य, इस विषय में, निर्देश, संयोजन तथा आर्थिक सहायता से सम्बन्धित रहे। इस क्षेत्र में, गैरसरकारी संस्थाएँ भी, पूर्ववत् क्रियाशील रहीं। इन संस्थाओं के द्वारा भी वयस्क शिक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। अखिल भारतीय वयस्क शिक्षा सभा (All India Adult Education Association) ने गैरसरकारी प्रयत्नों के संयोजन तथा निर्देश की दिशा में ठोस कार्य किये।

स्वतन्त्रता के पश्चात् वयस्क शिक्षा के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी—विभिन्न एशियाई देशों की अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी। यह गोष्ठी सन् १९४९ ई० में मैसूर में हुई, जिसमें बहुत से एशियाई देशों ने भाग लिया। इस गोष्ठी में सभी देशों के प्रतिनिधियों ने वयस्क शिक्षा की समस्याओं को, सामूहिक रूप से, अपने-अपने अनुभवों के आधार पर देखा और इनके सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय किये। भारत के सम्बन्ध में गोष्ठी में यह तय किया गया कि केंद्रीय सरकार

क—वयस्क शिक्षा के अनुसंधान का कार्य संयोजित करे,

ख—अखिल भारतीय स्तर पर गोष्ठी आयोजित करे जिसमें वयस्क शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर विचार किये जायँ,

ग—वयस्कों के लिए सरल साहित्य के निर्माण का एक केन्द्र खोले,

घ—दृश्य-श्रव्य उपादानों के उत्पादन, खरीद तथा आदान-प्रदान के लिए सलाहकारिणी समितियाँ नियुक्त की जायँ।

राज्य सरकारों को यह उत्तरदायित्व दिया गया कि वे अपने-अपने राज्य में वयस्क शिक्षा के अलग विभाग खोलें, प्रादेशिक गोष्ठी आयोजित करें, शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करें तथा दृश्य-श्रव्य उपदानों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार की सहायता करें।*

जनवरी १९४८ में वयस्क शिक्षा के सम्बन्ध में सामान्य नीति निर्धारित करने के लिए, केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति ने एक वयस्क शिक्षा कमिटी (Adult Education Committee) नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष पुनर्वास के तत्कालीन श्री मंत्री मोहनलाल सक्सेना थे। कमिटी ने एक योजना प्रस्तुत की, जो सामाजिक शिक्षा योजना

---

* Quinquennial Review-Progress of Education in India, 1947-52, P. 144.

(A Scheme of Social Educction) कही जाती है। योजना में सामाजिक शिक्षा के उद्देश्य वयस्कों को नागरिक के अधिकार तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाना, गणतन्त्र के प्रति स्नेह उत्पन्न करना तथा भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना कहे गये। यह भी कहा गया कि वयस्कों को इन तीन बातों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाना चाहिए। योजना के संख्यात्मक लक्ष्य के सम्बन्ध में यह कहा गया कि अगले तीन वर्षों में ५० प्रतिशत वयस्क साक्षर हो जायं।* योजना ने राज्य की सरकारों से इसे कार्यान्वित करने का अनुरोध किया और यह परामर्श दिया कि राज्य सरकार लोक-शिक्षा निर्देशक की सहायता के लिए 'समाज शिक्षा-कौंसिल' स्थापित करे। जनवरी १९४९ में केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति ने वयस्क शिक्षा कमिटी की सिफारिशें मान लीं। इसके अनुसार केन्द्रीय सरकार ने निर्देशक परियोजना (Guide plan) के नाम से वयस्क शिक्षा को संचालित करना शुरू किया।

फरवरी १९४९ में प्रान्तीय शिक्षा-मंत्रियों का एक सम्मेलन दिल्ली में बैठा। सम्मेलन ने निर्देशक परियोजना को अपनी स्वीकृति दी। केन्द्रीय सरकार ने सन् १९४९-५० के बीच ५९·६७ लाख रुपये प्रांतीय सरकारों को वयस्क शिक्षा के लिए अनुदान दिये।† आर्थिक कठिनाइयों के कारण १९५०-५१ में यह अनुदान स्वीकृत न किया जा सका, किंतु १९५१-५२ में यह फिर पुनर्जीवित किया गया। जुलाई १९४९ में प्रान्त के समाजशिक्षा अफसरों की एक बैठक हुई, जिसमें योजना को कार्यान्वित करने पर विचार-विमर्श हुए। इस बैठक में यह तय किया गया कि योजना के अन्तर्गत १२-४० वर्ष की अवधि के लोग शिक्षित किये जायँ, सामाजिक शिक्षा का पाठ्यक्रम १८० घंटे अथवा दो घंटे प्रतिदिन के हिसाब से ९० दिनों का हो, शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए अल्प-कालिक केन्द्र खोले जायँ, वयस्क शिक्षा केन्द्रों में दृश्य-श्रव्य उपादान प्रचुरता से दिए जायँ तथा उत्तर-साक्षरता शिक्षा के लिए पुस्तकालय, विशेषकर परिभ्रमणशील पुस्तकालय आयोजित किये जायँ।

---

* Quinquennial Review-Progress of Education in India. 1947-52, P. 144.

† Quinquennial Review—Progress of Education in India, 1947-52, P. 153.

अप्रिल १९५१ में शिक्षाशास्त्रियों तथा समाज-सेवा के कार्य-कर्ताओं का एक सम्मेलन दिल्ली में बुलाया गया। इस सम्मेलन में नये साक्षरों के लिये उपयुक्त साहित्य के निर्माण के विषय में विचार-विमर्श हुआ और यह तय किया गया कि नये साक्षरों के लिए एक दैनिक समाचार-सार, एक चित्रित पाक्षिक या मासिक पत्रिका तथा क्रमबद्ध पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। दूसरे वर्ष भारत सरकार के द्वारा नियुक्त सामाजिक शिक्षा साहित्य कमिटी ने यह परामर्श दिया कि केन्द्रीय सरकार सामाजिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक "टीचर्स हैंडबुक" प्रकाशित करे।* केन्द्रीय सरकार ने 'जामिआ मिलिया' को भी वयस्कों के लिए उपयुक्त साहित्य के निर्माण के हेतु अनुदान दिये। केन्द्रीय सरकार ने सामान्य वयस्क के उपयुक्त एक विश्वकोष प्रकाशित करने का निश्चय भी किया।†

ग्रामोत्थान के कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को उत्पन्न करने के विचार से केन्द्रीय सरकार ने जनता कालेज की स्थापना की। केंद्रीय सरकार के तत्त्वावधान में शिक्षा कारवां (Educational Carvans) का प्रचलन किया गया। इस कारवां में तीन या चार जीप गाड़ियां रहती हैं, जिनमें डब्बे संलग्न रहते हैं। डब्बा-सहित एक जीप परिभ्रमणशील रंगमंच का कार्य करता है, दूसरा परिभ्रमणशील पुस्तकालय का, तीसरा प्रदर्शनी का। चौथे जीप में 'प्रोजेक्टर' रहता है, जिसके द्वारा उपयुक्त चलचित्र दिखाये जाते हैं। यह कारवां केन्द्रस्थ गाँवों में घूमता-फिरता रहता है और स्वास्थ्य तथा सफाई, कृषि, उद्योग आदि के सम्बन्ध में प्रदर्शनी दिखलाता है। कारवां के द्वारा नाटक खेले जाते हैं तथा कहीं-कहीं कुश्ती भी आयोजित होती है।‡ इन सब उपादानों से वयस्कों की रुचि आकृष्ट करने के बाद, केन्द्रस्थ गाँवों के आस-पास कई वयस्क शिक्षा की कक्षाएँ आयोजित होती हैं। केन्द्रीय सरकार की योजना के अनुसार, सन् १९५६ पर्यन्त, ४० वर्ष की अवस्था तक के ५० प्रतिशत वयस्कों को साक्षर बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

---

* Quinquennial Review—Progress of Education in India, 1947-52, P. 153

† Do Do 1947-52, P. 143

‡ India 1956, P. 274.

दृश्य-श्रव्य उपादानों के विकास के उद्देश्य से भारत सरकार ने विशेषज्ञों का एक सम्मेलन बुलाया, जिसके परामर्शों के अनुसार इसके लिए एक कार्यक्रम तैयार किया गया। १९५२-५३ में दृश्य-श्रव्य शिक्षा में लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए 'यूनेस्को' के तत्त्वावधान में दिल्ली तथा मैसूर में प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये।*

दिल्ली के "सेन्ट्रल इंस्टिच्यूट आफ ऐजुकेशन" ने सस्ते दाम का एक प्रोजेक्टर तैयार किया है, जिसके द्वारा कम खर्च में दृश्य-श्रव्य शिक्षा देहातों में प्रचलित की जा सकती है।†

इन चेष्टाओं के फलस्वरूप सन् १९४७ के पश्चात् सामाजिक शिक्षा की दृढ़ प्रगति शुरू हुई। विभिन्न राज्यों में केन्द्रीय सरकार के परामर्शों के अनुसार वयस्क शिक्षा के पुनर्गठन तथा प्रसार की चेष्टाएँ शुरू हुईं, जिनके फलस्वरूप वयस्क शिक्षा का काफी प्रसार हुआ। सन् १९४७–५३ के बीच सारे देश में लगभग २·४ लाख सामाजिक शिक्षा कक्षाएँ खोली गयीं, जिनमें लगभग ६० लाख वयस्कों ने शिक्षा पायीं। इनमें से लगभग ३० लाख वयस्कों ने साक्षरता प्राप्त की।‡ इनके अतिरिक्त भारतीय सेना में भी सामाजिक शिक्षा के प्रशंसनीय कार्य किये गए। इसके फलस्वरूप सेना में निरक्षरता लगभग लुप्त हो गयी है। इसी अवधि में भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में सामाजिक शिक्षा पर लगभग ४ करोड़ रुपये खर्च हुए।¶ केन्द्रीय सरकार की ओर से राज्य सरकारों को सामाजिक शिक्षा के लिए अनुदान मिलता रहा।

हमने देखा है कि पंचवर्षीय योजनाओं में भी सामाजिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। पहली पंचवर्षीय योजना में, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सामाजिक शिक्षा के लिए ७·५ करोड़ रुपये स्वीकृत किये गये। इस योजना के अधीन समाज शिक्षा के क्षेत्र में क्या क्या उपलब्धियाँ हुई—इसके आंकड़े अभी तक उपलब्ध न हो पाये हैं। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ निश्चितता-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। दूसरी पंचवर्षीय योजना में, जैसा कि हम इसी अध्याय में पहले देख चुके हैं, सामाजिक शिक्षा के लिए ५ करोड़ रुपये का खर्च प्रस्तावित हुआ।

---

* India 1956, P. 344.

† India 1955.

‡ Teachers Handbook of Social Education, P. 18.

¶ Do. P. 18.

सन् १९५२ ई० में सामुदायिक विकास योजना (Community Project) के परिचालन के साथ सामाजिक शिक्षा की सुविधाओं में काफी वृद्धि हुई। राष्ट्रीय प्रसार सेवा के द्वारा भी सामाजिक शिक्षा को सम्बल प्राप्त हुआ। सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में सामुदायिक योजना तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः इन योजनाओं की तह में सामाजिक शिक्षा का विकास ही है, जिसके द्वारा ही जन-सामान्य के जीवन में सुधार सम्भव है। सितम्बर १९५४ तक उपर्युक्त योजनाओं के अधीन ४६७ विकास अंचल (Development Blocks) खोले गये। इन अंचलों में १२,२९५ वयस्क शिक्षा केन्द्र खोले गये, जिनमें १,७५,९७५ वयस्क भरती हुए। इन केन्द्रों पर सन् १९५४ तक २९,९७,३५० रुपये खर्च हुए।* सामुदायिक योजनाओं के अधीन सामाजिक शिक्षा संगठन-कर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए कई केन्द्र खोले गये, जिनमें एक महिलाओं के लिए था।

स्त्री शिक्षा—सन् १९४७-५६ की अवधि में भारत की स्त्री शिक्षा ने तीव्र प्रगति की। सन् १९४७-४८ में सभी प्रकार की संस्थाओं में कुल मिलाकर ३,००००० कन्याएँ शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। सन् १९५४ ई० में इनकी संख्या ७५,५४,६२६ से हो गयी।† इनमें दो-तिहाई कन्याएँ लड़का-स्कूलों में ही शिक्षा पा रही थीं। इस वर्ष स्त्री-शिक्षा की संस्थाओं की कुल संख्या २२,३५४ थी। सन् १९४७-५२ के बीच भारत के प्रमुख राज्यों में स्त्री शिक्षा की प्रगति के निम्नांकित है।

अजमेर में सन् १९४७ में कन्या शिक्षा की कुल ९९ स्वीकृत संस्थाएँ थीं। सन् १९५१-५२ में इनकी संख्या ११३ हो गयी इनकी भी ७,५४२ से बढ़कर १४ ०५४ हो गयी। बम्बई में छात्राओं की संख्या १९४७-५१ के बीच दो, गुणी हो गयी। सन् १९५७ में कन्या प्राथमिक स्कूलों की संख्या १८०४ से बढ़कर २०६९ हो गयी। स्कूलों की संख्या से इनकी छात्राओं की संख्या में अधिक वृद्धि हुई। सन् १९४७ में इन छात्राओं की संख्या ४,८९,७८९ थी, सन् १९५१ में यह संख्या ११,९६, ६३५ हो गयी। माध्यमिक स्कूलों की संख्या में कुछ कमी हुई, जो कि १८४ से घट कर १५० हो गयी। किंतु इनकी छात्र-संख्या में बड़ी वृद्धि हुई, जो कि ६२,६२९ से बढ़कर ९६,१३४ हो गयी। उच्च

* Teachers Handbook of Social Education, P. 20.

† Education in India 1953-54—Vol. 1—P. 325.

शिक्षा के क्षेत्र में भी स्त्रियों ने काफी प्रगति की। सन् १९४७ में ५,१७७ स्त्रियाँ उच्च-शिक्षा की संख्याओं में भरती थीं। सन् १९५१-५२ में इनकी संख्या ५,१७७ होगई। इसी प्रदेश में एस० एन० डी० टी० विश्वविद्यालय स्त्री-शिक्षा के प्रश्रय के लिए विकसित हुआ, जिसके बारे में हम पहले कह चुके हैं। मद्रास प्रान्त में स्त्री शिक्षा में दृढ़ प्रगति हुई। यह प्रगति प्राथमिक शिक्षा में १२० प्रतिशत तथा माध्यमिक शिक्षा में ४१·२ प्रतिशत रही। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं की संख्या ३,२७६ से बढ़ कर ५,१३० हो गई। उत्तर-प्रदेश में, १९४७-५२ के बीच स्त्री शिक्षा में काफी प्रगति हुई। सन् १९४७ ४८ में कन्या संस्थाओं में पढ़नेवाली छात्राओं की कुल संख्या २०४,४२० थी, सन १९५१-५२ में यह संख्या बढ़कर ३,४८, ९८४ हो गयी। लड़का संस्थाओं में पढ़नेवाली छात्राओं की सख्या इसी अवधि में १,११,८९६ से बढ़कर ११,७८,५७२ हो गयी, प्राथमिक स्कूलों की संख्या, इसी अवधि में दो गुणी हो गई।† इनमें पढ़नेवाली बालिकाओं की संख्या १,००,००० अधिक हो गई।

बिहार—सन् १९४७-५२ के बीच बिहार में स्त्री शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई।‡ स्कूलों तथा कालेजों में छात्राओं की संख्या में प्रशंसनीय वृद्धि हुई। सन् १९४६-४७ में कन्या—शिक्षा की स्वीकृत संस्थाओं में कुल मिलाकर ८३,८२९ छात्राएँ थीं। सन् १९५१-५२ में इनकी संख्या १,१४,९६६ हो गई। स्त्री-शिक्षा की स्वीकृत संस्थाओं की संख्या, इस अवधि में, २११९ से बढ़कर २४४३ हो गयी। सन १९४७-४८ में प्रान्त में केवल ३ महिला कालेज थे, सन् १९५१-५२ में इनकी संख्या ६ हो गई। इस अवधि में स्त्रियों के लिए एक व्यावसायिक शिक्षा का कालेज खुला। सन् १९४६-४७ में कन्या माध्यमिक स्कूलों की संख्या २३ थी, जिनमें ३ सरकारी स्कूल थे। सन् १९५१-५२ में उनकी संख्या ३६ हो गई, जिनमें १५ सरकारी स्कूल थे। मिडिल तथा सीनियर बेसिक स्कूलों की संख्या, सन् १९३७-४८ में केवल ९५ थीं, जो सभी गैरसरकारी थे। सन् १९५१-५२ में इनकी संख्या १३१ हो गई, जिनमें ३२ मिडिल स्कूल तथा ४ सीनियर बेसिक स्कूल सरकारी थे। प्राथमिक तथा जुनियर बेसिक स्कूलों की संख्या

† Quinquennial Review-Progress of Education in India. 1947—52, P. 166.

‡ Do Do Do P. 160.

१६४७-५२ के बीच १६५४ से बढ़कर २१८७ हो गई। कन्या शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी बिहार में प्रगति हुई।

विशिष्ट जातियों की शिक्षाः—

१—ऐंग्लो इण्डियन तथा यूरोपियन—इन जातियों की शिक्षा पूर्ववत् विशेष संस्थाओं में होती रही। १६४० के बाद बहुत से यूरोपीय भारत छोड़कर चले गये। अतः विशिष्ट स्कूलों की संख्या घट गई, किन्तु इनके छात्रों की संख्या न घटी। इसका कारण यह था कि संविधान के अनुसार विशिष्ट संस्थाओं को सरकारी अनुदान तभी मिल सकता था जब कि इन स्कूलों में ४० प्रतिशत छात्र अन्य जातियों के भरती किये जाते। स्वभावतः इन विशिष्ट स्कूलों में अन्य जातियों की संख्या बहुत बढ़ गई। संविधान ने यह भी निर्देश दिया कि विशिष्ट स्कूलों का सरकारी अनुदान क्रमशः घटता जाय और दस वर्ष की अवधि के अन्त तक बन्द कर दिया जाय।

२—अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों की शिक्षा—हमने पहले देखा है कि भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा पिछड़ी जातियों की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देने का आदेश दिया गया था। अतः भारत सरकार ने इन जातियों के छात्रों को छात्रवृत्ति देने के लिए काफी रुपये स्वीकृत किये। ये छात्रवृत्तियाँ इन जातियों के उन छात्रों को दी जाती थी जो मैट्रिकुलेशन के बाद आगे पढ़ना चाहते थे। सन् १६५-५१ में छात्रवृत्ति की रकम क्रमशः १२ तथा १५ लाख थी। १६५४-५५ में भारत सरकार ने इन जातियों के लिये १ करोड़ ७ लाख रुपये स्वीकृत किये, जिनसे २१,०७५ चुने हुए छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं।* ये छात्रवृत्तियाँ अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों के उन छात्रों को दी जाती थी जो, 'मैट्रिकुलेशन' के बाद, आगे पढ़ना चाहते थे। इनके अतिरिक्त अनुसूचित जाति, आदिवासी तथा पिछड़ी जाति के ६ छात्रों को छात्रवृति देकर विदेश पढ़ने के लिए भेजा गया। यह निश्चय किया गया है कि इस प्रकार की समुद्रपार छात्रवृत्तियाँ ५ वर्ष के लिये और भी जारी रहेंगी और छात्रवृत्तियों की संख्या १२ कर दी जायँगी।

भारत सरकार के द्वारा पब्लिक स्कूलों में दी जानेवाली छात्रवृत्तियों में १७½ प्रतिशत पिछड़ी जातियों के लिए सुरक्षित है। सन्

---

* India 1955, P. 346

१९५४ में ८ छात्रों को ये छात्रवृत्तियाँ दी गयीं। भारत में पढ़ने वाले इन जातियों के छात्रों को सन् १९५५-५६ में २५००० छात्रवृत्तियाँ दी जायेंगी।*

राज्य-सरकारों ने भी अनुसूचित जातियों, जन-जातियों तथा पिछड़ी जातियों की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। सन् १९५१-५२ तक राज्य सरकारों के द्वारा, इस मद में, दो करोड़ रुपये खर्च किये गये।† राज्य-सरकारों ने इन जातियों की शिक्षा सुविधाओं को विस्तृत करने के लिए, १९५३-५४ तक, निम्नलिखित संस्थाएँ खोलीं ‡

	अनुसूचित जातियों के लिए	अनुसूचित जनजातियों के लिए
बुनियादी स्कूल	२४९	३४
प्राथमिक स्कूल	१९८	१८०
आवासिक स्कूल	१०१	....
वयस्क शिक्षा केन्द्र	१८४	८३
वृत्तियाँ तथा छात्र-वृत्तियाँ	२,१४,२५०	९२४४
पुस्तक अनुदान	१३, ८९१	३८००

उपर्युक्त आँकड़े आसाम, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, मध्यभारत, राजस्थान, त्रावणकोर, कोचीन, अजमेर, भोपाल, कुर्ग, कच्छत्रिपुरा तथा विन्ध्य प्रदेश के लिए हैं।£

बिहार में सन् १९४७-५२ के बीच अनुसूचित जातियों की शिक्षा, विभिन्न स्तरों पर, ठोस प्रगति हुई। सन् १९४६-४७ में सभा संस्थाओं में ५२,१८८ अनुसूचित जाति के लड़के तथा २,६४२ लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। सन् १९५१-५२ में इनकी संख्या १,१०,४४४ तथा ९,९०० हो गयी। सन् १९५१-५२ में बिहार में अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों (जिनमें पिछड़ी जन जातियाँ सम्मिलित थीं) के लिए १७५९ विशिष्ट स्कूल लड़कों के लिए, तथा ९१ लड़कियों के लिए थे।+

---

* India 1955, P. 346.

† Quinquennial Review—1947-52, P. 217.

‡ India 1956, P. 346

£ Five Year Plan—Progress Report, 1953-54.

+ Quinquennial Review—Progress of Education in India, 1947-52, P. 218

इन स्कूलों में ५४, ५३६ लड़के तथा ८,१५५ लड़कियाँ पढ़ रही थीं। इन संस्थाओं पर कुल मिलाकर ७,६५,७६७ रु० खर्च हो रहे थे। अनुसुचित जातियों तथा पिछड़े लोगों की सारी सुविधाओं पर किये गये खर्च की रकम, सन् १९४१-५२ में, १७,३६,५६७ रु० थी।

३—आदिम जातियों की शिक्षा—सन् १९४७ के पहले, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आदिम जातियों की शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त असंतोषप्रद थी। इस दिशा में अधिकांश कार्य धर्म प्रचारकों के द्वारा हो रहा था। भारत के संविधान में इन जातियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने का आदेश दिया गया—यह हम देख चुके हैं। फलतः सन् १९४७ के पश्चात् केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारों के द्वारा इन जातियों की शिक्षा की सुविधाएँ विस्तृत की गयीं।

केन्द्रीय सरकार ने मैट्रिकुलेशन के बाद पढ़ने के लिए छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था आदिम जातियों के लिए भी की। सन् १९५०-५१ तथा १९५१-५२ में इन जातियों के छात्रों को क्रमशः ३५६ तथा ५२१ छात्रवृतियाँ मिलीं। राज्य सरकारों ने इनके लिए प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की कई सुविधाएँ दीं। सविधान के अनुच्छेद २५७ (क) के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा-प्रसार के लिए राज्य सरकारों को काफी रुपये दिये। आसाम में, जहाँ आदीवासियों की संख्या अत्यधिक है शिक्षा प्रसार की विशिष्ट योजना बनायी गयी।

शारीरिक शिक्षा—किसी भी शिक्षा पद्धति में शारीरिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य का महत्व बढ़ता जा रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् इस शिक्षा की ओर सरकार, शिक्षक, तथा जनता सभी का ध्यान अधिक मात्रा में आकृष्ट हुआ।

केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में देश में शारीरिक शिक्षा को कई तरह का प्रश्रय मिला। भारतीय युवकों ने अन्तर्राष्ट्रीय शारीरिक बल प्रतियोगिता में सन् १९४८ तथा ४९ में भाग लिया। सरकार ने स्टौकहम में होने वाले सम्मेलन में भाग लेने के लिए हनुमान, व्यायाम प्रसारक मंडल, अमरावती' का आर्थिक सहायता दी,† हॉकी आदि खेल में भाग लेने के लिए भारतीय दल बाहर गया। सरकार ने

† Quinquennial Review—Progress of Education in India. 1947-52. P. 172.

'इंडियन ओलिम्पिक एसोसिएशन' को आर्थिक सहायता देकर कई तरह से प्रोत्साहित किया। इस ऐसोसिएशन ने दिल्ली, में १६५१ में एशियाई खेल सम्मेलन आयोजित किया। एक राज्य तथा दूसरे राज्य के छात्रों के बीच कई प्रतियोगिताएँ आयोजित की गई। महिला विद्यालय उदयपुर में लड़कियों की एक प्रतियोगिता बड़े पैमाने पर आयोजित हुई। यह प्रतियोगिता भारतीय शिक्षा के इतिहास में पहली बार आयोजित हुई।‡ 'नेशनल कैडेट कोर' को विस्तृत किया गया।

सन् १६५१ में संयुक्त राष्ट्रसंघ युवक कल्याण गोष्ठी (Youth Welfare Seminar) शिमला में आयोजित हुई। इस गोष्ठी में युवक कल्याण आंदोलन के विस्तार के लिए कई परामर्श उपस्थित किये गये। १६४७-५२ की अवधि में "हिन्दुस्तान स्काउट्स एसोसिएशन" और "इण्डियन व्याय स्काउट्स, एसोसिएशन" एक साथ मिला दिये गये। संयुक्त संस्था का नाम 'भारत स्काउट्स एण्ड गाइड्स' पड़ा। भारत सरकार ने इस संस्था को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया। १६५१ ई० में स्काउट और गाइडों की कुल संख्या ५, ४१,५४५ थी। छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति के लिये सर्जेंट योजना में स्कूलों में दोपहर के जलपान की व्यवस्था की सिफारिश की गई, जिसके अनुसार लगभग सभी राज्यों में दोपहर के जलपान की प्रथा चालू की गई। किन्तु यह अधिक व्यापक न हुई। छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति के लिये शारीरिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य की जाँच की व्यवस्था की गई। सन् १६४६-५० में बिहार में एक शारीरिक शिक्षा का कॉलेज खोला गया। इसके अतिरिक्त एक सहायता-प्राप्त कॉलेज मुजफ्फरपुर में था। शारीरिक शिक्षा के ६ स्कूल भी बिहार में क्रियाशील थे।

सांस्कृतिक कार्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग—स्वतंत्रता के पश्चात् सांस्कृतिक विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के महत्वपूर्ण कार्य हुए। स्वतन्त्रता के पहले सांस्कृतिक बातों से सरकार का सम्बन्ध नहीं के बराबर था। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने सांस्कृतिक विकास के लिये न केवल देश ही में प्रयत्न किये, बल्कि अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने की

‡ Quinquennial Review—Progress of Education in India. 1947-52. P. 173.

चेष्टा भी इसने की। सन् १९५० ई० में 'इण्डियन कौंसिल ऑफ कल्चरल रिलेशन्स" स्थापित हुई। इस संस्था का उद्देश्य भारत का अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध जोड़ना था। इसके कार्यक्रम में विद्यार्थियों के आदान-प्रदान, कलाकारों के परिभ्रमण, भारतीय संस्कृति के अध्ययन की व्यवस्था आदि कई बातें शामिल थीं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संस्था "यूनेस्को" से सहयोग स्थापित करने के लिए सन् १९५२ ई० में एक राष्ट्रीय आयोग (National Commission) स्थायी रूप से, कायम किया गया। इस आयोग की स्थापना ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के क्षेत्र में एक दृढ़ कदम बढ़ाया और यह स्पष्ट कर दिया कि स्वतंत्रता, शांति तथा उन्नति नवनिहालों की शिक्षा तथा सभी राष्ट्र के लोगों के शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के सम्बन्ध में निकटतर सहयोग पर आश्रित है। यूनेस्को के द्वारा बहुत से भारतीय छात्रों को विदेशों में पढ़ने के लिये छात्रवृत्तियाँ आदि मिलीं। यूनेस्को के परामर्श पर केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने दिल्ली में सन् १९५१ में दर्शन के प्रोफेसरों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार विश्वदर्शन के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित की गयी। शिक्षा मंत्रणालय के तत्त्वावधान में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन शिक्षा के दर्शन और मानव के मूल्य के निर्धारण के लिये एक गोष्ठी दिसम्बर १९५१ में आयोजित की गई, जिसमें शिक्षा के नये आदर्श तथा मानव जीवन के नये मूल्यों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श हुए।† ये विचार एक पुस्तक में प्रकाशित हो चुके हैं, जिसका नाम "ह्यूमैनिज्म ऐण्ड एजुकेशन इन ईस्ट ऐन्ड वेस्ट" है।

---

† The Quinquennial marks the beginnings of activity in many feilds of cultural development and international relations. Quinquennial Review-Progress of Education in India.
1947-55. P. 191

‡ The establishment of the National Commission was a visible symbol of the importance of international exchanges in the field of culture and of the recognition of the fact that the cause of freedom, peace and progress depends upon the education of the younger generation and closer contacts between all peoples in education, science and culture.
Quinquennial Review-Progress of Education in India, P. 192

† Quinquennial Review-Progress of Education in India,
1947-52, P.273. P. 193

भारत सरकार ने एशिया तथा अफ्रिका के छात्रों के लिये विशिष्ट छात्रवृत्तियाँ आयोजित की हैं, जिनके द्वारा इन देशों के छात्रों को भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने की व्यवस्था की गयी। इस योजना के अधीन १९५४-५५ में २६० एशियाई तथा अफ्रिकी छात्र भारत में अध्ययन कर रहे थे। सन् १९५५-५६ में ऐसे ८५ छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं।‡ चीन तथा भारत में हाल ही से विद्यार्थियों का आदान-प्रदान शुरू हुआ है, जिसके अनुसार १० चीनी छात्र भारत आये। उन भारतीय छात्रों का चुनाव हो गया है जो चीन जायेंगे। जर्मनी के साथ भी औद्योगिक सहयोग की योजना चलाई गई है जिसके अनुसार पश्चिमी जर्मनी ने भारतीय छात्रों के लिये ६५ छात्र-वृत्तियाँ स्वीकृत की हैं। भारत सरकार ने भी बदले में जर्मन नागरिकों को भारतीय विश्वविद्यालयों अथवा इंस्टिच्यूटों में भारतीय भाषा, धर्म तथा दर्शन के अध्ययन के लिए १० छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत कीं।§ 'कोलम्बो' प्लान के अधीन नेपाल से ६२ छात्र, सिक्किम से ६ और फिलीपाइन्स से ६ छात्र सन् १९५५-५६ में भारत पढ़ने आये।*

सन् १९५४-५५ से भारत सरकार २५ छात्रवृत्तियाँ अफ्रिका, मौरिसस, ब्रिटिश वेस्ट इन्डिज तथा फीजी के विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए दे रही है।†

पारस्परिक छात्र योजना (Reciprocal Scholarship) के अधीन भारत सरकार उन देशों के युवकों को छात्रवृत्तियाँ देती है, जिन्होंने भारतीय छात्रों को स्नातकोत्तर अध्ययन की सुविधाएँ प्रदान की हैं। इस योजना में बेल्जियम, इटली, मेक्सिको, नौरवे, स्वेडेन, स्वीट्जरलैंड तथा यूगोस्लाविया आते हैं। १९५४-५५ में योजना की अधीन १७ छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत की गयीं।×

स्वदेश में सांस्कृतिक उन्नति के कार्य—देश में सांस्कृतिक अभ्युत्थान के लिए भारत सरकार ने कई महत्त्वपूर्ण कार्य, स्वतंत्रता के पश्चात् किये। देश के सुविख्यात गायकों को पुरस्कृत करने के विचार से राष्ट्रपति का पुरस्कार (Presidential Awards) कायम किया

‡ India 1956, P. 273.

§ India 1956. P. 273.

* Quinquennial Review 1947-52. P. 194.

† India-1956-P.274

× India-1956-P. 274

गया। होनहार चित्रकारों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने चित्रकारों की एक अखिल भारतीय प्रतियोगिता योजना, सन् १९४९ ई० में चलायी। इसी तरह की प्रतियोगिता कलाकारों के प्रोत्साहन के लिए भी चलायी गयी। विभिन्न कलाओं के विकास, समुन्नति तथा संयोजन के लिए भारत सरकार ने "संगीत नाटक अकादमी", "साहित्य अकादमी" तथा "ललित कला अकादमी" की स्थापना की। पहली संस्था की स्थापना जनवरी १९५३, दूसरी की मार्च १९५४ तथा तीसरी की अगस्त १९५४ में हुई।*

फरवरी १९५१ में प्रधान मंत्री ने राष्ट्रीय कला संग्रहालय (National Art Treasure Fund) का उद्घाटन किया। इस संग्रहालय का उद्देश्य देश के प्राचीन तथा आधुनिक कला-कृतियों की उत्तम कृतियाँ को एकत्रित तथा संरक्षित करना है। प्रतिभावान कलाकारों को प्रोत्साहित करने के निमित्त भारत सरकार ने इनकी अच्छी कृतियों को सरकारी कोष से खरीदने की व्यवस्था की। सन् १९४९-५० ई० में एक खुली प्रतियोगिता के आधार पर २५०० रु० की ८ छात्रवृत्तियाँ होनहार कलाकारों को दी गयीं। सन् १९५१-५२ में ३५०० रु० की पांच छात्रवृत्तियाँ चुने हुए क्षेत्रीय कलाओं के प्रोत्साहन के निमित्त स्वीकृत की गयीं।

अखिल भारतीय प्रौद्योगिक शिक्षा कौंसिल (All India Council for Technical Education) ने प्रौद्योगिक शिक्षा के अंग के रूप में, कला शिक्षा के पुनर्गठन पर ध्यान दिया। इसके लिए सभी कला संस्थाओं के प्राचार्यों तथा प्रौद्योगिक शिक्षा-बोर्ड के सदस्यों का एक सम्मेलन बैठा। इस सम्मेलन में यह तय हुआ कि कला शिक्षा के सही विकास के लिए यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के मानों को स्थिर करने तथा शिक्षा-चेष्टाओं को संयोजित करने की ओर ध्यान दिया जाय। फलतः इसने कला-शिक्षा के ५ वर्ष के अध्ययन-क्रम निर्धारित किये, जिसमें ३ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा तथा २ वर्ष की उच्च शिक्षा सन्निविष्ट थी। इसके उपरान्त छात्रों को कला शिक्षा की राष्ट्रीय डिप्लोमा प्राप्त होती। इस शिक्षा के बाद १ वर्ष की स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था भी की गयी, जिसके उपरान्त छात्रों को राष्ट्रीय उच्च योग्यता का डिप्लोमा अथवा प्रमाण-पत्र मिलता। इस सामान्य पद्धति के अन्तर्गत विभिन्न कला-

* Humayun Kabir—Education the New India-P.18.

शिक्षाओं को अपने-अपने पाठ्यक्रम के निर्धारण की छूट दी गयी। इस तरह की संगठित शिक्षा-योजना की सिफारिश प्रायोगिक कला (Applied Arts) के लिए भी की गयी।

केन्द्रीय सरकार की चेष्टाओं से अनुप्राणित होकर विभिन्न राज्य सरकारों ने भी कला-शिक्षा के पुनर्गठन तथा विकास के लिए अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये।

बिहार में पटना स्कूल ऑफ आर्टस् का प्रान्तीयकरण किया गया। २७ जनवरी १९५२ को बिहार नृत्य, नाट्य तथा संगीत अकादमी का उद्घाटन हुआ। कुछ गैरसरकारी संस्थाओं में भी नृत्य, नाट्य तथा संगीत की शिक्षा की व्यवस्था की गई। इनमें भारतीय नृत्य कला मन्दिर (पटना), आर्टस् ऐण्ट आर्टिस्ट (पटना) तथा गीताली जंत्री संघ (राँची) प्रमुख हैं। इन विशिष्ट संस्थाओं के अतिरिक्त सरकार ने कालेजों तथा स्कूलों में संगीत, नृत्यादि की शिक्षा की व्यवस्था का आदेश दिया। सन् १९५०-५१ में सरकार ने एक आदेश जारी किया, जिसमें सभी प्रकार की संस्थाओं तथा जिला बोर्ड आदि के अधिकारियों को अपनी-अपनी संस्थाओं की फुलवारियों तथा वातावरण को सजाने के लिये कहा गया। बिहार के संशोधित पाठ्यक्रम के अनुसार संगीत, विशेषतः कन्या स्कूलों में, अनिवार्य बनाया गया, किन्तु यह उन्हीं स्कूलों में लागू हो सकता है जहाँ सुयोग्य संगीत शिक्षक उपलब्ध थे। पटना विश्वविद्यालय में एक 'संगीत' विभाग खोला गया तथा मगध महिला कालेज में भी संगीत की शिक्षा की व्यवस्था की गई।

मजबूरों की शिक्षा—केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में मजबूरों की शिक्षा के लिए एक अलग विभाग खोला गया। सन् १९४७ के बाद इस शिक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बात भारती सांकेतिक चिह्नों (Bharti Braille) का प्रचलन था। यह ब्रेले यूनेस्को के विशेषज्ञों के सिफारिशों के आधार पर निर्मित हुआ।* अन्ध-वयस्कों के प्रशिक्षण के लिए देहरादून में सन् १९५० में एक केन्द्र खोला गया जहाँ निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। सन् १९५१-५२ में अजमेर तथा कच्छ में अन्धों के लिए दो नये स्कूल खोले गये। देहरादून में केन्द्रीय ब्रेले छापाखाना (Central Braille Printing Press) खोला

*Quinquennial Review—Progress of Education in India. P. 242

गया, जिसने तीन हिन्दी ब्रेले पाठ्य-पुस्तकें छापीं। अन्य पुस्तकें भी इसके द्वारा छापी गयीं। संगीत की शिक्षा में अन्धों को सुविधा देने के लिए एक संगीत ब्रेले के निर्माण के लिए एक कमिटी आयोजित की गयी। दिसम्बर १९५० में जमशेदपुर में मजबूरों की शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन संयुक्तराष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में हुआ। भारत सरकार ने इस सम्मेलन को १०,००० रु० की सहायता दी। सन् १९५०-५१ में मजबूरों की शिक्षा की कुल ८५ संस्थाएँ थीं, जिनमें ५ लड़कियों के लिए थीं, इनमें ३६,६३६ बालक तथा २४४५ बालिकाएँ दाखिल थीं।

मजबूरों की शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देने के लिए एक राष्ट्रीय सलाहकारिणी समिति (National Advisory Council) नियुक्त की गयी। अन्धे बच्चों के लिए देहरादून में एक आदर्श स्कूल खोले जाने वाला है। ‡ यहीं वयस्क प्रशिक्षण केन्द्र में एक स्त्री विभाग भी खुलने वाला है। अंधे तथा बहरों की शिक्षा के सम्बन्ध में दो पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं—"डेफ इन इंडिया" तथा दीपावली।×

युवक कल्याण (Youth Welfare)—सन् १९५३ में शिक्षा मंत्रालय के अधीन एक युवक कल्याण शाखा संगठित हुई। युवक कल्याण के लिये कार्यक्रमों का निर्धारण तथा इस क्षेत्र में लगे हुए सभी संस्थाओं के कार्यों का संयोजन—इस शाखा के उद्देश्य रखे गये। अक्तूबर १९५४ में युवक समारोह (Youth Festival) प्रारम्भ किया गया। तब से प्रतिवर्ष यह समारोह अक्तूबर में होता आया है। इस समारोह में सभी विश्वविद्यालयों के चुने हुए छात्र सम्मिलित होते हैं। समारोह में कला, दस्तकारी, चित्रकारी, संगीत, नृत्य, नाटक आदि आयोजित होते हैं तथा विभिन्न प्रकार के सहयोगी कार्यक्रम चलाये जाते हैं। विजयी छात्रों को पारितोषिक दिये जाते हैं।

छात्रों में अनुशासन का भाव भरने तथा सहयोग जागृत करने के उद्देश्य से शिक्षा मंत्रालय ने युवक नेतृत्व प्रशिक्षण शिविर (Youth Leadership Training Camps) आयोजित किया।

---

† Quinquennial Review—Progress of Education in India, P. 243.

‡ India 1956—P. 275

× India 1956—P. 275

ऐतिहासिक, प्राकृतिक और सांस्कृतिक स्थानों के भ्रमण भी सरकार के द्वारा प्रोत्साहित किये गये। सन् १९५५ में सरकार ने इसलिये ३७ हजार रुपये स्वीकृत किये, जो तीस परिभ्रमणार्थी दलों को दिये गये। ऐसे दलों के आवास के लिये देश में ८० युवक आवास-गृह (Youth Hostels) बनाये गये। इन आवास-गृहों में परिभ्रमणार्थियों के लिए, कम खर्च में, भोजन तथा ठहरने का प्रबन्ध रहता है।

जून १९५५ में भारत सरकार ने एक अखिल भारतीय खेल-कूद समिति (All India Council of Sport) संगठित की। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार क्रिकेट, फुटबौल, हौकी, कबड्डा तथा कुश्ती के प्रशिक्षण शिविर खोले गये। सन् १९५४-५५ में सरकार ने 'इन्डियन ओलेम्पिक एसोसिएशन' तथा अन्य संस्थाओं को २००७६३ रुपये का अनुदान दिया।

उपसंहार

गत पृष्ठों में हम स्वतंत्र भारत की दस वर्ष की अवधि की शिक्षा का संक्षिप्त परिचय दे चुके। हमने देखा है कि स्वतंत्र भारत के इतिहास का प्रथम अध्याय राजनीतिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक विपत्तियों से आक्लान्त रहा। सन् १९४७-५६ की अवधि का एक बड़ा भाग इन्हीं विपत्तियों के समाधान में लग गया। राष्ट्र की सारी शक्तियाँ इनकी ओर ही केन्द्रीभूत हो गईं। पुनर्निर्माण का कार्य काफी दिनों तक स्थगित-सा रहा। हमने यह भी देखा है कि पंचवर्षीय की योजनाओं में कृषि तथा उद्योग को प्राथमिकता दी गई। शिक्षा का स्थान अपेक्षाकृत नीचे रहा। फलतः शिक्षा के पुनर्गठन तथा प्रसार के लिए उतने साधन उपलब्ध न हो सके, जितने अपेक्षित थे। ऐसी स्थिति में सन् १९४७-५६ की उपलब्धियाँ, शिक्षा के क्षेत्र में, उतनी नहीं हुईं जितनी की हम आशा कर रहे थे।† संविधान का यह निर्देश कि प्राथमिक शिक्षा १० वर्ष की अवधि में देश के सभी बच्चों को उपलब्ध हो जाय, द्वितीय पंचवर्षीय योजना तक सिद्ध नहीं हो सकेगा। स्वतंत्रता के १० वर्ष के बाद भी देश में कई संस्थाएँ ऐसी हैं, जिनके दरवाजे से बहुत-से छात्रों को निराश लौटना पड़ता है।

---

† The achievement is still far short of the aspiration and perhaps even short of the capacity of the Indian people.

Humayun Kabir—Education in New India, P. 21.

स्पष्टतः शिक्षा की सुविधायें, कई क्षेत्रों में, शिक्षा की माँगों की पूर्ति नहीं कर रही हैं। शिक्षा की सुविधाओं के गणतंत्रीकरण की दिशा में भी बहुत कार्य बाकी है। शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में भी कई प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर अन्तिम रूप से निर्णय नहीं लिए जा सके हैं। वस्तुतः राष्ट्रीय शिक्षा का स्पष्ट रूप अभी तक नहीं निखर सका है।

फिर भी, जैसा कि हम इस अध्याय में देख चुके हैं, अपने १० वर्ष के संघर्षमय जीवन में ही, स्वतंत्र भारत ने शिक्षा के लगभग सभी क्षेत्रों में कई लम्बे डेग भरे। लगभग सभी क्षेत्रों में शिक्षा-संस्थाओं तथा छात्रों का तीव्र विस्तार हुआ। इसके साथ ही, शिक्षा के राष्ट्रीयकरण में भी पर्याप्त प्रगति हुई। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के नये मार्ग प्रदर्शित कर दिये हैं। प्राथमिक शिक्षा का रूप भी बुनियादी शिक्षा स्थिर हो चुका है। वस्तुतः स्वतंत्र भारत का प्रथम युग योजनाओं का युग था, लक्ष्य-निर्धारण का युग था। और इस दृष्टि से, सन् १९४७-५६ की उपलब्धियाँ ठोस रही हैं।†

किंतु, इन उपलब्धियों के साथ ही कुछ ऐसी अधोमुखी प्रवृत्तियाँ भारतीय शिक्षा में दृष्टिगोचर होने लगी हैं, जिन्हें शुभ नहीं कहा जा सकता। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा पंचवर्षीय योजनाओं की सिफारिशों के समक्ष भी, हमारी शिक्षा की दशा, गुणात्मक दृष्टि से, शोचनीय हो गयी है। उच्च शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा के औसत मान गिरते जा रहे हैं। लोकसेवा आयोगों की रिपोर्ट, जो समय-समयपर प्रकाशित होते हैं, इस बात के प्रमाण हैं कि हमारी शिक्षा-पद्धति कुछ ऐसे कीटाणुओं से ग्रसित है, जो इसकी जीवन-शक्ति को क्षीण कर रहे हैं। हमारे स्नातकों की उपाधियाँ, जो १५-१६ वर्षों के निरन्तर अध्ययनके पश्चात् उपार्जित होती हैं, सशंकित नेत्रों से देखी जा रही हैं। माध्यमिक शिक्षा समाप्त किये हुए उम्मीदवार बहुधा उन बातों से भी अनभिज्ञ रहते हैं, जिनकी जानकारी उन्हें प्राथमिक स्कूलों में ही हो जानी चाहिए थी। समाचार-पत्रों में ऐसे उम्मीदवारों के जो विचित्र उत्तर समय-समय पर छपते

---

† It will be clear.........that many of the existing shortcomings have been overcome and the foundations laid for a truly national system of education for resurgent India.

Humayun Kabir—Education in New India—P. 20.

रहते हैं, उन्हें पढ़कर हम विचलित हुए बिना नहीं रह सकते। जिन शिक्षकों ने नये और पुराने दोनों जमाने देखे हैं—उनके लिए आज के औसत छात्रों की उपलब्धियाँ कल के औसत छात्रों की उपलब्धियों से न्यून दीख पड़ती है। इस स्थिति के कई कारण हैं, जिनमें एक प्रमुख कारण यह भी है कि शिक्षकों के वेतन तथा उनकी सेवा की शर्तें न उचित व्यक्तियों को शिक्षण-कार्य के लिए आकृष्ट कर पाती हैं, न अच्छे कार्य की प्रेरणा प्रस्तुत करती हैं। शिक्षकों की वेतन-वृद्धि तथा सेवा की शर्तों में सुधार की कुछ चेष्टाएँ अवश्य हुई हैं। किंतु ये इतनी अपर्याप्त हैं कि इनसे शिक्षकों की भौतिक स्थिति में ठोस सुधार न हो सका है। फलतः शिक्षकों में, विशेषतः माध्यमिक तथा प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों में, असन्तोष और नैराश्य परिव्याप्त है। स्पष्टतः ऐसी स्थिति में शिक्षा की गुणात्मक उन्नति कठिन है।

दूसरी अधोमुखी प्रवृत्ति अनुशासनहीनता की है। गत अध्याय में हमने देखा है कि अनुशासन की समस्या सन् १९४७ के पहले ही उत्पन्न हो गयी थी। जिन परिस्थितियों ने इस समस्या की उत्पत्ति में योग दिया था—उनका संकेत भी हमने कर दिया है। किंतु देश की बदली हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में छात्रों की अनुशासनहीनता भारतीय शिक्षा पद्धति की एक ऐसी व्याधि के रूप में ग्रहण होनी चाहिए, जिसके निराकरण के लिए हमारे सारे साधनों के संयोजन अपेक्षित हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो यह व्याधि इतनी घातक हो जायगी कि हमारा राष्ट्रीय जीवन ही खतरे में पड़ जा सकता है।† विश्वविद्यालय आयोग तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अनुशासन की समस्या के हल के निमित्त बहुमूल्य परामर्श उपस्थित किये हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इन सिफारिशों को, सही रूप में, यथाशीघ्र कार्यान्वित किया जाय। हम यह नहीं चाहते कि हमारे युवक छात्र जागरूक तथा प्रगतिशील न हों। हम यह भी नहीं चाहते कि राजनीतिक बातें उनके लिए अस्पृश्य वस्तु रहें। किंतु हम यह चाहते हैं कि उनका दृष्टिकोण विद्यार्थी

---

† Failure to take effective steps at this stage can so aggravate the problem that it may shake the very foundations of our national life.

Humayun Kabir—Education in New India-P. 151

का दृष्टिकोण हो, वस्तु-स्थिति के अध्ययन तथा परीक्षण का दृष्टिकोण हो। राजनीतिक स्थितियाँ उनकी बौद्धिकता को जागृत करें, लगनशील करें तथा समृद्ध बनावें। अनुशासन का अर्थ स्वतंत्रता का अपहरण नहीं, अपितु स्वतंत्रता का सम्यक् और सही उपयोग होना चाहिये। हमारे विद्यालयों को, इसके लिए, छात्रों को प्रशिक्षित करना है। विद्यालयों की चहारदीवारी के बाहर जो प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं, उनके भी सुधार आवश्यक हैं; और इसके लिए अभिभावकों, नेताओं तथा सरकार के प्रयत्न अपेक्षित हैं।

हमारी शिक्षा की तीसरी प्रवृत्ति, जिसे हम शुभ नहीं कह सकते, वह विगत युग की 'मानसिकता' के प्रति जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई, उससे संबद्ध है। अंग्रेजी शिक्षा के 'किताबीपन' और 'मानसिकता' के विरुद्ध जो आवाजें उठीं और उठ रही हैं, वे बहुत-कुछ युक्तिसगत हैं। किंतु इन दोषों का निराकरण न किताबों के बहिष्कार से होगा, न मस्तिष्क की उपेक्षा से। दुर्भाग्यवश, कहीं-कहीं किताबीपन अध्ययनहीनता तथा मानसिकता शारीरिकता में परिवर्तित होती नजर आ रही है। शिक्षा-घड़ी का 'पेन्डुलम' मानसिकता की ओर से झटका खाकर शारीरिकता पर टिकना चाहता है। किंतु यह उचित नहीं। शरीर का संवर्द्धन मस्तिष्क के मूल्य पर नहीं, अपितु इसके साथ होना चाहिए। इसकी उपेक्षा, किसी भी स्थिति में, हमारे वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय जीवन के लिए अशुभ होगा।

हमने गत अध्याय में देखा है कि अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का एक बड़ा दोष यह था कि यह इंगलैंड की शिक्षा-पद्धति के कदमों को चूमती रही। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारी शिक्षा-पद्धति के आदर्श बदल गये हैं; और हम अपनी शिक्षा-पद्धति के राष्ट्रीयकरण में संलग्न हैं। किंतु आज भी हम उन पद्धतियों तथा व्यवहारों को, ज्यों के त्यों, अपने यहाँ बरबस खींचना चाह रहे हैं, जोकि प्रगतिशील देशों में प्रचलित हो गये हैं। इस चेष्टा में हम बहुधा यह भूल जाते हैं कि ये पद्धतियाँ तथा व्यवहार हमारे उपयुक्त नहीं भी हो सकते हैं और यदि हो सकते हैं तो वांछित संशोधन और रूपान्तर के पश्चात्। अमेरिकी इन्जिन को चलाने के पहले यह देख लेना जरूरी है कि हमारे रेल-मार्ग इसके उपयुक्त हैं या नहीं। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो खतरे की सम्भावना बराबर बनी रहेगी। हमारे

कहने का यह तात्पर्य्य कदापि नहीं कि हम शिक्षा और शिक्षण के नये विचारों तथा नयी रीतियों से लाभ न उठावें। हम केवल यह कहना चाहते हैं कि किसी नवीन पद्धति को उसी रूप तथा उसी अनुपात में हम ग्रहण करें, जिससे कि वह हमारे लिए उपयुक्त हो सके। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो सम्भवतः हमें लाभ के बदले हानि ही उठानी पड़े। अतः शिक्षा के नये व्यवहारों के अनुसरण में हमें अपने पाँव सँभल-सँभल कर उठाने हैं। यह भी अपेक्षित है कि भारतीय शिक्षा के नव-निर्माण में हम अपने गौरवपूर्ण अतीत से भी कुछ प्रकाश ग्रहण करें। हमारे प्राचीन गुरुकुलों, तक्षशिला तथा नालन्दा में बहुत-सी ऐसी बातें थीं, जो आज भी हमें पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं। वस्तुतः हमारी शिक्षा-पद्धति की आत्मा भारतीय होनी चाहिए, जिसके आदर्श हमारी संस्कृति तथा हमारे प्राचीन विद्यालयों में मूर्त हैं।

हमने देखा है कि स्वतंत्र भारत में राज्यों के शिक्षा-प्रशासन में किसी प्रकार का महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न हुआ। प्रशासकों की संख्या-वृद्धि तथा नये पदों की सृष्टि अवश्य हुई। किंतु प्रशासनिक क्षेत्र में कोई ऐसी बात न हुई, जिससे शिक्षा प्रशासन को नयी प्रेरणा अथवा नया संकेत मिलता। शिक्षा-प्रशासन की गाड़ी पुरानी लीकों पर यंत्रवत चलती रही। शिक्षा के नव-निर्माण के लिए जो प्रेरणा तथा निर्देश अपेक्षित है, वे शिक्षा-प्रशासन से, उचित मात्रा में, प्राप्त न हो सके हैं। इस स्थिति के कई कारण हैं, जिनमें प्रमुख यह है कि प्रशासन विभाग उचित व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ न हो सका है। आई० ई० एस० के पदों की समाप्ति से भारतीय शिक्षा प्रशासन पर जो प्रभाव पड़ा—उसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। स्वतंत्र भारत में भी शिक्षा विभाग के उच्च पदों को समृद्ध करने की खास चेष्टा न हुई। मध्य तथा अवर पदों की सेवा की शर्तें, अन्य विभागों की तुलना में, इतनी अच्छी नहीं कि इनके लिए उचित योग्यता के व्यक्ति इच्छुक रहें। फलतः केन्द्रीय शिक्षा विभाग को छोड़कर राज्य शिक्षा विभागों में उतनी अन्तर्दृष्टि, गतिशीलता तथा क्रियात्मकता दृष्टिगोचर न हुई, जितनी कि भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण के लिए वांछित हैं।

इन त्रुटियों के समक्ष भी, जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, स्वतंत्र भारत की शिक्षा की उपलब्धियाँ, कई रूपों में, प्रशंसनीय रही

हैं। ये उपलब्धियाँ, उतनी ही अवधि में, संसार के समान परि-स्थितियोंवाले नवोदित देशों की उपलब्धियों से किसी अंश में, कम नहीं हैं। फिर भी, यह स्पष्ट है कि हमारी मंजिल अभी दूर है और हम इस मंजिल तक तबतक नहीं पहुँच सकते जबतक हम अन्य आयोजनों के साथ-साथ प्रतिवर्ष ४०० करोड़ रुपये, राष्ट्रीय शिक्षा के लिए, व्यय करने को प्रस्तुत न हो जायँ। किंतु गत दस वर्षों ने जो कुछ प्रकाश तथा विश्वास हमें दिये हैं—उनके आधार पर हम यह दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि वे दिन अधिक दूर नहीं जब भारत शिक्षा के क्षेत्र में संसार के प्रतिगामी देशों से पिछड़ा न रहेगा, और एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति को विकसित कर सकेगा जो इसकी संस्कृति तथा परम्परा के अनुरूप होगी।

† Judged against the record of other countries in comparable circumstances, and within a comparable period, India has no cause for shame, but she cannot forget that she must multiply her present expenditure almost threefold in order to provide Rs. 4,000 million a year needed to finance a truly national system of education worthy of her traditions and her hopes.

Humayun Kabir—Education in New India, P. 21.